CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ग्यारहवीं सदी का भारत

3861

डा० जयशंकर मिश्र

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

STATE MUSEUM, LUCKNOW
LIBRARY

Acc. No. 3861

Book No. 909.54
म ग

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ELEVENTH CENTURY INDIA

A CRITICAL STUDY ON THE BASIS OF ALBIRUNI'S ACCOUNTS

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

ग्यारहवीं सदी का भारत

अलबीरूनी के आधार पर एक सांस्कृतिक अध्ययन

डा० जयशंकर मिश्र
एम० ए०, पी-एच्० डी०
इतिहास विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय

राजकीय संग्रहालय ...
क्र.स 3861
प्राप्ति तिथि 9.12.69
State Museum, Library

भारतीय विद्या प्रकाशन,
वाराणसी

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

प्रकाशक,
भारतीय विद्या प्रकाशन,
पो० बा० १०८, कचौड़ीगली,
वाराणसी (भारत)

राजकीय संग्रहालय पुस्तकालय लखनऊ 19/12/69

C लेखक

राज्य संग्रहालय लखनऊ
क्रम 3861
प्राप्ति तिथि 19/12/69
State Museum, Library, Lko.

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के १९६३ की पी-एच्० डी० उपाधि के लिये स्वीकृत प्रबन्ध के आधार पर

3861
19.12.69

प्रथम संस्करण, १०००,
दिसम्बर, १९६८ ई०,
मूल्य, १८.००

909.54
म जी

मुद्रक,
मदनगोपाल,
भगवान शाण्डिल्य प्रेस, ए० ३।८१
त्रिलोचन वाराणसी

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

स्वर्गीय माता-पिता

को

समर्पित

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

प्राक्कथन

डा० जयशंकर मिश्र ने अलबीरूनी के आधार पर ११ वीं शती के भारत की सामाजिक स्थिति का गहन अध्ययन किया है। स्पष्टतः ऐसे प्रामाणिक अध्ययन के लिए संस्कृत में उपलब्ध सामग्री का विवेकपूर्ण उपयोग अत्यावश्यक है, और विशेषतः जबकि अलबीरूनी ने स्वयं अनेक स्थलों पर संस्कृत के ग्रन्थों का उल्लेख किया है। अध्ययन और निजी पर्यवेक्षण द्वारा तथा विश्वसनीय जनों से जानकारी प्राप्त कर उसने भारतीय समाज का जो विवरण अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'तहकीक-मालिल् हिन्द' में किया है, वह हमारे सांस्कृतिक इतिहास की अमूल्य निधि है। दर्शन, धर्म, समाज, रीति-रिवाज, भूगोल, ज्योतिष, मनोरंजन, संस्कार और न्यायिक प्रणाली आदि इस पुस्तक के विवृत्त विषय हैं। अलबीरूनी को अपने विषय के प्रति पूर्ण अनुराग है और उसने एक अनुसंधानकर्ता की तरह अपने विषय का अध्ययन किया है। जिन बातों को ठीक समझने में वह असमर्थ है, उनके लिए वह क्षमा-याचना करता है। हिन्दुओं और मुसलमानों की विभिन्नताओं को दृष्टिगत रखते हुए भी वह अपने विषय के प्रतिपादन में निष्पक्ष और पूर्वाग्रह से मुक्त हैं। अपने विचारों के व्यक्त करने में वह निर्भीक और स्पष्टवादी है। उसके शब्दों में उसका ग्रन्थ 'तथ्यों का शुद्ध ऐतिहासिक विवरण है।' हिन्दू समाज का तथ्यात्मक ज्ञान कराने के लिये जो उसने बहुत से उद्धरण दिए हैं, उनका उद्देश्य हिन्दुओं को अपने विषय में अधिक से अधिक कहने का अवसर देना है।

डा० मिश्र के अनुसार अलबीरूनी का भारतीय प्रवास-काल देश के सीमित भौगोलिक क्षेत्र में केवल दो-तीन वर्षों का है। ऐसी परिस्थिति में उसका विवरण सम्पूर्ण भारत के लिए आंशिक रूप में ही सही हो सकता है। वास्तव में यह कहना बहुत कठिन है कि उसने भारतीय समाज का चित्रण प्रस्तुत किया है वह कितना साहित्यिक सामग्री पर आधृत है और कितना पर्यवेक्षण पर। तथ्यों के संग्रह में उसे अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा है तब भी उसका विवरण काफी विश्वसनीय है। उसने स्पष्ट कहा है

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कि प्रमाणों के आधार पर ही उसने तथ्यों को स्वीकार किया है और उसकी रुचि विवादों में पड़ने की नहीं है। हिन्दुओं की संकीर्णता, दूसरों से सम्पर्क न रखने और हीन समझने की प्रवृत्ति आदि जिन दोषों की ओर उसने संकेत दिया है, वे बहुत सत्य हैं। उनके सम्बन्ध में अलबीरूनी कहता है : 'यदि वे यात्राएँ करें और दूसरी जातियों से मिलें तो उनके विचारों में शीघ्र ही परिवर्तन होगा। उनके पूर्वज इतने संकीर्ण विचार के नहीं थे, जितनी वर्तमान पीढ़ी'।

डा० जयशंकर मिश्र ने अलबीरूनी के ग्रन्थ में उपलब्ध जिस सामग्री का उपयोग किया है, वह उसका स्वल्पांश है। वास्तव में अलबीरूनी की विशेष रुचि भूगोल, ज्योतिष और साहित्य में थी, जिनका विस्तृत विवेचन उसके ग्रन्थ में किया गया है। यद्यपि हिन्दू समाज का विवरण संक्षिप्त है, परन्तु है अत्यन्त महत्त्वपूर्ण। उसके द्वारा प्रस्तुत सामग्री संस्कृत में उपलब्ध साधनों के आलोचनात्मक अध्ययन के लिए बड़ी उपयोगी है। डा० जयशंकर मिश्र ने दोनों का विवेकपूर्ण उपयोग कर पूर्वमध्यकालीन, वस्तुतः उत्तर-प्राचीन-कालीन भारतीय समाज पर एक प्रामाणिक पुस्तक लिखी है, जो इस विषय के ज्ञान में निस्सन्देह वृद्धि करती है।

हीरा लाल सिंह
प्रोफेसर एवं अध्यक्ष,
इतिहास विभाग,
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय

वाराणसी,
२४ जून १९६६

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

निवेशन

प्रस्तुत पुस्तक अरबयात्री अलबीरूनी[1] की पुस्तक 'तहकीक-मालिल्-हिन्द'[2] (भारत का इतिहास) के भारतीय राजनीतिक और सांस्कृतिक विवरणों का एक विवेचनात्मक अध्ययन है। भारत की विभिन्न विद्याओं तथा आचार-विचार पर विस्तार से लिखनेवाला अलबीरूनी ही एकमात्र अरब-लेखक है, जिसने अपनी एकनिष्ठ लगन और सूक्ष्म दृष्टि से विवेच्य सामग्री का निरूपण किया है। भारतीय विषयों के वर्णन में उसने यत्र-तत्र अन्य अनेक विदेशी साक्ष्यों को समता और भिन्नता के लिए उपन्यस्त किया है। भारत सम्बन्धी उसके विवरणों का अबतक किसी ने गुण-दोष देखने की दृष्टि से विवेचन नहीं किया। उसके व्यक्तिगत जीवन, भारत आगमन, प्रवास और भ्रमण पर प्रायः अनुमान के आधार पर ही मत व्यक्त किए गए हैं। अतः विषय-वस्तु के चुनाव और सामग्री-प्रतिपादन की दृष्टि से पूर्वमध्ययुगीन भारतीय इतिहास के क्षेत्र में यह प्रबन्ध पहला प्रयास है।

भारत के प्राचीन इतिहास में जो स्थान मेगस्थनीज, फाश्येन और श्वान-च्वाङ्ग जैसे यात्रियों के विवरणों का है, वही स्थान है पूर्वमध्ययुगीन हिन्दू भारतीय इतिहास में अलबीरूनी के विवरण का। विषय-वर्णन और विचार-संग्रथन की दृष्टि से अलबीरूनी का विवरण अपने पूर्ववर्ती यात्रियों के विवरणों से आगे है। उसकी विद्वत्ता और भारत सम्बन्धी उसके विवरणों की गुणात्मकता से प्रभावित होकर ही मैंने 'अलबीरूनी के भारत की राजनीतिक और सामाजिक अध्ययन' विषय को पी-एच्० डी० प्रबन्ध के लिए चुना जिसे मैं 'ग्यारहवीं सदी का भारत : अलबीरूनी के आधार पर एक सांस्कृतिक अध्ययन' नाम के साथ परिवर्द्धित-संवर्द्धित रूप में प्रस्तुत कर रहा हूँ। उसने भारत के ज्योतिष, गणित, रसायन, दर्शन आदि विषयों पर भी अत्यन्त विस्तार से लिखा है, किन्तु प्रस्तुत पुस्तक की विषय-सीमा के कारण मैंने इन विषयों के विवरणों को अपना विवेच्य नहीं बनाया है। यहाँ विशेषतः उसके भौगोलिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक विवरणों का अन्य ऐतिहासिक साक्ष्यों के आधार पर परीक्षण और विश्लेषण किया गया है, जिससे उनकी सत्यता और भारतीय परम्परा का सरलतापूर्वक भान हो सके।

---

1. बहुत से लोग 'अलबेरूनी' अथवा 'अलबरूनी' लिखते हैं, किन्तु उच्चारण की दृष्टि से सही नाम 'अलबीरूनी' ही है।
2. इस ग्रन्थ को एडवर्ड सखाउ ने मूल अरबी में १८८७ ई० में लंदन से सम्पादित किया, जिसका अंग्रेजी अनुवाद उन्होंने १९१० ई० में लन्दन से ही प्रकाशित किया।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

प्रबन्ध को सुबोधता और सुनियोज्यता के विचार से तीन खण्डों में विभाजित किया गया है। उन तीन खण्डों में ग्यारह अध्याय हैं। खण्ड (क) प्रास्ताविक है, जिसमें प्रथम तीन अध्याय हैं, खण्ड (ख) राजनीतिक है, जिसमें चौथे और पाँचवें अध्याय हैं, और खण्ड (ग) सामाजिक है, जिसमें शेष छः अध्याय हैं।

पहले अध्याय में अलबीरूनी के जीवन, भारत आगमन, प्रवास और भ्रमण पर नवीन सामग्रियों के आलोक में विचार किया गया है और उसके भारत आवास-काल और भ्रमण पर नवीन प्रतिष्ठापनाएँ की गई हैं। प्रस्तुत प्रबन्ध-लेखक का विश्वास है कि इस अध्याय के सम्पूर्ण विवेचन एक नवीन दृष्टि से प्रेरित हैं।

'अलबीरूनी का परिप्रेक्ष्य' नामक दूसरे अध्याय में, उसके भारत सम्बन्धी विवरणों के पीछे की प्रेरणा, उसके विषय-वर्णन का आधार, शैली, गुण-दोष, पूर्वाग्रह तथा उसके व्यक्तिगत वैशिष्ट्य की समीक्षा की गई है। विवेचना और अनुसन्धान की दृष्टि से यह प्रयास पहला ही है।

तीसरा अध्याय है 'अलबीरूनी का भौगोलिक विवरण'। उसमें उसके द्वारा विवृत्त भारत देश, विभिन्न नगरों, स्थानों, पर्वतों, नदियों, जलवायु, वर्षा, उत्पादन, पशु-पक्षियों आदि का विश्लेषण है जिससे पूर्वमध्ययुगीन भारतीय इतिहास की भौगोलिक पीठिका पर प्रकाश पड़ता है।

'अलबीरूनी के समकालिक भारतीय राज्य और तुर्क आक्रमण' नामक चौथे अध्याय में अलबीरूनी द्वारा वर्णित सामग्री का तद्युगीन अन्य लेखकों के विवरणों के आधार पर विश्लेषण किया गया है। उसने जिन भारतीय राज्यों और तुर्क आक्रमणों-विशेषकर महमूद गजनी के आक्रमणों-का उल्लेख नहीं किया है, उनका केवल सङ्केत देते हुए उसके अन्य विवरणों का ऐतिह्य साक्ष्यों के आधार पर ऐतिहासिक महत्त्व दिखाया गया है। महमूद के धावे अलबीरूनी को क्यों नहीं आकृष्ट कर सके, इस पर प्रस्तुत प्रबन्धकर्ता की अपनी दृष्टि है।

पाँचवें अध्याय में 'विधि और शासन' से सम्बन्धित अलबीरूनी के विवरणों की चर्चा है। राजनीति-सिद्धान्त सम्बन्धी जिन बातों का उसने विवरण नहीं दिया है, उन्हें छोड़ दिया गया है। अलबीरूनी के अतिरिक्त भारत आनेवाले अन्य किसी प्राचीन अथवा मध्ययुगीन विदेशी यात्री ने भारतीय राजनीति सम्बन्धी सिद्धान्तों का वर्णन नहीं किया था। इस दृष्टि से अलबीरूनी सम्बन्धी यह विवेचन महत्त्वपूर्ण है।

छठें अध्याय में भारतीय 'वर्ण, जाति और आश्रम' सम्बन्धी अलबीरूनी की सामग्री का उपयोग किया गया है। वर्णों और जातियों के विभिन्न कर्मों

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पर उसने विशद् रूप से लिखा है। जातियों के अन्तर्गत विभिन्न अन्त्यज वर्गों का क्रमानुसार उल्लेख करनेवाला अलबीरूनी ही पहला विदेशी लेखक है और पूर्वमध्ययुगीन हिन्दू भारत के सामाजिक इतिहास को जानने और समझने के लिए यह विवरण अत्यधिक महत्त्व का है।

सातवाँ अध्याय है 'हिन्दू विवाह'। अलबीरूनी के विवरणों के आधार पर उसके स्वरूप, विभिन्न विवाह प्रणालियों, मोक्ष (तलाक) आदि का विवेचन किया गया है। अलबीरूनी के अतिरिक्त अन्य किसी पूर्ववर्ती अथवा परवर्ती विदेशी लेखक ने हिन्दू विवाह पर इतने विस्तार से नहीं लिखा।

'समाज में स्त्री की स्थिति' नामक आठवें अध्याय में स्त्रियों की अवस्था, उनकी महत्ता, सम्पत्ति में उनके अधिकार, समाज में उनकी स्थिति आदि पर विवेचना की गई है।

नौवाँ अध्याय 'शिक्षा और विद्याध्ययन' से सम्बद्ध है, जिसमें शिक्षा का प्रारम्भ, आयु, उपकरण, वेदाध्ययन और उसकी त्रुटियाँ, विभिन्न भारतीय विषयों और उनकी शिक्षा, कतिपय शिक्षाओं और विद्याओं के तत्कालीन केन्द्रों आदि पर समीक्षा के साथ नूतन सामग्री की संयोजना की गई है।

'समाज में धर्म' नामक दसवें अध्याय में धर्म के महत्त्व, हिन्दू धर्म तथा उसके अन्तर्गत अनेकानेक सम्प्रदायों, तीर्थस्थानों, हिन्दू त्योहारों तथा हिन्दू संस्कारों का समीक्षात्मक संयोजना की गई है। संक्षेप में बौद्ध और जैन धर्मों की विशेषताओं का भी उद्घाटन किया गया है।

ग्यारहवें अध्याय में भोजन-पेय, वस्त्राभूषण, खेल-मनोरञ्जन, रीति-रिवाज और विश्वासों पर अलबीरूनी से प्राप्त सामग्री का आकलन और समीक्षा की गई है। विषयगत सुस्पष्ट निरीक्षण तथा मौलिक तटस्थता इस अध्याय की प्रधान विशेषता है।

इस अध्ययन को प्रस्तुत करने में अलबीरूनी के पूर्ववर्ती, समवर्ती और परवर्ती भारतीय सामग्री तथा विदेशी लेखकों के विवरणों का तुलना के लिए पूरा उपयोग किया गया है। सन्निवेश के इस प्रयास में विवेचनात्मक दृष्टि और तटस्थता प्रधान रही है। साथ ही आधुनिक इतिहासकारों के तत्सम्बन्धी विचारों का मूल्यांकन भी किया गया है।

प्रस्तुत प्रबन्ध को राष्ट्रभाषा हिन्दी में लिखने की प्रेरणा प्रोफेसर डॉ० राजबली पाण्डेय (उपकुलपति, जबलपुर विश्वविद्यालय) ने दी थी। यद्यपि हिन्दी में लिखने में अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। प्रबन्ध से सम्बन्धित सभी सामग्री अंग्रेजी, अरबी, फारसी, उर्दू तथा संस्कृत में थी।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अत: हिन्दी में लिखते समय नवीन संयोजन, नवीन आकलन, नवीन संग्रथन और नवीन विश्लेषण प्रधानतः अभीष्ट था। शोधपूर्ण इतिहास को राष्ट्रभाषा हिन्दी में लिखने में लेखक को कितनी सफलता और असफलता मिली है, यह सुविज्ञ अध्येता ही बता सकते हैं।

इस प्रबन्ध की रचना सीनियर प्रोफेसर डॉ० अवधकिशोर नारायण (अध्यक्ष, प्राचीन भारतीय इतिहास, संस्कृति और पुरातत्व विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय) के उत्साहवर्द्धक तथा स्नेहसंवलित निर्देशन में हुई है। उनकी सहायता और मार्गदर्शन के बिना यह कठिन था। समय-समय पर अपने व्यक्तिगत संग्रह से पुस्तकें सुलभ कर उन्होंने सर्वदा मेरा उत्साह बढ़ाया।

प्रस्तुत प्रबन्ध के प्रणयन में विद्वान गुरुजनों ने समय का ध्यान न रखकर सर्वदा मुक्त हृदय से अपने बहुमूल्य विचारों और सुझाओं से मेरी सहायता की जिनके बिना यह कार्य सम्भवत: पूर्ण न हो पाता। गुरुवर प्रोफेसर डॉ० हीरालाल सिंह (अध्यक्ष, इतिहास विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय) ने मेरी जिज्ञासाओं का सदा समाधान किया तथा अपनी प्रेरणा से मेरा सर्वदा उत्साह वर्द्धन और पथप्रदर्शन किया। पुस्तक के विषय-संग्रथन और प्रकाशन में आद्यन्त उनका आशीर्वाद रहा है। डॉ० राजबली पाण्डेय ने काशी आवासकाल में प्रबन्ध की पाण्डुलिपि देखकर समुचित निर्देश दिया, जिसके लिए मैं आभारी हूँ। वस्तुत: इस प्रबन्ध के विषय के सर्वप्रथम प्रेरणादायक वही थे और उन्हीं के स्नेहयुक्त निर्देशन में मेरे शोधकार्य का श्रीगणेश भी हुआ। प्रोफेसर डॉ० बुद्ध प्रकाश (अध्यक्ष, इतिहास और प्राचीन इतिहास विभाग तथा डिरेक्टर, इंडिक स्टडीज, कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरुक्षेत्र) ने प्रबन्ध पूर्ण होने के पूर्व इस विषय पर अनेक मूल्यवान सलाह दी तथा अपने शोध-निबन्धों की मुद्रित प्रति कृपापूर्वक भेजकर मेरी बहुत सहायता की। पटना की लाइब्रेरियों से जब मैं सामग्री-संकलन का कार्य कर रहा था, उस समय प्रोफेसर डॉ० रामशरन शर्मा (अध्यक्ष, इतिहास विभाग, पटना विश्वविद्यालय) ने एतद्सम्बन्धी अनेक सुझाव देकर उपकृत किया। प्रोफेसर डॉ० विश्वम्भरशरण पाठक (अध्यक्ष, प्राचीन भारतीय इतिहास, संस्कृति और पुरातत्व विभाग, गोरखपुर विश्वविद्यालय) ने अपने काशी हिन्दू विश्वविद्यालयीय आवासकाल में मेरे प्रबन्ध को पूरा पढ़ा, विचार-विमर्श किया तथा अमूल्य सुझाव दिया।

मैं सुहृद्वर श्री महेन्द्र प्रताप सिंह (प्राध्यापक, इतिहास विभाग, काशी विद्यापीठ विश्वविद्यालय) का अनुगृहीत हूँ, जिन्होंने मेरे लिये अलभ्य पुस्तकों को सुलभ किया, जिन्हें उन्होंने सुदूरवर्ती विश्वविद्यालयों से अपने शोधकार्य के लिये मँगवाया था।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

प्रबन्ध की सामग्री-संकलन में देश के अनेक पुस्तकालयों तथा व्यक्तिगत संग्रहों से मैंने लाभ उठाया है, जिनका उल्लेख कर देना अनावश्यक न होगा। सर्वप्रथम मैं नेशनल लाइब्रेरी कलकत्ता, कलकत्ता विश्वविद्यालय लाइब्रेरी तथा एशियाटिक सोसाइटी (बङ्गाल) कलकत्ता लाइब्रेरी का आभारी हूँ जिनके कार्यकर्त्ताओं ने मेरे अनुसन्धान के प्रथम वर्ष (जुलाई १९५९ ई० में ही) मेरे द्वारा भेजी गई प्राचीन अलभ्य पुस्तकों तथा पुराने जर्नलों को सूची का यथोचित उत्तर देकर मुझे शोधकार्य में प्रोत्साहित किया था। तदुपरान्त इन लाइब्रेरियों से मेरे संदर्भों को मिलाने में मेरे मित्र डॉ० सहोदर पाण्डेय (ज्ञानभारती महाविद्यालय, कलकत्ता) ने मेरा साथ दिया। लखनऊ विश्वविद्यालय लाइब्रेरी, इलाहाबाद विश्वविद्यालय लाइब्रेरी, अलीगढ़ विश्वविद्यालय लाइब्रेरी, दिल्ली विश्वविद्यालय लाइब्रेरी, इण्डियन स्कूल अव इण्टरनेशनल स्टडीज (नई दिल्ली) लाइब्रेरी तथा जम्मू और कश्मीर विश्वविद्यालय लाइब्रेरी (श्रीनगर) के अधिकारियों ने दुर्लभ ग्रन्थों-जर्नलों का देखने और उद्धरण लेने की अनुमति प्रदान की थी, इसके लिए मैं अनुगृहीत हूँ। काशी विश्वविद्यालय लाइब्रेरी, इण्डोलाजी कालेज लाइब्रेरी (का० वि० वि०), न्यूमिसमैटिक सोसाइटी अव इण्डिया लाइब्रेरी (का० वि० वि०), काशी नागरी प्रचारिणी सभा लाइब्रेरी, संस्कृत विश्वविद्यालय लाइब्रेरी तथा काशी विद्यापीठ लाइब्रेरी के अधिकारियों और कर्मचारियों ने पुस्तकों और जर्नलों को सुलभता के लिए मेरी बड़ी सहायता की। एतदर्थ मैं इन सभी का अनुगृहीत हूँ।

इसलामिया डिग्री कालेज (श्रीनगर—२, कश्मीर) की लाइब्रेरी में से कुछ फारसी और अरबी की पुस्तकें पढ़ने में प्राध्यापक श्री सैयद रजा हासिम ने अपना सहयोग दिया इसके लिए वे धन्यवादाई हैं। अलबीरूनी द्वारा उल्लिखित कश्मीर के त्योहारों के परीक्षण में प्रो० एस० एल० रैना (भू० पू० प्रिंसपल एस० पी० कालेज, श्रीनगर) ने श्रीनगर ही नहीं, बल्कि श्रीनगर से पचासों मील दूर विभिन्न गाँवों में निवास करनेवाली सम्भ्रान्त विदुषियों और पुराने जानकार व्यक्तियों से मेरा साक्षात् कराकर महत्त्वपूर्ण योग दिया, इसके लिए मैं उनका कृतज्ञ हूँ।

व्यक्तिगत संग्रहों में मैं डॉ० राजबली पाण्डेय, डॉ० हीरालाल सिंह, डॉ० विशुद्धानन्द पाठक आदि के पुस्तक-संग्रहों से विशेष रूप से लाभान्वित हुआ हूँ। उन सबके प्रति मैं नम्रतापूर्वक कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ।

यथास्थान निर्दिष्ट किये गए तथा सहायक ग्रन्थ सूची में उल्लिखित मैं उन सभी ग्रन्थकर्त्ताओं और लेखकों का अनुगृहीत हूँ, जिनके निबन्धों और ग्रन्थों

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

की मैंने प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष सहायता ली है। पुस्तक का नामानुक्रम तैयार करने मे मेरी पत्नी सुश्री विद्या मिश्रा ने सहयोग दिया है। भारतीय विद्या प्रकाशन, वाराणसी के मालिक श्री किशोरचन्द्र जैन ने पुस्तक प्रकाशित करने में अत्यधिक तत्परता दिखाई। भगवान शाण्डिल्य प्रेस, त्रिलोचन, वाराणसी के प्रोप्राइटर श्री मदनगोपालजी ने इलाहाबाद आदि अनेक स्थानों से नए टाइप मंगवाकर पुस्तक का मुद्रण अच्छा से अच्छा करने का प्रयास किया है। मुद्रण के कार्यकर्त्ताओं ने बिना कहे सहयोग दिया, इसके लिए उन्हें धन्यवाद। शीघ्रता में छापे की कुछ अशुद्धियाँ भी रह गई हैं, जिसके लिए मैं क्षमार्थी हूँ।

जय शंकर मिश्र

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

संस्कृत-हिन्दी ग्रन्थों का संक्षेप

अ० भा० सं०	: अरब और भारत के सम्बन्ध, मौलाना सैयद सुलेमान नदवी, हिन्दुस्तानी एकेडेमी, इलाहाबाद, १९३० ।
अ० वे०	: अथर्ववेद ।
अत्रि०	: अत्रि स्मृति ।
आप० गृ० सू०	: आपस्तम्ब गृह्यसूत्र ।
आप० ध० सू०	: आपस्तम्ब धर्मसूत्र ।
आप० श्रौ० सू०	: आपस्तम्ब श्रौतसूत्र ।
आश्व० गृ० सू०	: आश्वलायन गृह्यसूत्र ।
आश्व० श्रौ० सू०	: आश्वलायन श्रौतसूत्र ।
ऋ०	: ऋग्वेद ।
ऐ० ब्रा०	: ऐतरेय ब्राह्मण ।
कौ० अ०	: कौटिल्य अर्थशास्त्र ।
गृहस्थ०	: गृहस्थकांड (कृत्यकल्पतरु)
गृह० र०	: गृहस्थरत्नाकर ।
गौतम०	: गौतमस्मृति ।
गौ० ध० सू०	: गौतम धर्मसूत्र ।
जातक	: सम्पादक, भदन्त आनन्द कौसल्यायन ।
जैमिनी०	: पूर्वमीमांसासूत्र ।
तै० ब्रा०	: तैतरीय ब्राह्मण ।
नारद०	: नारद स्मृति ।
परा० मा०	: पराशर माधवीय ।
पाणिनि	: अष्टाध्यायी ।
परा०	: पराशर स्मृति ।
बृह०	: बृहस्पति स्मृति ।
बौ० गृ० सू०	: बोधायन गृह्यसूत्र ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

बौ० ध० सू०	: बौधायन धर्मसूत्र ।
भ० आ० कौ०	: भदन्त आनन्द कौसल्यायन ।
म० पु०	: मत्स्यपुराण ।
मा० पु०	: मार्कण्डेयपुराण ।
मनु०	: मनुस्मृति ।
महा०	: महाभारत ।
मिता०	: मिताक्षरा (याज्ञवल्क्यस्मृति टीका) ।
मेधातिथि	: मनुस्मृति की टीका ।
याज्ञ०	: याज्ञवल्क्यस्मृति ।
वसिष्ठ०	: वसिष्ठ स्मृति ।
वाज० सं०	: वाजसनेय संहिता ।
व० ध० सू०	: वसिष्ठ धर्मसूत्र ।
वि० पु०	: विष्णुपुराण ।
विश्वरूप	: याज्ञवल्क्यस्मृति टीका ।
शंख०	: शंखस्मृति ।
श० ब्रा०	: शतपथ ब्राह्मण ।
शां० गृह० सू०	: शांखायन गृह्य सूत्र ।
शां० प०	: शांतिपर्व-महाभारत ।
शुक्र०	: शुक्रनीतिसार ।

———

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अंग्रेजी ग्रंथों का संक्षेप

ACV	: Albiruni's Commemoration Volume, Iran Society, Calcutta.
ABORI	: Annals of the Bhandarkar Oriental Research Institute.
AI	: Albiruni's India, E. C. Sachau, London.
AGI	: Ancient Geography of India, Cunningham, Calcutta.
ASC	: Archaeological Survey of India, Reports by Sir A. Cunningham.
ASI (ASR)	: Archaeological Survey (Report) of India
Baihaqi	: Al-Baihaqi, Abi'l-Fade Muhammad b. Husain' Tarikh-Mas'udi (Ed. Morley).
BI	: Bibliotheca Indica, Calcutta.
Bird	: History of Gujarat, 1834.
CHI	: Cambridge History of India, Vol. III,
CII	: Corpus Inscriptionum Indicarum.
DHHI	: Dynastic History of Northern India, H. C. Ray, Two Volumes, Calcutta, 1931 and 1936.
ED	: Elliot and Dowson, History of India as told by its own Historians, Vols. I–II.
EI	: Epigraphia Indica.
Firishta	: Tarikh-i-Firishta, Navalkishore Press, 1874.
Gardizi	: Zain-ul-Akhbar, Ed. Nazim; Ouseley MS. 240, pages nos. 2138–220 B and 246 B–262 B, Photostat copy from Bodelian Library–B. P. Majumdar.
GAMI	: Geography of Ancient & Medieval India, D. C. Sircar.
GDAMI	: Geographical Dictionary of Ancient & Medieval India by Dey.
Habib	: Sultan Mahmud of Ghazani.
HB	: History of Bengal, Vol. I edited by R. C. Majumdar, Dacca, 1943.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

HDS : History of Dharmasastra by P. V. Kane in 5 Vols., Bhandarkar Oriental Research Institute, Poona.

HGAI : Historical Geography of Ancient India by B. C. Law.

Hodivala : Studies in Indian Muslim History, Bombay, 1939.

IA : Indian Antiquary, Bombay.

IB : Inscriptions of Bengal, Vol. III, by N. G. Majumdar.

IC : Indian Culture, Calcutta.

ICH : Islamic Culture, Haidarabad.

IHQ : Indian Historical Quarterly, Calcutta.

JAHRS : Journal of the Andhra Historical Research Society, Rajamundry.

JASB : Journal of the Asiatic Society of Bengal, Calcutta.

JBBRAS : Journal of the Bombay Branch of the Royal Asiatic Society.

JBORS : Journal of the Bihar and Orissa Research Society. Patna.

JBRS : Journal of the Bihar Research Society, Patna.

JCV : Jha Commemoration Volume, Poona, 1937.

JNSI : Journal of the Numismatic Society of India, Varanasi.

JOHRS : Journal of the Orissa Historical Research Society.

JRAS : Journal of the Royal Asiatic Society of Great Britain and Ireland, London.

Nazim : The Life aud Times of Sultan Mahmud of Ghazan, 1931.

MASI : Memoirs of the Archaeological Survey of India.

PIHC : Proceedings of the Indian History Congress.

RACV : (Prof. K. V.) Rangaswami Aiyangar Commemoration Volume, Madras, 1940.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अनुक्रम

पृष्ठ संख्या

पीठिका

निवेशन (१–६)

संस्कृत-हिन्दी ग्रन्थों का संक्षेप (१–२)

अंग्रेजी ग्रन्थों का संक्षेप (१–२)

अनुक्रम (१–१०)

खण्ड : क :

प्रास्ताविक

पहला अध्याय : अलबीरूनी का इतिवृत्त, भारत आगमन, प्रवास और भ्रमण १–१४

अलबीरूनी का जीवनवृत्त— १

प्रारम्भिक जीवन १

गरगञ्ज प्रवास १

मातृभूमि ख्वारिज्म में पुनरागमन २

मातृभूमि में विद्रोह और महमूद गजनी की चढ़ाई ३

गजन आवास ४

भारत आगमन, प्रवास और भ्रमण— ५

भारत आगमन और प्रवास ५

भारत प्रवास काल ६

उल्लिखित मतों की आलोचना ७

ईलियट के मत की समीक्षा ८

होदीवाला के मत की समीक्षा ८

अलबीरूनी के भारत आने और रहने की अवधि ९

भारत भ्रमण— १२

विभिन्न मत : समीक्षा १२

भारत के अन्य प्रदेशों में अलबीरूनी के भ्रमण न कर सकने के कारण १३

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पृष्ठ संख्या

दूसरा अध्याय : अलबीरूनी का परिप्रेक्ष्य और भारतीय ज्ञान के आधारस्रोत १५–३६
अवसर और सुविधाएँ १५
भारतीय विषयों में निपुणता १६
भारतीय विषयों में अरबवासियों का अनुराग १७
विभिन्न विषय-सम्बन्धी पुस्तक लिखने के लिए प्रेरणा १८
पुस्तक का प्रणयन १९
पुस्तक का शीर्षक १९
'तहकीक-मालिल्-हिन्द' पुस्तक के वर्ण्यविषय २०
पुस्तक एक अभाव की पूर्ति २०
पुस्तक का महत्त्व २०
'तहकीक-मालिल्-हिन्द' से अलबीरूनी की अन्य कृतियों की सूचना २१
भारत सम्बन्धी अलबीरूनी के ज्ञान के स्रोत— २२
(क) संवाददाताओं की सूचनाएँ २२
(ख) मूल ग्रन्थों का अध्ययन २४
(ग) अनूदित ग्रन्थों का अध्ययन २५
(घ) अलबीरूनी का निजी पर्यवेक्षण २६
विभिन्न विश्वास और आचारगत पर्यवेक्षण : पूर्वाग्रहयुक्त २६
सामान्य धरातल ३०
विभिन्न विषय और साहित्यगत पर्यवेक्षण ३१
विषय-वर्णन की पद्धति : तुलना और विवेचन ३१
वैज्ञानिक शैली ३२
अलबीरूनी का चरित्रगत वैशिष्ट्य ३३
तीसरा अध्याय : अलबीरूनी के भौगोलिक विवरण ३७–६५
आधार-स्रोत ३७
सात द्वीप ३७
जम्बू द्वीप ३८
देश का नाम : भारतवर्ष ३८
विभाजन : नव खंड ३९
आर्यावर्त : मध्यप्रदेश ३९
भारतवर्ष की सीमाएँ ४०
प्रधान प्रस्थान केन्द्र : कन्नौज ४०

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पृष्ठ संख्या

दूरी को माप ४१

षोडश मार्ग वृत्तांत ४१

(१) कन्नौज से प्रयाग तत्पश्चात् पूर्वी तट और काँची तक ४२

(२) कन्नौज या बारी से वाराणसी और तत्पश्चात् गंगा केमुहाने तक ४६

(३) कन्नौज से पूर्व कामरूप (कामरू) और उत्तर के सीमावर्ती देश नेपाल और तिब्बत तक ४७

(४) कन्नौज से दक्षिण, दक्षिण तट बनवासी तक ४८

(५) कन्नौज से बजान या नारायण तट और तत्पश्चात् गुजरात की राजधानी तक ४९

(६) मथुरा से (मालवा की राजधानी) धार तक ५०

(७) बजान से धार तथा उज्जैन तक ५०

(८) धार से मन्दगिरि (गोदावरी तट) तक ५१

(९) धार से भारतीय सागरतटीय तान तक ५२

(१०) बजान से काठियावाड़ के दक्षिण तटीय सोमनाथ तक ५२

(११) अनहिलवार (आधुनिक पट्टन) से बम्बई के पश्चिमी तटतान तक ५२

(१२) बजान से भाटी होते हुए सिन्ध नदी के मुहाने लोहरानी तक ५२

(१३) कन्नौज से कश्मीर तक ५३

(१४) कन्नौज से पानीपत, अटक, काबुल और गजन तक ५४

(१५) बब्रहान से अधिष्ठान (कश्मीर की राजधानी) तक ५५

(१६) मकरान स्थित तीज से सेतुबन्ध तक ५६

भारत के विभिन्न देश और निवासी ५६

पर्वत और नदियाँ ५७

जलवायु और मौसम ६३

वर्षा ६४

उत्पादन ६४

जीवजन्तु ६५

खण्ड : २ :

राजनीतिक

चौथा अध्याय : अलबीरूनी के समकालिक राज्य और तुर्क आक्रमण ६६–७८

महमूद गजनी के पूर्ववर्ती आक्रामक ६६

मुहम्मद इब्न अल कासिम ६७

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

	पृष्ठ संख्या
सुबुक्तिगीन	६८
महमूद गजनी के आक्रमण	६९
(१) लमगान के समीप आक्रमण	७०
(२) पेशावर और वैहिन्द (ओहिन्द) पर आक्रमण	७०
(३) भटिण्डा (भाटिय) पर आक्रमण	७१
(४) मुल्तान पर आक्रमण	७१
(५) भेर के गवर्नर सुखपाल पर चढ़ाई	७१
(६) वैहिन्द पर आक्रमण	७२
(७) अलवर राज्य के नारायणपुर पर आक्रमण	७२
(८) मुल्तान पर पुनर्आक्रमण	७२
(९) त्रिलोचनपाल पर आक्रमण	७३
(१०) स्थाण्वीश्वर पर आक्रमण	७३
(११) कश्मीर पर आक्रमण	७३
(१२) गंगा के दोआब पर आक्रमण	७३
(१३) कन्नौज, बारी और कालञ्जर पर आक्रमण	७४
(१४) कश्मीर पर पुनर्अभियान	७४
(१५) ग्वालियर और कालञ्जर पर पुनर्आक्रमण	७४
(१६) सोमनाथ पर आक्रमण	७४
(१७) जाटों के विरुद्ध आक्रमण	७६
महमूद : एक विश्लेषण	७७
पाँचवाँ अध्याय : विधि और शासन	७९-९६
न्याय	७९
लेख्यपत्र	७९
साक्षी	८०
साक्षी की संख्या	८१
शपथ	८२
दिव्यप्रमाण : विभिन्न प्रकार के शपथ और परीक्षण	८२
विष-परीक्षा	८३
जल-परीक्षा	८४
देव-परीक्षा	८४
तुला-परीक्षा	८५

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पृष्ठ संख्या

तप्तमांस परीक्षा ८६
तप्तलौह परीक्षा ८६
दण्ड ८८
चौर्य दण्ड ८८
हत्या दण्ड ९०
दाय ९१
पुरुष का दाय स्वत्व ९२
स्त्री का दाय स्वत्व ९४
राजस्व ९४

खण्ड : ग :

सामाजिक

छठाँ अध्याय : वर्ण, जाति, आश्रम ९७–१३४
ब्राह्मण १०२
समाज में स्थान १०२
ब्राह्मणों के उपवर्ग १०३
प्रधान कर्म १०४
आपत्तिकालिक कर्म १०४
व्यापार १०४
व्याज १०५
राज्यसेवा १०५
कृषि १०५
सैनिक वृत्ति १०६
ब्राह्मणों की विशेष सुविधाएँ १०६
राजनीतिक १०७
प्राणदण्ड १०७
चोरी का दण्ड १०८
धार्मिक १०९
बौद्धिक १०९
आर्थिक ११०

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

	पृष्ठ संख्या
सामाजिक	१११
क्षत्रिय	११२
आपत्तिकालिक कर्म	११३
खेती	११४
व्यापार	११४
विशेष सुविधाएँ	११४
उपहार ग्रहण	११४
दण्ड	११४
निषिद्ध कर्म	११५
वैश्य	११५
वैश्यों की स्थिति	११६
शूद्र	११८
अन्त्यज	१२१
उच्च वर्ग के अन्त्यज	१२३
१—धोबी	१२३
२—जूता बनानेवाले (मोची)	१२३
३—जादूगर (मदारी)	१२३
४—टोकरी और ढाल बनानेवाले	१२३
५—नौका खेनेवाले (माझी)	१२४
६—मछुआ	१२४
७—जंगली जानवरों और पक्षियों का शिकार करनेवाले	१२४
(क) पशु-हिंसक	१२४
(ख) पक्षी-हिंसक	१२५
८—बुनकर	१२५
निम्नवर्ग के अन्त्यज	१२५
१—हाड़ी	१२५
२—डोम	१२६
३—चाण्डाल	१२६
४—बधतो	१२८

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पृष्ठ संख्या

आश्रम १२९
ब्रह्मचर्य १३१
गृहस्थ १३२
वानप्रस्थ १३३
संन्यास १३३

सातवाँ अध्याय : हिन्दू विवाह १३५–१५२
हिन्दू विवाह का स्वरूप १३५
विवाह-वय १३७
अल्पवय विवाह का कारण १३८
विवाह की आज्ञा १३८
मातापिता की शुभांशसा १३९
दहेज प्रथा १३९
विवाह-क्रिया १३९
विवाह-भेद : दैव विवाह १४०
सजातीय विवाह : सवर्ण विवाह १४१
अन्तर्जातीय विवाह : अनुलोम विवाह १४१
प्रतिलोम विवाह १४३
सगोत्र विवाह १४४
सपिण्ड विवाह १४४
बहुपत्नित्व १४४
एकपत्नित्व का महत्त्व १४८
नियोग १४८
बहुपतित्व १४९
पति-पत्नी का संबंध १५१
संबंध-विच्छेद (तलाक) १५२

आठवाँ अध्याय : समाज में स्त्री की स्थिति १५३–१६६
स्त्री की महत्ता १५३
समाज में स्त्री की स्वतन्त्रता १५३
स्त्री का सम्पत्तिविषयक अधिकार १५४
स्त्रों का स्वतन्त्र अस्तित्व १५६
व्यभिचारिणी स्त्री का त्याग १५७

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

	पृष्ठ संख्या
स्त्री-धन	१५८
वेश्याप्रथा	१५९
देवदासी	१५९
मृतभर्तृका (विधवा) :	
सती (अनुमरण) या सच्चरित्र (ब्रह्मचर्य) जीवन	१६३
नवाँ अध्याय : शिक्षा और विद्याध्ययन	१६७–१६८
प्रारम्भिक शिक्षा में लेखन उपकरण	१६८
गुरु आश्रम में विद्याध्ययन	१६८
गुरु और शिष्य का सम्बन्ध	१६८
वेद का अध्ययन	१६८
वेद का पाठ : मौखिक	१७०
वेदाध्ययन का स्थान	१७१
वेद के अध्ययन की त्रुटिपूर्ण रीति	१७१
अन्य विषयों का अध्ययन	१७२
व्याकरण	१७४
शिक्षा और विद्या के प्रमुख केन्द्र	१७६
दसवाँ अध्याय : समाज में धर्म	१७९–२३२
हिन्दू धर्म	१७९
मूर्त्तिपूजा	१८१
शिवोपासक	१८३
वैष्णव धर्म	१८५
सूर्य की पूजा	१८६
धार्मिक तीर्थों की यात्रा	१९०
वाराणसी	१९१
स्थाण्वीश्वर	१९१
मथुरा	१९२
कश्मीर	१९३
मुलतान	१९४
सोमनाथ	१९५
हिंदुओं के धार्मिक त्योहार	१९६
चैत्रमात्र (मार्च–अप्रैल)	१९७

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

	पृष्ठ संख्या
वैशाख मास (अप्रैल–मई)	१९९
ज्येष्ठ मास (मई–जून)	२००
आषाढ़ मास (जून–जुलाई)	२०१
श्रावण मास (जुलाई–अगस्त)	२०२
भाद्रमास (अगस्त–सितम्बर)	२०३
आश्वयुज या आश्विन या कुआर मास (सितम्बर–अक्टूबर)	२०८
कार्त्तिक मास (अक्टूबर–नवम्बर)	२०९
मार्गशीर्ष या अगहन मास (नवम्बर–दिसम्बर)	२१३
पौष मास (दिसम्बर–जनवरी)	२१३
माघ मास (जनवरी–फरवरी)	२१४
फाल्गुन मास (फरवरी–मार्च)	२१६
हिन्दू संस्कार	२१८
गर्भाधान	२१९
पुंसवन	२२०
सीमन्तोन्नयन	२२०
जातकर्म	२२१
जननाशौच	२२२
नामकरण	२२२
चौल या चूड़ाकरण (मुण्डन)	२२३
कर्णवेध	२२४
उपनयन	२२४
बौद्ध धर्म	२२७
जैन धर्म	२३१
ग्यारहवाँ अध्याय : भोजन-पेय, वस्त्र-आभूषण, खेल-मनोरंजन, रीति-रिवाज और विश्वास	२३३–२५८
भोजन और पेय	२३३
ब्राह्मणों के लिए मांस का निषेध	२३३
वर्जित खाद्य सामग्री	२३४
विहित पशुओं का मांस	२३५
मांस न खाने वालों की प्रशंसा	२३६
निषिद्ध पशुओं का मांस	२३६
खाद्य सामग्री	२३६

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

	पृष्ठ संख्या
खजूर और नारियल	२३७
फल	२३७
भोजन-विधि	२३८
ताम्बूल	२३८
मदिरापान	२४०
वस्त्र और आभूषण	२४१
वस्त्र	२४१
उपानह	२४४
आभूषण	२४४
खेल और मनोरञ्जन	२४५
कौतुकपूर्ण खेल	२४६
शतरञ्ज	२४६
मृग का शिकार	२४८
पक्षी का शिकार	२४९
रीति-रिवाज और विश्वास	२४९
हिन्दू और अरबी रीति-रिवाज में भेद	२४९
केश और नाखून	२५०
बाजा	२५१
स्नान	२५१
घोड़े की सवारी	२५२
हाथ मिलाना	२५२
प्रस्थान की आज्ञा	२५२
अन्य रीतियाँ	२५२
मृत् व्यक्तियों को जलाने की प्रथा	२५३
हिन्दू दासों के स्वदेश भाग आने पर उनके प्रति हिन्दू समाज का व्यवहार	२५३
मंत्र-जंत्र और जादू टोना	२५५
प्राणत्याग	२५६
उपसंहार	२६०
सहायक ग्रंथ सूची	२६४–२८८
नामानुक्रम	२८९

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पहला अध्याय

अलबीरूनी का इतिवृत्त, भारत-आगमन, प्रवास और भ्रमण

अलबीरूनी का जीवनवृत्त

अबू रैहाँ मुहम्मद इब्न अहमद अलबीरूनी का जन्म मध्य एशियाई उजबेकिस्तान के ईरानी ख्वारिज्म (खीव) निवासी एक परिवार मे सितम्बर ९७३ ई० (धुलहिज्ज ३६२ हिजरी) को हुआ था।[१] ख्वारिज्म आधुनिक सोवियत संघ में आक्सस या जैहून नदी के निकट स्थित है। उसका जन्मस्थान ख्वारिज्म के बाहर था, इसलिए वह 'अलबीरूनी' कहा गया। 'अल-बीरूनी का अर्थ था 'बाहर का' अथवा 'विदेशी'। फारसी में 'बीरून' शब्द का अर्थ बाहर' अथवा 'विदेश' होता है।[२] ११६६ ई० में लिखे गये सम-आनी कृत 'किताब-अल-अन्सब' में कहा गया है कि 'बीरूनी' शब्द उन सबके लिए व्यवहृत होता था, जो ख्वारिज्म-परिवार के लोग ख्वारिज्म के बाहर पैदा होते थे।[3] अतः इसी कारण अबू रैहाँ का 'अलबीरूनी' नाम पड़ा।

प्रारम्भिक जीवन

अलबीरूनी के बचपन के जीवन के बारे में बहुत कम ज्ञात है। न उसने स्वयं अपने बारे में लिखा है, न परवर्ती लेखकों ने ही उसके प्रारम्भिक जीवन के बारे में प्रकाश डाला है। अतः यहाँ उसके प्रारम्भिक जीवन के विषय में छिटपुट सामग्री ही सन्निबिष्ट की गयी है।

गरगञ्ज-प्रवास

अलबीरूनी प्रारम्भ से ही अध्ययनशील था। ख्वारिज्म से ४ फरसख ऊपर गरगञ्ज[४] के शासक ने ९९४-९५ ई० में स्वतन्त्रता की घोषणा कर दी,

---

१. ईलियट ने अलबीरूनी का जन्म-सन् ९७०-७१ ई० (३६० हि०) दिया है, *ED.*, II, p. 1. लेकिन अधिक विद्वान् ९७३ ई० ही सही मानते हैं—Sachau, preface, *AI.*, p. VIII; Barani, S. H., *Albiruni*, p. 39; *ACV.*, Introduction, pp. 14, 83, 161.; Courtois, V., *Albiruni, p.* 9.

2. Steingass. F., *Persian-English Dictionary,* p. 219.

3. *ED.*, II, p. 2 fn.

4. इस स्थान को अरबवाले 'जुर्जानियह' कहते थे, फारसवाले 'गरगञ्ज' और परवर्ती मंगोल और तुर्क 'अरजन्त' या 'अरगञ्ज'।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

जो समानी राज्यान्तर्गत था। अलबीरूनी परिस्थितिवश गरगञ्ज के शासक के आश्रय में चला गया। उस समय उसकी अवस्था २३ वर्ष की थी।[1] गरगञ्ज के राजदरबार में उसके भाग्य ने उसका साथ दिया। शासन द्वारा वह अत्यन्त आदृत हुआ तथा उसे लिखने-पढ़ने की अनेकानेक सुविधाएँ मिलीं। अतः वहाँ रहकर उसने अनेक ग्रन्थों की रचना की। सबसे प्रसिद्ध ग्रन्थ 'अतहरअल-बाकीय' था, जिसे उसने गरगञ्ज के शासक वासमगोर के पुत्र काबूस को समर्पित किया। मुस्लिम इतिहास से विदित होता है कि गरगञ्ज उस समय विद्या और सभ्यता के क्षेत्र में अग्रगण्य था।[2] वहाँ रहते हुए अलबीरूनी ने गणित, भूगोल, ज्योतिष आदि विषयों का ज्ञान अर्जित किया। अक्षांशों की गणना और पृथ्वी की विभिन्न दूरियों की परिगणना में उसका नूतन अनुसन्धान प्रोत्साहन के अभाव में अनुत्साही तो अवश्य हुआ, किन्तु उसने अपनी लगन नहीं छोड़ी। वह गणित भूगोल, ज्योतिष आदि के नवीन विश्लेषण में बिना किसी प्रत्याशा के लगा रहा, जो उसकी अद्भुत क्षमता-शक्ति और लगन का परिचायक है। अतः उसके गम्भीर अध्यवसाय का प्रारम्भिक चरण भाग्य के साथ ख्याति के मार्ग पर मंथर गति से अग्रसर हुआ।

मातृभूमि 'ख्वारिज्म' में पुनरागमन

मातृभूमि के प्रेम से आकुल होकर वह गरगञ्ज से १००९ ई० में ख्वारिज्म लौट आया। विद्या और बुद्धि में उसकी प्रसिद्धि ऐसी फैली कि वह स्वदेश के राज-दरबार में वजीर बना दिया गया। देश में वह 'मुज्जिम', गणितज्ञ, वैज्ञानिक आदि विभिन्न रूपों में ही प्रसिद्ध नहीं हुआ, बल्कि अपनी सामाजिक विशेषताओं द्वारा भी बहुप्रशंसित हुआ। वह चाहे गम्भीर राजनीतिक न रहा हो, लेकिन व्यक्ति और स्थिति के विषय में उसका ज्ञान पूर्ण था।

अबुल अब्बास मामूँ की पत्नी कह् कालजी सुल्तान महमूद की बहन थी। सुल्तान महमूद ने अबुल अब्बास को लिखा था कि वह उसे अपना बादशाह माने तथा खुत्बह् को उसके नाम के साथ पढ़ा जाय। मामूँ ने इस महत्वपूर्ण विषय पर विचार करने के लिए अधिकारियों की परिषद् बुलायी, किन्तु जब अबुल अब्बास मामूँ ने शुक्रवार खुत्बह् के दिन महमूद गजनी के नाम को सम्मिलित करने का प्रस्ताव किया तब सामन्तों में बहुत असन्तोष फैला। उन्होंने इस प्रस्ताव को सर्वसम्मति से अस्वीकृत कर दिया। वे विभिन्न रूपों में विद्रोह की ओर उन्मुख हो गये।[3] ऐसे गम्भीर समय में अलबीरूनी ही वह

---

1. Courtois, V., *op. cit.*, p. 10.
2. Barthold, W, *Turkestan*; p. 147 ff.
3. *Baihaqi*, pp. 840-47, cf. Nazim, p. 57.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

व्यक्ति था, जिसने उस विद्रोहाग्नि को शान्त किया। अपनी स्वर्ण और रजत-युक्त जिह्वा से उसने अत्यन्त परितोषहीन दुःख का निवेदन किया तथा प्रजा के प्रतिनिधियों के सम्मुख राजा द्वारा की गयी धृष्टता के लिए क्षमा याचना की।[1]

मातृभूमि में विद्रोह और महमूद गजनी की चढ़ाई

अबुल अब्बास के इस प्रस्ताव से उसकी सेना भी भड़क उठी। किसी प्रकार सेनाधिकारियों में स्वर्ण वितरित करके कुछ समय के लिए उसने शान्ति स्थापित की तथा तुर्किस्तान के ख़ान से गुप्त सन्धि के लिए प्रयत्न किया, किन्तु सुल्तान महमूद के गुप्तचरों को इसकी सूचना मिल गयी। अतः १००,००० घोड़ों और हाथियों की एक विशाल सेना के साथ ख्वारिज्म पर चढ़ाई करने के लिए महमूद चल पड़ा। तुर्किस्तान के ख़ान ने अपनी मध्यस्थता से महमूद को इस आश्वासन पर लौटा दिया कि ख्वारिज्म शाह आपके अधीन हैं तथा ख्वारिज्म के कुछ प्रदेशों (नसा और फरावह) में 'खुत्बह' सुल्तान के नाम के साथ पढ़ा जायगा।[2]

अबुल अब्बास की इस स्वीकृति से बुखारा के अल्पतिगीन के नेतृत्व में सेना ने विद्रोह कर दिया और ख्वारिज्म शाह को कत्ल कर दिया गया।[3] चार महीनों के लिए ख्वारिज्म में अल्पतिगीन का निरंकुश प्रभुत्व बना रहा।

सुल्तान महमूद ने जब अपने बहनोई अबुल अब्बास की हत्या के दुःखद समाचार सुने तो हत्यारों को दण्ड देने के लिए ख्वारिज्म पर आक्रमण कर दिया। ३ जुलाई[4] १०१७ ई० को भीषण युद्ध के उपरान्त महमूद गजनी ने खीव को विजित किया और शाह-ए-ख्वारिज्म' की उपाधि धारण की।[5] उसने वहाँ के विद्रोहियों को दण्डित किया तथा उनकी सेना को अपनी सेना में मिला लिया। यही नहीं, वहाँ के दरबारी विद्वानों को अपने साथ गजन लेता गया। महमूद गजनी देश का धन तो लूट ही लेता था, विद्वज्जनों को भी अपने यहाँ ले जाता था। विद्यापारखी महमूद अलबीरूनी जैसे विद्वान् को कैसे छोड़ सकता था! वह अलबीरूनी को भी अपने दरबार की शोभा बढ़ाने के लिए गजन लेता गया। १०१७ ई० के बाद अलबीरूनी जीवनपर्यन्त गजन के आश्रय में रहा।[6]

---

1. *Barthold, W.*, op. cit., p. 276.
2. *Baihaqi*, p. 846.
3. *Baihaqi*, p. 484; *Gardizi*, p. 73.
4. *Utbi*, pp. 301-2; *Baihaqi*, p. 850.
5. *Tabqat-Akbari*, p. 9.
6. *Nazim*, p. 124.

गजन-आवास

अलबीरूनी गजन पहुँचकर भारतीय साहित्य और संस्कृति के सम्पर्क में आया। यद्यपि इसके पहले से वह भारतीय और ग्रीक साहित्य के विभिन्न विषयों की जानकारी रखता था; तथापि गजन आकर वह मूल रूप से भारतीय विद्याओं के निकट सम्पर्क में आया। सम्राट् महमूद द्वारा भारत से गजन ले जाये गये हिन्दू विद्वानों के संसर्ग से उसने भारतीय ज्योतिष, गणित, भूगोल, रसायन शास्त्र, धर्म शास्त्र, दर्शन आदि विषयों का ज्ञान प्राप्त किया। भारतीय विषयों के अनुशीलन-परिशीलन के पश्चात् उसने १०३१ ई० में सुल्तान महमूद की मृत्यु के बाद भारत सम्बन्धी 'तहकीक मालिल् हिन्द' ग्रन्थ की रचना पूर्ण की।

३० अप्रैल १०३० ई० को महमूद गजनी की मृत्यु के पश्चात् उसके दो लड़कों—मसूद और मोहम्मद—में उत्तराधिकार के लिए संग्राम छिड़ गया। मसूद की जीत हुई। मसूद के शासनकाल में अलबीरूनी की ख्याति और बढ़ी। अलबीरूनी ने सुल्तान मसूद को 'अलकानून अलमसूदी' नामक प्रसिद्ध गणित-ज्योतिष ग्रन्थ समर्पित किया।[१]

१०४१ ई०[२] में सुल्तान मसूद की मृत्यु के पश्चात् राजसत्ता के लिए युद्ध प्रारम्भ हो गया।[३] कुछ समय बाद मौदूद सिंहासनारूढ़ हुआ।[४] उसने भी अलबीरूनी की विद्वता और पाण्डित्य का सत्कार किया। अलबीरूनी ने मौदूद को भी 'क्रिताब-अल-तफहीम' नामक पुस्तक समर्पित की।[५] अलबीरूनी अपने अन्तिम समय तक गजन के आश्रय में रहा। १३ दिसम्बर १०४८ ई० को उस महान् विद्वान् की मृत्यु हो गयी।[६]

---

1. Sachau, *op. cit.*, p. 12.
2. *Nozim*, p. 237. 3. *Habib*, pp. 103-4
4. *Ibid.*, p. 104. 5. *ICH*. XIX, No. 4, p. 323.
6. ईलियट ने अलबीरूनी का मृत्यु-सन् १०३८–३९ ई० लिखा है, किन्तु अधिकांश इतिहासकार १०४८ ई० ही स्वीकार करते हैं—
Sachau, preface, *AI*, p. 24; Courtois, *op. cit.*, p. 15.
ACV., p. 14; मैक्समेयरहोप ने अलबीरूनी का मृत्यु-सन् १०५० ई० बताया है; *ICH*, XIX, No. 4, p. 323; जेकी वालिद तोगा मेयरहोप के मत को स्वीकार करते हैं—*Biruni's picture of the world*, p. 5.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अपनी मृत्यु के तेरह वर्ष पहले उसने अपने मित्र को लिखे गये एक पत्र में अपनी ११४ कृतियों का सङ्केत किया था,[१] जिससे यह स्पष्ट होता है कि वह सर्वदा लिखने-पढ़ने में ही तल्लीन रहता था। मुहम्मद शहरजुरी का कथन है : "वह कभी भी अपनी लेखनी को अपने हाथ से विलग नहीं करता था और न पुस्तक के अध्ययन से अपनी दृष्टि हटाता था। उसकी वृत्तियाँ सर्वदा अध्ययन की ओर लगी रहती थीं, केवल नौरोज और मिहरजाँ को छोड़कर।[२]" अबुल-फजल बैहकी, जो उससे अर्द्धशती के उपरान्त वर्तमान था, लिखता है : "बूरिहाँ तुलना से बहुत परे था, लेखन-कला में वह अपने समय के सभी व्यक्तियों से उत्कृष्ट था।[३]"

भारत-आगमन, प्रवास और भ्रमण

अलबीरूनी के भारत-आगमन, प्रवास और भ्रमण को लेकर विद्वानों द्वारा अनेक मत व्यक्त किये गये हैं। नीचे के उपशीर्षकों के अन्तर्गत विभिन्न मतों की विवेचना के बाद एक निश्चित तथ्य तक पहुँचने का प्रयास किया गया है।

भारत-आगमन और प्रवास

अलबीरूनी का भारत-आगमन कब हुआ, किसके साथ हुआ, इसमें इतिहासकारों के विभिन्न अनुमान हैं। प्रो० सखाउ का कथन है : "सही सूचनाओं के अभाव में हमने समन्वय का क्रम निर्धारित करने को चेष्टा की है, जिससे हम निश्चितता के स्वीकारात्मक स्थिति के साथ अनुमानित करें कि हमारा ग्रन्थकर्ता १०१७ ई० के तेरह वर्षों के बीच, अपनी जन्मभूमि से महमूद गजनी के राज्य में आने तक उसने सुल्तान तथा उसके सञ्चालकों की कृपादृष्टि का सुख न पाया, वह भारत के अनेक भागों में ठहरा (अपनी जन्मभूमि के राजकुमारों के साथ ?) सम्भवतः बन्धक के रूप में या राजनीतिक बन्दी के मर्यादित नियम के अनुरूप। उसे अध्ययन के निमित्त न सरकारी प्रोत्साहन एवं आर्थिक पोषण ही मिला, न सरकारी पुरस्कार का अभीष्ट ही।[४]" सखाउ के इन्हीं अनुमानों के आधार पर कुछ लोगों का कहना है कि वह महमूद द्वारा भारत में निर्वासित कर दिया गया था और कुछ लोगों की यह धारणा है कि वह महमूद गजनी के भारत-अभियान में साथ रहा;[६] किन्तु ये मत बिना

1. *ICH.*, XXXIII, No. 4, 1959., p. 214. 2. ED., II, p. 2.
3. वही 4. Sachau, *op. cit.*, p. 15. 5. *Habib*, p. 68;
6. Bose, S, N., *History of the Chandelas*, p. 12; Max Mayershop, *ICH*, XIX, No. 4.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

किसी तथ्यात्मक आधार के कल्पना-प्रसूत ही हैं। अगर वह महमूद के साथ भारत-अभियान में साथ रहा होता तो वह तद्युगीन भारतीय राजनीतिक इतिहास तथा सुल्तान महमूद के अनेकानेक भारतीय आक्रमणों का अवश्य विवरण प्रस्तुत करता और अगर वह महमूद द्वारा भारत निष्कासित कर दिया गया होता तो निःसन्देह वह अपनी 'तहकीक मालिल् हिन्द' पुस्तक में कहीं न-कहीं, किसी-न-किसी रूप में अन्य तथ्यों की तरह, इस तथ्य का भी उल्लेख करता। अपनी उक्त पुस्तक में स्थान-स्थान पर महमूद को आदर-सूचक शब्दों से स्मरण न करता।[1]

भारत-प्रवास-काल

ईलियट की यह धारणा है कि अलबोरूनी[2] ने भारतवर्ष में चालीस वर्ष व्यतीत किये, जो किसी तथ्य के अभाव में भ्रान्त हैं। भारतीय धर्म, ज्योतिष-गणित, स्मृति-पुराण, आचार-विचार, कला-संस्कृति आदि की अलबीरूनी द्वारा गम्भीर और विशद् व्याख्या देखकर ही ईलियट ने यह अनुमान किया होगा कि अलबोरूनी भारत मे चालीस वर्षों तक रहा।[3] फलतः बाद के लेखक होदोवाला ने ऐसी कल्पनाओं को भ्रान्त मानकर अपनी टिप्पणियाँ प्रकाशित कीं। ईलियट

---

१. मिश्र, जयशंकर, अलबीरूनी का भारत-आगमन, *BHUJ* pt. VII, 1962, pp. 220-229.

2. (क) "Abu Raihan travelled into India and stayed forty years there." *ED.*, II, pp. 2-3.

(ख) "बरूनी भारत में लगभग चालीस वर्ष रहे।" हिन्दी विश्वकोश, भाग १, पृ० २४३। (टि०–१९६० ई० में भारत सरकार की सहायता से काशी नागरीप्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित राष्ट्रभाषा के प्रथम हिन्दी विश्वकोश में अलबीरूनी पर लिखनेवाले विद्वान् लेखक डॉ० बैजनाथ पुरी ने भी ईलियट जैसी कल्पना की पुनरावृत्ति की है। उन्होंने ईलियट की पंक्तियों का अक्षरशः अनुवाद किया है।)

(ग) *Encyclopaedia of Islam*, vol. I, P. 726 में अलबीरूनी के भारत-आगमन, प्रवास और भ्रमण पर कोई मत व्यक्त नहीं किया गया है। इसी प्रकार *Encyclopaedia Britannica*. vol. III, p. 653 में भी।

(घ) *Encyclopaedia Americana*, vol. *IV*, p. II में अलबीरूनी के लिए लिखा गया है कि "He visited India, where he spent a long period."

३. ईलियट ने अपने अनुमान के आधार का कोई सन्दर्भ नहीं दिया है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

द्वारा प्रस्तुत इतिवृत्तों की आलोचना करते हुए होदीवाला ने लिखा है कि अलबीरूनी के भारत-प्रवास की अवधि तेरह वर्ष से अधिक नहीं हो सकती ।[1] अपने कथन के समर्थन में होदीवाला ने सखाउ का आधार उपस्थित किया है। सन् १०१७ ई० में खोव के शासक को पराजितकर महमूद गजनी अलबीरूनी को अपने साथ गजन ले गया, यह निर्विवाद है। इस प्रकार १०१७ ई० के बाद ही अलबीरूनी का भारत आना सम्भव प्रतीत होता है। साथ ही १०३० ई० में महमूद की मृत्यु के समय गजन में अलबीरूनी का उपस्थित रहना भी बताया जाता है।[2] परिणामत: १०१७ ई० में खोव पर हुए आक्रमण के समय से लेकर सन् १०३० ई०, अर्थात् महमूद गजनी के मृत्युपर्यन्त कुल तेरह वर्ष तक का काल ऐसा है जब भारत में उसका रहना सम्भव हो सकता है। सखाउ के इसी तर्क पर होदीवाला ने उसका भारत-प्रवास-काल निश्चित किया है, किन्तु अलबीरूनी के ग्रन्थ का अध्ययन मनन एवं अनुसन्धान-पन्धान करने पर यह प्रमाण पुष्ट नहीं प्रतीत होता। अलबीरूनी के कथनों के ही आधार पर कहा जा सकता है कि उसका भारत में प्रवास-काल १०२७-२८ और १०२८-२९ ई० के बीच अधिक-से-अधिक दो वर्षों का था।[3]

उल्लिखित मतों की आलोचना

यह सम्भव नहीं कि अलबीरूनी १०१७ ई० में तत्काल गजन से भारत के लिए प्रस्थान कर दिया हो अथवा १०१८ ई० या उसके बाद के भारत पर होने वाले महमूद के अभियानों के साथ रहा हो।[4] यदि अलबीरूनी कोई प्रसिद्ध योद्धा होता अथवा कोई विशिष्ट कूटनीतिक होता तो यह माना जा सकता था, पर वह विद्वान् और लेखक था, जिसे अनुकूल वातावरण युद्ध-क्षेत्र में किसी तरह

---

1. *Hodiwala*, p. 132. 2. Courtois, V., *Albiruni*, pp. 14-15.
3. Mishra, J. S., Some observations of Albiruni's Stay and Travel in India, *Bharati. B.H.U. Indological Bulletin*, No. 5, Pt. I, 1961-62.
4. (क) मैक्समेयेरहोप की कल्पना है : "He accompanied the Sultan on several of his seventeen compaigns in north and western India." ICH., XIX, No 4.

   (ख) निमइ सदन बोस ने भी ऐसी ही कल्पना की है : "Abu Rihan, who accompanied Sultan Mahmud in his compaign against Kalanjar in A. D. 1022."—Hist. of the Chandelas of Jejakbhukti, p. 12.

   किन्तु इन कल्पनाओं का कोई आधार नहीं ज्ञात होता।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

प्राप्त नहीं हो सकता था। सन् १०१७ ई० में गजन पहुँचने पर अलबीरूनी का इब्नसिना, अनसरी, अलउत्बी आदि विद्वानों और साहित्यकारों से सम्पर्क हुआ। वह महमूद के अभियानों में भारत आया होता अथवा निष्कासित कर दिया गया होता तो अन्य बातों के समान इनका भी सङ्केत वह अपने ग्रन्थ 'तहकीक मालिल् हिन्द' में अवश्य करता तथा तत्कालीन भारतीय राजाओं के राजनीतिक इतिहास और सुल्तान महमूद के विभिन्न आक्रमणों का उल्लेख करने में मौन न होता।

ईलियट के मत की समीक्षा

अलबीरूनी का जन्म ४ दिसम्बर ९७३ ई० को हुआ था और देहान्त १३ दिसम्बर १०४८ ई० को। इस प्रकार अलबीरूनी का जीवन-काल ७५ वर्षों का ठहरता है। ४४ वर्ष की अवस्था (सन् १०१७ ई०) में वह गजन पहुँचता है और यदि वह भारत आया, तो इसके बाद ही। गजन पहुँचने के बाद उसका भारत-आगमन मान लेने पर भारत में ४० वर्षों तक अलबीरूनी का प्रवास प्रमाणित नहीं होता, क्योंकि उसकी शेष उम्र ३९ वर्ष की ही रह जाती है। यदि उसका भारत-प्रवास-काल ४० वर्षों का मान भी लिया जाय तो मानना होगा कि वह सबसे पहले सन् १००८ ई० में भारत आया, जो किसी प्रकार सम्भव नहीं है, क्योंकि महमूद गजनी से १०१७ ई० में मिलने से पहले वह खोव से थोड़े समय के लिए केवल गरगञ्ज गया था,[१] भारत के लिए नहीं।

होदीवाला के मत की समीक्षा

अब रही उसके १३ वर्ष के भारत-प्रवास की बात। यह ऐतिहासिक तथ्य है कि १०१७ ई० से लेकर अन्तिम काल तक वह गजनी के राज्याश्रय में रहा। उसकी लेखनी से यह स्पष्ट है कि महमूद की मृत्यु के समय (१०३० ई० में) वह गजन में उपस्थित था। इसका उल्लेख मिलता है कि १०३० से लेकर मृत्युपर्यन्त उसने गजन में ही व्यतीत किया। ऐसी अवस्था में उसका भारत में १३ वर्ष रहना या व्यतीत करना भी अनुमान ही कहा जा सकता है। जो व्यक्ति अपनी पुस्तक 'तहकीक मालिल् हिन्द' में एक-एक व्यक्ति के साथ हुई अपनी मुलाकात तक की बात लिखता हो, अपनी जानकारी के स्रोतों का उल्लेख करता हो, कब-कब, क्या-क्या लिख रहा था यह स्पष्ट बतलाता हो, वह भारत में अपने रहने की तिथि न लिखे यह आश्चर्य ही है!

---

१. देखिए, इस अध्याय का जीवनवृत्त।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अलबीरूनी के भारत आने और रहने की अवधि

यहाँ अलबीरूनी के ग्रन्थ 'तहक़ीक मालिल् हिन्द' के महत्वपूर्ण नवीन ऐतिहासिक उद्धरणों के विश्लेषण से उसके भारत आने, रहने और गजन लौट जाने की तिथिगत अवधि पर प्रकाश डालने का प्रयास किया जा रहा है।

अलबीरूनी ने 'तहकीक मालिल् हिन्द' 'ग्रन्थ का अधिकांश गजन में रहकर लिखा। बहुत कम अंश उसने गजन के बाहर लिखा। प्रथम परिच्छेद में वह लिखता है :

"अमीनुद्दौला महमूद तीस या तीस से भी अधिक वर्षों तक भारत पर अभियान करता रहा। महमूद ने देश के ऐश्वर्य को सर्वथा नष्ट कर दिया। वहाँ उसने अद्भुत पराक्रम दिखलाया, जिससे हिन्दू सर्वत्र धूल की तरह उड़ गये।"[1]

उसके उपर्युक्त उद्धरण से यह सिद्ध होता है कि वह जिस समय अपनी उक्त पुस्तक का पहला अध्याय लिख रहा था, उस समय तक महमूद भारत पर अपना सम्पूर्ण अभियान 'तीस या तीस से भी अधिक वर्षों तक' का समाप्त कर चुका था। 'भारत' और 'वहाँ' शब्दों से यह व्यञ्जित एवं लक्षित होता है कि अलबीरूनी अपने यहाँ अर्थात् गजन में पुस्तक का पहला अध्याय लिख रहा था। अगर उसने 'भारत' में लिखा होता तो 'यहाँ' शब्द का व्यवहार करता। साथ ही उसके उक्त कथन से यह भी विदित होता है कि उसने 'प्रस्तावना' और 'पहला' अध्याय पुस्तक समाप्त हो जाने के बाद लिखा, क्योंकि पुस्तक में उसने महमूद के सोमनाथ-अभियान की बात को छोड़कर उसके और किसी अभियान का उल्लेख नहीं किया है। उसके उक्त कथन से यही स्पष्ट होता है कि महमूद तीस[2] वर्ष की अवस्था में गजन का शासक हुआ और १०३० ई० में तिरसठ वर्ष की अवस्था में मर गया।[3] कुल तैंतीस वर्ष वह गजन का शासक रहा, जिसमें केवल भारत पर आक्रमण करने में उसने तीस से अधिक वर्ष व्यतीत किये।

अतः अलबीरूनी के उल्लिखित उद्धरण से यह स्पष्ट है कि वह १०३० ई० में गजन में अपनी पुस्तक लिखने में दत्तचित्त था।

ग्यारहवें अध्याय के एक उल्लेख से विदित होता है कि अलबीरूनी गजन-प्रदेश के बाहर, सम्भवतः १०२७ ई० में या उसके बाद अपने उक्त ग्रन्थ के कुछ अध्यायों को लिख रहा था :

---

1. Al., Vol. I, p. 22. 2. *Habib*, p. 60. 3. *Nazim*, p. 124.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

"थानेश्वर नगर के प्रति हिन्दुओं के हृदय में असीम श्रद्धा है। उस स्थान की मूर्ति का नाम चक्रस्वामिन् है। यह ताँबे की है और लगभग मनुष्य के कद की है। सम्प्रति यह भगवान् सोमनाथ के साथ गजन के घुड़दौड़ के मैदान में पड़ी है।[1]"

अलबीरूनी का यह कथन कई ऐतिहासिक वृत्तों पर प्रकाश डालता है। 'थानेश्वर' (स्थाण्वीश्वर) की चक्रस्वामिन् की मूर्ति, जिसे महमूद ने १०१४ ई० में भारत पर किये जानेवाले अभियान में तोड़ा था,[2] गजन के घुड़दौड़ के मैदान में फेंकवा दिया और अनेक वर्षों बाद उसने जब इतिहास प्रसिद्ध गुजरात-अभियान में सोमनाथ की मूर्ति खण्डित की तब उसे भी उसने वहीं घुड़दौड़ के मैदान में फेंकवा दिया जहाँ 'चक्रस्वामिन्' की मूर्ति फेंकवायी थी। पहली घटना अलबीरूनी के अनुपस्थिति-काल में घटी, जब वह स्वदेश में था और दूसरी घटना उसकी मौजूदगी में, गजन आगमन के ८-९ वर्ष बाद। सोमनाथ की मूर्ति १०२६ ई०[3] में ही गजन गयी, जब महमूद भारत से गजन लौटा। अलबीरूनी ने सोमनाथ की मूर्ति गजन के घुड़दौड़-मैदान में चक्रस्वामिन् की मूर्ति के साथ पड़ी हुई देखी थी। अतः अलबीरूनी के उद्धरण से प्रमाणित है कि वह १०२६ ई० तक गजन में अवश्य था। वह इसके बाद ही किसी समय, १०२७ ई० में या १०२८ ई० में भारत आया होगा।

"यह ताँबे की है और लगभग मनुष्य के कद की है" इस वाक्य से स्पष्ट है कि उसने स्वयं उस मूर्ति को देखा था। 'गजन' शब्द के व्यवहार से प्रकट होता है कि उस अध्याय को लिखते समय वह गजन में नहीं था; अगर वह गजन में होता तो **'गजन'** की जगह **'यहाँ'** शब्द का व्यवहार करता।

इससे सिद्ध है कि अलबीरूनी १०२७-२८ ई० में गजन के बाहर किसी स्थान पर, सम्भवतः भारत में अपनी पुस्तक के कुछ अंश लिख रहा था।

अलबीरूनी द्वारा अट्ठानवे अध्याय में उल्लिखित एक और निश्चित प्रमाण मिलता है, जिससे यह स्पष्ट होता है कि वह १०२६ ई० तक गजन में अवश्य था :

"सोमनाथ की मूर्ति का एक दूसरा टुकड़ा गजन की मस्जिद के दरवाजे के आगे पड़ा है, जिस पर लोग मैल और गीलापन साफ करने के लिए पैरों को मलते हैं।[4]"

---

1. *AI.*, Vol. I, p. 117. 2. *Utbi*, p. 264; cf. *Nazim*, p. 124.
3. *Ibnu'l Athir*, IX, 243; cf. *Nazim*, p. 120.
4. *AI.*, Vol. II, p. 103.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अलबीरूनी ने सोमनाथ की मूर्ति के उस खण्डित अंश को गजन को मस्जिद के दरवाजे पर रौंदे जाते अवश्य देखा होगा और जब वह सोमनाथ के सम्बन्ध में लिखने लगा तो लगे हाथ उसने उस तथ्य को भी उल्लिखित कर दिया, जो उसने अपनी आँखों देखा था।

उपर्युक्त उद्धरणवाला अध्याय भी अलबीरूनी ने गजन के बाहर लिखा है, क्योंकि **'गजन'** शब्द के प्रयोग से यह स्पष्ट होता है कि वह उस समय गजन में नहीं था, अगर गजन में रहता तो **'गजन'** शब्द की जगह **'यहाँ'** शब्द का व्यवहार करता अधिक सम्भव है कि वह भारत में ही रहकर अपनी उक्त पुस्तक का कुछ अंश लिख रहा था और वह रहा होगा १०२६ ई० के बाद १०२७–२८ और १०२८–२९ ई० के बीच का कोई समय।

अलबीरूनी के एक उद्धरण से विदित होता है कि वह सुल्तान महमूद की मृत्यु (१०३० ई०) के एक वर्ष पहले तक गजन अवश्य पहुँच गया होगा, क्योंकि वह लिखता है :

"शेरे दुनिया बादशाह महमूद ऐसे संरक्षक का गत होना, सर्वाधिक सुदृढ़ स्तम्भ का ढहना, **यह अपने समय की आश्चर्यजनक** घटना है। अल्लाह उसकी खैर करे। **यह घटना एक वर्ष के भीतर ही** घटित हुई। **अत: यह समय** स्मरणीय है।[1]"

उसके इस उल्लेख से यह प्रकट होता है कि वह सुल्तान महमूद की मृत्यु के एक साल पहले अवश्य पहुँच गया था, क्योंकि सुल्तान महमूद की मृत्यु की घटना 'एक वर्ष के भीतर ही घटित हुई।' सुल्तान महमूद की मृत्यु ३० अप्रैल १०३० ई० को हुई थी।[2] अतः अलबीरूनी १०२९ ई० के किसी समय गजन अवश्य पहुँच गया होगा।

'यह अपने समय का, यह घटना, यह समय' आदि शब्द वाक्यों से यह स्पष्ट है कि वह गजन में वर्तमान था।

इस प्रकार अलबीरूनी के प्रकीर्णक कथनों के विश्लेषण से स्पष्ट है कि वह १०२७–२८ ई० के बीच किसी समय भारत आया और सुल्तान महमूद की मृत्यु के पूर्व १०२९ ई० में गजन अवश्य लौट गया। अतः प्रस्तुत सामग्री के आलोक में उसके भारत-प्रवास की अवधि दो वर्षों से अधिक नहीं प्रतीत होती।

1. *AI.*, p. 2. 2. *Nazim*, p. 124.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

भारत-भ्रमण

विभिन्न मत : समीक्षा

भारत के उत्तरी हिस्सों पर लिखे गये अलबीरूनी के विशद् भौगोलिक वर्णन को देखकर विद्वान् इतिहासकारों ने यह भ्रामक धारणा बना ली कि उसने भारत के अनेकानेक स्थानों का भ्रमण किया। ईलियट का यह कथन है कि उस (अलबीरूनी) ने भारत के अनेक प्रान्तों का भ्रमण किया था।[1] सखाउ ने यह मत व्यक्त किया है कि वह भारत के अनेक भागों में ठहरा[2], किन्तु अलबीरूनी के उल्लेखों से इन इतिहासकारों के मतों की कोई पुष्टि नहीं होती। अविभाजित भारत के केवल उत्तरी-पश्चिमी कुछ स्थानों को छोड़कर वह भारत के किसी और स्थान पर नहीं गया। वह भारत के जिन-जिन स्थानों पर गया था, वे पंजाब और उसके उत्तर-पश्चिम के स्थान हैं।[3] अत: अलबीरूनी के निम्नलिखित विवरण इतिहास पर नवीन प्रकाश डालते हैं :

"इसके दक्षिण में राजगिरि+ (पंजाब के उत्तर की ओर) का किल। और इसके पश्चिम में लहूर+ (लाहौर) का किला है। मैंने इनके जैसे सुदृढ़ स्थान अब तक नहीं देखे।[4]

"मैंने स्वयं लहूर-किले का अक्ष मालूम किया है। जो दूसरे अक्ष मैं स्वयं मालूम कर सका हूँ, उन्हें यहाँ बतलाता हूँ :

+
"गजन
+
कन्दी, सुल्तान की गार्द-चौकी

---

1. *ED.* II, pp. 2–3.
हिन्दी विश्वकोश में डॉ० वैजनाथपुरी द्वारा ईलियट की पंक्तियों का अनुवाद किया गया है, भा० १, पृ० २४३।

2. (क) Sachau, *op. oit.*, p. 15.
(ख) Bose, N. S., *Hist. of the Chandelas of Jajakbhukti*, p. 12.

३. मिश्र, जयशंकर, मध्यकालीन विद्वान् अलबीरूनी का भारत-भ्रमण, साप्ताहिक हिन्दुस्तान, नयी दिल्ली, १ जुलाई, १९६२।

4. *AI.*, Vol. I, p. 208.

+ इन स्थानों की पहचान खण्ड : क: के तीसरे अध्याय में यथास्थान की गयी है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

दुदपुर

+

लमगान

+

पुरशावरद

+

वैहन्द

+

जैलम

+

नन्दन का किला

+

सालकोट

+

मन्दककौर

+

मुल्तान

"हम स्वयं भी (अपनी यात्रा में) उनके देश में उन स्थानों से आगे नहीं गये, जिनका हमने उल्लेख किया है।[1]"

अलबीरूनी के ऊपर के कथन से स्पष्ट है कि वह भारत के, विशेषकर पञ्जाब के, उपरिलिखित स्थानों को छोड़कर अन्य किसी स्थान पर नहीं गया। अतः इस सम्बन्ध में इतिहासकारों द्वारा व्यक्त किये गये मत निराधार हैं। वह भारत के जिन-जिन स्थानों पर गया था, उनमें से इस समय कुछ अफगानिस्तान में हैं, कुछ पाकिस्तान में। कन्द (सम्भवतः आधुनिक गण्डमक), दुदपुर (जो शायद जलालाबाद है) और लमगान अफगानिस्तान में है।

भारत के अन्य प्रदेशों में अलबीरूनी के भ्रमण न कर सकने के कारण

कुछ विभिन्न कारणों से अलबीरूनी पञ्जाब के आगे नहीं बढ़ सका। कहीं मुसलमान जैसे विदेशियों के लिए कठोर प्रतिबन्ध था, तो कहीं उनके प्रति हिन्दुओं की घोर घृणा थी।

---

1. *AI.*, pp. 317-18.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कश्मीर में कड़ा प्रतिबन्ध होने के कारण अलबीरूनी नहीं जा सका। वहाँ विदेशों की बात तो दूर रही, स्वदेश के लोग भी कठिनाई से पहुँच पाते थे। वह कश्मीरियों के लिए लिखता है : "ये अपने देश की प्राकृतिक शक्ति के प्रति विशेष रूप से चिन्तित रहते हैं और इस तरह वे अपने देश के प्रवेश द्वारों और मार्गों पर सदा कड़ा पहरा रखते हैं। इसलिए उनसे किसी प्रकार का व्यापार करना बड़ा कठिन है। प्राचीन समय में वे एक-दो विदेशियों, विशेषकर यहूदियों को अपने देश में प्रवेश करने की अनुमति देते थे, किन्तु इस समय वे विदेशियों का तो कहना ही क्या उस हिन्दू को भी नहीं जाने देते, जिसका उनसे व्यक्तिगत परिचय नहीं।"[1]

कश्मीर के लिए यह बात सत्य मान ली जा सकती है कि कठोर प्रतिबन्ध के कारण अलबीरूनी वहाँ नहीं जा सका, किन्तु पञ्जाब के आगे पूर्व की ओर वह क्यों नहीं जा सका? कौन-सी ऐसी परिस्थितियाँ थीं, जो विरोध रूप में उसके सामने आ पड़ीं? इन प्रश्नों का उत्तर उसी की लेखनी से दे रहा हूँ : "मुसलमानों के भारत पर आक्रमण करने के कारण विदेशियों के विरुद्ध हिन्दुओं का विद्रोह दिन-पर-दिन बढ़ता गया।[2], परिणामस्वरूप उनके बिखरे हुए अवशेषों में मुसलमानों के प्रति चिरस्थायी घृणा बैठ गयी।[3]" अतः हिन्दुओं के इसी भाव को देखकर वह पञ्जाब के आगे नहीं बढ़ा। पञ्जाब तक वह इसलिए रह गया कि १०२१-२२ ई० से ही पञ्जाब में सुल्तान महमूद का शासन प्रारम्भ हो गया था।[4] वैसे १०१४ ई० में महमूद ने पञ्जाब को अपने राज्यान्तर्गत कर लिया था।[5] अतः वहाँ मुसलमानों और गजन-सैनिकों की अधिकता स्वाभाविक थी। उसे हिन्दुओं से किसी प्रकार का भय नहीं हो सकता था। बिना किसी अवरोध के घूम-फिर सकता था।

इस प्रकार अलबीरूनी के स्वयं के विवरण भारत के पञ्जाब के स्थानों के अतिरिक्त अन्य स्थानों के भ्रमण का समर्थन नहीं करते। इस सम्बन्ध में इतिहासकारों द्वारा व्यक्त किये गये मतों का अलबीरूनी के कथनों के सम्मुख कोई मूल्य नहीं रह जाता।

---

1. *AI.*, Vol. I, p. 206. 2. *Ibid.*, p. 21. 3. *Ibid.*, p. 22.
4. *Habib.*, p. 77. 5. *ACV.*, p. 96.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

दूसरा अध्याय

अलबीरूनी का परिप्रेक्ष्य और भारतीय ज्ञान के आधारस्रोत

अलबीरूनी पूर्वमध्ययुग का बहुमुखी प्रतिभासम्पन्न विद्वान् था। ज्योतिष-गणित, रसायन-भौतिक, धर्म-दर्शन, इतिहास-भूगोल, कला-संस्कृति, औषधि-अध्यात्म आदि अनेकानेक विषयों का वह समान पण्डित था। वह पहला विदेशी अध्येता था, जिसे वैज्ञानिक इण्डोलाजिस्ट कहा जा सकता है। विभिन्न भारतीय विषयों का जितना गहरा और गम्भीर ज्ञान उसे था, वैसा प्रायः दुर्लभ होता है। उसके 'तहकीक-मालिल्-हिन्द' ग्रन्थ का अध्ययन करने पर विदित होता है कि वह एक ओर जहाँ भारत के विभिन्न विषयों में अधिकार रखता था, वहीं दूसरी ओर ग्रीक और इस्लामी विद्याओं में पारङ्गत था। इस्लामी विषयों में वह ईरानी, अरबी, तुरानी आदि विभिन्न साहित्यों का मर्मज्ञ था। कई देशों की विभिन्न विद्याओं और संस्कृति को आत्मसात करके उसने अपने विवरण प्रस्तुत किये हैं, साथ ही विभिन्न विषयों के गुण और दोषों का विवेचन भी किया है।

अवसर और सुविधाएँ

महमूद गजनी का दरबारी होने के कारण उसे भारतीय विषयों के अध्ययन में अनेक सुविधाएँ प्राप्त थीं। यद्यपि १०१७ ई० में गजन पहुँचने के उपरान्त ही वह भारतीय ज्ञान-विज्ञान के अधिक निकट आया, तथापि इसके पहले से ही भारतीय विषयों में उसका प्रवेश था। सुल्तान महमूद द्वारा गजन ले जाये गये भारतीय बन्दियों और पण्डितों के निकट सम्पर्क में आकर उसका ज्ञान-चक्षु अत्यन्त निविष्ट होकर भारतीय विद्याओं का अध्ययन करने लगा। वह अपने युग का अकेला व्यक्ति था, जिसने दूसरे देश की विद्याओं को समझने-जानने के लिए अथक प्रयास किया और प्रशंसनीय सफलता प्राप्त की।

उसके हृदय में भारतीय ज्ञान के प्रति प्रबल पिपासा थी। वह भारत सम्बन्धी समस्त उपलब्ध ग्रन्थों का अध्ययन करता था। भारतीय विषयों के सम्बन्ध में अपना आग्रह व्यक्त करते हुए वह स्वयं लिखता है: "इसके लिए मेरे हृदय में असीम अनुराग है। इस दृष्टि से मैं अपने समय का सर्वथा अकेला व्यक्ति हूँ[1]।"

---

1. Al, Vol. I, p. 24.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

भारतीय विषयों के अध्ययन करने में जो तत्सम्बन्धी ग्रन्थ उसे सुलभ न होते उन्हें स्वयं धन व्यय करके मँगवाता, पढ़ता, समझता और ग्रन्थ-लेखन में उनका उपयोग करता। जो ग्रन्थ उसकी समझ में नहीं आते, उन्हें सुदूरवर्ती हिन्दू विद्वानों की सहायता से पढ़ने में कोई यत्न उठा नहीं रखता था। उन्हें बुलाता था अथवा स्वयं उनके पास जाता था। इन सम्पूर्ण कार्यों को सम्पन्न करने में उसका अत्यधिक धन व्यय होता था। वह कहता है : "जिन स्थानों से मुझे संस्कृत ग्रन्थों के मिल सकने की सम्भावना होती है, वहाँ से उन्हें इकट्ठा करने और उन पुस्तकों को समझने तथा समझा सकनेवाले सुदूर देश के निवासी हिन्दू विद्वानों की सहायता लेने के लिए धन व्यय करने और कष्ट सहन करने में मैं कुछ उठा नहीं रखता[1]।"

हिन्दू-ग्रन्थों के पढ़ने-समझने, लाने-मँगवाने आदि की अनेक सुविधाएँ उसे प्राप्त थीं। सुल्तान महमूद के राजदरबार का प्रमुख विद्वान् सदस्य होने के नाते उसका शासन और जनता में हार्दिक मान और आदर था। इसलिए ग्रन्थों की सुलभता और प्राप्यता के सम्बन्ध में उसका कार्य आसानी से हो जाता था। अतः अध्ययन की इस तत्कालीन सुविधा से वह पूर्णतः सन्तुष्ट था। उसका स्वयं का कथन है : 'इस विषय का अध्ययन करने में जो सुविधा मुझे प्राप्त है, वह अन्य किसी विद्वान् को क्या होगी ! मुझसे अधिक सुविधा उसी को मिल सकती है जिसे ईश्वर ने कर्म और आवागमन की स्वच्छन्दता दी हो, जो मुझे नहीं मिली है। कर्म और आवागमन, अपनी स्वतन्त्रता और इच्छानुसार हेर-फेर करने की शक्ति मेरे भाग्य में नहीं। अतः मैं उसके लिए ईश्वर को धन्यवाद देता हूँ, जो उसने मुझे प्रदान किया है और जिसे मैंने अपने अभिप्रेय के लिए अवश्य पर्याप्त समझा है[2]।" अतः सखाउ[3] का यह कहना कि अलबीरूनी को महमूद गजनी के शासनकाल में अध्ययन का प्रोत्साहन और सरकारी सहयोग नहीं प्राप्त था, युक्तियुक्त नहीं। अलबीरूनी के उपरिलिखित कथनों से पूर्णतः स्पष्ट है कि उसे अनेक प्रकार की सुविधाएँ प्राप्त थीं, जो अन्य किसी को नहीं मिल सकती थीं। उससे अधिक सुविधाएँ उसी व्यक्ति को मिल सकती थीं, जिसे ईश्वर ने इस भूमि पर बार-बार आने-जाने का विधान किया हो, किन्तु यह नितान्त असम्भव-सा था।

भारतीय विषयों में निपुणता

अपनी अटूट लगन और एकनिष्ठ अध्यवसाय से उसने भारतीय विषयों का गहन और गम्भीर अध्ययन किया था। इन विषयों के सिद्धान्तों, दर्शन, तत्वों आदि में अद्भुत निपुणता प्राप्त की थी। अनेकानेक विषयों में उसका

---

1. *AI., Vol. I, p 24.* 2. Ibid. 3. Ibid., preface, p, XVI,

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

इतना गहरा प्रवेश देखकर अनेक हिन्दू आश्चर्यचकित हो गये थे। अतः उसकी विद्वत्ता से प्रभावित होकर अनेक हिन्दुओं ने उसके ज्ञान-गुरु के विषय में पूछा भी।

अपनी ज्ञान-गरिमा के सम्बन्ध में उसकी आत्मश्लाघा दर्शनीय है : "प्रारम्भ में मैं उनके बीच विदेशी होने के कारण उनके विलक्षण राष्ट्रीय और विज्ञान प्रणाली से अपरिचित था तथा उनके ज्योतिष-गुरुओं के सम्मुख शिष्य की तरह था। कुछ प्रगति प्राप्त करने के पश्चात् मैंने जब उन्हें इस विज्ञान के तत्वों, अनुमानमिति के कुछ तर्कसङ्गत नियमों और गणित की सभी वैज्ञानिक प्रणालियों को दिखाना प्रारम्भ किया, तब उन्होंने आश्चर्य करते हुए ओर मुझसे पढ़ने को उत्कट अभिलाषा दिखाते हुए, एक साथ समवेत होकर मुझे चारों ओर से घेर लिया और उसी समय उन्होंने पूछा कि किस हिन्दू गुरु से उन चीजों को मैंने पढ़ा। सही में मैंने उन्हें दिखला दिया कि वे कितने पानी में हैं[1]।"

भारतीय विषयों में अरबवासियों का अनुराग

अलबीरूनी के समय पढ़े-लिखे अरबवासियों का भारतीय ज्ञान-विज्ञान के प्रति अतीव अनुराग था। वे भारतीय विषयों पर गोष्ठियाँ करते थे, जिनमें जमकर शास्त्रार्थ किया जाता और एक दूसरे के विचारों पर आलोचना-पर्यालोचना चलती। भारतीय विद्या और संस्कृति के प्रति यह ऐसी निष्ठा थी, जिसका आधार अपरिसीम अनुराग था।

स्वदेश (गजन) में भारतीय दर्शन और संस्कृति पर चलनेवाली चर्चाओं और गोष्ठियों में वह सम्मिलित होता था। अपने विचारों और तर्कों को सबके सामने रखता था। वह लिखता है : "हमारे वार्तालाप को स्पष्ट करने के लिए उपस्थित लोगों में से एक ने उदाहरणरूप में हिन्दुओं के मतों और सिद्धान्तों की चर्चा चलायी। इस पर मैंने उनके ध्यान को इस सत्य की ओर आकर्षित किया कि इस विषय में जो कुछ भी हमारे साहित्य में मिलता है वह माध्यम की सूचनाएं हैं, जो एक दूसरे द्वारा ली गयी हैं। मिली-जुली सामग्रियों को कभी विवेच्य-परीक्षा से छाना नहीं गया[2]।"

उस गोष्ठी में हिन्दुओं के मतों और सिद्धान्तों के सम्बन्ध में अलबीरूनी का यह मत था कि भारतीय विषयों की जो ज्ञप्तियाँ अरबवासियों को हैं, वे एक दूसरे के माध्यम द्वारा गृहीत हैं, जिनमें अनेकानेक त्रुटियाँ हैं; जिनका विवेचन-परीक्षण नहीं हुआ है।

1, Al., Vol. I, p, 23, 2, Ibid., Vol. I, p, 6,

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अलबीरूनी का यह मत उसकी परीक्षात्मक बुद्धि का परिचय देता है तथा अरबवासियों में प्रचलित त्रुटिपूर्ण भारतीय विषयों का सङ्केत करता है। अलबीरूनी के उपर्युक्त कथन से यह भी उद्घाटित होता है कि उसने मनोयोगपूर्वक उन समस्त भारतीय विवरणों का अध्ययन किया था, जो उसके पहले के अरब शिक्षित समाज में पढ़ा जाता था और इस तरह उसने तत्सम्बन्धी तमाम गलतियों की ओर लोगों का ध्यान आकर्षित किया।

किसी विषय को, उसी रूप में–बिना अपनी ओर से कुछ जोड़े–लिखनेवाले अरब लेखकों में केवल अलेरान शहरी + था, किन्तु कालान्तर में वह भी सत्य पथ से हट गया था। अलबीरूनी कहता है : "विषय को तद्वद, सरल और सही रूप में वर्णन करनेवाले लेखकों में से केवल मैं एक को जानता हूँ। वह अबू-अल-अब्बास अलेरान शहरी है, किन्तु वह भी जब अपनी पुस्तक में हिन्दुओं और बौद्धों पर बोलने के लिए आया तो अपने मार्ग से भटक गया[1]।"

भारत की विभिन्न विषयसम्बन्धी पुस्तक लिखने के लिए प्रेरणा

विभिन्न भारतीय विषयों में अलबीरूनी की गहरी पैठ और गहन अध्ययन देखकर उसके गुरु अबू सहल + + ने भारतीय विषयों से सम्बन्धित एक पुस्तक लिखने के लिए उसे प्रेरित किया। अलबीरूनी लिखता है : "गुरु अबू सहल ने दूसरी बार पुस्तकों (अलेरान शहरी की पुस्तकें) को पढ़ा। अब उन्होंने वैसा ही पाया जैसा मैंने उनसे इसे विवृत्त किया था, तब उन्होंने मुझे प्रेरित किया कि जो कुछ मुझे हिन्दुओं के विषय में ज्ञात है उसे लिख दूँ, ताकि जो लोग उनसे धार्मिक विषयों पर शास्त्रार्थ करना चाहें उन्हे यह पुस्तक ज्ञान भण्डार का काम दे[2]।"

अलबीरूनी के इस कथन से विदित होता है कि अरबवासियों में भारतीय ज्ञान-विज्ञान धर्म और दर्शन के विषय में सूचना प्राप्त करने का असीम उत्साह था। वे कभी-कभी भारतीय विषयों पर गोष्ठियाँ करते थे, जिसमें भारतीय

\+ अलेरान शहरी ने धर्मों का इतिहास लिखा था। अलबीरूनी इस लेखक की पुस्तक बहुत पहले (१००० ई०) से जानता था, क्योंकि उसने अपनी कालगणना की पुस्तक में इसकी पुस्तक से दो उद्धरण दिये हैं :
Sachau, *Chronology of Ancient Nations*, pp. 208, 211,

1. *AI.*, Vol.I, pp. 6-7. 2. *Ibid.*, p. 7.

\+ + अबू सहल काकेशस के अन्तर्गत अल-तफलीसी का रहनेवाला था। सखाउ का मत है कि वह महमूद के दरबार में किसी उच्च पद पर था।
Sachau, *AI.*, Vol. II, p. 250.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ज्ञान-विज्ञान, संस्कृति, धर्म और दर्शन से सम्बन्धित विचारों का आदान-प्रदान भी होता था।

वह पुस्तक के अन्त में यही कहता है: "हम अब सोचते हैं कि हमने जो कुछ भी इस पुस्तक में वर्णित किया है वह किसी व्यक्ति के लिए भी पर्याप्त होगा, जो हिन्दुओं के साथ आदान-प्रदान करना चाहता है और उनके साथ धर्म, विज्ञान, साहित्य और उनकी संस्कृति के आधार पर बहस करना चाहता है[1]।"

स्पष्ट है कि अलबीरूनी ने विशुद्ध ज्ञान की भावना से ही नहीं, अपितु धार्मिक अभिप्राय से भी पुस्तक का प्रणयन किया था।

पुस्तक का प्रणयन

अतः उस्ताद अबू सहल की आज्ञा को स्वीकारकर, उनको प्रसन्न करने के निमित्त उसने भारतीय विषयों से सम्बन्धित 'तहकीक मालिल् हिन्द' नामक पुस्तक का प्रणयन किया। वह स्वयं कहता है: "उस्ताद को खुश करने के लिए मैंने ऐसा किया और हिन्दुओं के सिद्धान्तों पर इस पुस्तक को लिखा[2]।"

पुस्तक का शीर्षक

इस पुस्तक[3] का सम्पूर्ण शीर्षक इस प्रकार है: "**किताब अबो अल रैहाँ मुहम्मद इब्न अहमद अलबीरूनी फ़ी तहकीक मालिल्-हिन्द मिन मकबूलह् फिल् अक्ल् अब मरधूल।**" किन्तु, अधिकांश लोग इसका संक्षिप्त शीर्षक '**तहकीक मालिल् हिन्द**' ही व्यवहृत करते हैं। ईलियट[4] तथा अन्य लेखकों ने इसका संक्षिप्त शीर्षक 'तारीख-उल-हिन्द' लिखा है, किन्तु इसका सही शीर्षक 'तहकीक मालिल् हिन्द' है, क्योंकि सम्पूर्ण शीर्षक में 'तहकीक मालिल् हिन्द' ही आया है, 'तारीख उल (=अल) हिन्द' नहीं। कोर्टवायस[5] का कहना है कि पेरिस हस्तलेख में अनेक बार 'तारीख़-उल-हिन्द' ही प्रयुक्त हुआ है, किन्तु लिपिकारों की असावधानी से ऐसा हुआ होगा।

---

1. *AI.*, Vol. II, p. 246.
2. *Ibid.*, Vol. I, p. 7.
३. इस पुस्तक का मूल (अरबी) १८८५-८६ ई० में सखाउ ने सम्पादित किया, यद्यपि इस सम्पादन के पहले उन्होंने १८८३-८४ ई० में ही इस पुस्तक का जर्मन भाषा में अनुवाद प्रकाशित कर दिया था। इसका अंग्रेजी अनुवाद उन्होंने १८८७-८८ ई० में प्रकाशित कराया, जो १९१० ई० में लन्दन से पुनर्मुद्रित हुआ।
4. *ED.*, II, p. 1; *Encyclopaedia of Islam*, I, p. 726.
5. Courtois, V., *Albiruni*, p. 37.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

'तहकीक मालिल्-हिन्द' पुस्तक का वर्ण्य-विषय

अलवीरूनी ने इस पुस्तक में विभिन्न भारतीय विषयों को तुलनात्मक दृष्टि से विवेचित किया है। तुलना में उसने ग्रीक, अरबी, ईरानी, ईसाई आदि व्यवहारों को दिया है। भारतीय ज्योतिष, गणित, भूगोल, इतिहास, रसायन, भौतिक, धर्म, दर्शन, व्यवहार, आचार, समाज, खेल, मनोरञ्जन आदि अनेकानेक विषयों को उसने अस्सी अध्यायों में लिखा है। भारतीय ज्योतिष, गणित, भूगोल और तत्वदर्शन पर उसने विस्तार से लिखा है तथा साथ-साथ अरबी, ईरानी, ग्रीक उल्लेखों से तुलना करते हुए गुण-दोष का विवेचन किया है।

पुस्तक एक अभाव की पूर्ति

अलवीरूनी यह चाहता था कि एक ही पुस्तक में हिन्दुओं के सभी मत-मतान्तरों, दर्शन-सिद्धान्त और उनकी शाखाओं-उपशाखाओं का वर्णन हो जाय। अतः इस अभाव की पूर्ति के निमित्त भी उसने अपनी इस पुस्तक की रचना की। वह लिखता है : "मैंने पहले से अरबी में दो पुस्तकों का अनुवाद किया है एक सृष्टि की समस्त वस्तुओं तथा उत्पत्ति के विषय में है, जो सांख्य कहलाती है और दूसरी जीवात्मा के शारीरिक बन्धनों से मुक्तिलाभ से सम्बन्धित है, वह पतञ्जलि (पातञ्जल) कहलाती है। ये दोनों पुस्तकें हिन्दुओं के अधिकांश सिद्धान्तों और विश्वासों को तो वर्णित करती हैं, किन्तु उनसे निकली हुई एक भी उपशाखा को नहीं वर्णित करतीं। मैं आशा करता हूँ कि प्रस्तुत कृति के हो जाने से पहली दोनों और अन्य पुस्तकों की पाठकों के लिए कोई आवश्यकता न होगी। विषय का यह यथोचित प्रतिनिधित्व करेगी और पाठकों को पूर्ण रूप से परिचित करायगी[1]।"

पुस्तक का महत्व

अलवीरूनी की 'तहकीक मालिल्-हिन्द' पुस्तक इतिहास और संस्कृति के योग-क्रम में महत्वपूर्ण कृति है। भारतीय इतिहास, समाज, जीवन तथा विभिन्न विद्याओं का सत्य आख्यान प्रस्तुत करनेवाली यह अकेली कृति है। अलवीरूनी का स्वयं-कथन है : "मेरी पुस्तक सत्य बातों का सरल ऐतिहासिक विवरण है[2]।" सभ्यता और संस्कृति के अन्य विश्वविख्यात् ऐतिहासिक सिद्धान्तों की तुलना में भारतीय सिद्धातों का निरूपण करनेवाला अलवीरूनी ही एकमात्र ऐसा विदेशी लेखक है, जो सभी युगों के विश्व-विश्रुत लेखकों से सर्वोपरि है। अलवीरूनी ने समस्त भारतीय विषयों को इस कृति में विवेचित किया है। उसके द्वारा वर्णित तत्कालीन भारतीय इतिहास, सभ्यता, विद्या और संस्कृति भारतीय इतिहास की नवीन उपलब्धि हैं।

---

1. *AI.*, Vol. I, p. 8. 2. *Ibid*, p. 7.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

उसकी इस पुस्तक से तत्कालीन भारत के इतिहास पर जहाँ नवीन प्रकाश पड़ता है, वहीं उसकी सभ्यता और संस्कृति पर नया आलोक। अतः उसकी पुस्तक पूर्वमध्ययुगीन भारतीय इतिहास, सभ्यता और संस्कृति के क्षेत्र में अभूत-पूर्व कड़ी है, जिसके बिना तद्युगीन इतिहास का लेखन अधूरा ही माना जाना चाहिए।

'तहकीक मालिल्-हिन्द' से अलबीरूनी की अन्य कृतियों की सूचना

अलबीरूनी ने अपने इस ग्रन्थ में जहाँ-तहाँ उन कृतियों की सूचना दी है, जिन्हें वह लिख चुका था, या लिख रहा था अथवा लिखना चाहता था। **'सांख्य'** और **'पातञ्जल'** का, यह ग्रन्थ लिखने के पहले, वह अरबी में अनुवाद कर चुका था।

तेरहवें अध्याय में वह लिखता है: "उनकी अधिकांश कृतियाँ श्लोकों में हैं, जिसमें मैं आजकल स्वयं अभ्यास कर रहा हूँ, हिन्दुओं के **यूक्लिड** और **अलमस्त** के ग्रन्थों का भाषान्तर तैयार करने और **अस्तलाब** के निर्माण पर एक निबन्ध लिखवाने में लगा हूँ[1]।"

स्पष्ट है कि अलबीरूनी प्रस्तुत कृति के प्रणयन के साथ-साथ यूक्लिड और अलमस्त की पुस्तकें भी श्लोकबद्ध करने में लगा था।

चौदहवें अध्याय में वह नक्षत्रविद्या और ज्योतिर्विद्या पर लिखते हुए कहता है: "अबतक मुझे **पुलिस** और **ब्रह्मगुप्त** की पुस्तकों के अतिरिक्त और कोई पुस्तक नहीं मिली। मैंने उनका अनुवाद करना आरम्भ कर दिया है, पर अभी मेरा काम समाप्त नहीं हुआ[2]।"

पुलिस और ब्रह्मगुप्त की पुस्तकों का अनुवाद उसने कुछ दिन बाद समाप्त कर लिया होगा। उसने वराहमिहिर के **लघुजातक** का भी अनुवाद किया था, यह इसी अध्याय के एक उल्लेख से विदित होता है। वह लिखता है: "वराहमिहिर ने दो जातकों की रचना की लघु और बृहत्।....पहले को मैंने अरबी में अनुवाद किया है।[3]"

'पचतंत्र' के अनुवाद करने की भी उसकी अभिलाषा थी। वह लिखता है: "मैं चाहता हूँ पंचतंत्र का अनुवाद करना[4]।"

उनतीसवें अध्याय के अन्त में वह अपनी आन्तरिक इच्छा प्रकट करते हुए लिखता है: "यदि ईश्वरकृपा से अधिक दिन तक जिन्दा रहा तो मैं निशापुर के रेखांश पर एक बिशेष प्रबन्ध लिखूँगा[5]।"

---

1. *AI.*, Vol. I, p. 137. 2. *Ibid.*, p. 158. 3. *Ibid.*
4. *Ibid.*, p. 159. 5. *Ibid.*, p. 305.

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

छप्पनवें अध्याय में वह चन्द्रमा और नक्षत्रों पर लिखते हुए कहता है : "मैंने इस विषय की खोज करने तथा सब प्रकार की तुलनाओं से निश्चय करने की पूरी-पूरी कोशिश की है और अपनी खोज के परिणाम को **'नक्षत्रों की स्थिरता'** नामक पुस्तक में लिख दिया है[1] ।"

'नक्षत्रों की स्थिरता' पर अलबीरूनी की अनुसन्धानात्मक पुस्तक थी, जिसमें उसने नक्षत्रों की नयी सूचनाएँ दी थीं ।

भारत सम्बन्धी अलबीरूनी के ज्ञान के स्रोत

किसी भी देश के ज्ञान-विज्ञान, शिक्षा और संस्कृति को जानने के अनेक स्रोत होते हैं । संवाददाताओं की सूचनाएँ तत्तत् देश के मूल ग्रन्थ, अपने देश में प्रचलित तत्तत् देश के अनूदित ग्रन्थ तथा स्वयं का पर्यवेक्षण, ज्ञान-प्राप्ति के मुख्य स्रोत होते हैं । अलबीरूनी ने भारतीय विद्याओं को समझने और जानने के लिए इन समस्त स्रोतों के माध्यम का लाभ उठाया है । यहाँ यह कह देना अनुचित न होगा कि अलबीरूनी ही वह पहला विदेशी लेखक है, जिसने इन समस्त साधनों का उपयोग किया था । इसके पूर्व के, प्राचीन और मध्ययुगीन तथा परवर्ती विदेशी लेखकों और यात्रियों ने इतने सुनियोजित रूप में अपने विवरण नहीं प्रस्तुत किये हैं । अतः इस क्षेत्र में अलबीरूनी का प्रयास अकेला और अछूता है ।

(क) संवाददाताओं की सूचनाएँ

अलबीरूनी ने अपने ग्रन्थ 'तहकीक-मालिल् हिन्द' में अनेक विवरण संवाददाताओं की सूचनाओं के आधार पर दिये हैं, यद्यपि उसे इन सूचनाओं के प्रति सर्वदा सावधान रहना पड़ा कि वे किस सीमा तक और किस अंश तक सत्य थीं, क्योंकि ये संवाददाता पूर्वाग्रह और असन्तोष के कारण अनेक असत्य सूचनाएँ देने से नहीं चूकते थे । इसीलिए अलबीरूनी ने इन संवाददाताओं में अनेक भेद कर दिये थे । वह लिखता है : "संवाददाताओं पर विभिन्न देशों के पक्षपात, पारस्परिक विरोध तथा द्वेष का प्रभाव सामान्यतः पड़ता है । हमें संवाददाताओं के विभिन्न वर्गों में अवश्य अन्तर रखना चाहिए[2] ।"

असत्य सूचना देनेवाले संवाददाताओं का उसका स्वयं का अनुभव था, जो अत्यंत रोचक है । एक बार कन्नौज के कुछ मदारी संवाददाताओं ने उसे असत्य बातें बतायीं । उसने जब बाद में विचार किया तब उसे असत्य बातों का पता लगा । वह कहता है : "जब संवत्सरों के इन काल्पनिक नामों में देशों, वृक्षों, और पर्वतों के नाम सुने तो मुझे अपने संवाददाताओं पर सन्देह हुआ, विशेष

1. *AI.*, Vol.II, p. 83. 2. *Ibid.*, Vol, I, p. 1.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

रूप से उनके प्रधान कर्म जंत्र-मंत्र और जादू (मदारी सदृश) थे। रंगी हुई दाढ़ी अपने धारण करनेवाले को झूठा साबित करती है। एक ही प्रश्न को अलग-अलग समयों, क्रमों और सन्दर्भों में दुहराते हुए, मैंने सर्वदा ध्यान से एक-एक की परीक्षा की, परन्तु, देखिए कैसे भिन्न-भिन्न उत्तर मैंने पाये।[1]"

कुछ ऐसे संवाददाता भी थे जो जातिगत स्वार्थ और परिवारगतद्वेष के कारण असत्य सूचना देते थे। अलबीरूनी लिखता है: "कुछ संवाददाता जाति-विशेष के होने के कारण स्वार्थसिद्धि के लिए परिवार और देश की प्रशंसा करके अथवा अपने विरोधी परिवार और देश पर आक्षेप करके असत्य बोलते हैं, क्योंकि वे सोचते हैं कि ऐसा करने से उनका अभीष्ट सिद्ध हो सकता है। दोनों स्थितियों में लोभ और द्वेष जैसे दुर्गुण ही उन्हें ऐसा करने के लिए उत्प्रेरित करते हैं।[2]"

इनके अतिरिक्त कुछ ऐसे संवाददाता थे जो प्रकृत्या झूठ बोलते थे।[3] अतः अलबीरूनी के अनुसार वही व्यक्ति प्रशंसनीय था जो सत्य का अनुसरण करता था।[4]

अलबीरूनी द्वारा विशेष रूप से इन संवाददाताओं के उल्लेख करने का प्रमुख कारण यह था कि जो विवरण वह प्रस्तुत कर रहा है, उसके गलत और सही के उत्तरदायी वे संवाददाता हैं, न कि वह स्वयं। संवाददाताओं की सूचनाओं को उसने इन्हीं विचारसरणियों द्वारा परख कर गृहीत किया था। उसके संवाददाता अनेक स्थानों के थे, कोई नेपाल और तिलवत का भ्रमण करके लौटा था, कोई सोमनाथ का रहनेवाला था और कोई कन्नौज का। यहाँ उदाहरण के रूप में केवल तीन स्थानों के संवाददाताओं को उद्धृत कर रहा हूँ :

अ—"तिलवत के सम्मुख दायीं ओर का देश नेपाल राज्य है। एक मनुष्य ने, जो उन देशों का भ्रमण कर चुका था, मुझे निम्नलिखित सूचना दी।[5]"

ब—"सोमनाथ के पड़ोस में रहनेवाले एक व्यक्ति ने मुझे बताया कि हमारा मिसकल तुम्हारे मिसकल के बराबर है।[6]"

स—"मुझे कन्नौज देश के कुछ लोग मिले हैं, जिन्होंने मुझसे कहा है ।[7]"

इस प्रकार अलबीरूनी ने संवाददाताओं के माध्यम से अनेकानेक भारतीय विषयों की सूचना दी है।

---

1. *AI.*, Vol. II, p. 129.
2. *Ibid.*, Vol.I, pp. 1-2.
3. *Ibid.*, p. 2.
4. *Ibid.*, p. 2.
5. *Ibid.*, I, p. 201.
6. *Ibid*, p. 161.
7. *Ibid.*, Vol. II, p. 129,

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

(ख) मूल ग्रन्थों का अध्ययन

पुराणों और विभिन्न हिन्दू धर्मशास्त्रों से लाभ उठानेवाला वह प्रथम मुसलमान लेखक था। विद्या के इन क्षेत्रों में पारङ्गत होने के कारण अपने पूर्ववर्ती और परवर्ती मुसलमान लेखकों की तुलना में सर्वश्रेष्ठ था। ज्योतिष, गणित, भूगोल और तत्वदर्शन सम्बन्धी उसका ज्ञान अत्यन्त गहन और विवेकशील था।

उसने भारत के अनेक मूल ग्रन्थों का अध्ययन किया था तथा अपनी पुस्तक के प्रणयन में उनकी सहायता ली थी। इन मूल ग्रन्थों में ज्योतिष, भूगोल, धर्म, दर्शन, औषधि, रसायन आदि के प्रधान ग्रन्थ थे। कुछ ऐसे भारतीय मूल ग्रन्थों की उसने सूची दी है, जिन्हें उसने देखा नहीं था। उनका केवल साधारण परिचय के साथ नाम दिया है, जैसे चारों वेद।[1]

उसने अठारह पुराणों के नाम दिये हैं जो इस प्रकार हैं—आदिपुराण, मत्स्यपुराण, कूर्मपुराण वराहपुराण, नरसिंहपुराण, वामनपुराण, वायुपुराण, नन्दपुराण, स्कन्दपुराण, आदित्यपुराण, सोमपुराण, साम्बपुराण, ब्रह्माण्डपुराण, मार्कण्डेयपुराण, तार्क्ष्यपुराण, विष्णुपुराण, ब्रह्मपुराण और भविष्यपुराण।[2]

किन्तु, उसने इन सभी पुराणों को पढ़ा नहीं था। वह स्वयं लिखता है : "इस सम्पूर्ण साहित्य में से मैंने केवल मत्स्य, आदित्य और वायुपुराण के अंशों को देखा है।[3]"

उसके इस कथन से यह भी स्पष्ट है कि उसने जिन पुराणों को देखा, उनके सम्पूर्ण भाग को नहीं, बल्कि उनके अंशों को देखा। विष्णुपुराण को उसने स्वयं नहीं पढ़ा था, बल्कि किसी से पढ़वाया था। वह कहता है : "पुराणों की इससे कुछ भिन्न सूची 'विष्णुपुराण' से पढ़कर सुनायी गयी है।[4]"

उसने बीस स्मृतियों की सूची दी है, जो इस प्रकार है—आपस्तम्ब, पराशर, शतपथ, सामवर्त्त, दक्ष, वसिष्ठ, अङ्गिरस, यम विष्णु, मनु, याज्ञवल्क्य, अत्रि, हारीत, लिखित, शङ्ख, गौतम, वृहस्पति, कात्यायन, व्यास और उशनस।[5]

इन स्मृतियों में से उसने कौन-कौन-सी देखी थीं, कौन-कौन-सी नहीं, इस सम्बन्ध में उसने कुछ भी नहीं लिखा है। हाँ, मनुस्मृति के कुछ अंश उसने अवश्य देखे थे।

इनके अतिरिक्त उसने अन्य अनेक विभिन्न विषयगत ग्रन्थों का नाम दिया है जैसे 'गौड़ का ग्रन्थ', 'कपिलकृत सांख्य', 'पतञ्जलि , 'कपिलकृत न्यायभाषा', 'जैमिनिकृत मीमांसा', वृहस्पतिकृत लोकायत', और 'विष्णुधर्म'।[6]

---

1. *AI.*, Vol. I, p. 127 2. *Ibid.*, p. 130. 3. *Ibid.*, Vol. I,p. 130.
4. *Ibid.*, p. 131. 5. *Ibid.* 6. *Ibid.*, p. 132.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

विभिन्न पर्वों के साथ उसने जहाँ महाभारत का उल्लेख किया है,[१] वहीं दूसरी ओर गीता और रामायण का भी। भारतीय व्याकरण और छन्द सम्बन्धी पुस्तकों का विवरण देते हुए वह लिखता है : "इस विज्ञान के ग्रन्थों के जो नाम मुझे बताये गये हैं वे निम्नलिखित हैं[२]—ऐन्द्र चान्द्र, शाकट, पाणिनी, कातंत्र, शशिदेववृत्ति और शिष्यहितावृत्ति[3]।"

प्रकट है कि उसने इन ग्रन्थों के केवल बताये गये नामों को दिया है।

अलबीरूनी ने पुलिस, ब्रह्मगुप्त, वराहमिहिर, आर्यभट्ट, बलभद्र, पाणिनी, आदि भारतीय लेखकों के अनेक उद्धरण अपनी पुस्तक में यत्र-तत्र दिये हैं, जिनसे विदित होता है कि उसने इन भारतीय ग्रन्थों का अध्ययन किया था।

(ग) अनूदित ग्रन्थों का अध्ययन

प्रारम्भ में, जब अलबीरूनी संस्कृत नहीं जानता था, अरबी में अनूदित भारतीय ग्रन्थों का उसने अध्ययन किया था। अपनी प्रारम्भिक स्थिति में अनुवाद के माध्यम से ही उसने विभिन्न भारतीय विषयों का परिचय प्राप्त किया होगा।

अरब में, अलबीरूनी से सदियों पूर्व, भारतीय ग्रन्थों का अनुवाद-कार्य प्रारम्भ हो चुका था। इसमें ज्योतिष, फल गणित, चिकित्सा आदि के ग्रन्थ अधिक थे। गणित-ज्योतिष की पुस्तक 'वृहत्संहिता' 'अससिन्द हिन्द' (१५४ हि० में अनुवाद) नाम से अरबवासियों में प्रचलित थी।[४] इसी तरह 'आर्यभट्ट की पुस्तक' अरजबन्द' नाम से प्रसिद्ध हुई।[५]

अलबीरूनी को भारतीय ज्योतिष और गणित विषयक परिचय अलफ-जारी + और याकूब + + के अनुवादों से मिला था। वह लिखता है : "यह स्पष्ट है कि अलफजारी और याकूब ने कभी अपने हिन्दू गुरु से इस विषय की बात सुनी थी कि ग्रहों के चक्करों की गणना वृहत्संहिता को है।[६]"

---

1. *AI.*, *Vol. I.*, p. 133. 2. *Ibid.*, p. 135, 3. *Ibid.*

४. अ० भा० सं०, पृ० १११-२। ५. वही, पृ० १२।

\+ अलफजारी (७७१ ई. के लगभग वर्तमान) पहला अरबी लेखक था जिसने भारतीय ज्योतिष और गणित को अरब समाज में प्रचारित किया। Sachau, *AI.*, Vol. II. p. 310.

\+ + याकूब इब्न तारिक (७७९ ई० के लगभग वर्तमान) भूगोल, गणित, ज्योतिष, कालगणना विज्ञान आदि का प्रकाण्ड पण्डित था। *Ibid.*, pp. 311-12.

6. *AI.*, Vol. II, p. 18.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अरबी में अनूदित चरक की पुस्तक का अलबीरूनी ने अध्ययन किया था। वह लिखता है : "चरक की पुस्तक में निम्नलिखित बातों का वर्णन है। मैं उन्हें यहाँ अरबी अनुवाद के माध्यम से लिखता हूँ, क्योंकि मैंने उनको हिन्दुओं के मुँह से नहीं सुना।[1]"

(घ) अलबीरूनी का निजी पर्यवेक्षण

प्रत्येक देश के व्यक्ति के पर्यवेक्षण में एक दृष्टि होती है, जो स्पष्टता, तटस्थता, सत्यता आदि को प्रमुख तो मानती है, किन्तु अनजान में अनेक स्थलों और अवसरों पर पूर्वाग्रहों से प्रभावित होती है। अलबीरूनी के पर्यवेक्षण की दृष्टि भी इन पूर्वाग्रहों से प्रेरित थी, किन्तु उसमें तर्क और विवेक की मात्रा इतनी अधिक थी कि वह कुछ स्थलों पर अपने समाज की भी आलोचना करने में नहीं हिचकती थी।

विभिन्न विश्वास और आचारगत पर्यवेक्षण : पूर्वाग्रहयुक्त—हिन्दुओं के कुछ विश्वासों, विभिन्न विषयगत मतों और आचारों के सम्बन्ध में अलबीरूनी का अपना पर्यवेक्षण था, जिसका उसने विभिन्न हिन्दुओं के सम्पर्क और भारत-आवासकाल में अध्ययन किया था। उसके पर्यवेक्षित अध्ययन में, जहाँ उसकी तटस्थता, स्पष्टता, विवेचना और सत्यता का आभास मिलता है वहीं उसके संस्कारगत पूर्वाग्रह का भी भान होता है, जो उसके वर्गगत स्वभाव की ही नहीं बल्कि वंशगत आचार को भी लक्षित करता है।

वह लिख़ता है : "हिन्दू विश्वास करते हैं कि उनके देश के समान कोई देश नहीं, उनकी जाति की तरह कोई जाति नहीं, उनके राजाओं के समान कोई राजा नहीं, उनके धर्म की तरह कोई धर्म नहीं और उनकी विद्या की तरह कोई विद्या नहीं। वे घमण्डी, मिथ्याभिमानी, आत्मदर्पी और बुद्धिहीन हैं।[2]"

यह तो प्रत्येक देश का निवासी सोचता और विश्वास करता है कि उसके देश और जाति के समान विश्व का अन्य देश और जाति नहीं। ऐसा सोचना स्वाभाविक भी है। राष्ट्रीयता का यह एक स्थिर लक्षण है। अगर हम दूसरे देश और जाति की सर्वदा प्रशंसा और प्रशस्ति में लगे हैं तो कालान्तर में अपने हृदय में स्वराष्ट्र के प्रति अभिमान नाम की कोई भावना नहीं रह जायगी। यह सही है कि दूसरे देश और जाति के गुणों और विशेषताओं को अपने ही देश और जाति की तरह स्वीकार करना चाहिए, किन्तु राष्ट्रीयता की भावना इतनी प्रबल होती है कि देश और समाज में उसका उद्घाटन पग-पग पर होता चलता है।

1. *AI.*, Vol. I, p. 162. 2. *Ibid.*, Vol. I, p. 22.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

आज भी जब संसार इतनी प्रगति कर गया है, प्रत्येक देश का निवासी अपने देश, समाज और राष्ट्र को अन्य देशों की तुलना में अधिक महत्व देता है। अगर अलबीरूनी के समय हिन्दू लोग ऐसा विश्वास करते थे तो वह उनकी राष्ट्रीय भावना थी, न कि 'मिथ्याभिमान', 'आत्मदर्प और 'बुद्धिहीनता।' किसी सम्राट् की महानता, किसी धर्म की उच्चता और किसी जाति की व्यापकता, परम्परा से चली आती हुई उस संस्कृति की देन होती है, जिसकी आधारशिला सरलता, सत्यता और सहानुभूति होती है। इस दृष्टि से भारत का इतिहास अत्यन्त गौरवशाली रहा है। भारत ने कभी किसी पड़ोसी देश पर बर्बरता और नृशंसतापूर्ण धावा नहीं किया किसी देश के निवासियों को बलात् अपने धर्म में मिलाया नहीं, किसी देश में घुसकर धार्मिक स्थानों को तोड़ा नहीं और न निर्दोष जनता को तलवार के घाट उतारकर लूटा ही। अगर हिन्दुओं को अपनी इस संस्कृति और आचरण पर गर्व था तो वह उनकी 'आत्मदर्पिता' और 'मूर्खता' नहीं थी।

लेकिन, आश्चर्य तो तब होता है कि अलबीरूनी जैसा इस तरह का आलोचक विद्वान् हिन्दुओं को अपने से निम्न मानता था। उसकी भावना अपने को हिन्दुओं से श्रेष्ठ समझती थी। आक्रामक समुदाय का होने के कारण उसमें यह ऐसा आग्रह था, जिससे वह ऊपर नहीं उठ सकता था। उसके विवेक-बुद्धि की सारी विवेचना ऐसे स्थलों पर मन्द थी। वह हिन्दुओं से अपने को सर्वोत्तम मानता था। इसीलिए वह लिखता है : 'मैं अपने आपको उनसे बहुत श्रेष्ठ समझता था और उनके समान कहलाने में अपना अपमान मानता था[1]।"

श्रेष्ठता की इन प्रवृत्तियों को देखकर अगर हिन्दू विदेशियों को 'म्लेच्छ' कहकर निम्न मानते रहे हों तो कोई अत्युक्ति नहीं, क्योंकि यह विवेक का सामान्य धर्म है कि एक दूसरे में उत्कृष्टता और निकृष्टता का भाव न हो, किन्तु इसमें भिन्नता आने पर एक दूसरा वर्ग एक दूसरे के प्रति हीन भावों से आप्लावित हो उठता है और उनके विचार एक दूसरे के प्रति शुष्क हो जाते हैं।

अलबीरूनी लिखता है : "विदेशियों को वे 'म्लेच्छ' अर्थात् अस्पृश्य कहकर पुकारते हैं। उनके साथ खाने, पीने, रहने, विवाह आदि किसी प्रकार का सम्बन्ध नहीं करते, क्योंकि उनका यह विचार है कि ऐसा करने से वे भ्रष्ट हो जायेंगे।[2]"

हिन्दुओं के चातुर्वर्णों के भीतर ही जब ऐसी भेद-भाव की व्यवस्था थी तब विदेशियों के साथ न होने की कोई बात नहीं उठती। हिन्दू और मुसल-

1. *AI.*, Vol. I, p. 23. 2. *Ibid.* p. 19.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मानी समाज में आचार, धर्म, सामाजिक नियम और नीति की भिन्नता थी। दोनों के मूल्य भिन्न थे और हिन्दू मान्यताओं और संस्कृति की रक्षा के लिए उक्त विचार आवश्यक थे। स्वत्व की यही पुकार भी थी।

ऐसे मध्यकालीन उदाहरण मिलते हैं, जिनसे स्पष्ट होता है कि भारतीय समाज में 'म्लेच्छों' को हीन न मानकर अनेक प्रकार के कार्य सौंपे जाते थे। कश्मीरनरेश कलश (१०६३–१०८९ ई०) ने तुर्की शिल्पकार को कालेश्वर मन्दिर के ऊपर स्वर्णछत्र का निर्माण करने के लिए नियुक्त किया था। वहीं एक दूसरे शासक हर्ष ने तुर्कियों को अपनी सेना में नियुक्त किया था।[1]

जिस गुजरात को सुल्तान महमूद ने तहस-नहस कर डाला था, उसी गुजरात के ऐसे उदाहरण हैं, जिनसे विदित होता है कि 'म्लेच्छों' के प्रति किसी प्रकार की घृणा-भावना नहीं थी। महमूद द्वारा सोमनाथ मन्दिर के तोड़े जाने के बाद १०५३ ई० में अहमदाबाद में गुजरात की जनता ने मुसलमानों को मस्जिद बनाने का अनुग्रह प्रदान किया था। दूसरा अत्यन्त गौरवशाली उदाहरण खम्भात का है, जहाँ मसजिद को जला दिये जाने और अस्सी मुसलमानों को मार दिये जाने पर जयसिंह सिद्धराज ने निरीक्षण करके दोषियों को दण्डित किया।[2] गुजरात के व्यापारियों ने भी मुसलमानों को मसजिद निर्माणार्थ आर्थिक सहायता दी थी।[3] काश, अलबीरूनी ने भी किसी इस प्रकार के मुसलमानी व्यवहार का उदाहरण दिया होता!

वह लिखता है : "वे प्रकृति से ऐसे हैं जो कुछ उन्हें आता है दूसरों को नहीं बताते, अपनी जाति में और दूसरी जाति के लोगों से छिपाते हैं तथा विदेशियों से और भी[4]।"

अपने इस कथन के विपरीत अलबीरूनी यह स्वीकार करता है कि वह जिन ग्रन्थों को नहीं समझ पाता था, उन्हें सुदूरवर्ती हिन्दू विद्वानों से जाकर पढ़ता और समझता था,[5] जो इस बात का स्पष्ट द्योतक है कि अलबीरूनी जैसे विदेशी व्यक्ति को हिन्दुओं ने ज्ञान-विज्ञान की शिक्षा देने में तनिक भी सङ्कोच नहीं किया। अतः अलबीरूनी का उपरिलिखित कथन इस कथन के प्रकाश में अतथ्य और पूर्वाग्रहयुक्त है।

---

१. राजतरङ्गिणी, ७. २८ २९, ११४९।

2. *ED.*, II, pp. 163-4. cf. Majumdar, A. K., *Chaulukyas of Gujarat*. p. 331.

३. जादूचरित, ६. ६४, cf. Majumdar, A. K., *op.cit.*, p. 331.

4. *AI.*, Vol. I, pp. 22-3.

5. *Ibid.* p. 24.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ऐसा भी नहीं कि अलबीरूनी पूर्णतः तथ्यहीन बात करता हो। अंशतः ये दोष हिन्दुओं में शुरू हो गये थे। कभी-कभी वे अपने मन के अनुसार किसी को कुछ बताते थे अथवा नहीं बताते थे। ऐसा आज भी व्यवहार में देखा जा सकता है, किन्तु अलबीरूनी का उपर्युक्त कटु अनुभव दूसरी ओर सङ्केत करता है, वह यह, कि मुसलमानों के लगातार आक्रमण और अत्याचार के कारण हिन्दुओं के हृदय में उनके प्रति घृणा और असन्तोष व्याप्त हो गया था। अतः इसी कारण स्वभावतः कुछ हिन्दू अपने ज्ञान-विज्ञान को मुसलमानों को न बताते रहे होंगे।

अलबीरूनी चिढ़कर आगे कहता है : "अगर वे यात्रा करें और दूसरी जातियों से मिलें तो उनके विचार शीघ्र ही बदल जायँ, क्योंकि उनके पूर्वज ऐसे संकीर्ण मस्तिष्क के नहीं थे, जैसी वर्तमान पीढ़ी है।[1]"

यहाँ यह ध्यान रखने की बात है कि हिन्दुओं में ये दोष कुछ तो अवश्य ही आ गये थे। उनके इतिहास के मध्यकाल के प्रारम्भ के साथ उनमें विवेचन की बुद्धि, उदारता और व्यापकता की मात्राएँ अवश्य कम हो गयी थीं। जल और स्थल-मार्गों से जो उनके प्राचीनकालीन विदेशी सम्बन्ध थे, उनकी कड़ियाँ अत्यन्त शिथिल और जर्जर हो चुकी थीं। कुछ दिनों बाद पुराणों ने समुद्र-यात्राएँ वर्जित कर दीं। तथापि अलबीरूनी के कथन अत्यन्त कठोर और अतिरञ्जित प्रतीत होते हैं। यदि उसके बाद के मुसलमानी लेखकों की आक्रामक मनोवृत्ति देखी जाय तो अलबीरूनी के कथनों की पृष्ठभूमि अवश्य सामने आ जायगी। प्रारम्भिक इस्लाम की दृष्टि में तो किसी विधर्मी जाति को जीवित रहने का भी अधिकार नहीं था और फिर अभिमानपूर्वक जीवित रहना तो अत्यन्त कठिन था।

एक स्थल पर अलबीरूनी लिखता है : "हिन्दू कभी किसी चीज को, चाहे वह बुद्धि की हो या कल्पना की, उसमें मनुष्य-धर्म का व्यक्ति-रूप में आरोप किये बिना कभी बात नहीं कर सकते। वे तुरन्त उसका विवाह करते हैं; विवाह-आयोजन रचाते हैं; उसकी पत्नी को गर्भवती बनाते हैं और कुछ उत्पन्न करा देते हैं।[2]"

अलबीरूनी का यह कथन बिल्कुल सही है। भारतीय साहित्य और पुराणों में अत्रि, दक्ष, चन्द्रमा आदि को लेकर ऐसी ही अनेक कथाएँ कही गयी हैं जिनसे भारतीयों की ऐसी कल्पनाओं का भान होता है।

भारतीय लेखकों द्वारा राजाओं के कालक्रम और उनके समय का सही उल्लेख न करने पर वह कहता है : "अभाग्यवश हिन्दू ऐतिहासिक क्रम पर

1. *AI.*, Vol. I, p. 23. 2. *Ibid.*, p. 291.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

बहुत कम ध्यान देते हैं । राजाओं के कालक्रम और उनके उत्तराधिकारियों के सम्बन्ध में वे बहुत असावधान हैं । जब उन्हें जानकारी के लिए बाध्य किया जाता है और न जानने के कारण नहीं बता पाते हैं, तब वे सदा कथा सुनाने लग जाते हैं ।[१]" यह दोषारोपण तत्वत: सही है ।

सामान्य धरातल—अलबीरूनी में समस्त विचार-पद्धति और आलोचना-प्रणाली रहते हुए भी ऐसे पूर्वाग्रह थे, जिनसे वह सामान्य धरातल से ऊपर नहीं उठ सकता था । इसका प्रमुख कारण उसका अपना संस्कार था, जो उसे खीव में अपने पूर्वजों से मिला था ।

हिन्दू और मुसलमानों के भेद की ऐसी रेखा थी, जो दोनों को एक दूसरे से उत्तम और उत्कृष्ट मानने की प्रवृत्ति को प्रोत्साहित करती थी । भारत में मुसलमान आक्रामक के रूप में प्रविष्ट हुए । उन्होंने देश में निर्दोष हिन्दुओं का रक्तपात और उनकी सम्पत्ति का अपहरण किया । फलत: हिन्दुओं के हृदय में मुसलमानों के प्रति घृणा और विद्वेष की ज्वाला धधक रही थी, जिसके वशीभूत होकर वे मुसलमानों के प्रति उदासीनता का व्यवहार करते । यह कार्य स्वभावत: प्रत्येक शोषित और उत्पीड़ित देश आक्रामक देश के प्रति करता है । अलबीरूनी इस भावना को समझता तो था, किन्तु उसका संस्कारगत आग्रह इतना प्रबल था कि वह अपने को हिन्दुओं से कभी इतर स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं था । वह लिखता है : "यदि हिन्दू हमसे भेद रखने और उत्तम होने का दावा करते हैं, जैसा कि दूसरे रूप में हमलोग भी करते हैं, तो इसका निर्णय उनके लड़कों पर किये गये एक प्रयोग के द्वारा हो सकता है । मैं कोई ऐसा हिन्दू लड़का नहीं जानता, जो मुसलमान-प्रदेश में जल्दी ही आया हो, जो लोगों के रीति-रिवाज और व्यवहार से पूर्णत: परिचित न हो, किन्तु उसी समय वह अपने मालिक के सामने जूतों को उलटे रूप में रखता, दायाँ बायें पैर के आगे और बायाँ दायें पैर के आगे, अपने मालिक की पोशाक को तह करते समय उसके भीतर को बाहर कर देता और गलीचे को इस प्रकार बिछाता कि उसका निचला भाग ऊपर हो जाता और ऐसी ही वह दूसरी बातें करता । ये सब हिन्दुओं के स्वभाव की सहज स्थिरताएँ (हठ) हैं ।[२]"

अलबीरूनी का यह प्रयोग उसकी समस्त तर्कनाशक्ति और प्रखर प्रज्ञाशक्ति से प्रभावित रहा, विश्वास नहीं होता । प्रयोग में उसका पूर्वाग्रह अधिक लक्षित होता है, जिसने उक्त प्रयोग करने के लिए उसे प्रेरित किया ।

---

1. *AI.*, Vol. II, pp. 10-11. 2. *Ibid.*, Vol. I, p. 185.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

विभिन्न विषय और साहित्यगत पर्यवेक्षण—अलबीरूनी ने विभिन्न भारतीय विषयों और साहित्य का अध्ययन करने के उपरान्त अपना पर्यवेक्षण प्रस्तुत किया। वह कहता है : "हिन्दुओं में ऐसे लोगों की कमी थी, जिनमें विद्याओं के ऊँचे पद पर पहुँचाने की योग्यता और उसके लिए अनुराग हो। इसीलिए अधिकतर आप पाते हैं कि उनके कहे हुए वैज्ञानिक सिद्धान्तों में भ्रम है। उनमें कोई युक्तिपूर्ण क्रम नहीं और वे साधारण लोगों के बुद्धिहीन विचारों के साथ खिचड़ी बने हुए हैं। जैसे, अमित संख्याएँ, समय की अत्यन्त लम्बी अवधि, और सारे धार्मिक मत, जिन पर गँवारों का अन्धाधुन्ध विश्वास है।[1]"

हिन्दुओं की नक्षत्र-विद्या पर विचार करते हुए वह लिखता है : "नक्षत्र-विज्ञान उन लोगों में बहुत प्रसिद्ध है, क्योंकि उनके धार्मिक कार्यों का इससे अनेक प्रकार से सम्बन्ध है। यदि मनुष्य ज्योतिषी कहलाना चाहता है तो उसे न केवल वैज्ञानिक या गणित ज्योतिष जानना चाहिए, बल्कि फलित ज्योतिष भी।[2]"

आज भी हिन्दुओं के सारे धार्मिक कार्य नक्षत्रों के ऊपर ही निर्भर करते हैं।

नक्षत्रों के विषय में हिन्दुओं के ज्ञान का परीक्षण करते हुए वह कहता है : "नक्षत्रों के सम्बन्ध में हिन्दुओं का ज्ञान भ्रम से रहित नहीं। व्यावहारिक निरीक्षण और गणनामात्र तक उनका ज्ञान है और स्थिर नक्षत्रों के विषय में उनकी कोई जानकारी नहीं।[3]"

उपर्युक्त उद्धरणों से स्पष्ट है कि अलबीरूनी उस भारतीय अवस्था की चर्चा करता है, जो अपनी प्राचीन उच्चता की विपरीत दिशा में पतनोन्मुख थी।

जहाँ वह हिन्दुओं की आलोचना करता है, वहीं अरबवासियों की भी आलोचना करने में वह नहीं हिचकता। अरबवासियों की नक्षत्रों की गणना और निरीक्षण-सिद्धान्त की अज्ञानता पर वह कहता है : 'अरबवासी अशिक्षित लोग हैं, जो न लिख सकते हैं, न गणना कर सकते हैं। वे केवल संख्याओं और नेत्र-दृष्टि पर विश्वास करते हैं। नेत्रदृष्टि के अतिरिक्त उनके पास अनुसन्धान का और कोई माध्यम नहीं। वे नक्षत्रों का, उनमें स्थिर तारों का निश्चय करने में अयोग्य हैं।[4]"

विषय-वर्णन की पद्धति : तुलना और विवेचना

विषय-वर्णन के क्रम में अलबीरूनी ने भारतीय उद्धरणों के साथ-साथ,

---

1. *AI.*, Vol. I, p. 25. 2. *Ibid.*, p. 152.
3. *Ibid.*, Vol. II, p. 86. 4. *Ibid.*, p. 81.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

इस्लामी, ईसाई और यूनानी ग्रन्थों के उद्धरण भी दिये हैं। स्थान-स्थान पर तत्तत् विषय-सम्बन्धी अपनी विवेचना भी उसने प्रस्तुत की है।

पहले अध्याय में वह लिखता है : "एक जाति के सिद्धान्तों की तुलना मैं दूसरी जाति के सिद्धान्तों के साथ केवल इसीलिए करना चाहता हूँ कि उनका आपस में निकट सम्बन्ध है।[1]"

विषय-प्रसंग में उसने यथाअवसर आलोचना भी की है। वह कहता है : "अपनी रचना में मैंने अधिकांश स्थलों पर बिना विवेचना के, जबतक कि ऐसा करने का कोई विशेष कारण न रहा हो, साधारणतः वर्णन किया है।[2]"

संस्कृत शब्दों को अलबीरूनी ने वर्णन के साथ प्रायः एक बार यथास्थान दिया है, साथ में उसके अर्थ भी। वह लिखता है : "मैंने संस्कृत नामों और वैज्ञानिक परिभाषाओं को, प्रसंगवश जहाँ-जहाँ आवश्यकता पड़ी है, एक ही बार लिख दिया है।[3]"

विषय की बोधगम्यता और स्पष्टता के निमित्त ही उसने अन्य देशों के विषयगत सिद्धान्तों को गृहीत किया था। यही कारण था कि भारतीय उद्धरणों के साथ-साथ यूनानी, ईसाई और इस्लामी साहित्य के उद्धरण भी उसने दिये। वह लिखता है : "मैं पाठकों के सम्मुख हिन्दुओं के सिद्धान्त उनके वास्तविक रूप में रख दूँगा, साथ ही यूनानियों के वैसे ही सिद्धान्त उनके पारस्परिक सम्बन्ध को दर्शित कराने के हेतु, देता जाऊँगा।[4]" वह आगे कहता है : "यूनानी विचारों के अतिरिक्त मैं जब-तब सूफियों और ईसाइयों के किसी एक पन्थ के विचारों का भी उल्लेख करूँगा।[5]"

वैज्ञानिक शैली

अलबीरूनी ने विषय-वर्णन में वैज्ञानिक शैली का समर्थन किया है। वैज्ञानिक शैली में यह अपेक्षा होती है कि विषय का प्रतिपादन सत्य रूप में किया जाय और उसमें झूठ का जरा भी अंश न हो। अलबीरूनी लिखता है : "यदि ग्रन्थकर्त्ता विशुद्ध वैज्ञानिक शैली की आवश्यकताओं का अनुभव नहीं करता तो वह कुछ छिछली सूचनाएँ ग्रहण कर लेगा, जो न उस सिद्धान्त के अनुयायियों को ही सन्तुष्ट करेगी और न उन्हें, जो वस्तुतः यह जानते हैं। ऐसी स्थिति में, अगर वह ईमानदार चरित्र है तो वह वापस लेगा और लज्जित होगा, लेकिन अगर वह इतना निकृष्ट हो कि सत्य को सम्मान न देता हो तो वह स्वयं अपनी भूल पर झगड़ने लग जायगा।[6]"

---

1. *AI.*, Vol. I, p. 24.
2. *Ibid.*, p. 25.
3. *Ibid.*, p. 26.
4. *Ibid.*, p. 7.
5. *Ibid.*, p. 8.
6. *Ibid.*, Vol. I, p. 6.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

वैज्ञानिक शैली की इसी पद्धति के अनुरूप चलकर उसने अपना ग्रन्थ प्रणीत किया। उसने हिन्दुओं के गणित और नक्षत्रों की विद्या को 'कङ्करों में मिले हुए रत्नों' से तुलना की है। वह कहता है: "उनके गणित तथा ज्योतिष-साहित्य को जहाँ तक मैं जानता हूँ, सड़ी हुई खजूरों में मोतियों या गोबर में पड़ी हुई मोतियों या कङ्कड़ों में पड़े हुए बहुमूल्य रत्नों से तुल्यता दे सकता हूँ। उनकी दृष्टि में दोनों तरह के पदार्थ एक हैं, वे अपने को उठा नहीं सकते, जब तक विशुद्ध वैज्ञानिक शैली नहीं अपनायेंगे।[1]"

अलबीरूनी का चरित्रगत वैशिष्ट्य

प्रकृति से अध्ययनशील और मस्तिष्क से विचारशील होने के कारण अलबीरूनी का चरित्रगत वैशिष्ट्य अनेक स्थिरताओं से युक्त था। किसी देश, धर्म, जाति, शिक्षा और संस्कृति से व्यक्तिगत विरोध-भाव न होने के कारण उसके चरित्र में अनेक विशेषताएँ थीं। ये विशेषताएँ उसके उस दृढ़ विश्वास और निर्मल चरित्र की परिचायक थीं, जिनकी आधार-भूमि पर उसने ग्रन्थ-रचना की थी। विषय का विश्लेषण और निर्णय देने में वह इतना उत्साही था कि प्रत्येक गम्भीर और ज्ञात स्थलों पर अपनी विवेचना अवश्य प्रस्तुत करता था। यह सही है कि उसकी विवेचनाएँ, कहीं-कहीं पूर्वाग्रहों और व्यक्तिगत स्थिरताओं से दबी हैं, किन्तु उसने विवेचना करने का साहस किया है, यह श्लाघ्य है।

उसके चरित्र का सबसे बड़ा वैशिष्ट्य यह था कि वह असत्य का घोर विरोधी और सत्य का प्रबल समर्थक था। वह कहता है: "असत्य से दूर रहनेवाला और सदा सत्य का अनुसरण करनेवाला व्यक्ति ही प्रशंसनीय है।[2]" अपने कथन के समर्थन में वह धर्मग्रन्थ कुरान का उद्धरण देता है: "सत्य बोलो, चाहे वह तुम्हारे अपने ही विरुद्ध क्यों न हो।[3]"

सत्य बोलने के लिए नैतिक साहस चाहिए, जो प्रत्येक व्यक्ति में नहीं हो सकता। अलबीरूनी इस प्रसङ्ग मे ख्रीष्ट के धर्मग्रन्थ के इस अंश को उद्धृत करता है: 'सम्राटों के सामने सच बोलने में उनके क्रोध से मत डरो। उनका तुम्हारे शरीर पर चाहे अधिकार हो, पर आत्मा का वे कुछ नहीं कर सकते।[4]" इसी सत्य के अनुसरण को अलबीरूनी ने नैतिक साहस की संज्ञा दी है।[5]

अलबीरूनी के राजनीतिक दर्शन के सिद्धान्त इस मत के पक्षपाती थे कि राज्य और समाज के बीच ऐसी स्वार्थहीन कड़ी हो, जिसमें दृढ़ विश्वास और

---

1. *Ibid.*, p. 25.
2. *Ibid.*, Vol. I, p. 4.
3. *Ibid.*
4. *Ibid.*, pp. 4-5.
5. *Ibid.*, p. 5.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh
कर्म की अपूर्व क्षमता हो । वस्तुतः वही व्यक्ति शासनसूत्र का सञ्चालक हो, जिसमें कर्म के प्रति दृढ़ता और आकस्मिक विपत्ति के समय सङ्कल्प हो । यदि ऐसा व्यक्ति सामाजिक तथा राजनीतिक जीवन में नवीन क्रम सञ्चालित करता है तो उसका निर्देशन सभी स्वीकार करेंगे, जो परम्परा के रूप में आगे तक चलता रहेगा । शासन और समाज के इस नूतन अभिव्यक्ति का आधार यदि धर्मभावना हो तो दोनों में एकत्व हो जाता है और यह एकत्व मानव-समाज की उत्कृष्टतम उपलब्धि को दर्शित कराती है । वह कहता है : "उनकी एकता मनुष्य-समाज के सबसे ऊँचे विकास का प्रतिनिधित्व करती है, सभी व्यक्ति आसानी से आकांक्षा कर सकते हैं ।[1]"

शासन के दूसरे दार्शनिक पहलू पर विचार करते हुए वह बाइबिल के इस मत को उद्धृत करता है : "अगर किसी ने तुम्हारे एक गाल पर थप्पड़ मारा है तो उसके सामने दूसरा गाल भी कर दो, अपने शत्रु के लिए आशीर्वाद दो और प्रार्थना करो । मेरे प्राणों की शपथ, यह एक सर्वश्रेष्ठ दर्शन है, किन्तु इस ससार के सभी लोग दार्शनिक नहीं हैं । उनमें से बहुत-से लोग अज्ञान और अनजान हैं, जो बिना तलवार और कोड़े से सही रास्ते पर नहीं लगाये जा सकते । सही में, जब से विजेता कन्स्टण्टाइन ईसाई हुआ, तलवार और कोड़ा इस्तेमाल हुआ, क्योंकि इनके बिना शासन करना असम्भव होता है ।[2]"

अलबीरूनी व्यक्तिगत रूप से व्यावहारिक पक्ष पर अधिक ध्यान देता था, जो उसके व्यक्तित्व की विशिष्टताओं में प्रधान था । अकर्मण्य का जीवन और अत्याचार सहन करने का साहस, इन दोनों के प्रति उसका विरोध था । वह कुछ लोगों के लिए तलवार और कोड़ा प्रयोग करने के व्यवहार का समर्थन करता था ।

जिन विषयों में उसका प्रवेश नहीं था, सरल, स्पष्ट शब्दों में अपनी असमर्थता प्रकट करता, क्षमाप्रार्थना करता । अपने ज्ञान का सम्पूर्ण स्थिति पाठकों के सम्मुख रख देता था । ग्रहों के विषय में लिखते हुए वह कहता है : "ग्रहों के अन्तरों के परिसख्यन को हिन्दू-प्रणाली, जिसे हमने ऊपर उद्धृत किया है, ऐसे सिद्धान्त पर निर्भर है, जो मेरे ज्ञान और वर्तमान स्थिति में, जबतक मुझे हिन्दुओं की पुस्तकें अनुवाद करने की कोई सुविधा नहीं, मुझे अविदित है ।[3]"

हिन्दुओं की सूचनाओं की आलोचना करते हुए वह अपनी त्रुटियों के लिए क्षमा माँगता है । वह लिखता है : "हिन्दुओं के वृत्तान्तों को किसी सीमा तक

1. *Ibid.*, p. 99. 2. *Ibid.*, Vol. II, p. 161.
3. *Ibid.*, Vol. *I*, p. 70.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

संशुद्ध, अत्यधिक परिश्रम और सावधानी से कर सकते हैं। इस प्रकार जो कुछ हम नहीं जानते हैं, उसके कारण हम जो कुछ जानते हैं, अपने मस्तिष्क को दबाने के लिए नहीं बना सकते थे। जहाँ कहीं भी त्रुटियाँ हों, हम उसके लिए क्षमा माँगते हैं।[1]"

वह उन लोगों का निन्दक था, जो अन्यायपूर्वक किसी पर आक्षेप अथवा अशिष्टता प्रकट करते थे। एक स्थल पर वह ब्रह्मगुप्त को आर्यभट्ट के साथ उच्छृङ्खल व्यवहार करने का दोषी ठहराता है।[2] इतना ही नहीं, जहाँ भी उसे किसी लेखक का विवरण कुछ भ्रमपूर्ण और असत्य दीखता है, वहाँ वह अपनी सत्यनिष्ठ प्रकृतिवश तथाकथित लेखक की आलोचना करने से नहीं चूकता। वराहमिहिर के किसी विवरण से प्रसन्न होकर, जहाँ वह उसकी प्रशंसा में उसे 'सत्यवक्ता और सत्य-आधार पर खड़ा रहनेवाला'[3] कहता है, वहीं वह उसके किसी गलत विवरण से चिढ़कर उसे 'विक्षिप्त का प्रलाप'[4] करनेवाला भी कहता है।

उसके व्यक्तित्व का सबसे बड़ा गुण यह था कि वह कहीं भी अन्यायपूर्ण, गलत असत्यपूर्ण, स्वार्थपरिपूर्ण और आग्रहयुक्त विवरणों की आलोचना निःसङ्कोच करता था। यही कारण है कि उसने अपनी कृति में स्थान-स्थान पर ऐसे विवरणों की निन्दा की है, जो उसके तर्क और विवेक को सन्तोष नहीं प्रदान कर सके थे। उसने हिन्दुओं के सोना बनाने, वृद्धों के युवक बनाने तथा स्त्रियों के साथ सम्भोग की नैमित्तिक क्रिया की, रासायनिक विद्या की कड़ी भर्त्सना की है।[5] हिन्दुओं के क्लेशयुक्त स्वर्ण-निर्माण-विधि की विवेचना करते हुए वह कहता है : "अज्ञानी हिन्दू राजाओं के सोना बनाने के लोभ की कोई सीमा नहीं। अगर उनमें से कोई सोना बनाने की योजना को कार्यान्वित करना चाहता था और लोग उसे अनेक छोटे सुन्दर बच्चों की हत्या की सलाह देते थे तो वह राक्षस ऐसा अपराध करने से न चूकता; वह उन्हें आग में फेंक देता।"[6] वह अत्यन्त दुःख के साथ यह आशा करता है : "यह बहुत अच्छा होता, अगर इस बहुमूल्य रसायन विज्ञान का विश्व की अन्तिम सीमा पर निष्कासित कर दिया जाता, जहाँ से यह किसी के लिए भी अप्राप्य रहता।[7]"

---

1. *Ibid.*, p. 200. 2. *Ibid.*, p. 376.
3. *Ibid.*, Vol. II, p. 112. 4. *Ibid.*, p. 117.
5. *AI.*, Vol. I, ch. XVII. 6. *Ibid.*, p. 193.
7. *Ibid.*

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

उसके चरित्रगत वैशिष्टय की उत्तमता इसमें दर्शित होती है कि वह अपने ज्ञान को अन्तिम नहीं मान बैठा था। वह अपने उन विवरणों के लिए ईश्वर से क्षमा-याचना करता है, जो सच्चे नहीं थे। पुस्तक के अन्त में वह लिखता है : "हम ईश्वर से, उन विवरणों के लिए क्षमा माँगते हैं, जो सत्य नहीं हैं।[1]"

1. *Ibid.*, Vol. II, p. 246.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

तीसरा अध्याय
अलबीरूनी का भौगोलिक विवरण

आधार-स्रोत

अलबीरूनी ने भारतीय भूगोल के सम्बन्ध में भी विवरण प्रस्तुत किया है। उसने देश के विभिन्न प्रदेशों, स्थानों, पर्वतों, नदियों और जलवायु आदि पर विस्तार से लिखा है। उसके विवरण यद्यपि भारतीय पुराणों, संवाददाताओं आदि की सूचनाओं पर आधारित हैं, किन्तु इन भौगोलिक विवरणों का महत्व इस कारण है कि अलबीरूनी के पूर्व किसी अन्य विदेशी मुसलमान यात्री द्वारा इतने मनोयोगपूर्वक भारतीय ग्रन्थों के अध्ययन, विभिन्न संवाददाताओं की सूचनाओं और स्वयं के पर्यवेक्षण के उपरान्त विवृत नहीं किये गये थे। अतः इस सम्बन्ध में अलबीरूनी का प्रयास अकेला है।

पुराणों में उसने केवल तीन पुराणों का अध्ययन किया था—मत्स्य, आदित्य और वायु। वह स्वयं स्वीकार करता है : "मैंने केवल मत्स्य, आदित्य और वायु पुराणों के अंशों को देखा है।[1]" इसके अतिरिक्त विष्णुपुराण को उसने अपने सामने पढ़वाया था।[2] भारत-सम्बन्धी कतिपय भौगोलिक अंशों के सन्दर्भ में उसने यत्र-तत्र वराहमिहिर की 'संहिता' से उदाहरण लिया है।[3]

नेपाल[4] तथा उसके निकटवर्ती प्रदेशों कन्नौज,[5] सोमनाथ[6] आदि स्थानों के संवाददाता उसे मिले थे, जिसके आधार पर उसने तत्तत् प्रदेशों के भौगोलिक विवरण प्रस्तुत किये हैं।

पञ्जाब के निकटवर्ती प्रदेशों का उसने स्वयं पर्यवेक्षण किया था। काबुल, कन्दी दुदपुर, लमगान, पेशावर, वैहिन्द, झेलम, नन्द, स्यालकोट, मन्दकोर और मुल्तान का उसने स्वयं भ्रमण किया था।[7] अतः इन स्थानों का भौगोलिक विवरण उसने पर्यवेक्षण के आधार पर लिखा है।

सात द्वीप

अलबीरूनी मत्स्य और विष्णुपुराण के आधार पर लिखता है : "हिन्दुओं के धार्मिक इतिवृत्तों के अनुसार पृथ्वी, जिस पर हम रहते हैं, गोल है, और

---

1. *Al.*, Vol. I, p. 130. 2. *Ibid.*, p. 131. 3. *Ibid*, pp. 211, 300-303.
4 *Ibid.*, Vol. I, p. 201. 5. *Ibid.*, p. 161. 6. *Ibid.*, Vol. II, p. 129.
7. *Ibid.*, Vol. I, pp. 317-18.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

समुद्रों से घिरी है। समुद्र पर पृथ्वी गलमेखला की तरह पड़ी है और इस पृथ्वी पर फिर गलमेखला की तरह समुद्र है। शुष्क गलमेखलाओं की संख्या सात है, जो द्वीप कहे जाते हैं और उसी तरह समुद्रों की संख्या है।[१]" विष्णुपुराण[२] में कहा गया है कि जम्बू, प्लक्ष, शाल्मल, कुश, क्रौञ्च, शाक और पुष्कर सात द्वीप हैं, जो चारों ओर खारे पानी, इक्षुरस, मदिरा, घृत, दधि, और मीठे जल के सात समुद्रों से घिरे हैं।

जम्बू द्वीप

जम्बू द्वीप इन सबके मध्य में स्थित है।[3] अलबीरूनी लिखता है: "इसमें उगे हुए एक वृक्ष के कारण यह जम्बू द्वीप कहलाता है। इस वृक्ष की शाखाएँ सौ योजन में फैली हुई हैं।[४]" उसके इस कथन की पुष्टि विष्णुपुराण से होती है, जिसमें कहा गया है कि जम्बू वृक्ष के कारण 'जम्बू द्वीप' नाम हुआ।[५] इसका उल्लेख पालि और बौद्ध साहित्य में भी हुआ है।[६] सुदर्शन द्वीप के नाम से भी इसका विवरण मिलता है, जिसमें उगा हुआ वृक्ष सौ योजन तक फैला है।[७]

देश का नाम : 'भारतवर्ष'

अलबीरूनी लिखता है : "ऋषि भुवनकोश की पुस्तक में हम पढ़ते हैं कि वासयोग्य जगत् हिमवन्त से दक्षिण की ओर फैलता है और 'भारतवर्ष' कहलाता है, भरत के नाम पर; जो उन पर शासन करता था और रक्षा करता था।[८] महाभारत[९] तथा अन्य पुराणों[१०] से विदित होता है कि सम्राट् भरत के नाम पर उत्तर से दक्षिण तक बसे हुए देश का नाम 'भारतवर्ष' हुआ। भरत

1., AI. Vol. I, pp. 233, 235.

2. जम्बूप्लाक्षाह्वयौ द्वीपौ शाल्मलश्चापरो द्विज।
कुशः क्रौञ्चस्तथा शाकः पुष्करश्चैव सप्तमः॥
एते द्वीपाः समुद्रैस्तु सप्त सप्तभिरावृत्ताः।
लवणेक्षुसुरासर्पिर्दधिदुग्धजलैः समम्॥ वि० पु० २. २. ५-६,

3–जम्बूद्वीपः समस्तानामेतेषां मध्यसंस्थितः वि० पु० २. २. ७

4. *AI.*, Vol. I, p. 251.

5. वि० पु० २. २. १८।

6. HGAI., p. 9.

7. ब्रह्माण्डपुराण ३७. २८-३४, ५०. २५-२६; मा० पु० ११४. ७४-७५; महा० ६. ५. १३-१५, ६. ७. १९-२०।

8. *AI.*, Vol. I, p. 294.

9. महा०, भीष्म-पर्व, ३. ४१।

10. वा० पु०, अ० ४५, ७६; वि० पु० २. ३. १,
उत्तरं यत्समुद्रस्य हिमाद्रेश्चैव दक्षिणम्। वर्षं तद्भारतं नाम भारती यत्र सन्ततिः॥

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ऋषभ का पुत्र था और नाभि का पौत्र ।[१] वह मनु स्वयंभव के वंश का प्रतापी पुरुष था ।[२]"

विभाजन : नौ खण्ड

भारतवर्ष जम्बू द्वीप के नौ खण्डों में से एक था ।[3] महाभारत तथा मार्कण्डेय, मत्स्य, वायु और विष्णु पुराणों के अनुसार भारतवर्ष के नौ भाग हैं । इनमें से आठ भारत के ही नहीं बल्कि वृहत्तर भारत के विभाजन रूप में निर्देशित हैं[४] और भारत के चारों ओर द्वीप और देश के रूप में स्थित हैं ।[५] अल्बीरूनी लिखता है : 'न' भाग 'प्रथम' कहा जाता है अर्थात् प्राथमिक, क्योंकि वे भारत को नौ भागों में विभक्त करते हैं ।[६]" विष्णुपुराण[७] में भारतवर्ष के ये नौ खण्ड बताये गये हैं : इन्द्रद्वीप, कसेरु, ताम्रपर्ण, गभस्तिमान्, नागद्वीप, सौम्य, गन्धर्व और वरुण तथा समुद्र से घिरा हुआ भारत द्वीप ।

आर्यावर्त : मध्यदेश

अलबीरूनी लिखता है : "भारत का मध्यदेश कन्नौज के चारों ओर है । यह 'मध्यदेश' या राज्य का मध्यभाग कहा जाता है । भौगोलिक दृष्टि से यह मध्य या केन्द्र में है, क्योंकि, यह पर्वतों और समुद्र के मध्य में, शीत और उष्ण प्रान्तों के बीच में और भारतवर्ष के पूर्वी और पश्चिमी सीमान्त प्रदेशों के मध्य में स्थित है ।[८]" किन्तु वह कन्नौज के आसपास के देश को 'आर्यावर्त' भी कहता है ।[९] पूर्वी पञ्जाब से पूर्वी उत्तरप्रदेश का भाग मध्यदेश था ।[१०] दक्षिण में विन्ध्य, उत्तर में हिमालय, पूर्व में बङ्गाल की खाड़ी और पश्चिम में अरब सागर; यह उत्तर भारत की सीमा है,[११] जो निश्चय ही मनु[१२] के आर्यावर्त की परिभाषा से युक्त है ।

---

१. वि० पु० २. १. २७-२८; *GAMI.*, p. 3.
२. वि० पु० २. १. ४३; *HGAI.*, p. 10.
३. *Ibid.*; *ED.*, I, p. 54.
४. *HGAI.*
5. *AGI.* 749-54.
6. *AI.*, Vol. I, p. 295.
7. भारतस्यास्य वर्षस्य नवभेदान्निशामय । इन्द्रद्वीपः कसेरुश्च ताम्रपर्णी गभस्तिमान्
नागद्वीपस्तथा सौम्यो गन्धर्वस्त्वथ वारुणः ॥ वि० पु० २. ३. ६. ७
8. *AI.*, Vol. I, p 198.
9. *Ibid.*, p. 173.
10. *GAMI.*, p. 37 fn. 5. मनु के अनुसार मध्यदेश यह था—
हिमवद्विन्ध्ययोर्मध्यं यत् प्राग्विनशनादपि ।
प्रत्यगेव प्रयागाच्च मध्यदेशः प्रकीर्तितः ॥ मनु० २. २१
11. *Ibid.*, p. 14; *AGI.*, pp. 13-14.
12. मनु० २. २२—
आ समुद्रात्तु वै पूर्वादा समुद्रात्तु पश्चिमात् ।
तयोरेवान्तरं गिर्योरार्यावर्तं विदुर्बुधाः ॥

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

परवर्ती बौद्ध-साहित्य के अनुसार मध्यदेश हिमालय और विन्ध्य के पहाड़ पारिपात्र (पारियात्र) के बीच में स्थित है। कुछ लोगों के अनुसार मध्यदेश की सीमा पूर्व में कञ्जगल नगर तक दक्षिण-पूर्व में सललवती नदी तक, दक्षिण में सतकन्तिक नगर तक, पश्चिम में ब्राह्मण जिला स्थूण तक और उत्तर में उशीरद्वाज पर्वत तक है।[1] काव्यमीमांसा से विदित होता है कि मध्यदेश वाराणसी के पूर्व तक, पश्चिम में देवसभा तक, उत्तर में स्थाणीश्वर से पश्चिम में पेहोआ तक और दक्षिण में माहिष्मती (मान्धाता-नर्मदा तट) तक फैला हुआ था।[2] पतञ्जलि ने 'आर्यावर्त' की सीमा पूर्व में नील जङ्गल तक, पश्चिम में सरस्वती नदी तक, उत्तर में हिमालय के पहाड़ों तक और दक्षिण में पारिपात्र तक निर्देशित किया है।[3]

भारतवर्ष की सीमाएँ

अलबीरूनी ने भारत की सीमा उत्तर में कश्मीर तक,[4] दक्षिण में हिन्द महासागर तक[5], पूर्व में कामरूप[6] के पहाड़ों तक तथा पश्चिम में सिन्ध के पश्चिमी पहाड़ों तक[7] बतलाया है। ग्रीक लेखकों ने भारत की पश्चिमी सीमा सिन्धु तथा काबुल तक मानी है।[8] पूर्व में समुद्र तक, उत्तर में पहाड़ों तक और दक्षिण में समुद्र तक[9]।

प्रधान प्रस्थान-केन्द्र : कन्नौज

हर्ष के समय से उत्तरभारत में कन्नौज का स्थान अत्यन्त महत्वपूर्ण था। अत अलबीरूनी ने कन्नौज को मार्गवृत्तान्त का प्रधान प्रस्थान-केन्द्र माना है। राजशेखर ने भी कन्नौज से अन्य स्थानों की दूरियों को मापने का निर्देश किया है।[10] इसकी स्थिति ऐसी थी कि अन्य स्थानों की दूरियों को मापने में सरलता होती थी।[11]

---

1. Law, B. C. : *Geography of Early Buddhism*, ABORI, 1934, pp. XV-XVI; Law B. C. :*Geographical Essays*, pp. 7-12.
2. काव्यमीमांसा, पृ० ९३; *HGAI.*, p. 12.
3. महाभाष्य, 12. ४. १।
4. *AI.*, Vol. I, p. 207,
5. *Ibid.*, p. 208.
6. *Ibid.*, p. 201.
7. *Ibid.*, p. 208.
8. Mc. Crindle, *Ancient India as described by Magasthenes and Arian*, p. 156.
9. *AGI.*, p. 2.
10. काव्यमीमांसा, अ० १७।
11. *AGI.*, p. 439.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कन्नौज के कई नाम मिलते हैं, 'महोदय[1]', 'कान्यकुब्ज[2]' 'को-नो-कु-शो'[3] आदि। यह उत्तर में २७.५ अक्षांश और पूरब में ७९.५५ देशान्तर पर स्थित है।[4]

दूरी की माप

अलबीरूनी ने स्थानों की दूरियों को मापने में 'फर्सख' का प्रयोग किया है, लेकिन उसने इसका उपयुक्त माप नहीं दिया है, जिससे सही-सही दूरी का माप ज्ञात नहीं हो पाता। सखाउ[5] ने हिन्दुओं के 'योजन' और अरबी 'मील' की तुलना करके अंग्रेजी 'मील' से सम्बन्ध स्थापित करने का प्रयास किया है।

(१) अंग्रेजी मील—$\frac{१६१}{२०२०}$ अरबी मील

(२) अरबी मील–$\frac{२०२५}{२१८६}$ अंग्रेजी मील

१ फर्सख = ४ अरबी मील = $३\frac{७७१}{१०९३}$ अंग्रेजी मील या लगभग ४ × २१८६ गज

इस प्रकार १ फर्सख $४\frac{१७९४}{१७६९}$ अंग्रेजी मील के बराबर। अलबीरूनी के ८ फर्सख की दूरी ३९ अंग्रेजी मील के बराबर होती है।

गिब्ब ने अरबी मील को १९२१ मीटर के बराबर माना है। ४ अरबी मील = $४\frac{३९}{४०}$ अंग्रेजी मील के। गिब्ब का अनुमान ४ अरबी मील = ७०८४ मीटर = २५२०० फीट = $४\frac{१७}{२२}$ अंग्रेजी मील के बराबर है।[7] स्टोन ने अलबीरूनी के फर्सख को $४\frac{७७}{८०}$ मील के बराबर माना है।[8] अतः अलबीरूनी के १ फर्सख को अंग्रेजी ५ मील से थोड़ा कम के बराबर माना जा सकता है।

उसने दूरियों के माप के सम्बन्ध में हिन्दू माप-प्रणाली की सहायता नहीं ली है।

षोडश मार्गवृत्तान्त

अलबीरूनी ने सोलह मार्गवृत्तान्त दिये हैं। इन मार्गवृत्तान्तों के प्रस्थान-केन्द्र कनोज (कन्नौज), माहुर (मथुरा), अनहिलवार (पट्टन), धार

---

1. काव्यमीमांसा, अ० १७।
2. अभिधानचिन्तामणि, पृ. १६६; अभिधानरत्नमाला, पृ. ३२।
3. *Watters*, I, p. 340; *Beal*, I, p. 207.
4. *AI.*, Vol. I, p. 200.
5. *Ibid.*
6. JASB., 1899, No. 2, p. 24, cf. Law, B. C., *Alberuni's Knowledge of Ancient Geography*, p. 6, fn. 1.
7. Gibb. : *Travels of Ibn Batuta*, pp. 347-48.
8. *JASB.*, 1889, p. 25.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

(मालवा की राजधानी), बारी (कन्नौज पर मुसलमानों के आक्रमण करने के कारण परवर्ती प्रतिहारों की अस्थायी राजधानी) और बजान हैं। सोलह मार्गवृत्तान्त ये हैं :

(१) कन्नौज से प्रयाग और तत्पश्चात् पूर्वी तट तक साथ ही दक्षिण में काँची (काँजीवरम्) तक।[1]

(२) कन्नौज या बारी से वाराणसी और तत्पश्चात् गङ्गा के मुहाने तक।[2]

(३) कन्नौज से पूर्व कामरूप (कामरू) और उत्तर के सीमावर्ती देश नेपाल और तिब्बत तक[3]।

(४) कन्नौज से दक्षिण, दक्षिणी तट वनवासी तक।[4]

(५) कन्नौज से बजान या नारायण तक और तत्पश्चात् गुजरात की राजधानी तक।[5]

(६) मथुरा से धार (मालवा की राजधानी) तक।[6]

(७) बजान से धार और उज्जैन (उज्जयिनी) तक।[7]

(८) धार से मन्दगिर (गोदावरी तट स्थित) तक।[8]

(९) धार से भारतीय सागरतटीय तान तक।[9]

(१०) बजान से काठियावाड़ के दक्षिण तटीय सोमनाथ तक।[10]

(११) अनहिलवार (आधुनिक पटटन) से पश्चिमी तट तान तक, बम्बई के उत्तर।[11]

(१२) बजान से भाटी होते हुए सिन्ध नदी के मुहाने लोहरानी तक।[12]

(१३) कन्नौज से कश्मीर तक।[13]

(१४) कन्नौज से पानीपत अटक, काबुल और गजन तक।[14]

(१५) बब्रहान से अधिष्ठान (कश्मीर की राजधानी) तक।[15]

(१६) मकरान स्थित तीज से सेतुबन्ध तक।[16]

१– कन्नौज से प्रयाग तत्पश्चात् पूर्वी तट और काँचा तक

अलबीरूनी लिखता है : "कन्नौज से चलकर जौन और गङ्गा नामक दो नदियों के बीच दक्षिण की ओर जानेवाला व्यक्ति निम्नलिखित विख्यात् नगरों

---

1. *AI.*, Vol. I, p. 200. 2. *Ibid.*, p. 200.
3. *Ibid.*, p. 201. 4. *Ibid.*, p. 202
5. *Ibid.*, 6. *Ibid.* 7. *Ibid.* 8. *Ibid.*, p. 202
9. *Ibid*, p. 203. 10. *Ibid.*, p. 205. 11. *Ibid.* 12. *Ibid.*
13. *Ibid.*, Vol. I. p. 205. 14. *Ibid.*
15. *Ibid.*, p. 207. 16. *Ibid.*, p. 208.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

से गुजरता है— जज्जमों, जो कन्नौज से १२ फर्सख है, प्रत्येक फर्मख चार मील या एक कुरोह के बराबर होता है, अभापुरी ८ फर्सख कुरह ८ फर्सख, बर्हमशिल ८ फर्सख, प्रयाग का वृक्ष ८ फर्सख।[1] रशीदुद्दीन की प्रतिलिपि के अनुसार जुम्व और गङ्गा नदियों के बीच दक्षिण की तरफ चलकर तुम जाजमो नामक स्थान पर पहुँचे १२ फर्सख की दूरी पर, वहाँ से कर्व ८ फर्सख है, कर्व से ब्रह्मश ८, उसके बाद भावूड़ी ८, तब बरागी (प्राग) का वृक्ष १२।[2]

'कुरोह' को फतेहपुर जिले के खजुहा तहसील के कोर-जहानाबाद से प्रमाणित किया जाता है। यह २६°७ उत्तर की ओर स्थित है।[3] अलबीरूनी 'कुरह' को २६°१ उत्तर अक्षांश पर निर्देशित करता है।[4] जज्जमी (झेलमौ) ऐतिहासिक स्थान है। ईलियट को इसमें सन्देह है, क्योंकि रेनाड ने इसे हद्जमव नाम से सम्बोधित किया है।[5]

प्रयाग का वृक्ष प्रसिद्ध इलाहाबाद है, जो गङ्गा और यमुना के सङ्गम पर स्थित है, जिसे श्वानच्वांग ने 'पो-लो-य-क' नाम से सम्बोधित किया है।[6] अभापुरी (अभयपुरी) कौन-सा स्थान है यह विदित नहीं होता। बर्हमशिल को सखाउ ने 'ब्राह्मशैल' से समीकृत किया है।[7] उत्बी ने 'ब्राह्म दुर्ग' का उल्लेख किया है, जो 'मेंज कहा जाता था, जिसे डॉ० नाजिम ने 'मुञ्ज' से एकीकृत किया है, जो इटावा से १४ मील उत्तर-पूर्व की ओर स्थित है।[8] ईलियट[9] ने इसे 'मझापन' या 'मनदावन' से स्वीकृत किया है, जो कानपुर से १० मील दक्षिण स्थित है। मेजर वोस्ट[10] ने इसे जौनपुर जिले का जफराबाद माना है, जिसे हेग[11] ने भी स्वीकृत किया है। होदीवाला ने 'मँझनपुर' को अलबीरूनी के 'बर्मशील' से संयोजित किया है।[12]

प्रयाग से दक्षिण समुद्र-तट के स्थानों को बतलाते हुए अलबीरूनी लिखता है : 'अर्कुतीर्थ प्रयाग से १२ फर्सख, उवर्यहार राज्य ४० फर्सख, तटवर्ती

---

1. *AI*, Vol. I., p. 200. 2. *ED.*, *I*, p. 345.
3. *Imperial Gazetteer of India*, Vol. XV., p. 398.
4 *AI.*, Vol. II, p. 317. 5. *ED.* I, p. 54 fn. 3.
6. *Watters*, I, p. 361. 7. *Sachau*, *AI.*, Vol. II, p. 318.
8. *Nazim*, p. 109, cf. District Gaz. of U. P., Vol. XI, p. 219.
9. *ED.*, II, p. 458.
10. *Imperial Gaz. of India*, XXIX, p. 426.
11. *CHI.*, III, p. 133. 12. *Hodivala*. p. 48.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ऊर्दबीर्श ५० फर्सख ।[1] ईलियट ने अर्कुतीर्थ' को 'अरक तिरत', 'उपर्यहार' को 'उरिहार' (औड़िहार) और 'ऊर्दबीशौ' को 'उर्दबिशक्' पढ़ा है ।[2] रेनाड ने 'उपर्यहार' को 'औरबरहार' और 'उर्दबिशौ' को 'औरदत्यस्थ' नाम से सम्बोधित किया है ।[3]

डाउसन ने अरकतीर्थ को 'करनतिरत' से एकीकृत किया है, जो आज मिर्जापुर में 'कनतित' कहा जाता है ।[4] किन्तु इसके विपरीत 'अर्घ्यतीर्थ' नामोल्लेखवाले अभिलेख मिलते हैं । गङ्गा-तट पर स्थित तीर्थस्थान के रूप में इसका उत्तर और दक्षिण के अभिलेखों में उल्लेख हुआ है । कर्णदेव चेदि (१०-४०८० ई०) के एक ताम्रपत्र में इसका वर्णन हुआ है ।[5] धारवार के एक अभिलेख में अर्घ्यतीर्थ को वाराणसी प्रयाग, कुरुक्षेत्र के समान पवित्र कहा गया है ।[6] कर्णदेव चेदि के गौहोर्बताम्रपत्र में अर्घ्यतीर्थ को कोशाम्बपट्टला में या कौशाम्बी स्थित होना बताया गया है[7], जो प्रयाग से तीस मील दक्षिण-पश्चिम पर है ।[8] होदीवाला का कथन है : 'अरकतीर्थ' पियावन पर स्थित 'अर्घ्यतीर्थ' है, जहाँ कर्ण के पिता गाङ्गेयचेदि का अभिलेख मिला है ।[9]" होदीवाला का यह कथन कनिङ्घम के आधार पर है, जिसमें गाङ्गेयदेव के अभिलेख का उल्लेख किया गया है ।[10] पियावन इलाहाबाद से लगभग ९० मील दक्षिण-पश्चिम पर है और अलबीरूनी का 'अर्कतीर्थ' १२ फर्सख (लगभग ६० मील) प्रयाग के दक्षिण हैं । लगता है यहीं कहीं आसपास अर्कतीर्थ था ।

उपर्यहार को होदीवाला ने 'अवदबीहार'—अबन्दविहार (मिनहज स्थित) के नाम से सम्बोधित किया है ।[11] उद्दण्डपुर या उददण्डबिहार मगध की प्राचीन राजधानी थी । वहाँ बौद्ध-विहार थे । यह पालवंश के सुरपाल के अभिलेख में उल्लिखित हुआ है ।[12] शब्द-उच्चारण में 'विदेह' भी कहा जा सकता है ।[13] विदेह की राजधानी मिथिल थी, जो उत्तर-विहार में स्थित थी । उपर्यहार निश्चय ही अबन्दविहार ही था जो विदेह, दक्षिण बिहार या उत्तर विहार में स्थित था, किन्तु पहला अधिक उपयुक्त है ।[14]

---

1. *AI.*, Vol. I, p. 200.
2. ED., I, p. 55
3. *Ibid.*, fn. 4.
4. *Ibid*, fn. 586.
5. *EI.*, XI, p. 175
6. *EI.*, V., p. 258
7. *IA.*, XVIII, p. 137.
8. *DHNI.*, I, pp. 538, 610.
9. *Hodivala*. p. x.
10. *ASR.*, XXI, pp. 112–113.
11. *Hodivala*, p. 46.
12. *JASB.*, 1911, p. 760.
13. *Hodivala*, p. 46.
14. *Ibid.*

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ऊर्दबिशौ को सखाउ 'ऊर्ध्व-विषय' से उपन्यस्त करते हैं, किन्तु ईलियट के अनुसार यह उड़ीसा है, क्योंकि यह ५० फर्सख अबन्दविहार (या विहार) से समुद्र का तटवर्ती स्थान है। यह ओद्रस देश के अन्तर्गत था, जो उद्र, ओद्र और 'उत्कल' भी कहा जाता था।[1] अलबीरूनी ने स्वयं 'ओद्र' का उल्लेख 'उत्कल' के अन्तर्गत किया है।[2] श्वानच्वांग ने इसे 'वु-तु' नाम से उल्लिखित किया है।[3] कनिङ्घम के अनुसार ओद्र देश के अन्तर्गत आधुनिक कटक और सम्भलपुर का पूरा भाग तथा मेदिनीपुर का कुछ हिस्सा सम्मिलित था।[4]

अलबीरूनी कहता है: "वहाँ से समुद्रतट के साथ पूर्व की ओर वे देश हैं, जो इस समय जौर के अधीन हैं, पहले दरौर, ऊर्दबिशौ से ४० फर्सख, कान्जी ३० फर्सख, मलय ४० फर्सख, कूङ्क ३० फर्सख, जो इस दिशा में जौर के अधीन अन्तिम स्थान है"[5]। रशीदुद्दीन ने इसे यों लिखा है: 'समुद्र-तट के पूर्व की ओर एक राज्य है, जो चुन के निकट है और वहाँ से प्रारम्भ होनेवाला ४० फर्सख पर दर (दुर) है, उसके बाद कञ्ज ३०, मलिय ४०, कूनक् ३०, जो अन्तिम बिन्दु पर है।[6] रेनाड ने अन्तिम नाम को 'कोनक' से अभिहित किया है।[7]

'जौर' अरबी में भारतीय 'चोल' के स्थान पर लिख दिया गया है। यहाँ का शासक राजा राज चोल (९८५-१०१४ ई०) दक्षिण का बहुत अधिक विख्यात् राजा था।[8] अपने शासन-काल में इसने वेङ्गिके पूर्वी चालुक्यों को, कलिङ्ग के उत्तरी शासन को, चेरि के पाण्ड्य-शासन को तथा अन्य राज्यों को विजित कर लिया था। वह आधुनिक मद्रास, सीलोन और मैसूर का शासक था।[9]

'दरौर,' 'द्रवर' अर्थात् 'द्रविड़' है। यह दक्षिण का एक हिस्सा था, मद्रास से सेरिङ्गपटम् 'तक।[10]

'मलय' पाण्ड्य देश था, जिसमें आधुनिक तिन्नवेल्लि और मदुरा जिले थे।[11]

---

1. *GDAMI*., pp. 213, 250.
2. *Al.*, Vol. I, p. 301.
3. *Watters*, II, p. 193; *Beal*, II, p. 204.
4. *AGI*., p. 511.
5. *AI.*, Vol. I, p. 200.
6. *ED.*, I, p. 55.
7. *ED.* I, p. 56, fn. 2.
8. *The Struggle for Empire*, p. 285.
9. Smith, *Early Hist. of India*, pp. 345-46.
10. *GDAMI*., p. 57, *AGI*., p. 551.
11. *GDAMI*., p. 147.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

'काञ्जी' के अनेक नाम हैं, 'काञ्जिवरम्', 'काञ्चीपुर', 'काञ्ची', 'द्रविड़', तुण्डिरमण्डल, तथा तोण्डमण्डल ।[१]

'कुङ्क' (आधुनिक) काङ्गुनाड है ।[२] काङ्गु देश के अन्तर्गत आज के सलेम और कोइम्बटोर जिले हैं ।[3]

२—कन्नौज या बारी से वाराणसी और तत्पश्चात् गङ्गा के मुहाने तक

अलबीरूनी कहता है : "बारी से गङ्गा के पूर्वी तट के साथ-साथ चलने पर तुम इन स्थानों से गुजरोगे—अजोदह (अयोध्या, औध), बारी से २५ फसख, प्रसिद्ध बनारसी २० फर्सख ।

फिर वहाँ से दिशा परिवर्तित करके दक्षिण के स्थान पर पूर्व की ओर चलो तो तुम शरवार आते हो, बनारसी से ३५ फर्सख, पाटलिपुत्र २० फर्सख, मुङ्गेरी १५ फर्सख, जङ्ग ३० फर्सख, दुगुमपुर ५० फर्सख, गङ्गासायर ३० फर्सख जहाँ गङ्गा समुद्र मे गिरती हैं ।[४]"

अजोदह प्रसिद्ध पौराणिक स्थान अयोध्या है। यह साकेत नाम से भी विख्यात् था ।[५] ह्वानच्वाँग ने इसे अ-यु-त नाम दिया है ।[६]

बनारसी आज का वाराणसी और प्राचीन काल का प्रसिद्ध तीर्थ-स्थान काशी है ।[७] ह्वानच्वांग ने इसे 'पो-लो-नी-से' नाम से सम्बोधित किया है ।[८]

शरवार सम्भवतः सरयू के पार का प्रदेश था, और 'सरयूपार' के सङ्केत में 'शरवर' नाम से प्रचलित था ।[९]

पाटलिपुत्र का प्राचीन नगर सोन और गङ्गा नदी के सङ्गम पर बसा था ।[१०] आधुनिक बिहार की राजधानी पटना पाटलिपुत्र का ही दूसरा नाम है ।

मुङ्गीरी बिहार का आधुनिक मुङ्गेर है । इसका प्राचीन नाम 'मुन्दगिरि',[११] 'मुद्गरिगि'[१२] (या मोदागिरि) अर्थात् 'मुद्ग की पहाड़ियाँ'[१३] था । ह्वानच्वांग ने इसका नाम 'इ-लन-न-पो-प-तो' दिया है ।[१४]

---

1. *GDAMI.*, p. 229; *GAMI*, p. 109,
2. *GDAMI.*, p. 102.
3. *The Struggle for Empire*, p. 229.
4. *AI.*, Vol. II, pp. 200-1.
5. *HGAI.*, p. 67.
6. *Watters*, I, p. 355; *Beal* I, p. 225.
7. *GAMI.*, p. 173; *HGAI.*, pp. 94-95.
8. *Watters*, II., p. 47.
9. *ED.*, I, p. 56, fn. 4.
10. *GAMI.*, p. 47, fn. 2.
11. *AGI.*, p. 476.
12. *HGAI.*, p. 239.
13. *GDAMI.*, p. 132.
14. *Watters*, II, p. 178; *Beal*, II, p. 186.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

जङ्ग बिहार प्रान्त के 'भागलपुर' जिले का प्राचीन नाम था। श्वानच्वांग ने इसे 'चेम्पो' नाम दिया है।[1] 'चम्पारन' और 'चम्पापुर' भी कहा जाता था, जो भागलपुर से चार मील पश्चिम पर स्थित था।[2]

दूगुमपुर का कोई सन्दर्भ नहीं मिलता। होदीवाला का कथन है : "दुगुमपुर गलती से लिखा गया है। उनके अनुसार यह विक्रमपुर होना चाहिए,[3] पश्चिमी ढाका से ८ मील दक्षिण। यह सेन राजाओं की राजधानी थी।[4]

गङ्गासायर न होकर गङ्गासागर होना चाहिए। जहाँ गङ्गा सागर में मिलती हैं, वह गङ्गासागर कहा गया। प्राचीन-काल से हिन्दुओं के लिए यह अत्यन्त पवित्र तीर्थ-स्थान रहा है।[5]

३--कन्नौज से पूर्व कामरूप (कामरू) और उत्तर के सीमावर्ती देश नेपाल और तिब्बत तक

कन्नौज से चलते हुए तुम वारी आते हो, १० फर्सख, दुगुम ४५ फर्सख, शिलहट राज्य १० फर्सख, बिहत नगर १२ फर्सख। आगे चलकर दायीं ओर का देश तिल्वत कहलाता है। जहाँ से तुम कामरू (कामरूप-आसाम) के पहाड़ों तक आते हो। तिलवत के पीछे बायीं ओर का देश नेपाल राज्य है।········ भोटेश्वर तिब्बत की पहली सीमा है।[6]'

दुगुम 'दोगाँव' (दोगाम) है। यह बहराइच जिले के २२ मील उत्तर सरयू तट पर स्थित है।[7] अकबर के समय यह मुद्रा-टङ्कशाला था, जहाँ अकबर ताम्रमुद्राओं को टङ्कित कराता था।[8]

---

1. *Watters*. II, p. 181; *Beal* II, p. 193.
2. *HGAI*. pp. 214-15; *GDAMI*, p. 44.
3. *Hodivala*, p. 47.
4. *Imperial Gazetteer of India*, VIII, 2.
5. *GAMI*. pp. 177, 178-79. कूर्मपुराण :

गङ्गायां ज्ञानतो मृत्वा मुक्तिमाप्नोति मानवः।
अज्ञानाद् ब्रह्मलोकं च याति नास्त्यत्र संशयः॥
गङ्गायां च जले मोक्षो पाराणस्यां जले स्थले।
अन्तरिक्षे च गङ्गायां गङ्गासागर सङ्गमे॥

विष्णुसंहिता २२५.२८ : गङ्गाद्वारे प्रयागे च गङ्गासागर सङ्गमे।
सततं नैमिषारण्ये वाराणस्यां विशेषतः॥

6. *AI*., Vol. I, p. 201.
7. *Imperial Gazetteer of India*, Vol. XXIII p. 357.
8. *JASB*, 1895, pp. 69-71.

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

शिलहट को सखाउ[1] ने आसाम के शिलहट से समीकृत किया है, किन्तु डाउसन[2] ने गोरखपुर के शाहजहाँ को सिलहट से एकीकृत किया है। डॉ० डी० सी० सरकार ने 'षटपञ्चालदेश विभाग'' को उद्धृत किया है जिसमें 'शीलहट' का नाम आता है।[3] उनके अनुसार सबसे पहले इसका अभिलेखीय सन्दर्भ चटगाँव पत्र में है।[4] लक्ष्मणसेन के समय यह सेन राज्य के अन्तर्गत आ गया।[5]

बिहत (बृहत्) सम्भवतः सारन जिले के उत्तर पूर्व चम्पारन नगर का बेथिअ नगर हो,[6] जिसे आज बेतिया भी कहते हैं। शायद यह प्राचीन काल में बेतहादिय था।[7]

तिलवत आज का प्रचलित तिरहुत है, जो 'तिरभुक्ति' का रूप है।[8] प्राचीन समय में यह विदेह कहा जाता था, जो राजा जनक की राजधानी था।[9]

'कामरूर' आधुनिक कामरूप है। भोटेश्वर आधुनिक भूटान है। नेपाल और तिब्बत इस समय भी वही हैं, जो अलबीरूनी के समय थे।

४—कन्नौज से दक्षिण, दक्षिण तट बनवासी तक

अलबीरूनी लिखता है: "कन्नौज से दक्षिण-पूर्व की ओर गङ्गा के पश्चिमी किनारे के साथ-साथ चलते हुए तुम जजाहूती राज्य में पहुँच जाते हो, जो कन्नौज से ३० फर्सख है। इस नगर और कन्नौज के बीच भारत के दो प्रसिद्ध किले ग्वालियर और कालञ्जर हैं। दहाल एक देश है, जिसकी राजधानी तीऔरी है। कन्नकर राज्य २० फर्सख है। अप्पूर, बनवास समुद्र तट पर है।[10]

जजाहूती (जेजाकभुक्ति) बुन्देलखण्ड का प्राचीन नाम तथा चन्देलों का राज्य है। अलबीरूनी ने इसकी राजधानी खजुराहो बतलायी है।[11]

ग्वालियर का किला बहुत मजबूत था, जिसे महमूद ने जीता था।[12]

कालञ्जर का दुर्ग भी अत्यधिक दुर्गम स्थान पर था। सुल्तान महमूद ने इस पर भी चढ़ाई की थी।[13]

---

1. *Sachau, AI.*, II, notes p.7.
2. *ED.*, I, p. 57 fn. 1.
3. *GAMI.*, p. 79.
4. *GAMI.*, p, 71. : ऐराकभोटान्तचीन (ना) महाचीनस्तथैव च। नेपाल (लः) शीलहट्टश्च गौडकोशालमा (म) गथ (धः) ॥६॥
5. *Ibid.*, p. 168.
6. *Hodivala*, p, 48.
7. *GDAMI.*, p. 30.
8. *Ibid.*, p. 204.
9. *Ibid.*, p. 35.
10. *AI.*, Vol. I, p. 202.
11. *Ibid.*
12. *Gardizi*, p. 79.
13. *Nazim*, p. 113.

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

दहाल (डाहल मण्डल) बुन्देलखण्ड का एक हिस्सा था, जो चेदि राज्य के अन्तर्गत थीं।[1]

तिऔरी को सखाउ समीकृत नहीं कर पाये हैं, किन्तु यह 'त्रिपुरी' था।[2]

बनवास दक्खिन में कादम्ब शासन की राजधानी थी।[3] अलबीरूनी का यह कहना कि यह समुद्र-तट पर था, गलत है।[4] डॉ० डी० सी० गाङ्गुली ने 'बनवास' को 'वनवासी' से समीकृत किया है।[5]

'अपसूर' नामक स्थान का ठीक पता नहीं चलता। होदीवाला ने इसका नाम 'बसरू' देते हुए इसे बरसेलोर का पुराना हिस्सा बताया है, जो भाटकल से १० मील दक्षिण में है।[6]

५—कन्नौज से बजान या नारायण तक और तत्पश्चात् गुजरात की राजधानी तक

अलबीरूनी का विवरण है : "कन्नौज से दक्षिण-पश्चिम की ओर चलकर तुम आसी आते हो, कन्नौज से १८ फर्सख, सहन्या १७ फर्सख, जन्दरा १८ फर्सख, राजौरी १५ फर्सख, बजान, गुजरात की राजधानी २० फर्सख। हमारे यहाँ के लोगों के द्वारा यह नगर 'नारायण' कहलाता है। इसके पतन के पश्चात् यहाँ के निवासी निराश्रित होकर जदूर (?) नामक दूसरे स्थान पर जा बसे थे।[7]

आसी का उल्लेख उत्बी ने सुल्तान महमूद के भारत आक्रमण के सिलसिले में किया है।[8] डॉ० नाजिम ने इसे यमुना के बायें किनारे पर इटावा से ६ मील पश्चिम स्थित असइ से समीकृत किया है।[9] ईलियट ने इसे गङ्गा-तट स्थित असनी से एकीकृत किया है,[10] जो फतेहपुर से १० मील उत्तर-पूर्व की ओर है।[11] कनिङ्घम ने इसे कन्नौज से ६० मील दक्षिण-पश्चिम की ओर तथा इटावा से ६ माल दक्षिण यमुना तटवर्ती अस्सइ घाट से संयोजित किया है।[12]

---

1. Vaidya, *Hindu Mediaeval India*, III, p. 4
2. *Imperial Gazetteer of India*, XIV, p. 207.
3. *ED.*, I, p. 58 fn. 4.
4. *Hodivala*, p. 48.
5. *The Struggle for Empire*, p. 164.
6. *Hodivala*, p. 48.
7. *AI.*, Vol. I, p. 203
8. *ED.*, I, p. 46.
9. *Nazim*, p. 109.
10. *ED.* I, p. 58.
11. *Ibid.*, II, p. 45.
12. *AGI.*, p. 339.

सहन्या को कनिङ्घम ने सुहनिया से नियोजित किया है, जो ग्वालियर से २५ मील उत्तर में स्थित था।[1]

जन्दरा चम्बल नदी पर स्थित था। कनिङ्घम ने इसे 'हिन्दोन' से समीकृत किया है।[2]

राजौरी अपने इसी नाम से आज भी, माचेरी से १२ मील उत्तर-पश्चिम और हिन्दोन से ५० मील उत्तर-पश्चिम स्थित है।[3] माचेरी नाम मत्रदेश का बिगड़ा हुआ रूप है, जो आधुनिक अलवर है।[4]

बजान या नारायन को कनिङ्घम ने बैसा बैरत (गुजरात) की राजधानी नारायणपुर से सुस्पष्ट किया है।[5] नाजिम ने भी इसी नारायणपुर से इसे सम्बन्धित माना है।[6]

६—मथुरा से (मालवा की राजधानी) धार तक और

७—बजान से धार तथा उज्जैन तक

अलबीरूनी लिखता है : "माहूर और कन्नौज की दूरी उतनी ही है जितनी कन्नौज और बजान के बीच की; अर्थात् १८ फर्सख। अगर कोई व्यक्ति माहूर से से ऊजैन की यात्रा करता है, तो वह गाँवों से गुजरता है, जो केवल ५ फर्सख और इससे प्रत्येक का कम अन्तर है। ३५ फर्सख चलने पर वह दूदही नामक बड़े गाँव आता है, वहाँ से बामहूर, दूदही से १७ फर्सख, भाइलसाँ, ५ फर्सख, जो हिन्दुओं का प्रसिद्ध स्थान है, वहाँ से अर्दीन, ९ फर्सख—धार ७ फर्सख।[7]

माहूर प्राचीन महानगरी और आज का मथुरा नगर है।[8] पौराणिक और ऐतिहासिक राजाओं का वह प्रमुख केन्द्र रहा है।[9]

ऊजैन भारत का प्रसिद्ध उज्जैन या उज्जयिनी है। अवन्ती की यह राजधानी थी।[10] ह्वानच्वांग ने यहाँ की यात्रा की थी।[11]

दूदही का नाम 'दूधा' अथवा 'दुदही' भी है। यह उत्तर प्रदेश के झाँसी जिलान्तर्गत ललितपुर से १९ मील दक्षिण स्थित है।[12]

---

1. *AGI.*, p. 339
2. *Ibid.*
3. *AGI.*, p. 339.
4. *GDAMI* pp. 128, 218
5. *AGI.*, pp. 338–9.
6. *Nazim*, p. 199.
7. *AI.*, Vol. I, p. 202.
8. Pargiter : *Ancient Indian Hist. Tra.*, p. 170
9. *HGAI*, pp. 106–10.
10. *Ibid.*, p. 305; *GAMI* pp. 91-92.
11. *Beal.*; II. pp. 270–1.
12. *JASB*, 1902, p. 125.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

बामहूर—आधुनिक भिलसा से २५ मील उत्तर स्थित 'बसोदो'' ही बामहूर है।[1]

भाइलसाँ आज का भिलसा या भैलस्वामी (महाबलिस्ताँ) है। मालवा का प्राचीन विदिसा, भोपाल से २६ मील उत्तर-पूर्व बेतवा तट पर स्थित है।[2]

अर्दीन—धर के उत्तर[3] शिप्रा नदी पर स्थित है।

धार—प्रसिद्ध परमार राजा भोज[4] की राजधानी थी।[5]

अलबीरूनी आगे कहता है : "बजान से दक्षिण चलकर तुम मेवाड़ आते हो, बजान से २५ फर्सख। यह एक राज्य है, जिसकी राजधानी जन्तरौर है।[6]

मेवाड़ राजस्थान का प्रसिद्ध मेवाड़ है।

जन्तरौर निश्चय ही चित्तौड़ है।

८—धार से मन्दगिरि (गोदावरी तट) तक

अलबीरूनी का कथन है : "धार से दक्षिण चलने पर तुम भूमिहर आते हो, धार से २० फर्सख, कन्द २० फर्सख, नमादुर, नर्मदा तट स्थित, १० फर्सख, अलीसपुर २० फर्सख, मन्दगिर, गोदावर नदी तट स्थित, ६० फर्सख।[7]

भूमिहर को होदीवाला ने 'महेश्वर' से समीकृत किया है।[8] पारजीटर ने इसे नर्मदा तट स्थित मान्धाता से संयोजित किया है।[9] इस स्थान का प्राचीन नाम माहिष्मती था।[10]

कन्द को होदीवाला ने खण्डवा बताया है।[11] यह नर्मदा से ४० मील दक्षिण स्थित है।

नमापुर को होदीवाला ने निमावर कहा है तथा खण्डवा से ८० मील उत्तर-पूर्व स्थित बताया है।[12]

अलीसपुर सम्भवतः इलीचपुर है।

मन्दगिर आधुनिक मुङ्गिपदृत्त है। यह महाराष्ट्र के सातवाहन राजाओं की राजधानी थी। इस समय यह औरङ्गाबाद जिले में है तथा गोदावरी के उत्तरी तट पर स्थित है।[13]

---

1. *Hodivala*, p. 49.
2. *GDAMI*, p. 35; *GAMI*, p. 34 fn. 5.
3. *Hodivala*, p. 50.
4. *The Struggle for Empire*, pp. 66–7
5. *HGAI.*, p. 508.
6. *AI.*, Vol. I, p. 202.
7. *AI.*, Vol. I, p. 203.
8. *Hodivala*, p. 50.
9. *JRAS*, 1910, pp, 445–6.
10. *GDAMI.*, p. 120; *GAMI*, p. 30, fn. 1.
11. *Hodivala*, p. 50.
12. *Ibid.*
13. *Imperial Gazetteer of India*, p. 317.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

९--धार से भारतीय सागर तटीय तान तक

"फिर धार से दक्षिण की ओर चलने पर तुम नमिय्य घाटी आते हो; धार से ७ फर्सख, महरट्ट देश १८ फर्सख, कुङ्कन प्रदेश और इसकी समुद्र तटीय राजधानी तान २५ फर्सख।"[१]

महरट्ट देश आधुनिक महाराष्ट्र है। यह गोदावरी और कृष्णा नदी के बीच में स्थित है।[२] डॉ० डी० सी० सरकार ने इसे नर्मदा और कर्नाट के बीच में स्थित बताया है।[३]

कुङ्कन प्रसिद्ध कोङ्कण है। यह परशुराम क्षेत्र नाम से भी विख्यात् था।[४] 'षट्पञ्चाश-देशविभाग' में इसे 'समुद्रप्रान्तदेशोहि कोङ्कण.' कहा गया है।[५] अरब सागर तक इस प्रदेश की भूमि फैली हुई है।[६]

तान का प्राचीन नाम 'श्रीस्थानक' है और आधुनिक 'थान'। यह महाराष्ट्र प्रान्त में है।[७]

१०--बजान से काठियावाड़ के दक्षिण तटीय सोमनाथ तक

"बजान से दक्षिण-पश्चिम की ओर चलने पर तुम अनहिलवार पहुँचते हो, बजान से ६० फर्सख, समुद्रतट स्थित सोमनाथ ५० फर्सख।"[८]

अनहिलवार उत्तरी बड़ौदा का आधुनिक पट्टन है।[९]

सोमनाथ गुजरात का इतिहास प्रसिद्ध वही सोमनाथ है, जिस पर सुल्तान महमूद ने चढ़ाई की थी। सोमनाथ मन्दिर का नाम है। स्थान को देवपट्टन कहा जाता है।

११—अनहिलवार (आधुनिक पट्टन) से बम्बई के पश्चिमी तट तान तक

'अनहिलवार से दक्षिण दिशा में चलने पर तुम लार देश आते हो, देश की दो राजधानियाँ विररोज और रिहञ्जूर, अनहिलवार से ४२ फर्सख। तान के पूर्व में दोनों समुद्र-तट पर हैं।[१०]

---

1. *AI.*, Vol. I, p. 203.
2. *GDAMI.*, p. 118.
3. *GAMI.*, p. 87.
4. *GDAMI.*, p. 103.
5. *GAMI.*, p. 78.
6. *Bombay Gazetteer*, I, part II, 283.
7. *GDAMI.*, p. 193.
8. *AI.*, Vol. I, p. 205.
9. *ED.*, I, p. 363.
10. *Ibid.*

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

लारदेश, लाट है। यह प्राचीन गुजरात और उत्तरी कोङ्कण का नाम है।[1] प्राचीन लाट मही और ताप्ती नदियों के बीच में स्थित था।[2]

१२—बजान से भाटी होते हुए सिन्ध नदी के मुहाने लोहरानी तक

"बजान से पश्चिम की ओर चलने पर तुम मुल्तान आते हो, बजान से ५० फर्सख, भाटी १५ फर्सख। भाटी से दक्षिण-पश्चिम चलने पर तुम अरोर आते हो, भाटी से १५ फर्सख ; सिन्ध नदी की दो शाखाओं के बीच बम्हनवा अलमन्सूरा है, २० फर्सख, लोहरानी सिन्ध के मुहाने पर स्थित, ३० फर्सख।[3]"

मुल्तान का नाम आज भी यही है। इसका प्राचीन नाम मूलस्थान था।[4]

भाटी, भटिण्डा है।[5]

अरोर को डॉ० नाजिम ने सिन्ध की दो शाखाओं के बीच स्थित बताया है।[6]

लोहरानी आधुनिक कराँची (पाकिस्तान) के निकट है।

१३—कन्नौज से कश्मीर तक

"कन्नौज से उत्तर-पश्चिम की ओर चलने पर तुम शिरशारह आते हो, कन्नौज से ३० फर्सख, पिञ्जौर १८ फर्सख पर्वतों पर स्थित है, इसके विपरीत तानेशर है, दहमाल (पर्वतों के तल पर स्थित) जालन्धर की राजधानी, १८ फर्सख, बल्लावर, १० फर्सख, तब पश्चिम की ओर चलते हुए तुम लद्द आते हो, १३ फर्सख, राजगिरी का दुर्ग ८ फर्सख, इसके बाद उत्तर की ओर चलने पर तुम कश्मीर आते हो, २५ फर्सख।"[7]

दहमाल को डाउसन[8] ने इसके दूसरे नाम 'देहमेरी' या 'देह्मबेओरी' के साथ समीकृत करते हुए 'नीरपुर' से संयोजित किया है जिसे बाद में जहाँगीर ने नूरजहाँ के नाम पर 'नूरपुर' कर दिया था। इसकी प्राचीन राजधानी रावी तट पर प्रतिस्थान या पठानकोट थी।

बल्लावर को सखाउ ने बल्लापुर से एकीकृत किया है।[9] सम्भवतः यह

1. *HGAI.*, p. 287.
2. *Important Inscriptions from the Baroda State*, Vol. I, p. 29; cf. *GAMI.*, p. 106.
3. *AI.*, Vol. I, p. 205.
4. *HGAI.*, p. 112.
5. *GAMI.*, p. 23.
6. *Nazim*, p. 199.
7. *AI.*, Vol. I, p. 205
8. *ED.*, I, p. 62, fn.
9. *Sachau*, AI., Vol. II, p. 319.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

आधुनिक फिल्लौर हो। होदीवाला ने इसे जम्मू के निकट आधुनिक बिशोली या 'बसोहली' माना है।[1]

लद्द, लिद्दर नदी के घाटी का नाम है जो झेलम की सहायक है।[2]

राजगिरी, पञ्जाब के उत्तर की ओर सम्भवतः सूरन घाटी के ऊपर कहीं स्थित था।[3]

१४—कन्नौज से पानीपत, अटक, काबुल और गजन तक

"कन्नौज से पश्चिम चलने पर तुम दियामों आते हो, कन्नौज से १० फर्सख, कुती १० फर्सख, आनार १० फर्सख, मीरत १० फर्सख, पानीपत १० फर्सख, पिछले दो स्थानों में जौन नदी बहती है. कवीतल १० फर्सख, सुन्नाम १० फर्सख।

"तत्पश्चात् उत्तर-पश्चिम की यात्रा करते हुए तुम आदित्तहौर आते हो, १९ फर्सख जज्जनोर, ६ फर्सख, मन्दहूकुर, इराव नदी के पूर्व लौहावुर की राजधानी, ८ फर्सख, चन्द्राह नदी १२ फर्सख, वियत्त नदी के पश्चिम झेलम नदी ८ फर्सख, सिन्ध के पश्चिम कन्दहार की राजधानी वैहिन्द २० फर्सख, पुरषावर १४ फर्सख, दुनपूर १५ फर्सख, काबुल १२ फर्सख, गजन १७ फर्सख।"[4]

कुती को डाउसन ने राजघाट बताया है, किन्तु होदीवाला के अनुसार यह गलत रूप में 'कोलि' या कोइल अथवा 'कोल' के स्थान पर हो गया है। यह अलीगढ़ का प्राचीन नाम था।[5]

मीरत आज का मेरठ है। अलबीरूनी ने इसकी दूरी अलीगढ़ से २० फर्सख, १०० मील के लगभग बतायी है, किन्तु सही दूरी ९० मील है।[6]

पानिपत आज का 'पानीपत' और प्राचीन पनिप्रस्थ है जो युधिष्ठिर द्वारा दुर्योधन से पाँच माँगे गये गाँवों में एक था।[7]

कवीतल को सखाउ[8] ने कपिस्थला से समीकृत किया है तथा आधुनिक कपुर्थला बताया है। यह हरियाना के कर्नाल जिले में स्थित है। कहा जाता है कि युधिष्ठिर ने कपिस्थला को बसाया था।[9]

---

1. *Hodivala*, p. 52.
2. *Ibid.*
3. *Ibid.*, p. 56.
4. *AI.*, Vol. I, p. 205-6.
5. *Hodivala*, p. 52.
6. Seely, *Road Book of India, 1825, p. 18.*
7. *GDAMI.*, p. 148.
8. Sachau, *AI.*, Vol. II, p. 320.
9. *GDAMI.*, p. 92.

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

आदित्तहौर को होदीवाला ने 'अउब्बहोर' = 'अबोहर' पढ़ा है। यह दीवालपुर जिले का प्रत्यन्त नगर था।[1]

जज्जनीर का नाम हजनीर भी था। 'जञ्जेर' नाम से यह वशाफ द्वारा वर्णित हुआ है,[2] लेकिन होदीवाला ने इसे जजनेर कहा है। पञ्जाब के फिरोजपुर जिले के जीर तहसील का यह भग्नावशेष है, जो आज जनेर गाँव के नाम से जाना जाता है।[3]

मन्दहूकूर, होदीवाला के अनुसार लाहौर के निकट था।[4]

लौहापुर आधुनिक लाहौर है।

इराव आज की रावी नदी है।

चन्द्राह प्रसिद्ध चेनाब नदी है।

जेलम नदी आधुनिक झेलम है।

वियत्त नदी का नाम आजकल व्यास है।

पुरशावर वर्तमान पेशावर है।

वैहिन्द आजकल का हुन्द है।[5] कल्हण के अनुसार इसका नाम उद्भाॅड है।[6] यह पञ्जाब के पेशावर-अन्तर्गत सिन्ध के दक्षिणी तट पर स्थित था तथा 'उद्खण्ड' भी कहा जाता था।[7]

दूनपुर पञ्जाब में ही स्थित था। अलबीरूनी ने यहाँ की यात्रा की थी।[8] सखाउ ने इसे जलालाबाद से समीकृत किया है।[9]

काबुल का नाम और स्थान आज भी तद्वत है।

गजन सुल्तान महमूद की राजधानी थी। इस्लाम के सांस्कृतिक इतिहास में इसका महत्वपूर्ण योग है।

१५—बब्रहान से अधिष्ठान (कश्मीर की राजधानी) तक

इस मार्ग के अन्तर्गत अलबीरूनी ने बब्रहान, उशघारा, अधिष्ठान आदि स्थानों को समाविष्ट किया है।[10]

---

1. *Hodivala*, p. 52.
2. *ED.*, III, p. 36.
3. *Hodivala*, p. 53.
4. *Ibid.*
5. *Nazim*, p. 86.
6. Stein, *Rajtarangini*, II, p. 337.
7. *AGI.*, p. 52.
8. Indological Bulletin, B. H. U., 1961-62.
9. Sachau, *AI.*, Vol. II, p. 342.
10. *AI.*, Vol. I, pp. 206-8.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

बब्रहान, को होदीवाला ने चमहद ग्राम के निकट माना है जो अबूबोत्ता-बाद से दक्षिण-पश्चिम की ओर स्थित था।[1]

उशधारा को कनिङ्घम ने आधुनिक वारामुला स्थान से दो मील दक्षिण-पूर्व स्थित उशधर से समीकृत किया है।[2]

अधिष्ठान कश्मीर-श्रीनगर की प्राचीन राजधानी थी।[3]

१६—मकरान स्थित तीज से सेतुबन्ध तक

इस मार्ग में अलबीरूनी ने निम्नलिखित स्थानों को सम्मिलित किया है—मकरान, अल दैबल, बवारिज, कच्छ और सोमनाथ,+ समुद्रतटीय स्थान—तवल्लेशर, दैबल से ५० फर्सख, लोहरानी+ १२ फर्सख, बग १२ फर्सख, कच्छ और बरोई ६ फर्सख, सोमनाथ १४ फसख, कम्वायत ३० फर्सख, असावल, दो दिन, विहरोज, ३० फर्सख, सन्दान ५० फर्सख, सुवार ६ फर्सख, तान+ ५ फर्सख। लारान देश में जीमूर नगर, बल्लभ, काञ्जी,+ दरवड,+ सिङ्गा-लदीव, उम्मलनार, रामेशर और सेतुबन्ध।[4]

देवल को सखाऊ ने कराँची बताया है।[5]

वारोई को होदीवाला ने 'द्वारका' से समीकृत किया है।[6] यह प्रभास पाटन से उत्तर-पश्चिम की ओर है।

कम्बायत, खम्भात है, जिसे डाउसन ने अहमदाबाद बताया है। यह साबरमती नदी पर स्थित प्राचीन असापल्लि है।[7]

बिहरोज आधुनिक भड़ौंच है।

सन्दान को सखाउ ने संस्कृत सन्वान से एकीकृत किया है।[8]

सूबार को सखाउ ने संस्कृत शब्द सुपारक बताया है।[9] बम्बई से ३७ मील उत्तर थान जिले के 'सोपर' अथवा 'सुपार' से इसका साम्य बैठाया गया है।[10]

वल्लभ या वल्लभी, भावनगर से १८ मील उत्तर-पश्चिम और खम्भात की खाड़ी के पश्चिमी किनारे पर स्थित है।[11]

---

1. *Hodivala*, p. 54.
2. *AGI.*, p. 100.

\+ इन स्थानों के विषय में यथास्थान पहले लिखा गया है।

3. *Imperial Gazetteer of India*, Vol. XXIII, p. 99; *Hodivala*, p. 55.
4. *AI.*, Vol. I, pp. 208–9.
5. Sachau, *AI.*, VII, p. 320.
6. *Hodivala*, p. 57.
7. *Bombay Gazetteer*, Vol. I, pt. I, p. 170.
8. *Sachau, AI.*, Vol. II, p. 320.
9. *Ibid.*
10. *JBBRAS.*, XV, p. 273.
11. *AGI.*, p. 316.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सिङ्गालदीव प्रसिद्ध सिङ्घलद्वीप है। इसका वर्तमान नाम सीलोन या लङ्का है।

पञ्जयावर वर्तमान तञ्जौर है। ११वीं सदी का यह तञ्जेपुर है।[1]

रामेशर आधुनिक रामेश्वरम् है।

सेतुबन्ध का निर्माण राम ने लङ्का जाने के लिए भारत के दक्षिणी समुद्र तट से लङ्का के तट तक किया था।

भारत के विभिन्न देश और निवासी

अलबीरूनी ने देशों और निवासियों की सूची केवल वायुपुराण से ही नहीं दी है बल्कि वराहमिहिर की संहिता से भी दी है।[2] उनमें से कुछ का संक्षेप में विवेचन किया जा रहा है।

कुरु देश को कुरुक्षेत्र अथवा स्थाण्वीश्वर से समीकृत किया जा सकता है। इसमें सोनपत, अमीर, कर्नाल और पानीपत सम्मिलित रहे तथा यह उत्तर में सरस्वती नदी और दक्षिण में दृषद्वती नदी के बीच स्थित था। ब्राह्मण ग्रन्थों में, क्षत्रियों के प्रमुख निवास के रूप में, इसका उल्लेख मिलता है।[3] बौद्ध ग्रन्थों में कुरुभूमि का वर्णन किया गया है।[4] इसकी प्राचीन राजधानी हस्तिनापुर थी, जो गङ्गा के तट पर आधुनिक मेरठ जिले में स्थित थी। इसकी दूसरी राजधानी इन्द्रप्रस्थ थी, जो आज दिल्ली के निकट इन्द्रपत है।

पाञ्चाल दो भागों में था—उत्तर पाञ्चाल और दक्षिण पाञ्चाल। उत्तर पाञ्चाल की राजधानी अहिछत्र थी, जो आज बरेली जिले का रामनगर है तथा दक्षिण पाञ्चाल की राजधानी कामपिल्य थी, जो आज उत्तरप्रदेश में फर्रुखाबाद जिले का कम्पिल है। पाञ्चाल मूल रूप से दिल्ली से उत्तर-पश्चिम की ओर हिमालय के तलवर्ती प्रदेश से चम्बल नदी तक था। इसका महत्व वैदिक युग से था। बौद्ध और जैन साहित्य में इसका अनेक स्थल पर उल्लेख मिलता है।[5]

शाल्व निवासियों का प्राचीन महाकाव्यों और पुराणों में उल्लेख हुआ है। महाभारत के अनुसार शाल्व देश कुरुक्षेत्र के निकट स्थित था[6] तथा सावित्री

---

1. *EI.*, III, p. 283.
2. *AI.*, Vol. I, pp. 299-308.
3. Law, *Alberuni's Knowledge of Indian Geography*, p. 11.
4. *Majjhima*, II, 65 ff; *Dhammapada Comm.* III, pp. 241-2.
5. Vide Law, *Triebes in Ancient India*, Ch. *IV*.
6. महा०, विराटपर्व, अ० १.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

के पति सत्यवान के पिता का राज्य था।[1] मत्स्यपुराण के अनुसार अल्वर के पड़ोसी राज्य को इसने विजित कर लिया था।[2]

शूरसेन की मथुरा राजधानी थी, जो यमुना पर स्थित थी। सदियों तक यह बौद्धों का प्रधान गढ़ था। भगवान् बुद्ध ने यहाँ की यात्रा की थी।[3]

वत्स की राजधानी कौशाम्बी थी, जो वर्तमान इलाहाबाद के निकट कोसम है। ह्वानच्वांग ने इसका उल्लेख किया है।[4]

कुन्तल को डॉ० ला ने मध्यदेश में स्थित बताया है[5] जिसे चुनार के निकट के कुन्तिल से सम्पुष्ट किया जा सकता है।[6] पैसू अभिलेखों से विदित होता है कि कुन्तल में बम्बई का दक्षिणी हिस्सा और मैसूर का उत्तरी हिस्सा सम्मिलित था।[7]

काशी का, बुद्ध के पूर्व, बहुत अधिक राजनीतिक महत्व था। रामायण के अनुसार यह एक राज्य था।[8] काशी और कोशल यदा-कदा राजनीतिक प्रभुत्व के लिए लड़ते रहे। वाराणसी, काशी की राजधानी थी।

कोशल देश कुरु और पाञ्चाल के पूर्व और विदेह के पश्चिम में स्थित था, जिसे सदानीर (सम्भवतः गण्डक) नदी अलग करती थी।[9] अयोध्या और साकेत इसकी प्रथम और द्वितीय राजधानी थी।

मगध प्रधानतः आधुनिक बिहार का गया और पटना जिला है। इसकी प्रारम्भिक राजधानी गिरिव्रज अथवा राजगृह थी। अशोक के समय इसकी पाटलिपुत्र राजधानी थी।[10]

प्राग्ज्योतिष को असुर-दानव राज्य कहा गया है। कामरूप[11] की राजधानी प्राग्ज्योतिषपुर थी, जिसे कामाख्या अथवा गोहाटी से सम्पुष्ट किया जा सकता है।

---

1. वही, वनपर्व, अ. २८२।
2. म. पु., अध्याय ११३, cf. *ASI*, XX, 120.
3. Law, *Alberuni's Knowledge of Indian Geography*, p. 11.
4. *Watters*, II, p. 365.
5. Law : *op. cit.*, p. 12.
6. *ASI, XI*, 123.
7. Rice, *Mysore & Coorg from the Ins.* p. 3; Fleet, *Dynasties of the Kanarese Districts*, p. 284. fn. 2.
8. आदिखण्ड १२, २०।
9. *CHI., I*, p. 308.
10. Vide, Law, *The Magadhas in Ancient India*.
11. *Imperial Gazetteer of India*, XIV, p. 33.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ताम्रलिप्तिक अथवा ताम्रलिप्त को आधुनिक तमालुक से समीकृत किया जा सकता है। यह आज का पूर्वी बंगाल है जिसमें ढाका और चटगाँव सम्मिलित हैं।[1]

पाण्ड्य आधुनिक मदुरा तिन्नवेल्लि और दक्षिणी त्रावणकोर का सम्मिलित रूप था। इसकी राजधानी मदुरा थी।[2]

केरल या चेर मध्य त्रावणकोर में कूपक के दक्षिण का देश था। इसमें त्रावणकोर, कोचीन और मालाबार जिले थे।[3]

बनवासी को महाभारत तथा हरिवंश और वायुपुराणों ने उद्धृत किया है।[4] यह दक्षिण के उत्तर कन्नड़ का प्रदेश था।

महाराष्ट्र गोदावरी और कृष्णा के बीच में था। बुद्ध-धर्म के लिए अशोक ने वहाँ महाधम्मरक्षित को भेजा था।[5]

कलिङ्ग आधुनिक उड़ीसा से वैतरणी के दक्षिण तक और विजगापट्टम के समुद्री तट तक था।[6]

शूरपारक आधुनिक बम्बई से ३७ मील उत्तर सुपारा (या सोपार) नामक स्थान से सम्पुष्ट किया जाता है।[7]

आभीर भारत के पश्चिम ओर स्थिति था।[8] अलबीरूनी[9] ने इसे दक्षिण की ओर बताया है, जो ठीक नहीं।

सुराष्ट्र (सौराष्ट्र) आधुनिक काठियावाड़ और गुजरात का प्रदेश था।[10]

भोज जाति के लोग दक्षिण निवासी थे।[11] अलबीरूनी ने इस जाति को पश्चिम का बताया है, जो सही नहीं लगता।

मालव लोग मूल रूप से पञ्जाब के थे। उसके बाद ये भारत के अन्य भागों में फैले।[12]

---

1. Law, *Tribes in Ancient India*, Ch. II.
2. *Ibid.*, Ch. XLIV.
3. *CHI*. I, p. 595.
4. महा०, भी० पर्व ९, ३६६, हरिवंशपुराण, XCV ५२१३, ५२३१–३३, वा० पु० XLV, १२५।
5. Law, *Alberuni's Knowledge of Indian Geography*, p. 14.
6. महा०, वनपर्व, CXIV, १००९६–१०१०७।
7. Law : *op. cit.*, p. 14.
8. महा०, सभापर्व० अ० ५१।
9. *AI.*, Vol. I, p. 300.
10. J., V, p. 133; III, p. 469.
11. Law, *Tribes in Ancient India*, Ch. LXXI.
12. *Ibid.*, Ch. VIII.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मेकल के लोग आधुनिक अमरकण्टक पहाड़ी और उसके निकटवर्ती प्रदेश के रहने वाले थे। इनका स्रोत नर्मदा के 'मेकलसुता' या 'मेकलकन्या' नाम से जाना जा सकता है।[१]

आनर्त को वडनगर का समीपवर्ती जिला बताया गया है।[२]

भोगवर्द्धन पुराणों के अनुसार दक्षिण का एक देश था।[3]

वैदर्भ के लोग दक्षिण में रहते थे।[४]

चौल्य, 'चालुक्य' होना चाहिए। ये अपने को राजपूत कहते थे।[५]

त्रिगर्त के लोग क्षत्रिय थे। अभिलेख से विदित होता है कि आधुनिक जालन्धर प्राचीन त्रिगर्त था।[६]

अपरान्त को अलबीरूनी ने उत्तर में बताया है, किन्तु यह पश्चिम में स्थित है। यह उत्तरी कोङ्कन से समीकृत किया जा सकता है।[७]

वाह्लीक सिन्ध के पार था। इसे 'बक्त्रिओड' से सम्पुष्ट किया जाता है।[८]

गान्धार भारत की उत्तर-पश्चिम-सीमा थी। इसके अन्तर्गत आधुनिक पेशावर और रावलपिण्डी थे।[९]

चर्पखण्डिका को समरकन्द के साथ सम्पुष्ट किया जाता है।[१०]

दशेरक का उल्लेख मत्स्यपुराण में हुआ है।[११] इसकी स्थिति का पता नहीं लगता। इस देश के लोगों ने कुरुक्षेत्र युद्ध में भाग लिया था।[१२]

लम्पाक के लोग उत्तर के निवासी थे, सम्भवत:[१३] वर्तमान लमगान के।

यौन या यवन ग्रीकवासियों के लिए प्रयुक्त होता था। उत्तरी और पश्चिमी भारत के इतिहास में इनका महत्वपूर्ण स्थान था।[१४]

सिन्धु या सौवीर का पुराणों में उल्लेख हुआ है।[१५]

---

1. Konow, *Karpurmanjari*, p. 182
2. *Bombay Gazetteer.*, I, i., p. 6.
3. मार्कण्डेय पुराण, ५७, ४८-४९।
4. वा० पु०, अ० ४५, १२६; म० पु० ११४, ४६–८; मार्कण्डेय पुराण, ५७, ४५-८।
5. Smith, V. A., *Early History of India*, p. 440.
6. *EI.*, I, pp. 102, 116.
7. Law, *Alberuni's Knowledge of Indian Geography*, p. 16.
8. *I. A.*, 1884, p. 408.
9. Rhys Davids, *Buddhist India*, p. 28.
10. Law, *Tribes in Anc.* India, Ch. II.
11. CXIII, 43.
12. महा., भी. पर्व १,२०८०, द्रोणपर्व ११.३९७।
13. मार्कण्डेय पुराण, LVII, ४०।
14. CHI., I., 225.
15. वि० पु० ३·३; मा० पु०, LVII, 36; LVIII, 30.

 CC-0 Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पर्वत और नदियाँ

अलबीरूनी ने दो सूचियाँ दी हैं, जिनमें नदियों तथा उनके उद्गम-स्थानों का उल्लेख है[1]। उसकी पहली सूची वायुपुराण के आधार पर है। दूसरी सूची मत्स्यपुराण के आधार पर, जिसमें भारत के कुछ पर्वतों का विवरण दिया गया है।

हिमवन्त धनुष की तरह समुद्र से समुद्र तक फैला हुआ है।[2] इसका समर्थन महाभारत[3] और कुमारसम्भव[4] से भी होता है।

अलबीरूनी द्वारा विवृत्त महेन्द्र, मलय, सह्य, शुक्ति, ऋक्ष, विन्ध्य और पारिपात्र का उल्लेख मार्कण्डेय पुराण में भा मिलता है जो सात कुलाचल कहे जाते थे,[5] क्योंकि प्रत्येक पर्वत एक विशेष देश अथवा कुल से सम्बद्ध था।

महेन्द्र पर्वत गङ्गासागर सङ्गम और सप्त गोदावरी के बीच में स्थित था।[6]

मलय पश्चिमी घाट नीलगिरि से कोमरोन की खाड़ी तक था।[7]

सह्य पश्चिमी घाट के उत्तरी हिस्से पर था। यह ताप्ती नदी से नीलगिरि तक विस्तृत था।[8]

शुक्ति को सुलेमान से सम्पुष्ट किया गया है।[9]

कक्ष, विन्ध्य और परिपात्र आज केवल विन्ध्य पर्वत के नाम से जाने जाते हैं।[10]

कैलाश का नाम 'भूतेशगिरि' भी है।[11] इसमें कुमायूँ और गहड़वाल के पहाड़ हैं।[12]

गन्धमादन को बाण ने हिमालय से ही सम्बद्ध बताया है।[13]

अलबीरूनी द्वारा विवृत्त की गयी नदियाँ अनेक हैं—

सिन्धु का उल्लेख 'सैंधव' के रूप में तैत्तिरीयसंहिता में हुआ है।[14] पाणिनि,[15] पतञ्जलि,[16] कालिदास[17] आदि ने भी सिन्ध नदी का उल्लेख किया है।

---

1. *AI.*, Vol. I, pp. 257, 259.
2. मार्कण्डेयपुराण, ५४·२४।
3. महा० ६,६,३।
4. १·१।
5. ५७·१०।
6. मार्कण्डेयपुराण (अनु० पार्जिटर), पृ० ३०५।
7. वही।
8. Law, *Mountains of India*, pp. 20-1.
9. *ASI.*, XVII, 24, 26.
10. Law, *Mountains of India*, p. 17–8.
11. भागवतपुराण ४,५,२२।
12. महा०, वनपर्व, अ० १४४, १५६।
13. कादम्बरी (सम्पा० काले), पृ० ९४।
14. ७. ४.·१३. १।
15. अष्टाध्यायी, ४३. ३२–३३।
16. महाभाष्य १. ३. १, पृ० ५८८–८९।
17. मालविकाग्निमित्र (सम्पा० अैयर), पृ० १४८।

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सरस्वती और दृषद्वती उत्तर भारत की प्रमुख नदियाँ हैं। सरस्वती नदी का वैदिक आर्यों को पता था।[1] यह अत्यन्त पवित्र मानी गयी है।[2] यह शतद्रु और यमुना के बीच में बहती है।

दृषद्वती आधुनिक चितरङ्ग मानी गयी है, जो सरस्वती के साथ-साथ बहती है।[3]

गोमती नदी का उल्लेख वेद में हुआ है।[4] यह सम्भवतः सिन्ध नदी की पश्चिमी सहायक नदी गोमल है। इसे वाराणसी में गङ्गा से मिलनेवाली नदी गोमती से भी समीकृत किया जाता है।[5]

धुतपापा को अवध के सुल्तानपुर से १८ मील दक्षिण-पूर्व आधुनिक धोपप से सम्पुष्ट किया जाता है।[6]

देविका को रावी की सहायक नदी बताया गया है।[7] कालिकापुराण के अनुसार यह गोमती और सरयू नदी के बीच बहती थी।[8]

गण्डका का नाम चक्रनदी भी था।[9] यह गङ्गा की सहायक नदी है।

कुहू या कुभा का उल्लेख वैदिककालीन है।[10] यह आधुनिक काबुल नदी है।

बियाह नदी मुल्तान के पूर्व बहती है, जो झेलम से मिलती है।[11]

परा या पारा को कनिङ्घम ने भोपाल से बहनेवाली और चम्बल में मिलने वाली पार्वती बताया है।[12]

विदिश निश्चय ही विदिशा में बहती रही है, आधुनिक भिलशा में।

शिप्रा तट पर प्राचीन नगरी उज्जयिनी बसी थी।[13] यह ग्वालियर की स्थानीय नदी है। शतद्रु आधुनिक सतलज है।

निश्चीरा का नाम 'निरपीरा, निश्रिता, निचिता और नीवारा है। प्रायः यह कौशिकी से सम्पुष्ट की जाती है।[14]

---

1. मैक्समूलर : ऋग्वेद संहिता, पृ० ४६।
2. महा० ८३. १५१, ८४, ६६; भा० पु० १०. ३४. १–१८।
3. Rapson, *Ancient India*, p. 51.
4. ऋग्वेद, १०. ७५. ६।
5. *IA*, XXII, 1893, p. 178.
6. Law, *Alberuni's Knowledge in Indian Geography*, p. 21.
7. मारकण्डेयपुराण (अनु० पाजिटर), पृ० २९२, टिप्पणी।
8. अ० २३।
9. भागवतपुराण, १०. ७९. ११।
10. ऋग्वेद १०. ७५. ६।
11. *AI.*, Vol. I, p. 250.
12. *ASI.*, II, p. 308.
13. मेघदूत १. ३१. ३२।
14. *GDAMI.*, p. 141.

 C-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

चर्मण्वती आज की चम्बल है।

चन्द्रभागा आधुनिक चेनाब है।

परमाशा पश्चिमी भारत की नदी है। इसका नाम वरणाशा और बनाशी भी मिलता है।[1]

जैलम आधुनिक झेलम है।

इरावती आज की रावी है।

करतोया नदी यमुना की प्रमुख सहायक नदी है।[2]

कौशिकी आधुनिक कुशी है, जो बिहार के पूर्णिया जिले से गङ्गा में बहती है।[3]

सरयू या सरभू नदी पर राजा दशरथ ने अश्वमेध यज्ञ किया था।[4] आज भी इसका नाम सरयू है।

बाहुदा आधुनिक रामगङ्गा है, जो कन्नौज के निकट गङ्गा से मिलती है।[5]

विपासा नदी सतलज की सहायक है।

लोहित या लौहिल या ब्रह्मपुत्र आसाम की प्रसिद्ध नदी है।[6]

गङ्गा का नाम अलकनन्दा, द्युधुनी या द्युनदी, वरणावती, त्रिपथगामिनी, जाह्नवी आदि भी हैं।[7] यह उत्तर भारत की प्रमुख नदी है।

यमुना का नाम कलिन्दकन्या भी है।[8] यह गङ्गा की प्रबल सहायक नदी है, जो इलाहाबाद में गङ्गा से मिलती है।

पोरबन्द पेशावर के विपरीत बहनेवाली प्रमुख नदी है।

जलवायु और मौसम

भारत की जलवायु और मौसम के विषय में लिखते हुए अलबीरूनी ने वर्ष को दो अयनों में विभाजित किया है; एक उत्तरायण और दूसरा दक्षिणायन।[9] वह आगे कहता है कि क्रान्तिमङ्गा भूमध्यरेखा से अपने झुकाव के अनुसार दो

---

1. वा० पु० XLV, 97, XLVII, 29.
2. Law, *Alberuni's Knowledge of Indian Geography*, p. 24.
3. रामायण, आदिखण्ड, ५. ८। 4. वही, १४, १–२।
5. मार्कण्डेयपुराण (सम्पा० पार्जिटर) पृ. २९१-२९२।
6. Law, *Rivers of India*, pp. 29-30.
7. ऋग्वेद, १०. ७५. ५; श० ब्रा० १३. ५. ५. ११; अथर्व० १४. ७. १, कादम्बरी, पृ० ७५।
8. रघुवंश ६. ४८। 9. *AI*. Vol. I, p. 356.

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अर्धों में विभक्त है। यह विभाजन अधिक वैज्ञानिक है और पहले विभाजन की अपेक्षा सब लोगों को बहुत कम ज्ञात है, क्योंकि यह गणना और विचार पर अधिक निर्भर है। प्रत्येक अर्ध 'कूल' कहलाता है जिसका उत्तरी झुकाव है वह 'उत्तर कूल' और जिसका दक्षिणी झुकाव है वह 'दक्षिण कूल'।[1]

वह लिखता है कि क्रान्तिमण्डल इन दोनों विभाजनों द्वारा चार भागों में विभक्त है। वे काल-परिमाण जिनमें सूर्य इनमें से पार जाता है वर्ष की ऋतुएँ—बसन्त, ग्रीष्म, शरद और हेमन्त कहलाती हैं। इसी के अनुसार राशियाँ मौसमों में बटी हुई हैं। किन्तु हिन्दू चार में नहीं बल्कि छः भागों में विभक्त करते हैं, प्रत्येक ऋतु दो मास की।[2] छः ऋतुओं का मनुष्यों का एक वर्ष, एक सौर वर्ष होता है।[3]

वर्षा

भारत के विभिन्न भागों पर होनेवाली वर्षा पर लिखते हुए वह कहता है : "भारत में बड़ी वर्षाएँ ग्रीष्म में होती हैं जिसे 'वर्षाकाल' कहते हैं। भारत का कोई प्रान्त जितना अधिक उत्तर की ओर होता है और जितना कम उसको गिरिमालाएँ काटती हैं, वहाँ ये मेह उतने ही अधिक होते हैं और उतने ही अधिक देर तक रहते हैं। मुल्तान के लोग मुझे बताया करते थे कि हमारे यहाँ वर्षा-काल नहीं होता, किन्तु पर्वतों के निकटतर प्रान्तों में वर्षाकाल होता है। भातल और इन्द्रवेदी (अन्तर्वदि) में इसका आरम्भ आषाढ़ मास में होता है और चार मास तक लगातार इस प्रकार वर्षा होती है, मानो पानी के डोल भर-भर कर गिराये जा रहे हों। और अधिक उत्तरी प्रान्तों में दूनपुर और वर्शावर के बीच कश्मीर के पर्वतों के इर्द-गिर्द, जदूरी की चोटी तक श्रावण मास से आरम्भ होकर ढाई मास तक खूब वर्षा होती है, परन्तु इस चोटी के दूसरी ओर मेह बिल्कुल नहीं बरसता।[4]

उत्पादन

अलबीरूनी ने भारत में होनेवाले अन्न-उत्पादन का कोई सङ्केत नहीं किया है। कौन-कौन-सा अन्न पैदा किया जाता था, इस पर उसने कुछ भी नहीं लिखा है। केवल नारियल और खजूर का उल्लेख उसने किया है।[5]

---

1. *Ibid.*
2. *Ibid.* p. 357.
3. *Ibid*, p. 359.
4. *AI.*, Vol. I, p. 211.
5. *AI.*, Vol. I, p. 210.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

जीव-जन्तु

अलबीरूनी ने भारत में पाये जानेवाले कुछ जन्तुओं का भी उल्लेख किया है। इनमें शरभ[१], हाथी[२], भैंसा[३], गैण्डा[४], मृग[५], घड़ियाल[६], मगर[७], तेंदुआ[८] आदि जन्तु प्रमुख हैं।

---

1. *AI.*, Vol. I, p. 203.
2. *Ibid.*
3. *Ibid.*
4. *Ibid.*
5. *Ibid.*, Vol. II, p. 151.
6. *Ibid*, p. 204.
7. *Ibid.*
8. *Ibid.*

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

चौथा अध्याय

अलबीरूनी के समकालिक भारतीय राज्य और तुर्क आक्रमण

अलबीरूनी ने अपने समकालीन सभी भारतीय राजवंशों के विषय में नहीं लिखा है। उसने केवल 'वैहिन्द' के शाहिय वंश[1] का उल्लेख सविस्तार किया है। भोज[2] परमार और कलचुरी शासक गाङ्गेयदेव[3] का उसने सङ्केत मात्र दिया है। आश्चर्य के साथ कहना पड़ता है कि समकालिक भारतीय राजनीतिक दशाओं और महमूद के आक्रमणों के प्रति वह पूर्णतः उदासीन था। न तो उसने सभी भारतीय राज्यों और राजाओं का वर्णन किया है और न महमूद के समग्र आक्रमणों का उल्लेख।

जिस समय वह भारत आया उस समय भारत में छोटे-बड़े अनेक राज्य थे। वैहिन्द का शाहिय वंश ग़ज़न सुल्तानों के लगातार हमले से समाप्त हो गया था। सिन्ध और पञ्जाब मुसलमानों के शासन में आ गया था। कश्मीर में लोहर वंश शासन कर रहा था। कन्नौज के प्रतिहार वंश के शासन का अन्त बारी नामक नये राजनगर में हो रहा था। मालव में परमारवंश का शासन था। जेजाकभुक्ति में चन्देल राज्य कर रहे थे। बङ्गाल में पालों का शासन चल रहा था। गुजरात में चौलुक्यों का राज्य था और त्रिपुरी में कलचुरि वंश शासन कर रहा था। इनके अतिरिक्त अन्य अनेक छोटे-छोटे राज्य थे, जो अपने-अपने प्रदेशों में राज्य कर रहे थे।

महमूद गजनी के पूर्ववर्ती आक्रामक

महमूद गजनी के पूर्ववर्ती, भारत पर आक्रमण करनेवालों में मुहम्मद इब्न-अलकासिम और नासिरुद्दौला सुबुक्तिगीन प्रधान हैं। इन दोनों आक्रामकों ने भारत के अनेक भागों पर आक्रमणकर अनेक राजाओं को पराजित किया था। अलबीरूनी ने महमूद गजनी के पूर्व आक्रामकों में, इन दोनों का ही नाम दिया है। निःसन्देह, भारत में अरब-प्रभुत्व के प्रारम्भिक उन्नायकों में ये दोनों ही प्रमुख हैं।

---

1. *AI.*, Vol. II, p. 13.
2. *Ibid.*, Vol. I, p. 191.
3. *Ibid.*, Vol. I, p. 202.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मुहम्मद इब्न-अल-कासिम—यह इराक के शासक हज्जाज का भतीजा और दामाद था। हज्जाज की आज्ञा से वह ७०१ ई० में भारत पर आक्रमण करने के लिए प्रस्थित हुआ। सेना में ६,००० सीरियाई सैनिकों के अतिरिक्त अनगिनत संख्या में अरबी और इराकी लड़ाकू भी थे। ७११-१२ ई० में उसने सिन्ध पर भीषण आक्रमण किया।[1] सिन्ध के शासक दाहिर ने साहस-पूर्वक प्रबल प्रतिरोध किया, किन्तु मुसलमानों के भारी सैनिक जमाव के आगे तथा बौद्धों के विश्वासघात के कारण वह असमर्थ रहा। कासिम ने देवल, नीरुन, सिविस्तान आदि के कुछ गढ़ पहले ही विजित कर लिये थे।[2] अब, उसने दाहिर को पराजित कर सिन्ध के अधिकांश भागों को अपने हाथ में कर लिया।[3]

अलबीरूनी लिखता है : "मुहम्मद इब्न अल कासिम + अलमुनब्बिह, सिजिस्तान (सकस्तीन) के पार्श्व से सिन्ध में प्रवेश किया और बहमंचा (ब्रह मना-बाद) तथा मूलस्थान (मुल्तान) को विजित किया, जिन्हें वह क्रमश: अलमंसूरा और अलमामूरा कहता था। वह भारत में सीधे प्रविष्ट हुआ और कन्नौज तक बेधता हुआ चला गया। लौटते समय गान्धार देश से चलता हुआ कश्मीर प्रान्त से आया। कभी खड्ग को हाथ में लेकर युद्ध करता, कभी सन्धियों द्वारा प्रयोजन सिद्ध करता। जो मुसलमान होना चाहते थे, अतिरिक्त उन्हें छोड़ दिया जो पुराने विचारों के थे।[4]

कासिम के कन्नौज आक्रमण तथा वहाँ से लौटते समय कश्मीर आक्रमण का उल्लेख अलबीरूनी के अतिरिक्त अन्य किसी तत्कालीन लेखक ने नहीं किया है। इस कथन के विपरीत अलबीरूनी का दूसरा कथन विरोधी तथ्य उपस्थित करता है, जिसके अनुसार 'सुबुक्तिगीन के अतिरिक्त अन्य किसी पूर्ववर्ती आक्रामक ने काबुल और सिन्ध नदी को कभी पार नहीं किया था।[5] अतः कासिम के कन्नौज आक्रमण की बात उसी के कथन से कट जाती है।

केवल चचनामा[6] से विदित होता है कि मुहम्मद कासिम ने अपनी सेना की एक टुकड़ी कन्नौज भेजी और दूसरी टुकड़ी कश्मीर। कश्मीर जानेवाली

---

1. Hitti, P. *K.*, *History of Arabs*, p. 210.
2. *Yaquti*, Vol. II, p. 346; Cf. Hitti, P. K., *op. cit*, p. 210.

+. अलबलाधुरी, इब्न अल अतहिर आदि लेखकों ने 'इब्न अल मुनब्बिह' के स्थान पर 'मुहम्मद इब्न अलकासिम इब्न मुहम्मद' लिखा है।

3. Chach-Nama, *ED.*, I, p. 170.
4. *AI.*, Vol. I, p. 21.
5. *AI.*, Vol. I, p. 22.   6. Chachnama, *ED.*, I, P. 202.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सेना का उसने स्वयं नेतृत्व किया था। चचनामा के अतिरिक्त अन्य किसी तत्कालीन ग्रन्थ में इसका उल्लेख न होना आश्चर्यजनक ही है। कासिम वस्तुतः मुल्तान तक ही रह गया था। इस सम्बन्ध में अलबीरूनी का विवरण सन्देह से रहित नहीं।

निश्चय ही, भारत में अरब-प्रभुत्व का प्रारम्भ इन्हीं आक्रमणों से हुआ, किन्तु इनका बढ़ाव भारत के द्वार तक ही सीमित रहा, जिसका कोई स्थायी प्रभुत्व नहीं हो सका। भारत के भीतर पैठ पाना भी उनके लिए सम्भव नहीं था, क्योंकि भारतीय राजाओं की कीर्त्ति अभी भी थी। यह सही है कि सिन्ध के कतिपय लोगों को कासिम ने मुसलमान बनाया, किन्तु बाद में उन्हें पुनः हिन्दू बना लिया गया।[1]

सुबुक्तिगीन—तुर्क गुलाम अम्बू मंसूर सुबुक्तिगीन, गुलाम अल्तिगीन का परम विश्वासपात्र सेना नायक था। उसकी अद्भुत सैन सञ्चालन बुद्धि से प्रभावित होकर अल्तिगीन ने अपनी लड़की की शादी उससे कर दी।[2] ९७७ ई० में वह गजन का शासक हुआ। सिंहासनारूढ़ होते ही उसने पड़ोस के अनेक राज्यों को विजित करना प्रारम्भ किया। तत्पश्चात् भारत की ओर भी उसने अपनी ललचायी दृष्टि फेरी। उसने शाहिय राज्य सीमान्तर्गत कई दुर्गों पर अधिकार कर लिया[3] और हिन्दुओं के विरुद्ध 'धर्मयुद्ध' को अपना प्रमुख लक्ष्य बना लिया।[4]

लमगान से चेनाव नदी तक सारा प्रदेश हिन्दू शाहिय राजवंश द्वारा शासित होता था। उसकी सीमा हकरा नदी से लेकर पश्चिम में काबुल पर्वत तक फैली थी। सुबुक्तिगीन की बढ़ती हुई शक्ति तथा पड़ोसी राज्यों के प्रति आक्रामक नीति देखकर शाहिय राजा जयपाल ने एक बड़ी सेना लेकर (९८६–७ ई० में) गजन पर चढ़ाई कर दी। गजन और लमगान के बीच गूजक पहाड़ी के निकट दोनों सेनाओं में जमकर युद्ध हुआ। किन्तु जयपाल के भाग्य ने धोखा दिया, बर्फ का भीषण तूफान प्रारम्भ हो गया। अनभ्यस्त होने के कारण हिन्दुओं के लिए इसे बर्दाश्त कर पाना असम्भव था।[5] फलतः जयपाल सन्धि करने के लिए बाध्य हुआ। १,०००,००० दिरहम और ५० हाथी तथा सीमावर्ती कुछ किले और नगर सुबुक्तिगीन को देना उसने स्वीकार किया। परन्तु बाद में जयपाल ने यह शर्त अस्वीकृत कर दी[6] और कन्नौज, तोमर,

---

1. *ED.*, I, p. 126.
2. *Guzida*, p. 393; cf. *Nazim*, p. 28.
3. *The Struggle for Empire*, p. 3.
4. *AI.*, Vol. I, p. 22.
5. Tabakat-i-Akbari, *ED.*, II, p. 436.
6. *Utbi*, pp. 21-4.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

चाहमान, चन्देल तथा अन्य प्रादेशिक राजाओं की सङ्गठित सेना तैयार की। मातृभूमि की रक्षा के निमित्त किसी विदेशी आततायी के हमले के विरुद्ध विभिन्न प्रदेशों के हिन्दू राजाओं की सेनाओं का यह सम्मिलित सङ्गठन भारतीय इतिहास की विरल और पहली घटना है।[1] लमगान के निकट दोनों सेनाओं में कई दिनों तक युद्ध चलता रहा, किन्तु सैन्यसञ्चालन के नीतिगत निर्देशन के अभाव में तथा मुसलमानों के 'धर्मयुद्ध' के सामने हिन्दुओं को पराजित होना पड़ा।[2]

सुबुक्तिगीन का यह कार्य उसके पुत्र महमूद के लिए पथप्रदर्शन था। इस दृष्टि से उसने अपने उत्तराधिकारियों के भारत आक्रमण के मार्ग को प्रशस्त किया। अलबीरूनी ने सुबुक्तिगीन के इस कार्य की समीक्षा ऐसे पर्यवेक्षक-इतिहासकार के रूप में की है, जो अन्य इतिहासकारों के सुबुक्तिगीत सम्बन्धी विवरणों की तुलना में अकेली है। किसी भी तत्कालीन इतिहासकार ने ऐसी समीक्षा नहीं प्रस्तुत की है। यह लिखता है; : "जिस समय सामानी राजवंश के अन्तर्गत तुर्कों ने बल पकड़ा और सर्वोच्च शक्ति नाशिरुद्दौला सुबुक्तिगीन के अन्तर्गत आयी, उन समयों में किसी भी मुसलमान विजेता ने काबुल और सिन्ध नदी की सीमा का उल्लङ्घन नहीं किया था। सुल्तान ने धर्मयुद्ध को व्यवसाय रूप में चुना था और इस प्रकार 'अलगाजी' अर्थात् ईश्वर के पथ पर युद्ध करनेवाला कहा जाता था। अपने उत्तराधिकारियों के हित के निमित्त, भारतीय सीमा को निर्बल बनाने के क्रम में उन मार्गों का निर्माण किया, जिस पर बाद में चलकर उसका पुत्र यामीनुद्दौला महमूद अग्रसर हुआ।[3]

महमूद गजनी के आक्रमण

९९७ ई० में अपने पिता सुबुक्तिगीन के देहान्त के बाद ९९८ ई० में सुल्तान महमूद गजन का शासक बना। वह इस्लाम जगत् का महान् योद्धा, सर्वोच्च सेनापति, प्रतिभावान् सैन्य सञ्चालक, दृढ़निश्चयी, अतुलनीय साहसी ओर कट्टर मुसलमान था। उसने अपने पिता की आक्रामकप्रवृत्तियुक्त अग्रसर नीति को अपनाया। ९९७ ई० में बगदाद के खलीफा द्वारा स्वतन्त्र प्रभुसत्ता स्वीकार कर लिए जाने के बाद, सितम्बर १००० ई० में उसने भारत के विभिन्न प्रदेशों पर लगातार हमले प्रारम्भ किए,[4] जो १०२७ ई० तक प्रत्येक वर्ष होते रहे। इन अवधि के बीच भारत पर उसके सत्रह हमलों से कम नहीं,

1. *The Struggle for Empire*, p. 4
2. *Firishta*, p. 20; *Utbi*, pp. 21–6.
3. *AI.*, Vol. I, p. 22.
4. *ED.*, II, p. 24.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

हुए ।[1] अलबीरूनी के अनुसार वह भारत पर तीस या तीस से भी अधिक वर्षों तक आक्रमण करता रहा ।[2]

महमूद के भारत आक्रमण का उल्लेख उत्वी, गरदीजी, इब्न-उल-अतहीर आदि लेखकों ने जिस विस्तार से किया है, वैसा अलबीरूनी ने नहीं। वस्तुतः उसने महमूद गजनी के सभी आक्रमणों का उल्लेख मात्र भी नहीं किया है। इसका प्रधान कारण यही प्रतीत होता है कि अलबीरूनी भारतीय जीवन, धर्म, विद्या और दर्शन की जानकारी प्राप्त करने में अधिक रुचि रखता था तथा महमूद के ध्वंस और लूट में कम। परिणामतः महमूद के आक्रमणों की चर्चा उसने सन्दर्भ मात्र से ही की और उनका कोई क्रमबद्ध इतिहास लिखना उसने अपना लक्ष्य नहीं बनाया।

(१) लमगान के समीप आक्रमण : सितम्बर १००० ई० (३९० हि०)

महमूद ने पहला आक्रमण लमगान के समीपवर्ती दुर्गों पर किया था, जिनमें से अधिकांश दुर्गों को उसने अपने अधिकार में कर लिया।[3] डॉ० गाङ्गुली के अनुसार ये दुर्ग पेशावर के पड़ोस मे थे।[4] अलबीरूनी ने महमूद के इस आक्रमण का कोई सङ्केत नहीं किया है।

(२) पेशावर और वैहिन्द (ओहिन्द) पर आक्रमण : सितम्बर १००१ ई० (३९१ हि०)

महमूद ने द्वितीय आक्रमण वैहिन्द के शासक जयपाल पर किया, जिसमें जयपाल पराजित हुआ।[5] इस पराजय से जयपाल ने चिता में जलकर

---

1. Hitti, P. K., *History of Arabs*, p. 464.

   प्रो० हिट्टी ने लिखा है कि महमूद ने १०००–१०२४ ई० के बीच भारत पर सत्रह बार चढ़ाइयाँ कीं। किन्तु महमूद का अन्तिम आक्रमण जाटों के विरुद्ध १०२७ ई० में हुआ था। हिट्टी द्वारा महमूद के आक्रमण की दी गयी वर्ष-सीमा १०२४ ई० तथ्यपूर्ण नहीं है।
2. *AI.*, Vol. II, p. 22.
3. *Gardizi.*, p. 63; सर हेग ने इस आक्रमण को सन्दिग्ध बताया है, *CHI.*, III, p. 13 डॉ० हबीब ने स्थान का कोई नाम नहीं दिया है, *Habib*, p. 23; *Nazim*, p. 86.
4. *The Struggle for Empire*, p. 6.
5. *Utbi*, p. 158; *Gardizi*, p. 66; *Firishta*, p. 24, cf, *Bird*, p. 20; *ED.*, II, p, 438, *Nazim* p, 87,

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पश्चाताप् किया और उसका पुत्र आनन्दपाल सिंहासनासीन हुआ।[1] अलबीरूनी ने इस आक्रमण से सम्बन्धित कुछ भी नहीं लिखा है।

(३) भटिण्डा (भाटिय) पर आक्रमण : अक्तूबर १००४ ई० (३९५ हि०)

महमूद ने भाटिय के राजा वजीराय पर चढ़ाई की और युद्ध में उसे परास्त किया।[2] अलबीरूनी ने इस आक्रमण का भी कोई उल्लेख नहीं किया है।

(४) मुल्तान पर आक्रमण : १००६ ई० (३९६ हि०)

सुल्तान महमूद का चौथा आक्रमण मुल्तान पर हुआ था। मुल्तान के करमतियन शासक अबू-अल-फतह् दाउद् बिन नश्र का सुबुक्तिगीन के काल से ही गजन के साथ मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध था,[3] किन्तु वह मित्रता सुल्तान महमूद के शासनकाल में अधिक नहीं चल सकी। महमूद जब भटिण्डा के शासक को परास्त कर मुल्तान से लौट रहा था, तब दाऊद ने अपनी रुष्टता व्यक्त की थी।[4] अतः दाउद को दण्ड देने के उद्देश्य से उसने मुल्तान पर चढ़ाई की।[5] दाउद भाग गया और मुल्तान पर महमूद का अधिकार हो गया।[6]

अलबीरूनी ने मुल्तान पर करमतियों के अधिकार का उल्लेख किया है। वह लिखता है : "जब करमतियों ने मुल्तान को अधिकृत किया, राज्यापहारी जलम इब्न शैवां ने मूर्ति को टुकड़ों में तोड़ दिया तथा पुरोहितों को मार डाला। उसने पुरानी मसजिद को छोड़कर अपने भवन को, जो एक ऊँचे स्थान पर ईंटों का बना दुर्ग था, मसजिद बनाया। उमैयावंशीय खलीफों के शासनकाल में किसी बात के हो जाने से जो घृणा उत्पन्न हो गयी थी, उसी के कारण उसने पुरानी मसजिद को बन्द करा दिया।[7]

(५) भेर के गवर्नर सुखपाल पर चढ़ाई : १००८ ई० (३९८ हि०)

आनन्दपाल के पुत्र सुखपाल पर महमूद गजनी ने चढ़ाई की और उसे पराजित किया।[8] अलबीरूनी ने इस युद्ध के सम्बन्ध में कोई उल्लेख नहीं किया है।

---

1. *CHI*,, III, p. 14; *JRAS*., July. 1927, pp, 493-5; *Habib*, p. 24.
2. *Utbi*, p. 209; *Gardizi*, p 67;. cf, *ED*., II, pp. 339-40; *CHI*., III, p, 14; Nazim, pp. 99-100,
3. *Firishta*, pp. 18, 24.
4. *Utbi*, p. 211.
5. *Ibid*.
6. *Gardizi*, p. 67; Cf.*ED*., II, pp. 441-2; *Nazim*, pp. 96-7.
7. *AI*., Vol. I, p. 116.
8. *Gardizi*, pp. 69, 99; *Firishta*, p. 26; Cf. *Habib*, p. 27.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

(६) वैहिन्द पर आक्रमण : १००८ ई० (३९९ हि०)

महमूद ने जिस समय मुल्तान पर आक्रमण किया था, उस समय आनन्दपाल उसके इस कार्य से असन्तुष्ट हो गया था, जबकि इसके पूर्व महमूद काशगर सेना का कड़ा प्रतिरोध कर रहा था। आनन्दपाल ने उसे एक पत्र में सहायता प्रदान करने का सन्देश भेजा था। इसका उल्लेख अलबीरूनी ने किया है। वह लिखता है : "मैं आनन्दपाल के एक पत्र में आगे दिये उद्धरण की प्रशंसा करता हूँ, जिसे उसने सुल्तान महमूद को उस समय लिखा था, जब उनका आपस का सम्बन्ध अधिक बिगड़ गया था। 'मैंने सुना है कि तुर्कों ने आपके विरुद्ध विद्रोह किया है और वे खुरासान में फैल रहे हैं। अगर आप चाहें तो मैं ५००० घुड़सवारो, १०००० पैदल और १००० हाथियों के साथ आऊँ, या यदि आप चाहें तो मैं अपने पुत्र को इससे दुगुनी संख्या के साथ आपके पास भेज दूँ। यह कार्य इस आशा से नहीं करता हूँ कि इससे जो प्रभाव आप पर पड़ेगा उससे मुझे कुछ लाभ होगा। मैं आपके द्वारा विजित किया गया हूँ और मैं यह नहीं चाहता कि कोई दूसरा आपको विजित करे।'"[1]

महमूद के ऊपर इन सारी बातों का कोई असर नहीं था। उसने आनन्दपाल की इन सद्भावनाओं को भुलाकर एक लम्बी सेना के साथ वैहिन्द पर आक्रमण कर दिया। आनन्दपाल पराजित हुआ।[2] अलबीरूनी ने इस युद्ध के सम्बन्ध में कुछ नहीं लिखा है।

(७) अलवर राज्य के नारायणपुर पर आक्रमण : १००९ ई० (४०० हि०)

गङ्गा के दोआब में प्रवेश पाने के लिए उसने 'नारायनपुर' के राजा को परास्त किया।[3] अलबीरूनी ने इस युद्ध के बारे में कुछ भी नहीं लिखा है।

(८) मुल्तान पर पुनः आक्रमण : १०१० ई० (४०१ हि०)

महमूद ने जब पहली बार १००६ ई० में मुल्तान पर आक्रमण किया था तब अकस्मात् खुरासान में होनेवाले ईलक खाँ के उपद्रव के कारण, मुल्तान की बिना कोई व्यवस्था किये वह गजन लौट गया था। अतः इस बार उसने मुल्तान चढ़ाई कर वहाँ से करमतियनों को समाप्तप्राय कर दिया।[4] इस सम्बन्ध में

---

1. *AI.*, Vol. II, pp. 13-4.
2. *Utbi.*, pp. 224-26; cf. *Nazim*, p. 90; *Habib*, pp. 28-9; *The Struggle for Empire*, p. 9.
3. *Utbi.*, pp. 241-2.
4. *Gardizi*, p. 70; cf, *Habib*, p. 34; *Nazim*, p. 99.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अलबीरूनी लिखता है: "तत्पश्चात् कल्याणकारी सुल्तान महमूद ने उन देशों में उनके (करमतियनों) शासन को समाप्त करके, पुन: पुरानी मसजिद को शुक्रवार की नमाज का स्थान नियत किया और दूसरी मसजिद को समाप्त कर दिया। आजकल यह केवल खरिहान (अनाज रखने की जगह) है, जहाँ केवल 'हिना (मेंहदी) के गुच्छे बँधे हैं।[1] अलबीरूनी ने इस स्थान का स्वयं भ्रमण किया था, इसीलिए उसने आँखों देखी बातें लिखी हैं।

(९) त्रिलोचनपाल पर आक्रमण : १०१३-१४ ई० (४०२-३ हि०)

शाहिय बल को समाप्त करने के लिए महमूद ने शाहिय राजा त्रिलोचनपाल पर आक्रमण किया। इस युद्ध में महमूद विजयी हुआ।[2] अलबीरूनी इस युद्ध के सम्बन्ध में मौन है।

(१०) स्थाण्वीश्वर पर आक्रमण : अक्तूबर १०१४ ई० (४०५ हि०)

अलबीरूनी ने 'थानेसर' पर चढ़ाई कर सभी मन्दिरों को तोड़ डाला। उनमें सबसे प्रसिद्ध मूर्ति 'चक्रस्वामिन्, की थी, जिसे तोड़कर वह गजन उठा ले गया।[3] अलबीरूनी ने लिखा है कि उसने इस 'चक्रस्वामिन्' को गजन के घुड़दौड़ के मैदान में पड़ी हुई देखी थी।[4]

(११) कश्मीर पर आक्रमण : १०१५ ई० (४०६ हि०)

अलबीरूनी ने कश्मीर-नरेश संग्राम राज पर चढ़ाई की, किन्तु तुषारापात के कारण लौट आया।[5] अलबीरूनी ने इस अभियान का कोई उल्लेख नहीं किया है।

(१२) गङ्गा के दोआब पर आक्रमण : १०१८ ई० (४०९ हि०)

सुल्तान महमूद ने कन्नौज पर आक्रमण किया।[6] कन्नौज का प्रतिहार राजा राज्यपाल भाग कर गङ्गा पार बारी नामक स्थान पर चला गया।[7]

कन्नौज से बारी नामक स्थान पर राजधानी परिवर्तन की सुचना अलबीरूनी ने दी है, किन्तु इसके कारण पर कोई प्रकाश नहीं डाला है। वह लिखता है :

1. *AI.*, Vol. I, pp. 116-7.
2. *Utbi*, p. 260 · *Baihaqi*, p. 481; *Gardizi*, p. 72; *Panjab Dist. Gaz*, XXVII, A, 1904, pp. 46-7.
3. *Gardizi*. p. 71.
4. *AI.*, Vol. I, p. 117.
5. *Gardizi*, pp. 72-3, *Stein*, II, pp. 293-5; 399.
6. *Gardizi*, p. 74; *Utbi*, p. 305.
7. *Utbi*, p. 309; cf. *Nazim*, p. 108.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

"कन्नौज गङ्गा के पश्चिम में एक बहुत बड़ा शहर है, किन्तु राजधानी के यहाँ से उठकर बारी नगर में चले जाने से जो गङ्गा के पूर्व में है, अब इसका अधिकांश भाग उजाड़ है।[1]

(१३) कन्नौज, बारी और कालञ्जर पर आक्रमण: १०१९ ई० (४१० हि०)

इस अभियान में महमूद ने कन्नौज, बारी और कालञ्जर पर आक्रमण कर वहाँ के राजाओं को परास्त किया।[2] अलबीरूनी ने इस आक्रमण का कोई विवरण नहीं दिया है।

(१४) कश्मीर पर पुनर्अभियान : १०२१ ई० (४१२ हि०)

पहली बार कश्मीर-अभीयान में असफलता मिलने पर महमूद ने पुनः कश्मोर पर आक्रमण किया, किन्तु इस बार भी उसे सरदी के कारण लौट आना पड़।[3] अलबीरूनी ने इस आक्रमण का भो उल्लेख नहीं किया है।

(१५) ग्वालियर और कालञ्ज़र पर पुन आक्रमण: १०२२ ई० (४१३ हि०)

महमूद ने चन्देल-नरेश पर पुनः आक्रमण किया और सफलता प्राप्त की।[4] अलबीरूनी ने इस आक्रमण का कुछ भी सङ्केत नहीं किया है।

(१६) सोमनाथ पर आक्रमण : १०२६ ई० (४१६ हि०)

सोमनाथ आक्रमण सम्बन्धी विवरण के लिए प्रो० हबीब ने महमूद गजनी से करीब दो सौ वर्ष बाद लिखे जानेवाले ग्रन्थ 'कमीलुत तवारीख' को प्रारम्भिक आधारग्रन्थ माना है।[5] डॉ अशोककुमार मजूमदार ने अपने अनुसन्धान के संदर्भ में 'श्रीराम शर्मा[6] के साक्ष्य पर 'जैन-उल-अखबार' के कर्त्ता गरदीजी को सम-सामयिक पहला इतिहासज्ञ माना है, जिसने सुल्तान महमूद के गुजरात आक्रमण का विवरण प्रस्तुत किया है,[7] किन्तु तत्सम्बन्धी ऐतिहासिक सामग्री का अवलोकन करनें पर नवीन तथ्य प्रकट होते हैं। इन ऐतिहय वृत्तों के आलोक में अलबीरूनी वह पहला समयुगीन लेखक है, जिसने महमूद गजनी के सोमनाथ

---

1. *AI.*, Vol, I, p. 199. 2. *Gardizi*, pp.76-7; *JRAS.*, 1909, p.278.
3. *Gardizi*, p. 73. 4. *Gardizi*, p. 79; *Nazim*, p. 144.
5. "The earliest authority seems to be the Kamilut Tawarikh of the Arab historian, Ibn-i-Asir."—*Habib*, p. 52.
6. "An Almost contemporary accounts of Mahmud's Invasion of India." *IH*, IX, No. 4, 1933, p. 941.
7. "Gardizi was the first historian to describe Sultan Mahmud's Gujarat Compaign."—Majumdar, A. K, *Chaulukyas of Gujarat*, p. 43.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

आक्रमण का वर्णन किया है।[१] उसने 'सोमनाथ' नामकरण, स्थिति, मूर्तिस्थापन, महत्ता, ख्याति, महमूद का आक्रमण तथा सोमनाथ मूर्ति का गजन पहुँचना आदि का सविस्तार विवरण दिया है।[२] गरदीजी ने अपना उक्त ग्रन्थ १०५२ ई० में पूर्ण किया था, सुल्तान महमूद की मृत्यु के बाइस वर्ष बाद और अलबीरूनी की मृत्यु के चार वर्ष बाद;[3] जबकि अलबीरूनी ने अपना 'तहकीक मालिल् हिन्द' ग्रन्थ १०३० ई० में पूर्ण किया था, सुल्तान महमूद की मृत्यु के तुरन्त बाद और सोमनाथ विध्वंस के चार वर्ष बाद। इस प्रकार सोमनाथ आक्रमण सम्बन्धी अलबीरूनी का विवरण गरदीजी से बाईस वर्ष पहले का है।

सोमनाथ की महत्ता, प्रसिद्धि और ख्याति पर विवरण देते हुए अलबीरूनी लिखता है : "सिन्ध देश के दक्षिण-पश्चिम में वह मूर्ति हिन्दुओं की पूजा के लिए नियत मन्दिरों में बहुधा मिलती है, परन्तु सोमनाथ इन स्थानों में सबसे प्रसिद्ध था। प्रतिदिन वहाँ गङ्गा जल का एक लोटा और कश्मीर से फूलों की एक टोकरी आती थी। लोगों का विश्वास था कि सोमनाथ का लिङ्ग प्रत्येक बद्धमूल व्याधि को शान्त और हताश और असाध्य रोग को समाप्त कर देता है।[४]

निश्चय ही सोमनाथ मन्दिर की यह प्रसिद्धि उसके कानों में पड़ी होगी और तत्पश्चात् उसने अभियान की योजना बनायी होगी।

अक्टूबर १०२५ ई० में सोमनाथ पर आक्रमण करने के लिए वह गजन से चला।[५] मुल्तान में रुककर उसने आवश्यक तैयारी की तथा दिसम्बर के अन्त में वह अनहिलवाड़ पहुँचा।[६] सोलङ्की शासक भीमदेव भाग गया।[७] महमूद सोमनाथ की ओर निरन्तर बढ़ता रहा। जनवरी १०२६ ई०[८] को वह समुद्रतट स्थित सोमनाथ दुर्ग के निकट पहुँचा। अलबीरूनी लिखता है कि वह दुर्ग

---

1. मिश्र जयशङ्कर : 'महमूद गजनी के सोमनाथ आक्रमण सम्बन्धी समकालीन नवीन विवरण' *BHUJ*, VIII, No. 2, 1963, p. 169.

2. *Ibid.*

3. *Nazim*, p. 5; *IH*, IX, Dec. 1933, p. 934.

4. *AI*,, Vol. II, p. 104.

5. *Ibnu' l-Athir*, IX, p. 242; cf. *Bird*, *pp*. 144-5.

6. *Ibid.* 7. *Nazim*, p. 116.

8 *Ibnu'l Athir*, IX, p. 242; cf. *Nazim*. pp. 116-7. *The Struggle for Empire*, p. 20.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

जिसमें वह प्रतिमा और खजाने थे, पुराना नहीं था, केवल सौ वर्ष पहले बना था।[1]

महमूद ने दुर्ग को घेर कर आक्रमण कर दिया। भीषण रक्तपात हुआ।[2] मुसलमान सीढ़ियों से दुर्ग पर चढ़ गये। महमूद ने मन्दिर में पहुंचकर मूर्ति को टुकड़ों में तोड़ दिया[3] और मन्दिर की सारी सम्पत्ति हस्तगत कर ली।[4] वह सारी सम्पत्ति २००००,००० दिनारों के मूल्य की थी।[5]

अलबीरूनी लिखता है : "यह (सोमनाथ) मूर्ति सुल्तान महमूद द्वारा ४१६ हि० (१०२६ ई०) में नष्ट कर दी गयी, ईश्वर उसके प्रति दयालु हो। उसने आदेश दिया कि उसके ऊपर का भाग तोड़ दिया जाय और शेष को उसके सभी स्वर्ण आच्छादनों, आभूषणों, रत्नों और गुल्मयुक्त परिधानों सहित गजन ले जाया जाय। इसका कुछ अंश, चक्रस्वामिन् की ताम्रभूति के साथ, जो तानेसर से लायी गयी थी, नगर के घुड़दौड़ के मैदान में फेंक दिया गया है। सोमनाथ की मूर्ति का दूसरा टुकड़ा गजन की महजिद के दरवाजे के आगे पड़ा है, जिसपर लोग गन्दगी और गीलापन दूर करने के लिए अपने पैरों को साफ करते हैं।[6]

(१७) जाटों के विरुद्ध आक्रमण : १०२७ ई० (४१८ हि०)

सोमनाथ के विध्वंस के बाद जब महमूद सिन्ध और मुल्तान से होता हुआ गजन लौट रहा था, तब जाटों ने उसकी सेना को बहुत भारी क्षति पहुँचायी थी।[7] अतः जाटों को दण्डित करने के लिए मार्च १०२७ ई० में उसने यह आक्रमण किया।[8] भारत पर उसका यह अन्तिम आक्रमण था।[9] १४०० नावों पर २०–२० योद्धाओं को रखकर उसने अपनी सेना सिन्ध नदी से अग्र-

---

1. *AI.*, Vol. II; p. 103.
2. *Ibnu' l Athir*, IX, p. 242; *Firishtsa*, p. 32; cf. *Bombay Gazetteer*, 1896, Vol. I, pt. I, pp. 166-67; *CHI*, III, p, 24.
3. *Gardizi*, p. 86; cf. *Habib*, pp. 56-57.
4. *Ibnu' l Athir*, IX, p. 242.
5. महमूद का 'दीनार' सिक्का वजन में ६४·८ ग्रेन के औसत का था. *Nazim*, p 116.
6. *AI.*, Vol. II, p. 103.
7. *Gardizi*, p. 87.
8. *Ibid.*, p. 88.
9. *The Struggle for Empire* 2p.2.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सारित की। जाटों ने जमकर युद्ध किया किन्तु पराजित हुए।[1] जुलाई १०२७ ई० में वह गजन लौटा।[2]

महमूद : एक विश्लेषण

डा० नाजिम का कथन है : "आधुनिक इतिहासकारों, जो उसकी जीवन-क्रिया के विषय में पिछला ज्ञान रखते थे, उसे ऐसे भयङ्कर रङ्ग से भरकर कहा है कि वह ऐसे लुटेरे नायक का चरित्र था, जिसे विध्वंस और रक्तपात करने में सन्तोष मिलता था। महमूद न तो पहला था, न दूसरा। वह अद्भुत गुणों और विलक्षण सैनिक प्रतिभा से युक्त था।[3]"

निःसन्देह, महमूद में धैर्ययुक्त साहसिकता, सैन्य सञ्चालन-योग्यता, दृढ़ विचारशीलता तथा अदम्य धार्मिक उत्साह जैसे अनेकानेक ऐसे गुण थे, जो विश्व के किसी अन्य सम्राट् में मिलने दुर्लभ हैं। किन्तु डा० नाजिम का ऊपरुद्धत कथन युक्तियुक्त नहीं कि वह न विध्वंसक था न रक्तपाती। जबकि उन्होंने स्वयं एक स्थान प्रर लिखा है कि उसकी दुखी आत्मा के सामने बलते हुए नगर ध्वंस किये जाते महल, रक्त आपूर्ण युद्धस्थल, आदि डरावने रूप में उभड़ आये।[4] तटस्थ दृष्टि से विचार करनेवाला कोई भी इतिहासकार इसे अस्वीकार नहीं कर सकता कि महमूद गजनी ने भारत में लूट नहीं मचायी, धर्मान्ध होकर असंख्य मन्दिरों को तोड़ा नहीं, अनगिनत गाँव और नगरों को आग की लपटों में जला नहीं डाला और निर्दोष जनता का रक्तपात नहीं किया। इस्लाम जगत् के लिए यह संसार का सबसे बड़ा मेधावी विजेता सैन्य सञ्चालक और युद्ध-दक्ष भले ही हो, किन्तु भारत के लिए वह प्रथम कोटि का लोलुप लुटेरा और धर्मान्ध आक्रामक था। उसने भारत की सुख-संवृद्धि को आग लगाकर पूर्ण रूप से विनष्ट कर दिया और धन-सम्पत्ति की अपार राशि अपने साथ ले जाकर भारत को कङ्गाल बना डाला। उसने अपनी धर्मनिष्ठ बर्बरता और कट्टरता से संस्कृति और सभ्यता की अग्रणी उस महान् हिन्दू-जाति को ऐसा आघात पहुँचाया जो अत्यन्त घातक और विपत्तिपूर्ण सिद्ध हुआ। अलबीरूनी लिखता है : "महमूद ने भारत के वैभव को सर्वथा नष्ट कर दिया और वहाँ ऐसे विलक्षण पराक्रम दिखलाये कि हिन्दू मिट्टी के कणों की भाँति चतुर्दिक बिखर गये और उनका नाम लोगों के मुख में एक पुरानी कथा की तरह रह गया।"[5]

---

1. *Ibid*., Cf. *Habib*, pp. 58-59.
2. *Nazim*, p. 122.
3, *Nazim*, p. 150.
4, *Ibid*,, p. 125.
5, *AI* Vol I, p. 22.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अलबीरूनी का यह कथन एक कठोर ऐतिहासिक सत्य तो अवश्य है, पर उसकी प्रेरक प्रवृत्ति का मूल है एक उपकृत, राजदरबारी लेखक की अपने स्वामी के प्रति उन्मुक्त प्रशंसा का भाव; किन्तु साथ ही महमूद के अधिकांश आक्रमणों के बारे में उस महान् लेखक का मौन भी ध्यान योग्य है। हमें तो यह अत्यन्त व्यञ्जक प्रतीत होता है। ज्ञानपिपासु, उद्‌बुद्धवेता एवं संस्कृतिनिष्ठ अलबीरूनी को महमूद की लूटपाट, स्वयं प्रशंसित कलात्मक कृतियों—विशेषकर मन्दिरों और पुस्तकालयों–का ध्वंस और अनावश्यक नरसंहार आकृष्ट नहीं कर सका। जहाँ महमूद का इस्लामी नवोत्साह उसकी धर्मान्ध तलवारों में चमकता था, वहाँ अलबीरूनी की धर्म-भक्ति इस्लाम को सर्वाधिक चुनौती देनेवाले हिन्दू धर्म की प्राचीन शक्ति तथा सामयिक शिथिलताओं की छानबीन में लगी हुई थी। प्रवृत्तियाँ दोनों ही की धर्मवादी थीं, किन्तु अलबीरूनी महमूद की संहारात्मक वृत्ति का अन्य मुसलमान लेखकों और यात्रियों की भाँति अन्धप्रशंसक नहीं प्रतीत होता। इस दृष्टि से वह अपने समय और समानधर्मियों से आगे और ऊपर था।

निश्चय ही, महमूद के अनवरत आक्रमण ने भारतीय राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक और आर्थिक स्थिति को पूर्णतः जर्जर कर दिया। देश का समस्त वैभव नष्ट-भ्रष्ट हो गया। भारतीय संस्कृति का जो कुछ भी अवशेष सुल्तान महमूद से बचा उसे परवर्ती मुसलमान आक्रामकों ने समाप्तप्राय कर दिया।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पाँचवाँ अध्याय

विधि और शासन

अलबीरूनी ने भारतीय विधि और शासन-पद्धति पर प्रकारान्तर से ही लिखा है। राजा और मन्त्रियों के कर्तव्य एवं अधिकार तथा देश के केन्द्रीय और प्रान्तीय शासन पर उसने कुछ नहीं लिखा है, किन्तु न्याय, दण्ड, दाय और राजस्व पर यथाशक्य लिखने का प्रयास किया है। विधिसम्बन्धी उसके ये विवरण प्राचीन भारतीय धर्मशास्त्र सम्बन्धी ग्रन्थों तथा संवाददाताओं के आधार पर ही हैं, लेकिन उसमें उसने कहाँ तक समयुगीन व्यवहारों का आकलन किया है, इसका निरूपण उसी के आधार पर किया जा रहा है।

न्याय

न्याय के अन्तर्गत अलबीरूनी ने केवल न्यायप्रणाली पर लिखा है। न्यायकर्त्ताओं की नियुक्ति, योग्यता, उनकी संख्या तथा उनके द्वारा किये जानेवाले निर्णयों पर उसने कुछ भी नहीं लिखा है। उसी तरह उसने न्यायालय, प्रधान न्यायालय तथा उच्च न्यायालय और उनके विभिन्न न्यायधीशों का कोई संकेत नहीं नहीं किया है।

लेख्यपत्र (डाकुमेण्ट)

अलबीरूनी ने न्यायाधीश द्वारा विवादों को सुनने और देखने की कार्यप्रणाली का उल्लेख किया है। उसने न्यायप्रणाली के अन्तर्गत लेख्यपत्र, साक्षी और उनकी संख्या तथा शपथ और दिव्य प्रमाणों का वर्णन किया है। वह लिखता है : "न्यायाधीश वादी से अभियुक्त व्यक्ति के विरुद्ध सुपाठ्य लिपि में लेख्यपत्र माँगता है, जो इस प्रकार के लेखों के लिए उपयुक्त समझा जाता है और लेख्यपत्र में उसके आवेदन की सत्यता का सुप्रतिपादित प्रमाण चाहता है।[1]"

नारद और कात्यायन को उद्धृत करते हुए अपरार्क ने लेख्यपत्र के महत्व पर प्रकाश डाला है। तथा यह व्यवस्था दी है कि मौखिक प्रमाण लेख्य पत्रों के विरुद्ध मान्य नहीं।[2] सोमदेव[3] ने लिखित प्रमाण को ही महत्व दिया है। भारतीय धर्मशास्त्रकारों ने कई प्रकार के लेख्यपत्रों का उल्लेख किया है; किसी ने

1. *AI*. Vol. II, p. 100.
2. अपरार्क, पृ० ६९१-६२।
3. नीतिवाक्यामृत, पृ० २९८।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

दो[1] और किसी ने तीन। लेख्यपत्र के साधारणत. तीन रूप थे, एक जनता के अधिकारियों द्वारा राजा के सम्मुख लिखा गया, दूसरा साक्षियों के उपस्थित लेख और तीसरा बिना साक्षियों के।[2] बृहस्पति ने तीन प्रकार के लेख्यपत्रों का उल्लेख किया है।[3] मिताक्षरा के अनुसार लेख्यपत्र दो प्रकार के थे, एक राजकीय और दूसरा जनपद।[4] लेख्यपत्र के वर्ण्य विषय की वांञ्छनीयता पर शुक्र का मत है कि जिसमें सम्वत्, ऋतु, महीना, पक्ष, तिथि, समय, देश, विषय, स्थान, जाति, आकार, अवस्था और साध्य (दावे का द्रव्य आदि), प्रमाण, द्रव्य संख्या, अपना नाम, क्रम से राजाओं का नाम, निवास और साध्या का नाम, पितरों के नाम, पितामह और प्रपितामह के नाम, एवं क्षमा आदि के अन्य चिन्ह, इन सबको पक्ष (आवेदन) में कहकर लिखवाये। ये सब जिसमें न लिखे जायँ उसे हीन लेख्यपत्र कहते हैं।[5] किन्तु अलबीरूनी ने लेख्यपत्रों के प्रकार और वर्ण्यविषय की कोई सूचना नहीं दी है।

साक्षी

विवाद के निर्णय के लिए जब कोई लिखित प्रमाण नहीं मिलता तब साक्षी का सहारा लिया जाता है। यह व्यवहार-विधि की उस अत्यन्त प्राचीन परम्परा के अनुकूल ही था जिसमें निर्णय के निमित्त क्रमशः लिखित, भुक्ति, साक्षी और दिव्य को आनुक्रमिक रूप से निर्णयात्मक प्रमाण माना जाता था। इसकी चर्चा याज्ञवल्क्य ने की है।[6] शुक्र[7] का कथन है कि अपने से भिन्न कार्य का ज्ञाता साक्षी होता है। उसके अनेक भेद हैं, एक जिसने देखा हो, दूसरा जिसने सुना हो। मेधातिथि के अनुसार वह प्रमाण जो किसी व्यक्ति ने स्वयं अपने कान से सुना हो और दूसरे व्यक्ति ने स्वयं अपनी आँख से देखा हो तो कान से सुननेवाला व्यक्ति साक्षी रूप में वैधानिक प्रमाण नहीं हो सकता;[8] किन्तु विष्णु धर्मसूत्र ने कान से सुननेवाले व्यक्ति को उसी स्थिति में प्रमाण रूप में स्वीकृत

---

1. नारद० ४. १३५। 2. विष्णुधर्मसूत्र ७. ३।

3. लेख्यं तु त्रिविधं प्रोक्तं भिन्नं तद्बहुधा पुनः। बृहस्पति–व्यवहारप्रकाश के पृ० १४१ पर उद्धृत। व्यवहारमयूख, पृ० २४।

4. मिताक्षरा-याज्ञ० २.८४। 5. शुक्र० ४. ९३-९६।

6. प्रमाणं लिखितं भुक्तिः साक्षिणश्चेति कीर्तितम्।
एषामन्यतमाभावे दिव्यान्तर मुच्यते॥ याज्ञ० २.२२।

7. वही, ४.९९-१००।

8. समक्षदर्शनात्साक्षादनुभवाच्छ्रवणाच्च समक्षशब्दानुषङ्गः कर्त्तव्यः। यत् कुतश्चिदेकेन श्रूयते ततोन्येन तत्परम्पराश्रुतं तेन परम्पराश्रावी न साक्षी। मेधातिथि–मनु० ८.७५।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

किया है, जब साक्षी रूप में निर्देशित किया गया व्यक्ति मर गया रहा हो अथवा बाहर चला गया रहा हो और उससे सुननेवाला व्यक्ति प्रमाण दे सकता है।[1]

अलबीरूनी ने साक्षी के प्रकार पर नहीं लिखा है, साक्षी के आधार पर होनेवाले निर्णय का अवश्य निर्देश किया है। वह लिखता है; "लेख्यपत्र के अभाव में साक्षियों के आधार पर विवाद का निर्णय कर दिया जाता है।"[2]

साक्षी की संख्या––साक्षियों की संख्या पर हिन्दू धर्मविश्लेषकों का मत वैभिन्न्य है। मनु,[3] गौतम,[4] याज्ञवल्क्य,[5] नारद[6] आदि विधि-पण्डितों के अनुसार कम से कम तीन साक्षी होने चाहिए। याज्ञवल्क्य पर टीका करते हुए विश्वरूप का भी यह मत है कि साक्षी तीन से कम न हों।[7] इस सम्बन्ध में अलबीरूनी का कथन है: "साक्षी चार से कम न हों, किन्तु वे अधिक हो सकते हैं। किसी साक्षी का विवरण सही रूप में अपने सामने स्थापित होने की स्थिति में ही न्यायाधीश उसे स्वीकृत कर सकता है, और प्रश्न का निर्णय इस साक्षी के आधार पर कर सकता है, किन्तु वह गुप्त ढंग से भेद लेने, प्रकाश्य में सङ्केत और लक्षण मात्र से युक्तियाँ निकालने, एक बार से जो किसी दूसरे के विषय में निश्चित प्रतीत होती है, निर्णय करने, और सचाई को निकालने के लिए सब प्रकार की ठग-विद्या करने को तत्पर रहता है, जैसा कि इयास + इब्न मुआविय किया करता था।"[8]

शुक्र का यह विकल्प है कि साक्षियों को बुलाकर गङ्गा आदि की सौगन्ध दे, पुराण के सत्य वचन, धर्म का माहात्म्य इनको कहकर पूछे। झूठ बोलने में अत्यन्त दोषों से बारम्बार भय दिखावे और शनैः शनैः इस प्रकार से पूछे किस-किस देश में किस काल में किस प्रकार किस कारण से तुमने इस विषय में क्या देखा, क्या सुना।[9]

साक्षी की योग्यता और अयोग्यता तथा सभा में उनसे पूछे जानेवाले प्रश्नों पर हिन्दू धर्मशास्त्र में विस्तार से विचार किया गया है, किन्तु अलबीरूनी ने इस सम्बन्ध में कोई चर्चा नहीं की है।

---

1. उद्दिष्टसाक्षिणि मृते देशान्तरगते वा तदभिहितश्रोतारः प्रमाणम्। वि० ध० सू० ८.१२।
2. *AI.*, Vol. II, p. 100.
3. मनु० ८.६०।
4. गौतम० १३. २०।
5. याज्ञ० २. ६९-७०।
6. नारद० ४.१५३।
7. मिताक्षरा—याज्ञ० २. ८७।

+ इयास इब्न मुआविय क्रम में उमैया खलीफा इब्न अब्दलजीन के अन्तर्गत न्यायाधीश पद पर था। उसकी मृत्यु १२२ हि० (७४० ई०) में हुई।—Sachau, *AI.*, II, p. 394.

8. *AI.*, Vol. II, p. 150.
9. शुक्र० ४.७१६-७।

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

शपथ

मनु[1] का कथन है कि जब कोई साक्षी न हो तो शपथ के द्वारा सत्य का पता लगाना चाहिए। विश्वरूप[2] के अनुसार 'शपथ' 'दिव्य प्रमाण' था। अलबीरूनी वादी और प्रतिवादी के शपथ लेने के उपक्रम की चर्चा करता है : "यदि वादी अपना अधिकार नहीं सिद्ध कर पाता तो प्रतिवादी को शपथ लेनी पड़ती है, किन्तु यह कहकर वह वादी को भी शपथ दे सकता है : तू शपथ ले कि तेरा अधिकार सच्चा है और जिस चीज के लिए तू दावा करता है वह मैं तुझे दूँगा।[3]"

सोमदेव का मत है कि विवाद को समाप्त करने में शपथ का प्रमुख हाथ है। उनके द्वारा विवृत्त शपथ का व्यवहार वर्णों के प्रमुख कर्म से प्रभावित था। न्यायालय में ब्राह्मण अपने पवित्र यज्ञोपवीत को स्पर्श कर अथवा स्वर्ण के टुकड़े को स्पर्श कर शपथ ले, क्षत्रिय शस्त्र, आभूषण या भूमि को स्पर्श कर शपथ ले, वैश्य अपने कान अथवा स्वर्ण को स्पर्श कर शपथ ले तथा शूद्र दूध अथवा अन्न स्पर्श कर शपथ ले।[4]

अलबीरूनी आगे कहता है : "याचना के विषयगत मूल्य के अनुसार शपथ के अनेक प्रकार हैं। यदि विषय कोई बहुत महत्व का नहीं होता और वादी सहमत रहता है कि दोषी व्यक्ति शपथ खा ले तब बाद में प्रतिवादी पाँच ब्राह्मणों के सामने इन शब्दों मे शपथ लेता है : "अगर मैं झूठा हूँ तो हानि मूल्य के रूप में मैं अपने धन का उतना दूँगा जितना उसको याचना के आठ गुना के बराबर होगा।"[5]

दिव्य प्रमाण : विभिन्न प्रकार के शपथ और परीक्षण

प्राचीन काल से हिन्दू समाज में सत्य को सिद्ध करने के लिए ऐसा व्यवहार में था कि लोग दिव्य प्रमाणों के आधार पर शपथ-ग्रहण करते थे। प्राचीन प्रथा यह थी कि 'दिव्य' साक्ष्य का प्रमाण भी था और साथ ही साथ दण्ड भी। उससे मुक्ति हो जाने पर प्रतिवादी के लिए वह प्रमाण था और विपरीतावस्था—अर्थात् शारीरिक हानि के होने पर दण्ड था। उसके बाद कोई अन्य दण्ड नहीं दिया जाता था। न्यायिक व्यवहारक्रम का दिव्य प्रमाण

---

1. मनु० ८.१०९।
2. मिताक्षरा—याज्ञ० २.९६, स्मृतिचन्द्रिका २.९६; अपरार्क, पृ० ६९४।
3. *AI.*, Vol. II, p. 158.
4. नीतिवाक्यामृत, पृ० ३०५–७।
5. *AI.*, Vol. II, pp. 158-9.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

प्रमुख अङ्ग था।[1] बृहस्पति[2] का यह कथन है कि जब लिखित प्रमाण और साक्षी किसी निश्चित तथ्य की ओर सङ्केत नहीं करते अथवा किसी भ्रममूलक अनुमान की ओर प्रेरित करते हैं, तब विवाद को दिव्य प्रमाणों के आधार पर निर्णीत करना चाहिए। ये दिव्य प्रमाण नौ प्रकार के थे; धर्म, तुला, जल, विष, कोश, चावल, गर्म लोहा, अग्नि और लोहे का नोकीला टुकड़ा।[3] बाण ने कादम्बरी में ऐसे दिव्य प्रमाणों का उल्लेख किया है।[4] अलबीरूनी ने भी सत्य की परीक्षा के लिए ऐसे कई दिव्य प्रमाणों का उल्लेख किया है।

विष-परीक्षा—कुछ विवादों में दोषी व्यक्ति को विष देकर उसकी सत्यता की परीक्षा की जाती थी। श्वानच्वांग कहता है कि विष के परीक्षण में वे भेंड़ के दायें जाँघ में विष देते हैं। अगर प्रतिवादी दोषी होता है तो विष का प्रभाव होता है और पशु मर जाता है, अगर वह निर्दोष होता है तो पशु नहीं मरता।[5] किन्तु उसका यह कथन भारतीय धर्मशास्त्रों से नहीं मिलता। इस परीक्षण के सम्बन्ध में अलबीरूनी का कथन भारतीय विवरणों से मिलता है। वह लिखता है : "एक ऊँचे किस्म का शपथ यह है : अभियोगी व्यक्ति को 'ब्रह्मण' नामक 'बीष' (विष) पीने के लिए बुलाया जाता है। यह बुरे प्रकारों में से है, लेकिन वह अगर सत्य बोलता है तो इस पान से उसकी कुछ हानि नहीं होती।"[6]

'ब्रह्मण' किस विष का नाम था, यह आज ज्ञात नहीं। 'शारङ्ग' (शृङ्ग पौधा) या 'वत्सनाभ' (कुचला, एक प्रकार का जहरीला पौधा) या 'हेमवत' नाम के विष परीक्षार्थ दिये जाते थे। मौसम अथवा ऋतु के अनुसार अभियोगी को विष देने का वजन कम-बेसी हुआ करता था। वर्षाकाल में छः जव, ग्रीष्मकाल

1. नीतिवाक्यामृत, पृ० ३००।
2. लिखिते साक्षिवादे च सन्दिग्धिर्यत्र जायते। अनुमाने च सम्भ्रान्ते तत्र दिव्य विशोधनम्॥
   बृहस्पति—व्यवहारमातृका, पृ० ३३३ पर उद्धृत; अपरार्क, पृ० ६२९, विवादचन्द्र, पृ० १११।
3. घटोग्निरुदकं चैव विषं कोशश्च पंचमः। षष्ठं च तण्डुलाः प्रोक्तं सप्तमं तप्तमाषकम्। अष्टमं फाल मित्युक्तं नवमंधर्मजं में भवेत्।
   पितामह-अपरार्क, पृ० ६९४ पर उद्धृत।
4. वनकरिणां वारिप्रवेशः—व्रतिनामग्निधारणं ग्रहाणां तुलारोहणमगस्तयोदये विषशुद्धिः। कादम्बरी, पैरा ४७।
5. *Watters*, I, p. 172; *Beal*, I, p. 84. 6. AI., Vol. II, p. 159.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

में पाँच जव, हेमन्त (और शिशिर) में सात अथवा आठ जव और शरद् में इससे कम विष नहीं दिया जाता था,[1] किन्तु मिताक्षरा[2] के अनुसार इस काल में छः जव के वजन के अनुरूप विष होना चाहिए।

जल-परीक्षा—सत्य की परीक्षा जल में भी की जाती थी।[3] श्वानच्वांग लिखता है कि प्रतिवादी को बोरे में रखकर पत्थर की नाव के साथ पानी में फेंक दिया जाता है। अगर व्यक्ति डूब जाता है और पत्थर तैरने लगता है तो वह दोषी समझा जाता है और अगर व्यक्ति तैरने लगता है और पत्थर डूब जाता है तो वह निर्दोष समझा जाता है।[4] किन्तु इस परीक्षा के सम्बन्ध में अलबीरूनी का विवरण भिन्न है। वह कहता है : "परीक्षा का इससे भी उच्च प्रकार है। वे मनुष्य को एक गहरी और वेगवती नदी या बहुत पानीवाले गहरे कुएँ के पास ले जाते हैं। तब वह जल से कहता है : 'क्योंकि तेरा सम्बन्ध निष्कलंक देवों से है और तू गुप्त और प्रकट सब कुछ जानता है, यदि मैं झूठ कहता होऊँ तो तू मुझे मार डाल और यदि सत्य कहता होऊँ तो मेरी रक्षा कर।' तब पाँच मनुष्य उसको पकड़कर फेंक देते हैं। अगर उसने सत्य कहा है तो वह डूबेगा और मरेगा नहीं।"[5] याज्ञवल्क्य के अनुसार जलदेवता वरुण को सम्बोधित कर यह कहा जाता था : "हे वरुण, सत्य के द्वारा मेरी रक्षा कर।"[6] इस परीक्षण पर तथा विष के परीक्षण पर स्मृतिचन्द्रिका की यह समीक्षा है कि ये व्यवहार में नहीं।[7] किन्तु, अलबीरूनी का कथन तत्कालीन समाज के व्यवहार को उद्घाटित करता है।

देव-परीक्षा—पूज्य प्रतिमाओं के मन्दिर में जाकर सत्य का पता लगाया जाता था। ये प्रतिमाएँ रुद्र, दुर्गा, आदित्य आदि की होती थीं।[8] प्रतिमा का स्नान और पूजन होता था, तत्पश्चात् उस शोध्य जल को पीने के लिए दिया जाता था। अगर उस व्यक्ति की इसके पीने से गंभीर स्थिति नहीं हो जाती थी अथवा उसके लड़के, पत्नी, निकटतम सम्बन्धियों के धन को कोई हानि नहीं पहुँचती थी तो वह निर्दोष माना जाता था।[9] अलबीरूनी

---

1. विष्णुधर्मसूत्र, १३.२-३।
2. मिताक्षरा–याज्ञ० २.११२.
3. विष्णुधर्मसूत्र, १२·७-८, नारद० ४.३१६-७।
4. *Watters*, I, p. 172; Beal, I, p. 84.
5. *AI.*, Vol. II p. 159.
6. याज्ञ० २·११० (गुरुमण्डल ग्रन्थमाला)
7. अथ जल विषयोरुत्सन्नानुष्ठानत्वात् तद्विधिमनाख्याय कोशविधिरुच्यते। स्मृतिचन्द्रिका, २, पृ० ११६।
8. विष्णु धर्मसूत्र, १४·४-५; नारद० ४·३३०।
9. याज्ञ० २·११३।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

लिखता है : "न्यायाधीश वादी और प्रतिवादी दोनों को नगर या देश की सबसे अधिक मान्य प्रतिमा के मन्दिर में भेजता है। वहाँ प्रतिवादी को उस दिन उपवास करना होता है। दूसरे दिन वह नवीन वस्त्र धारण करता है और वादी के साथ उसी मन्दिर में चौकी पर रहता है, तब पुजारी प्रतिमा पर जल डालता है और वह जल उसे पीने के लिए देता है, तब यदि उसने सत्य नहीं कहा होता तो तत्काल उसे रक्त का वमन होता है।"[1]

तुला-परीक्षा—कुछ स्थितियों में शोध्य का तुला द्वारा परीक्षण किया जाता था। सर्वप्रथम शोध्य को तुला पर तौला जाता था। उसके निश्चित तौल पर चिह्न बना लिया जाता था, तत्पश्चात् उसे फिर तौला जाता था। अगर दुबारा तौल में उसका भार ऊपर की ओर चला जाता था, तो वह निर्दोष समझा जाता था।[2] दुबारा तुलने के पूर्व शोध्य कहता था : "ऐ तुला, तुम सत्य का आवास हो। तुम देवों द्वारा उसी निमित्त बनायी गयी हो। सत्य को घोषित करो और मुझे इस भ्रम से मुक्त करो। माँ, अगर मैं दोषी हूँ तो मुझे नीचे की ओर कर दो, अगर निर्दोष हूँ तो ऊपर की ओर।"[3] किन्तु, श्वानच्वांग का कथन है कि आदमी और पत्थर तुला पर बराबर तौल लिये जाते; अगर प्रतिवादी निर्दोष होता, तो पत्थर का भार तुला में बढ़ जाता और अगर वह दोषी होता तो व्यक्ति का भार बढ़ जाता।[4] इस सम्बन्ध में अलबीरूनी का कथन भारतीय विवरण के अनुरूप है। वह कहता है : "प्रतिवादी को तराजू के पलड़े पर रखकर तौला जाता है। इसके बाद उसे तराजू पर से उतार लिया जाता है और तराजू को ज्यों का त्यों छोड़ दिया जाता है। तब वह अपने साक्षित्व की सचाई के लिए साक्षियों के रूप में अमूर्त प्राणियों, देवों, दिव्य सत्ताओं को एक दूसरे के पश्चात् आह्वान करता है और जो कुछ वह बोलता है, वह सब एक कागज के टुकड़े पर लिखकर अपने सिर के साथ बाँध लेता है। उसे फिर तराजू के पलड़े पर रखा जाता है। यदि उसने सत्य कहा तो उसका वजन पहली बार की अपेक्षा ऊपर उठ जाता है।"[5] निश्चय ही, शोध्य का वजन ऊपर उठ जाने पर, वह निर्दोष घोषित किया जाता था।[6] तुला प्रमाण का अभिलेखीय उदाहरण भी मिलता है। जयपाल देव के समय के सीलीमपुर प्रस्तरअभिलेख में इसका उल्लेख हुआ है।[7]

---

1. *AI.*, Vol. II, p. 159. 2. नारद० ४.२७६-९; विष्णुधर्मसूत्र १०.९-११।
3. याज्ञ० २.१०१-२। 4. *Watters*, I, p. 172; *Beal*, p. 84.
5. *AI.*, Vol. II, p. 159. 6. व्यवहारमयूख, पृ० ६०।
7. *EI.*, XIII, pp. 283. 291-2.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

तप्तमास-परीक्षा—सोलह अङ्गुल घिराई और चार अङ्गुल गहराई के ताम्र अथवा लौह पात्र में घी और तेल खूब उबाला जाता था, तब उसमें न्यायाधीश स्वर्ण पत्र डालता था। शोध्य को उस उबलते घी और तेल में से उस स्वर्णपत्र को निकालना होता था, अगर वह बिना किसी तकलीफ के निकास लेता और उसकी उँगलियों को कोई हानि नहीं पहुँचती तो वह निर्दोष घोषित किया जाता।[1] अलबीरूनी लिखता है : "वे घी और तिल का तेल बराबर लेकर एक देगची में उबालते हैं। तब वे उसमें एक पत्ता डालते हैं, जो पिल-पिला और दग्ध हो जाने से उनके लिए मिश्रण के उबलने का लक्षण है। जब उबलने की क्रिया परिणति पर रहती है, तब वे उसमें स्वर्णपत्र छोड़ते हैं और प्रतिवादी को हाथ से बाहर निकालने की आज्ञा देते हैं। अगर उसने सत्य कहा रहता है, तो वह उसे निकाल लेता है।"[2] इस सम्बन्ध में अरब यात्री सुलेमान का आँखों देखा विवरण अलबीरूनी के उपरिलिखित उल्लेख से कुछ भिन्न है। उसके अनुसार, खौलते हुए घी और तेल के स्थान पर, खौलता हुआ गरम पानी रहता था तथा स्वर्ण-पत्र के स्थान पर लौह छल्ला। वह लिखता है : "भारत में कभी ऐसा भी होता है कि लोहे या ताँबे के बरतन में पानी खूब खौलाया जाता है। यहाँ तक की कोई उसको छू भी नहीं सकता। उस पानी में फिर एक लोहे का छल्ला भी डाला जाता है। दोषी से कहा जाता है कि वह हाथ डालकर उस छल्ले को पानी से निकाले। मैंने स्वयं अपनी आँखों से देखा है कि एक मनुष्य ने हाथ डालकर छल्ले को निकाला, किन्तु उसको कुछ हानि नहीं पहुँची। ऐसी दशा में दोषारोपण करनेवाले को एक मन सोना देना पड़ता है।"[3] ये विवरण इस बात के प्रमाण हैं कि तत्कालीन भारतीय समाज मे दिव्य प्रमाण का यह प्रकार प्रचलित था।

तप्तलौह-परीक्षा—तपते हुए लोहे को हाथ पर लेकर परीक्षण की विधि हिन्दू समाज के व्यवहार मे बहुत पहले से थी।[4] इस व्यवहार में शौध्य के हाथ पर कुछ धान के दाने और उसके ऊपर अश्वत्थ वृक्ष की सात पत्तियाँ रखकर तप्तलौह का टुकड़ा रखा जाता था। तत्पश्चात् शौध्य उसे पकड़े हुए धीरे-धीरे पहले से आठवें वृत्त तक चलता था।[5] नौवें वृत्त पर वह उस तप्त लोहे को फेंक

---

1. *HDS.*, III, p. 374.
2. AI., II, p. 159-60.
3. सुलेमान सौदागर, पृ० ७५।
4. विष्णु धर्मसूत्र ११. ११-१२।
5. अथ सप्ताश्वत्थपर्णान्तरितं षोडशपलमग्निवर्णं लौहपिण्डमाञ्जलनादाय सप्त मर्यादां गच्छेत। शङ्खलिखित—स्मृतिचन्द्रिका २, पृ० ११२ पर उद्धृत। व्यवहारप्रकाश, पृ० १९६।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

देता था। अगर उसके हाथ को कुछ हानि नहीं पहुँचती थी तो वह निर्दोष घोषित किया जाता था।[1] ह्वेनच्वांग का कथन है कि वे लोहे के पत्तर को गरम करते हैं और प्रतिवादी को इस पर बैठने के लिए कहते हैं, फिर उसे अपने पैरों को इस पर रखने के लिए कहते हैं, फिर इसे उसके हाथ की हथेली पर रखते हैं। इसी प्रकार वह अपनी जिह्वा पर उसे रखता है। अगर इससे उसे कोई दुःख नहीं पहुँचता, तो वह निर्दोष समझा जाता, अगर उसे दुःख पहुँचता तो वह दोषी माना जाता।[2] इस दिव्य प्रमाण के सम्बन्ध में अलबीरूनी का विवरण भारतीय शास्त्रकारों के अनुरूप है। वह लिखता है: "वे लोहे के एक टुकड़े को इतना गरम करते हैं कि वह पिघलने के निकट पहुँच जाता है। तब उसे चिमटे से पकड़कर प्रतिवादी के हाथ पर रख दिया जाता है। लोहे और उसके हाथ के बीच किसी पेड़ के चौड़े पत्ते और उसके नीचे कुछ थोड़े से और बिखरे हुए चावलों के धानों के सिवा और कुछ नहीं होता। वे इसको सात पग ले जाने की आज्ञा देते हैं और इसके पश्चात् वह चाहे तो भूमि पर गिरा दे।"[3] अलबीरूनी का यह विवरण, उसके पूर्ववर्ती ९वीं सदी के अरब-यात्री सुलेमान के इस कथन से थोड़ा मिलता है: "भारत में जब कोई मनुष्य किसी दूसरे पर ऐसा दोषारोपण करता है, जिसमें वह मृत्यु का अधिकारी हो, तब ऐसे समय में उस दोषी को अग्नि उठाने के लिए कहा जाता है। वह यदि इस बात को स्वीकार कर लेता है, तो फिर लोहे का एक टुकड़ा खूब गर्म किया जाता है, यहाँ तक कि उससे आग निकलने लगती है। इसके पश्चात् उसके खुले हाथ पर किसी वृक्ष की सात पत्तियाँ रखी जाती हैं। इन पत्तियों के ऊपर दहकता हुआ लोहे का गर्म टुकड़ा रख दिया जाता है। वह इस टुकड़े को लेकर कुछ देर तक टहलता है, बाद में फेंक देता है। फिर चमड़े के एक थैले में उसका हाथ डाल दिया जाता है और उस पर सम्राट् की मुहर लगा दी जाती है। तीन दिन बीत जाने के पश्चात् जब वह इस बात का परिचय देता है कि उसे कुछ कष्ट नहीं पहुँचा, तब उसका हाथ खोल दिया जाता है। यदि उसके हाथ को कुछ कष्ट नहीं पहुँचा होता, तो वह छोड़ दिया जाता है और मृत्यु के घाट नहीं उतारा जाता, बल्कि जुरमाने के तौर पर एक मन सोना दोषारोपण करनेवाले को बादशाह के कोष में दाखिल करना पड़ता है।"[4]

सुलेमान का उपरिलिखित कथन अलबीरूनी के विवरण से कहीं अधिक स्पष्ट और विस्तृत है। अलबीरूनी जहाँ इस दिव्य प्रमाण का वर्णन करते हुए

---

1. याज्ञ० २·१०४। 2. *Watters*, I, p. 172; Beal, I, p. 84.

3. *Al.*, Vol. II, p. 160. 4. सुलेमान सौदागर, पृ० ७४।

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अपराध का उल्लेख नहीं करता, वहाँ यह उस अपराध का भी सङ्केत करता है, जिसके लिए यह दिव्य प्रमाण व्यवहृत था ।

दण्ड

अलबीरूनी के अनुसार समाज में बहुत से अज्ञानी और भूल करनेवाले हैं, जो खड्ग और कोड़े के बिना सन्मार्ग पर नहीं रखे जा सकते ।[1] निश्चय ही अगर देखा जाय तो ऐसे लोग प्रत्येक युग में और प्रत्येक समाज में वर्तमान रहे हैं, जिनके अपराधों को अवरुद्ध करने के निमित्त समाज में दण्ड की व्यवस्था की गयी । व्यक्ति के अपराध सिद्ध होने पर हिन्दू व्यवहार में कई प्रकार के दण्डों की व्यवस्था थी । दण्ड व्यक्ति के अपराध की गम्भीरता अथवा हल्केपन का ध्यान करके दिया जाता था । जो जितना गम्भीर अपराध करता था, उसे उतना ही गम्भीर दण्ड दिया जाता था । दण्ड देने में अपराध की प्रकृति को ध्यान में रखते हुए देश, काल, कर्म, वर्ण, वय, विद्या, स्थानविशेष, शक्ति, वित्त आदि पर विचार किया जाता था ।[2] इस प्रकार समाज में दण्ड अनेक प्रकार के दिये जाते थे, वाग्दण्ड, धिग्दण्ड, अर्थदण्ड, रोधन, बन्धन, अङ्गताड़न तथा अङ्गभङ्ग, निर्वासन, प्राणदण्ड आदि । मनु,[3] याज्ञवल्क्य,[4] बृहस्पति[5] आदि ने दण्ड के चार प्रकार बताये हैं धिग्दण्ड, वाग्दण्ड, धनदण्ड और वध ।

अलबीरूनी ने दण्ड के विषय में भारतीय शास्त्रकारों के अनुसार विस्तार से नहीं लिखा है । उसने केवल वध, चोरी और स्त्री के व्यभिचार करने पर दिये जानेवाले दण्ड का संक्षेप में वर्णन किया है । यहाँ मैं उसी के आधार पर दण्डव्यवस्था को विवृत कर रहा हूँ ।

चौर्य-दण्ड

चोरी के अपराध के सम्बन्ध में लिखते हुए अलबीरूनी ने धिग्दण्ड, वाग्दण्ड, अर्थदण्ड, अङ्गछेदन और बध का उल्लेख किया है । वह लिखता है :

---

1. *AI.*, Vol. II, p. 161.
2. कृत्यकल्पतरु, व्यवहारकाण्ड, पृ० ७७८, देखिए, याज्ञ० १. ३६८ ।
3. मनु० ८. १२९ ।
4. धिग्दण्डस्त्वथ वाग्दण्डो धनदण्डो बधस्तथा । योज्या व्यस्ताः समस्ता वा अपराधवशादिये॥-याज्ञ० १. ३६७ ।
5. गुरुन्पुरोहितान्पुत्रान्वाग्दण्डेनैव दण्डयेत ।
   विवादिनो नरांश्चान्यान्धिग्धनाभ्यां च दण्डयेत् ॥
   महापातकयुक्तांश्च वधदण्डेन दण्डयेत् । बृहस्पति-स्मृतिचन्द्रिका, २, पृ० १२६ पर उद्धृत । व्यवहार निर्णय, पृ० ५२८ ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

"चोरी का दण्ड चुरायी हुयी वस्तु के मूल्य के अनुसार होना चाहिए, जिसके अनुसार कभी तो अत्यन्त या मध्यम कड़ाई का दण्ड आवश्यक है, कभी ताडन और कभी अर्थदण्ड तथा कभी केवल सबके सामने लज्जित करना और हँसी उड़ाना ही। यदि वस्तु बहुत बड़ी हो तो राजा ब्राह्मण को अंधा और उसके अंग का छेदन कर देता है। वह उसका बायाँ हाथ और दायाँ पैर या दायाँ हाथ और बायाँ पैर काट डालता है, किन्तु वह क्षत्रिय का अंगछेदन उसको अन्धा किये बिना ही कर देता है और अन्य वर्णों के चोरों को मार डालता है।[1]

चोरी के अपराध में गौतम[2] और मनु[3] का कथन है कि शूद्र को दिये जाने वाले दण्ड का वैश्य, क्षत्रिय और ब्राह्मण को क्रमानुसार दो बार, चार और आठ बार का अर्थदण्ड देना चाहिए। चोरी के अपराध में अंगछेद (हाथ, पैर या उँगलियाँ काटने) की व्यवस्था अत्यन्त साधारण थी।[4] शुक्र[5] ने चोर को निर्वासन का दण्ड निर्देशित किया है। अगर बहुमूल्य आभूषणों की चोरी हुई तो ऐसी अवस्था मे मृत्युदण्ड भी दिया जाता था।[6] कौटिल्य[7] का कथन है कि चोरी के प्रथम अपराध में चोर का अँगूठा और उँगली काट दी जाय या ५४ पण अर्थदण्ड दिया जाय, दूसरी बार के अपराध में उसकी सारी उँगलियाँ काट दी जायँ या १०० पण अर्थदण्ड दिया जाय, तीसरी बार के अपराध में उसका बायाँ हाथ काट दिया जाय या ४०० पण अर्थदण्ड दिया जाय, और चौथी बार के अपराध में राजा के निर्देशानुसार मृत्युदण्ड दिया जाय। आपस्तम्ब धर्म सूत्र से विदित होता है कि चोरी के अपराध में ब्राह्मण की आँखें जीवनपर्यन्त के लिए बाँध देनी चाहिए तथा अन्य तीन वर्णों के दोषियों को मृत्युदण्ड देना चाहिए।[8] किन्तु अलबीरूनी का कथन है कि ब्राह्मण-क्षत्रिय के अतिरिक्त अन्य दो वर्णों को मृत्युदण्ड देना चाहिए।[9] ऐसा

---

1. *AI.* Vol. I, p. 162.
2. गौतम० १२·१५-१६।
3. अष्टापाद्यं तु शूद्रस्य स्तेये भवति किल्बिषम्।
   षोडशैव तु वैश्यस्य द्वात्रिंशत्क्षत्रियस्य च॥
   ब्राह्मणस्य चतुःषष्टिः पूर्णं वाऽपि शतं भवेत्।
   द्विगुणा वा चतुः षष्टिस्तद्दोषगुणाविद्धि सः॥
   मनु० ८. ३३७-८ (गुरुमण्डल ग्रन्थमाला)।
4. मनु० ९·२७६-७; नारद० (परिशिष्ट) ३२; याज्ञ० २. २७४।
5. शुक्र० ४।
6. मनु० ८·३२३।
7. कौ० अ० ४·१०।
8. आपस्तम्ब धर्मसूत्र, २. १०. २७. १६-१७।
9. देखिये, इस प्रबन्ध के खण्ड तीन के 'वर्ण जाति और आश्रम' नामक अध्याय ब्राह्मणों और क्षत्रियों की विशेष सुविधाएँ शीर्षकों को।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

लगता है, अलबीरूनी के समय चोरी के दण्ड में अङ्गच्छेदन अधिक किया जाता था धर्मसूत्रकालीन यह व्यवस्था, कि ब्राह्मण के अतिरिक्त अन्य तीनों वर्णों को मृत्यु-दण्ड दिया जाय, अलबीरूनी के काल में केवल अन्य दो वर्णों-वैश्य और शूद्र के लिए ही रह गयी।

हत्या-दण्ड

अलबीरूनी लिखता है: "यदि हत्यारा ब्राह्मण हो और मारा गया व्यक्ति दूसरे वर्ण का हो, तो उसे उपवास, प्रार्थना और दान के रूप में केवल प्रायश्चित्त ही करना पड़ता है।[१] अलबीरूनी का यह कथन सही है। ब्राह्मणों को प्राचीन काल से हत्या की दण्ड व्यवस्था में विशेष सुविधाएँ प्राप्त थीं।[२] अपने से निम्न वर्ण की हत्या करने के अपराध में उन्हें मृत्युदण्ड नहीं दिया जाता था। गौतम, कौटिल्य, मनु, याज्ञवल्क्य, नारद, विष्णु, वृद्धहारीत आदि लेखकों के अनुसार ब्राह्मण को मृत्युदण्ड की व्यवस्था नहीं थी।[3] कौटिल्य का यह विधान है कि हत्या के अभियोग में ब्राह्मण के मस्तक पर कबन्ध का चिह्न लोहे से दाग देना चाहिए।[४] यम को उद्धृत करते हुए स्मृतिचन्द्रिका का यह उल्लेख है कि ब्राह्मण को मृत्युदण्ड से मुक्त रखना चाहिए।[५]

अलबीरूनी आगे कहता है: "यदि मारा गया व्यक्ति ब्राह्मण है तो ब्राह्मण हत्यारे को अगले जन्म में इसका उत्तर देना होगा, इसलिए उसे प्रायश्चित्त करने की आज्ञा नहीं दी जाती, प्रायश्चित्त से पापी का अपराध समाप्त हो जाता है, किन्तु कोई भी वस्तु ब्राह्मण से किसी मृत्यु के अपराध को नहीं समाप्त कर सकती। इन अपराधों में सबसे बड़े ये हैं—ब्राह्मण हत्या, गोहत्या, सुरापान, व्यभिचार, विशेषकर अपने पिता और गुरु की पत्नी के साथ, किन्तु राजा लोग इन अपराधों में से किसी के लिए भी ब्राह्मण या क्षत्रिय को नहीं मारते, बल्कि उसकी सम्पत्ति का अपहरण करके उसे अपने देश से निर्वासित कर देते हैं।"[६]

मनु का कथन है: "समस्त पाप करनेवाले ब्राह्मण का राजा कभी वध न करे, किन्तु सम्पूर्ण धन के साथ आयात शरीरवाले उस (ब्राह्मण) को

---

1. *AI.*, Vol. II. p. 162.
2. देखिए, इस प्रबन्ध के खण्ड तीन के 'वर्ण, जाति और आश्रम' नामक अध्याय का ब्राह्मणों की विशेष सुविधाएँ शीर्षक।
3. गौतम० १२. ४३; कौ० अ० ४.८; मनु ८. १२५, ३८०–१; याज्ञ० २.२७७; नारद (साहस) ९–१०; विष्णु० ५. १–८; वृद्धहारीत ७.१९१।
4. कौ०अ० ४.८।
5. स्मृतिचन्द्रिका, पृ० ३१७।
6. *AI.*, Vol. II, p. 162.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

राज्य से निर्वासित कर दे।[१] इस सम्बन्ध में वृद्धहारीत की भी ऐसी ही मिलती-जुलती व्यवस्था है कि हत्या के अपराध में ब्राह्मण को उसके सिर के बालों को मूड़कर तथा उसकी सम्पत्ति से उसे वञ्चित करके राज्य से निकाल देना चाहिए।[२] राजतरङ्गिणी से विदित होता है कि कश्मीर के राजा चन्द्रापीड के शासनकाल में एक ब्राह्मण हत्यारे को ब्राह्मण की हत्या के अभियोग में स्मृति नियम के अनुसार छोड़ दिया गया।[3] किन्तु, विश्वरूप ने कात्यायन का उद्धरण दिया है, जिसके अनुसार उस ब्राह्मण को प्राण-दण्ड भी मिल सकता है, जिसने गर्भपात कराया हो, या चोरी की हो, या उसने तीक्ष्ण शस्त्र से ब्राह्मण-स्त्री की हत्या की हो या उसने पतिव्रता स्त्री का वध किया हो।[४]

अलबीरूनी आगे कहता है : "यदि ब्राह्मण और क्षत्रिय से निम्न वर्ण का व्यक्ति उसी वर्ण के किसी मनुष्य की हत्या कर दे तो उसे प्रायश्चित्त करना पड़ता है, किन्तु इसके अतिरिक्त उदाहरण प्रतिष्ठित करने के उद्देश्य से राजा लोग उसे दण्ड देते हैं।[५] कौटिल्य[६] का कथन है कि अगर कोई व्यक्ति किसी की हत्या कर देता है, तो उसे मृत्युदण्ड दिया जाय। वृद्ध हारीत ने मृत्युदण्ड की व्यवस्था उन लोगों के लिए निर्देशित की है जो जानकर आग लगानेवाले हों, विष देनेवाले हों, हत्यारे हों, लुटेरे हों, व्यभिचारी हों अथवा धूर्त हों।[७] विष्णु-धर्मसूत्र के अनुसार ब्राह्मण को छोड़कर महापातक के सभी अपराधियों को मृत्युदण्ड दिया जाय।[८]

प्राचीन और मध्ययुगीन समाज में साधारणतः यह व्यवस्था थी कि ब्राह्मण के अतिरिक्त अन्य वर्णों के लोगों को हत्या के अपराध में मृत्युदण्ड दिया जाता था, किन्तु अलबीरूनी के उपरिलिखित कथन से यह स्पष्ट होता है कि ब्राह्मण, क्षत्रिय के अतिरिक्त अन्य वर्णों के लोगों को अपने वर्ण के किसी व्यक्ति की हत्या करने के अभियोग में कड़ाई के साथ मृत्युदण्ड नहीं मिलता था।

दाय

पैतृक सम्पत्ति में दाय भाग को लेकर पूर्वमध्ययुगीन विद्वान् विज्ञानेश्वर और जीमूतवाहन ने अपने-अपने सम्प्रदाय का प्रतिनिधित्व करते हुए भिन्न-

---

1. मनु० ८-३८१। 2. ७. २००-१०।
3. राजतरङ्गिणी, ४. ९६-१०६।
4. गर्भस्थ पातने स्तेनो ब्राह्मण्यां शस्त्रपातने। अदुष्टां योषितं हत्वा हन्तव्यो ब्राह्मणोऽपि हि॥ कात्यायन-विश्वरूप द्वारा उद्धृत, याज्ञ० २. २८१।
5. *AI.*, Vol. II, p. 162. 6. कौ० अ० ४.११।
7. ७.१९०। 8. ५.१।

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

भिन्न रूपों में विचार किया है। मिताक्षरा के अनुसार दाय वह सम्पत्ति है, जिस पर उसके स्वामी के सम्बन्ध मात्र के कारण ही दूसरे व्यक्ति का स्वामित्व स्थापित हो जाता है।[१] पिता की सम्पत्ति पर पुत्र का अधिकार स्वभावतः है जो जन्म के कारण सम्बद्ध है, इसी कारण सम्पत्ति पर जन्म से उसका अधिकार है। इस सम्बन्ध में जीमूतवाहन का यह मत है : "जो दिया जाय, वह दाय है, दान में देनेवाला व्यक्ति अपने स्वत्व का परित्याग करता है; अतः उसके स्वत्व त्याग से नये व्यक्ति के अधिकार की उत्पत्ति होती है।[२] स्पष्ट है कि सम्पत्ति में नये व्यक्ति को स्वत्व उसी स्थिति में मिल सकता है जब उस पर से पूर्ववर्ती का स्वत्व निवृत्त हो।

पुरुष का दाय-सत्व

विष्णुधर्मसूत्र[3], याज्ञवल्क्य,[४] बृहस्पति,[५] कात्यायन,[६] और व्यास[७] के मतानुसार दादा की सम्पत्ति में पुत्र और पिता का एक जैसा स्वामित्व है। अतः पुत्र का अधिकार जन्म से ही हो जाता है। इस सम्बन्ध में अलबीरूनी का मत भारतीय विचारकों के अनुरूप ही है। वह लिखता है : "पूर्वजों अर्थात् पिता और पितामह की अपेक्षा वंशज, अर्थात् पुत्र और पौत्र दाय पर निकटतर अधिकार रखते हैं। फिर, पूर्वजों और वंशजों में एकहरे सम्बन्धियों के विषय में, जिस मनुष्य का सम्बन्ध जितना अधिक निकट का है उतना ही अधिक उसका दाय पर अधिकार है। इस प्रकार पौत्र की अपेक्षा पुत्र का और पितामह की अपेक्षा पिता का अधिकार निकटतर है।[८]

---

1. तत्र दायशब्देन यद्धनं स्वामि सम्बन्धादेव निमितादन्यस्य स्वं भवति तदुच्यते। मिताक्षरा याज्ञ० २.११४।
2. दीयते इति व्युत्पत्या दायशब्दो ददाति प्रयोगश्च गौणः मृतप्रव्रजितादिस्वत्वनिवृत्ति-पूर्वकपरस्वत्वोत्पत्तिफलसाम्यात्, न तु तत्र मृतादीनौ त्यागौस्ति। ततश्च पूर्वस्वामि-संबंधाधीनं तत्स्वाम्योपरमे यत्र द्रव्ये स्वाम्यं तत्र निरुढो दायशब्दः। दायभाग, १. ४–५।

3—पैतामहेऽर्थे पितृपुत्रयोस्तुल्य स्वामित्व। विष्णु धर्मसूत्र १७.२।

4—भूर्या पितामहोपाता निबन्धो द्रव्यमेव वा।
तत्र स्यात्सदृशं स्वाम्यं पितुः पुत्रस्य चैवऽहि॥ याज्ञ० २·१२१।

5—बृहस्पति—दायभाग, २·५० पर उद्धृत।

6—7—कात्यायन और व्यास—अपरार्क, पृ० ७२५ पर उद्धृत।

8—*AI.*, Vol. II, p. 164.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मिताक्षरा[1] के अनुसार पुत्र का जन्म से ही पिता की सम्पत्ति में अधिकार हो जाता है, किन्तु दाय-भाग[2] के अनुसार पिता के मरने के उपरान्त पुत्र का पिता की सम्पत्ति में अधिकार होता है। पिता अपने जीवन-काल में चाहे तो सारी सम्पत्ति बेच सकता है या दान कर सकता है; किसी को लिख सकता है। ऐसी स्थिति में पुत्र को कोई अधिकार नहीं कि वह कुछ कर सके।

अलबीरूनी लिखता है : "सपिण्ड सम्बन्धियों जैसे भाइयों का अधिकार कम है और उनको केवल उसी अवस्था में दाय मिलता है, जब उनसे अच्छा अधिकार रखनेवाला कोई न हो। अतः यह स्पष्ट है कि बहिन के पुत्र की अपेक्षा पुत्री के पुत्र का अधिकार अधिक है और भाई का पुत्र इन दोनों से बढ़कर अधिकार रखता है।"[3]

मनु[4] ने कन्यापुत्र (दौहित्र) द्वारा अपुत्र पिता को पिण्ड देने तथा सम्पत्ति ग्रहण करने का उल्लेख किया है। बृहस्पति ने साधिकार यह व्यवस्था की है कि जैसे कन्या पितृपक्ष के बन्धुओं के होते हुए भी दायाद होती है, वैसे ही उसका पुत्र भी अपनी माता और नाना की सम्पत्ति का अधिकारी होता है।[5] विज्ञानेश्वर ने भी दौहित्र के स्वत्व की पुष्टि की है।[6]

माता-पिता के अभाव में भाई का निःसन्तान भाई की सम्पत्ति में अधिकार होता है।[7] मिताक्षरा ने अपनी समीक्षा में यही व्यवस्था दी है।[8] समीक्षा करते हुए विज्ञानेश्वर का यह कथन है : "भाइयों के अभाव में उनके पुत्र (भतीजे) तथा इनके अभाव में भतीजे के लड़के उत्तराधिकारी होते हैं। इन तक बद्धक्रम या निश्चित व्यवस्था समझी जाती है।"[9]

अलबीरूनी लिखता है : "यदि मृत कोई उत्तराधिकारी नहीं छोड़ जाता तो दाय राजा के कोष में चला जाता है—केवल उस अवस्था को छोड़कर जब मृत व्यक्ति ब्राह्मण हो। उस दशा में राजा को दाय में हाथ डालने का कोई अधिकार नहीं, किन्तु यह केवल दान-पुण्य में व्यय कर दिया जाता है।"[10]

1—मिताक्षरा—याज्ञ० २·११४।
2—दायभाग, २·२८-३०।
3—*AI.*, Vol. II, pp. 164-5.
4. मनु० ९·१३१-३२, १३६।
5. यथा पितृधने स्वाम्यं तस्याः सत्स्वपि बन्धुषु।
तथैव तत्सुतो पीष्टे मातृमातामहे॥ बृहस्पति—दायभाग, पृ० १८० पर उद्धृत।
6. मिताक्षरा—याज्ञ० २·१३५।
7. याज्ञ० २·१३५।
8. मिताक्षरा—याज्ञ० २·१३५।
9. वही।
10. *AI.*, Vol. II, p. 165.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

आपस्तम्ब[1], बौधायन[2] तथा वशिष्ठ[3] का कथन है : "मरे हुए व्यक्ति का कोई उत्तराधिकारी न होने पर सम्पत्ति राजा को मिलती है।" मनु ने भी मृत व्यक्ति के उत्तराधिकारी के अभाव में सम्पत्ति राजा को मिलने की पुष्टि की है।[4]

अलबीरूनी के विवरण से स्पष्ट है कि मृत ब्राह्मण की सम्पत्ति राजा नहीं लेता रहा। वह सम्पत्ति बाद में दानादि कर्म में बँट जाती थी।

स्त्री का दाय-स्वत्व

स्त्री के दाय भाग के प्रश्न पर अलबीरूनी ने अपना संक्षिप्त विचार प्रकट किया है, जिसे इस प्रवन्ध के 'समाज में स्त्री की स्थिति' नामक अध्याय में निरूपित किया गया है।

राजस्व

राजा की आय का प्रमुख साधन राजस्व था। यह कई प्रकार का होता था। प्रधानतः दो प्रकार का, भूमि-कर और विक्रय-कर। भूमि-कर में भी कई प्रकार के कर थे, भाग, भोग, उद्रङ्ग, उपरिकर, हिरण्य आदि। विक्रय कर में 'शुल्क' प्रमुख था।

अलबीरूनी ने केवल 'भाग' और 'शुल्क' का उल्लेख किया है। वह लिखता है, "जो कुछ वह फसलों से या पशुओं से कमाता है, उस सम्बन्ध में सबसे पहले वह देश के शासक को कर देने के लिए बाध्य है जो कृषि-भूमि या गोचारण भूमि के साथ लगा रहता है। फिर वह आय का छठवाँ भाग (१।६) राजा प्रजा, उनकी सम्पत्ति और उनके परिवारों की रक्षा के बदले देता है। यही कर्तव्य साधारण जनता के सिर पर भी है, किन्तु वे अपनी सम्पत्ति के सम्बन्ध में घोषणाएँ करते हुए झूठ बोलते और छल करते हैं। ऐसे ही समान तर्क पर व्यापारी लोग भी राजस्व देते हैं।[5]"

उप्पादन का १।६ भाग राजस्व रूप में देने का प्राचीन भारतीय शास्त्रकारों ने भी समर्थन किया है। इस सम्बन्ध में अलबीरूनी का कथन भारतीय विचारकों के अनुरूप है। गौतम,[6] मनु[7] और विष्णुधर्मसूत्र[8] का यह विधान

1. २·६.१४·२–५।
2. १·५. १–१३।
3. १७·८१-८४।
4. मनु० ९·१८५–९।
5. *AI.*, Vol. II, p. 149.
6. १०·२४।
7. ३.२२।
8. ३·२२-३॥

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

है कि उत्पादन का १।६ भाग राजा ले। मध्यकालीन लेखक लक्ष्मीधर ने बिना अपना कोई मत प्रकट किए मनु, बृहस्पति, विष्णु और गौतम को उद्धृत किया है, जिनके अनुसार भूमिकर १।६, १।८, १।१२ (मनु के अनुसार) या १।६, १।८ या १।१० (गौतम और बृहस्पति के अनुसार) अथवा १।६ (गौतम के अनुसार) होना चाहिए।[1] सोमेश्वर ने भी अपना कोई मत नहीं प्रकट किया है। उसने १।६, १।८ या १।१२ भाग का निर्देश किया है।[2] भूमि की उपज पर लगने वाला यह कर अवस्थाओं के भेद से भिन्न-भिन्न हुआ करता था और उसका भेद काफी था—१।४ से १।१२ तक। परन्तु साधारणत: और प्राय: वह १।६ ही होता था। इसी नाते 'षडंशवृत्ति' (भूमि के उपज की १।६ जिसकी वृत्ति हो) और 'षड्भागभृत्' (उपज के १।६ से अपना भरण करने वाला) राजा के लिए रूढ़ार्थ रूप में प्रयुक्त होने लगे।

भूमिकर के लिए अनेक ऐसी स्थितियाँ थीं जो भूमि की क्षमता, सिंचाई के साधनों की सुलभता तथा उत्पादन-शक्ति की प्रचुरता पर अवलम्बित थीं। मनु[3] और कौटिल्य[4] के अनुसार आपत्ति-काल में उपज का १।३ या १।४ राजा ले सकता है, किन्तु ऐसे विकल्पों की अलबीरूनी ने कोई सूचना नहीं दी है।

'शुल्क' साधारणत: व्यापारिक वस्तुओं पर कर रूप में लगता था। राज्य के बाहर से आने-जाने वाली वस्तुओं पर शुल्क लगने का विधान था।[5] शुल्क कितना लगता था, अलबीरूनी ने इसकी कोई सूचना नहीं दी है। सामान्यत: शुल्क दो तरह का लगता था, एक स्थल-मार्ग पर और दूसरा जल-मार्ग पर।[6] गौतम[7] और विष्णुधर्मसूत्र[8] के अनुसार व्यापारिक माल पर शुल्क १।२० लगता था जो मूल्य का ५ प्रतिशत कहा जाता जिसे राजा शुल्क के रूप में लेता था। राजनीति प्रकाश[9] के अनुसार व्यापारिक माल के मूल मूल्य और विक्रय मूल्य के बीच ५ प्रतिशत शुल्क लगता था। याज्ञवल्क्य का विकल्प है कि शुल्क

1. कृत्यकल्पतरु, राजधर्मकाण्ड, पृ० ८८-९२।
2. मानसोल्लास, विंशति, २, ३·१६३-४।
3. १०·११८।
4. ५·२।
5. शुक्र० ४·२·१०८।
6. मिताक्षरा–याज्ञ० २·२६३।
7. १०·२६।
8. ३·२९।
9. पृ० २६४।

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

माल के मूल्य का १।२० भाग लगना चाहिए।[1] वस्तुतः शुल्क व्यापारिक वस्तुओं के मूलधन पर न लग कर लाभ पर लगता था।[2]

'कर' और 'शुल्क' के सम्बन्ध में अलबीरूनी का ज्ञान अल्प रहते हुए भी भारतीय व्यवस्थाओं के अनुरूप है।

———

1. २·२६१।
2. Jayaswal, K. P, *Hindu Polity*, p. 339.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

छठाँ अध्याय

वर्ण, जाति और आश्रम

भारत में हिन्दू समाज का वर्णों में विभाजन अत्यन्त प्राचीन है। इसकी प्राचीनता का सूत्र वैदिक युग से मिलता है। इसकी उत्पत्ति ब्रह्मा से मानी गई है। सर्वप्रथम 'वर्ण' का उल्लेख ऋग्वेद में हुआ है। 'वर्ण' का अर्थ विभिन्न लोगों के जातिगत समूह की ओर इङ्गित करता है।[1] इस सम्बन्ध में अलबीरूनी लिखता है, 'हिन्दू अपनी जातियों को 'वर्ण' या 'रङ्ग' कहते हैं और वंशवृक्ष की दृष्टि से उनका नाम 'जातक' अर्थात् 'जन्म' रखते हैं। ये 'वर्ण' पहले से केवल चार हैं।[2] जातियों की 'वर्ण' अथवा 'रङ्ग' संज्ञा अलबीरूनी ने सही दी है। किन्तु वंश-परम्परा के अनुसार जाति का नाम 'जातक' या 'जन्म' नहीं था। साधारणतः व्यक्ति के लिए कहा जाता है, 'वह किस जाति का है' अथवा 'किस जाति में जन्मा है।' 'जाति' और 'जन्म' शब्द मूलतः एक ही उत्पत्ति के हैं। वहीं से 'जन', 'जेन्स', 'जेनेसिस' और 'गोत्र' भी निकलते हैं। 'जातक' का भी सम्बन्ध उत्पत्ति से ही है। 'वर्ण' पहले तो कर्म और गुण—जिनके अलग-अलग स्वभाव और रङ्ग थे—के आधार पर निश्चित हुए, पर बाद में जन्म के आधार पर उन्हें 'जाति' भी कहा जाने लगा।[3] अलबीरूनी के समय वर्ण का आधार कर्म और गुण न रहकर जन्म रह गया। संभवतः इसीलिये उसने 'जातक' अथवा 'जन्म' शब्दों का प्रयोग किया है। वस्तुतः ब्राह्मणों की संज्ञा ही 'अग्रजन्मा' हो गई। अलबीरूनी का चार वर्णों की बात कहना ठीक है। उससे चार सदी पूर्व हर्ष के राज्यकाल में आनेवाले चीनी यात्री श्वानच्वाङ् ने भारत के चार वर्णों का ही उल्लेख किया है।[4] प्राचीन सूत्रों[5] में ही नहीं मध्यकालीन[6] ग्रन्थों में भी वर्ण चार कहे गए हैं। ये चार वर्ण थे ब्राह्मण, क्षत्रिय,

---

1. ऋग्वेद २. १२. ४; १. १७०. ६; १. १०४२; ३. ३४. ९।
2. *AI.*, Vol. I, p. 100.
3. *Vinaya Pitaka* (Ed. Oldenberg), Vol. II, p. 239.
4. *Watters*, I, p. 168.
5. श० ब्रा० ५. ५. ४९, निरुक्त ६.८, पाणिनि २. २. ३४ वार्त्तिक, cf. *Fick.*, p. 18.
6. 'ततः सच्चतुरो वर्णनाश्रमांश्च व्यभाजयत'। समराङ्गणसूत्रधार ७. ९।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

वैश्य और शूद्र । ब्राह्मण वर्ण विराट् पुरुष का मुख, क्षत्रिय वर्ण उसके हाथ, वैश्य वर्ण उसके जाँघ और शूद्र वर्ण उसके पाँव ।[1]

महाभारत के शान्ति पर्व में वर्णों की उत्पत्ति पर प्रकाश डाला गया है। ब्राह्मण वेद को सुरक्षित करने के लिए उत्पन्न किए गए, क्षत्रिय पृथ्वी पर शासन करने, दण्ड धारण करने और जीवों की रक्षा के लिए, वैश्य दोनों को तथा अपने को खेती एवं व्यापार से सहायता करने के लिए और शूद्र दास बनकर तीनों की सेवा करने के लिए ।[2] अलबीरूनी ने भी भारतीय वर्णों की उत्पत्ति हिन्दू धर्मशास्त्रकारों के आधार पर ही बताई है । उसके अनुसार ब्राह्मण ब्रह्मा के मुख से, क्षत्रिय उसके हाथ और कन्धे से, वैश्य ब्रह्मा की जाँघ और शूद्र ब्रह्मा के पाँव से उत्पन्न हुए ।[3]

वर्ण व्यवस्था का प्रेरक तत्व निश्चय ही व्यक्ति का व्यवसाय और कर्म था, जिस पर समाज-रचना की नींव थी । वैदिक युग से चार वर्णों में विभाजित भारतीय वर्ग मध्ययुग में भी तदनुरूप ही रहा । यद्यपि वर्ण विभाजन में जन्मगत आधार का बीज 'कुल' और 'वंश' नाम से आ गया था, तथापि वर्ण व्यवस्था मे व्यक्ति के व्यवसाय और कर्म का महत्त्व अपेक्षाकृत अधिक था ।

अलबीरूनी लिखता है, "प्राचीन काल में अत्यन्त कर्त्तव्य परायण राजा, जनता को अनेक श्रेणियों और कर्मों में विभक्त करने में योग देते थे । साथ ही उन्हें एक दूसरे में मिलने और क्रम तोड़ने से रोकने का यत्न करते थे । अतः उन्होंने भिन्न-भिन्न श्रेणियों के लोगों को एक-दूसरे से सम्बन्ध रखने से रोक दिया और प्रत्येक श्रेणी के लोगों को विशेष प्रकार का कार्य और शिल्पकला सौंप दिया । वे किसी भी व्यक्ति को अपने वर्ग का अतिक्रमण करने की अनुज्ञा नहीं देते थे । जो अपनी श्रेणी के साथ सन्तुष्ट नहीं थे उन्हें दण्ड दिया जाता था ।"[4]

अलबीरूनी के उपरिलिखित कथन से स्पष्ट है कि समाज की रचना में राजा का महत्त्वपूर्ण योग था । वह किसी वर्ग को किसी अन्य वर्ग के व्यवसाय और कार्य को अपनाने की अनुमति नहीं देता था । अगर कोई उसकी अनुमति के विरुद्ध सम्बन्ध रखना चाहता था तो उसे दण्डित किया जाता था । भारतीय हिन्दू

---

1. ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद्बाहूराजन्यः कृतः ॥
उरू तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्यां शूद्रोऽजायत ॥ ऋग्वेद १०. १०. १२, महा० शान्तिपर्व ७२. १७-१८. वि पु० १. ६. ६ ।

2. महा० शान्तिपर्व ७२. ६-८ ।

3. *AI.*, Vol. I, p. 100.

4. *Ibid.*, pp. 99-100.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

वर्णों के लिए धर्मशास्त्रकारों के नियम इसी श्रेणी में आते हैं। प्रत्येक वर्ण के लिए एक सुनिश्चित व्यवस्था थी, जिसके अनुरूप प्रत्येक वर्ण अपने-अपने कर्म करता था।

अलबीरूनी ने उक्त कथन विशेष रूप से भारतीय वर्णों और जातियों के लिए नहीं व्यक्त किया है, बल्कि सभी देशों के वर्ण-विभाजन को दृष्टि में रखकर व्यक्त किया है।

वह आगे कहता है, "जब अर्दशीर + -बिन-बाबक ने फारस का पुनरुत्थान किया तो लगे हाथ जनसाधारण की जातियों या वर्गों को इस प्रकार पुनः ठीक कर दिया—

पहले वर्ग में सम्भ्रान्त और राजपुत्र थे,

दूसरे वर्ग में संन्यासी, अग्नि-पुरोहित और विधिवेत्ता थे,

तीसरे वर्ग में चिकित्सक, ज्योतिषी और अन्य विज्ञान के ज्ञाता, और

चौथे वर्ग में कृषक और कलाकार।

इन वर्गों में भी अनेक श्रेणियाँ थीं जो एक दूसरे से अलग थीं।[1]

अर्दशीर द्वारा फारस का जाति-विभाजन व्यवसाय को ध्यान में रखकर तो अवश्य किया गया, किन्तु इसमें सबसे बड़ी त्रुटि यह रही कि व्यापारिक जाति को इस विभाजन में कोई स्थान नहीं मिला तथा भारतीय वर्ण-विभाजन से भिन्न क्षत्रिय वर्ण को प्रथम स्थान मिला।

स्पष्ट है कि विश्व की वर्ग व्यवस्था और भारतीय वर्ग व्यवस्था में मौलिक भेद है। भारतीय वर्ग अथवा वर्ण व्यवस्था अति प्राचीन काल से धर्मशास्त्रों में लिपिबद्ध है। सभी वर्गों के अधिकार और कर्त्तव्यों का सुनियोजित वैज्ञानिक विश्लेषण है। समय के साथ-साथ प्रत्येक काल के हिन्दू धर्मशास्त्रकार विभिन्न वर्गों के अधिकार और कर्तव्यों में यत्र-तत्र युगानुरूप परिवर्तन भी करते रहे हैं। लेकिन वैदिक काल से आज तक चार वर्ण ही मूल रूप से प्रधान माने गए।

+ अर्दशीर (२२६-२४१ ई० शासन-काल) अपने समय का फारस का अप्रतिम सुधारवादी सम्राट् था। इसके पिता का नाम बाबक था। इसने सीसानी वंश का प्रवर्तन किया, फारस में अनेक सुधार किये, समाज का वर्गगत नवीन विभाजन किया, विलुप्त प्राचीन धर्म को पुनर्जीवित किया तथा अनेक नवीन न्यायिक प्रक्रियाएँ निर्मित कीं। *Al-Tabri* (Ed. De Goeje), II, p. 813.; *History of Persia* (J. Malcolm), I, p. 69, 1829; *Encyclopaedia of Islam*, Vol. IV, p. 178, 1934.

1, *AI.*, Vol. I, p. 100.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

यद्यपि प्रत्येक वर्ण की अनेक श्रेणियाँ थीं, किन्तु वे अपने वर्गविशेष के अन्तर्गत ही रहीं।

प्राचीन काल के मेगस्थनीज और स्ट्रैबो जैसे ग्रीक लेखकों ने तो हिन्दू समाज की सात जातियों का उल्लेख किया है। किन्तु इब्नखुर्दाज्बा और अल-इदरीसी जैसे अरब लेखकों ने भी हिन्दू जातियों की संख्या सात ही बताई है। संख्याओं की समानता रहते हुए भी ग्रीक लेखकों द्वारा प्रस्तुत किए गए जाति लक्षण मुस्लिम लेखकों के जाति लक्षण से अभिन्न नहीं।

अलबीरूनी से १५० वर्ष पहले होनेवाले अरबी लेखक इब्नखुर्दाज्बा + ने भारत में सात प्रकार की जातियों का उल्लेख किया है। वह लिखता है, "भारत में सात जातियाँ थीं, १—शाकशरी + + (क्षत्रिय), ये उस देश के सम्पन्न लोग हैं। इनमें से बादशाह होते हैं। इनके आगे सब लोग सिर झुकाते हैं, पर ये किसी के आगे सिर नहीं झुकाते, २—बराहम (ब्राह्मण), ये शराब और नशे की चीज़ें नहीं पीते, ३—कस्तरी+++ (खत्री) ये तीन प्यालों तक पी लेते हैं। ब्राह्मण इनकी लड़की लेते हैं, पर इनको अपनी लड़की नहीं देते, ४—शूदर (शूद्र) ये खेती करनेवाले हैं, ५—वैंश (वैश्य) ये पेशे करनेवाले हैं, ६—शन्दाल (चण्डाल) ये खिलाड़ी और कलावन्त हैं। इनकी स्त्रियाँ सुन्दर होती हैं और ७—जम्ब (डोम) ये लोग गाते बजाते हैं।"[1]

आज 'कस्तरी' (खत्री) जाति का मुख्य पेशा व्यापार है, जिसे 'वैश्य' वर्ण के अन्तर्गत माना जाता है।

\+ सभी लोग 'इब्नखुर्दाद्बा' लिखते हैं, किन्तु इस नाम का सही उच्चारण 'इब्नखुर्दाज्बा' ही है, अ० भा० सं०, पृ० २२।

\+ + डॉ० अल्तेकर ने 'शाकशरी' को 'सावकुफरीय' लिखा है तथा उसे संस्कृत 'सत्-क्षत्रिय' का परिवर्तित रूप बताया है। *The Rashtrakutas and their Times*, p. 319.

\+ + + 'चन्देल और उनका राजत्वकाल' (प्रकाशक काशी नागरीप्रचारिणी सभा, सं० २०११) के लेखक श्री केशवचन्द्र मिश्र ने श्री सी० वी० वैद्य के 'हिन्दू मेडिवल इण्डिया' के भा० २, पृ० १८० से अनुवाद करते वक्त वैद्य के अनुसार ही 'कस्तरी' को क्षत्रिय लिखा है, जो ठीक नहीं। साथ ही उन्होंने श्री वैद्य का न नाम दिया है न निर्देश किया है। इसी प्रकार विश्वेश्वरनाथ रेऊ ने भी 'कस्तरी' को 'क्षत्रिय' लिखा है ('राजाभोज', पृ० ५७)।

1\. किताबुल मसालिक वल् ममालिक, ब्रेल लीडन, १८८९, पृ० ७१, दे० अ० भा० सं०, पृ० २२, *ED.*, Vol. I, pp. 16-17.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

'शन्दाल' (चण्डाल) और 'जम्ब' (डोम) ये दो जातियाँ भारतीय वर्ण विभाजन के अन्तर्गत नहीं आतीं। ये भारत की निम्न जातियाँ हैं, जो शूद्रों से भी निम्न मानी जाती रही हैं। सामान्य सामाजिक विधि-विधानों, रीतिरिवाजों और मान्यताओं की परिधि से बाहर रहने वाली तथा सामाजिक व्यवस्था के अन्त में आनेवाली इन जातियों को 'अन्त्यज' कहा जाता था।

गुण और कर्म के आधार पर चन्द्रगुप्त मौर्य के शासनकाल में आनेवाले यूनानी यात्री मेगस्थनीज ने भी भारतीयों को सात वर्गों में विभाजित किया। उसके अनुसार १–दार्शनिक जो क्रम के अनुसार सर्वोपरि थे, जिनकी संख्या कम थी, २—कृषक जो कभी शहर नहीं जाते थे, देहात में रहते थे, ३—व्यापारी जिनमें कलाकार, शस्त्रनिर्माता, पोत-निर्माता आदि थे, ४—शिकारी जो न देहात में रहते थे न शहर में, तम्बू में रहते थे, यायावर का जीवन व्यतीत करते थे, ५—योद्धा जो सैनिक थे, ६—पर्यवेक्षक (ओवरसियर), ७—विधिवेत्ता जो राज्य में न्यायाधीश, मन्त्री, कोषाध्यक्ष आदि के ऊँचे पद पाते थे।[1]

मेगस्थनीज द्वारा प्रस्तुत किया गया भारतीयों का उपर्युक्त वर्ग-विभाजन वर्णगत होकर भी कर्मगत है। मेगस्थनीज के समय, निश्चय ही भारत में अधिकतर ब्राह्मण ही दार्शनिक रहे होंगे, न्यायवेत्ता, मन्त्री आदि भी। वैसे जातकों से विदित होता है कि ब्राह्मणों में ज्योतिषी,[2] ऐन्द्रजालिक,[3] चिकित्सक,[4] कृषक,[5] और व्यापारी[6] भी होते थे। अतः मेगस्थनीज ने अज्ञानतावश ब्राह्मणों को दो भिन्न जातियों में विभाजित कर दिया, जबकि होना चाहिए एक ही वर्ग। इसी तरह व्यापारी और पर्यवेक्षक एक ही वर्ग अर्थात् वैश्य वर्ण के अन्तर्गत होने चाहिए। साधारणतः क्षत्रिय वर्ग के लोग ही योद्धा और सैनिक होते थे। 'कृषक' वैश्य या शूद्र वर्ण के अन्तर्गत आते थे और 'शिकारी' 'अन्त्यजों' में।

वैसे अलबीरूनी ने भारत में असंख्य जातियों की स्थिति का उल्लेख किया है,[7] जिसकी पुष्टि शुक्र के इस कथन से होती है कि कर्म के आधार पर प्राचीन-

1. Strabo XV. 1. 39-41; 46-49, cf. puri, B. N., *India as Described by Early Greek writers*, p. 76; Mookerjee, R. K., *Chandragupta Maurya and his Times*, pp. 184-93.
2. *Jataka* (Fousboll), I, p. 230; II, pp. 21, 200, 250; II, pp. 122, 158; V. pp. 211, 458.
3. Ibid., I. p. 253; J. III, p. 504.
4. Ibid., II, p. 213, VI., p. 181.
5. Ibid., III, p. 504.
6. Ibid., II, p. 15; IV., p. 15; V., pp. 22. 471.
7. AI., Vol. I, p. 100

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

काल में ब्रह्मा द्वारा जाति चार भागों में विभाजित थी, परन्तु अनुलोम और प्रतिलोम के क्रम से बार-बार सङ्करता (मिश्रण) के कारण बहुत जातियाँ हो गईं जिनका वर्णन करना शक्य नहीं ।[1] कल्हण ने अनेक जातियों के उल्लेख में चौंसठ जातियों की संख्या बतायी है ।[2]

ब्राह्मण

समाज में स्थान

हिन्दुओं के चातुर्वर्ण में ब्राह्मणों की स्थिति सर्वोच्च थी । सभी वर्णों में उसका सम्मान और आदर था । बुद्धि संस्कार से विरत, केवल जन्म से ब्राह्मण होनेवाला व्यक्ति भी माननीय था ।[3] समाज की धार्मिक, सामाजिक एवं राजनीतिक व्यवस्था में ब्राह्मणों को सर्वोपरि माना जाता था ।[4] ब्राह्मणों की यह सर्वोच्चता वैदिक काल से ही चली आ रही थी, यद्यपि बौद्धकाल में इसे चुनौती मिली थी । ब्राह्मण सभी वेदों का ज्ञाता और सभी विद्याओं का मर्मज्ञ होता था । वह धर्म के कारण भी सर्वश्रेष्ठ था ।[5] यही कारण था जिससे समाज में उसका आदर और मान होता था । इसीलिए श्वानच्वाङ्ग ने भारत के लिए ब्राह्मण देश का प्रयोग किया है ।[6] मध्ययुगीन विवरणों के अनुसार भी ब्राह्मण समाज का नेता और बुद्धि में अग्रणी था । शुक्र के अनुसार जो ज्ञान, कर्म, देवता आदि की उपासना, देवता के आराधन में तत्पर, शान्त, दान्त और दयालु था, वही ब्राह्मण था ।[7] अलबीरूनी का कथन है, 'ब्राह्मण सबसे ऊँचे वर्ण के हैं । उनके बारे में हिन्दू ग्रन्थ कहते हैं कि वे ब्रह्मा के सिर[8] से उत्पन्न हुए हैं । जिस शक्ति को माया कहते हैं उसका दूसरा नाम ब्रह्मा भी है । शरीर का सबसे ऊँचा अङ्ग शिर है इसलिए ब्राह्मण सभी जातियों में श्रेष्ठ हैं । अतः हिन्दू उन्हें सर्वोत्तम मानते हैं ।'[9] 'अलबीरूनी के पूर्ववर्ती अबूजेद सराफी के अनुसार 'भारत के विद्वान् लोग ब्राह्मण कहलाते हैं । उनमें कवि भी हैं, जो राजाओं के दरबारों में रहते हैं और ज्योतिष, दार्शनिक, फल निकालने-

1. शुक्र० ४.५२१ । 2. राजतरङ्गिणी, ८.२४०७ ।
3. असंस्कृतमतयोपि जात्येव द्विजन्मानो माननीया । हर्षचरित, पृ० १८ ।
4. Robert Chalmers, *JRAS*., 1894, p. 394 sq. cf. Fick, p. 19.
5. मनु० १.९३ । 6. *Watters*, I. p. 140.
7. ज्ञान कर्मोपासनभिर्देवताराधनेरतः । शान्तदान्तोदयालुश्च ब्राह्मणश्चगुणोक्तः ॥ शुक्र० १.४० ।
8. अलबीरूनी ने 'सिर' लिखा है, किन्तु होना चाहिए 'मुख' ।
9. *AI*., Vol. I., p. 100.

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

वाले और इन्द्रजाल जाननेवाले भी होते हैं।'[1] अबूजेद के इस कथन से प्रकट है कि जो विद्वान्, कवि, दार्शनिक, ज्योतिषी और ऐन्द्रजालिक होते थे, वे 'ब्राह्मण' कहे जाते थे। जैसा कि ऊपर मेगस्थनीज के कथन का उल्लेख किया गया है, भारत में पहला वर्ग दार्शनिकों का था। वे सर्वश्रेष्ठ थे और उन्हें अबूजेद ने ब्राह्मणों की श्रेणी में लिया है। उसके कथन से यह भी सिद्ध होता है कि ब्राह्मण वर्ग ही कवि, दार्शनिक, विद्वान्, चिकित्सक और न्यायवेत्ता होने में समर्थ था और कोई वर्ग नहीं। इसका स्पष्ट कारण यही परिलक्षित होता है कि ब्राह्मणों का कार्य ही पठन-पाठन और अध्ययन-मनन का था, अतः ब्राह्मणों का कवि, दार्शनिक और न्यायवेत्ता आदि होना स्वाभाविक था। इसका यह अर्थ नहीं कि सभी ब्राह्मण ही कवि और दार्शनिक होते थे। केवल प्रतिभावान् ब्राह्मण ही इस योग्य रहे होंगे। अलबीरूनी से एक सदी पूर्व (१०वीं सदी के प्रारम्भ में)[2] भारत आनेवाला अरब-यात्री अलमसूदी ने भी ब्राह्मणों को ही हिन्दुस्तानियों में सबसे अधिक योग्य और विद्वान् बताया है।[3] अलबीरूनी के पश्चात् ११वीं सदी के अन्त में भारत के सम्बन्ध में लिखनेवाले सिसली निवासी लेखक अलइदरीसी ने भी ब्राह्मणों को हिन्दू जाति में सर्वोपरि माना है।[4] अतः पूर्वमध्ययुगीन समाज में भी ब्राह्मणों की प्रतिष्ठा और सर्वप्रियता प्राचीनकाल जैसी ही थी। हिन्दू समाज में अब भी उन्हें वही मान-मर्यादा और पद-प्रतिष्ठा प्राप्त थी, जो पहले।

ब्राह्मणों के उपवर्ग

ब्राह्मण वर्ग के लोगों के विभिन्न व्यावसायिक कर्मों के अनुसार अलबीरूनी ने चार उपवर्ग बताए हैं—'जब तक घर पर रहकर ब्राह्मण अपना काम करता है, वह साधारणतः इसी (ब्राह्मण) नाम से अभिहित किया जाता है। जब वह एक अग्नि (होम या यज्ञ) की सेवा में लगा रहता है तब वह 'इष्टिन' कहा जाता है। जब वह तीन अग्नियों की सेवा में लगता है तब वह 'अग्निहोत्रिन्' जाना जाता है। जब वह इसके अतिरिक्त आग में नैवेद्य भी देता है तो वह 'दीक्षित' कहा जाता है।"[5]

ब्राह्मणों में आज भी 'इष्टिन्' (अवस्थी), 'अग्निहोत्री' और 'दीक्षित' हैं।

---

1. सिलसिल तुतवारीख, पेरिस, १८११ ई०, पृ० १२७, दे० अ० भा० सँ०, पृ० १०५।
2. *ICH.*, Vol. XXVII, No. 2, April 1953, p. 61.
3. *ED.*, Vol. I, p. 19. 4. *Ibid.*, p. 76.
5. *AI.*, Vol. I, p. 102.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

प्रधान कर्म

समाज के बौद्धिक स्तर को उन्नत करने में ब्राह्मणों का योग प्राचीनकाल से ही रहा है। भारतीय राज्य की न्यायिक प्रक्रिया तथा समाज की मानवतावादी दृष्टि ब्राह्मणों द्वारा ही संचालित रही। उच्च वर्णों को ज्ञान और दर्शन की शिक्षा ब्राह्मणों द्वारा ही मिलती थी। मुख्यत: उनके छ: प्रधान कर्म थे, वेद पढ़ना, वेद पढ़ाना, यज्ञ करना, यज्ञ कराना, दान देना और दान लेना।[1] अलबीरूनी के युग में भी ब्राह्मणों के ये ही कर्म थे। वह लिखता है, 'ब्राह्मण के सम्पूर्ण जीवन में पुण्य के कार्य, दान लेना और दान देना है। इसलिए कि जो कुछ ब्राह्मण देते हैं वह पितरों के पास लौट जाता है (वास्तव में पितरों के लिए लाभ है)। वह निरन्तर पढ़े, यज्ञ करे।'[2] अलबीरूनी का यह कथन शुक्र के इस कथन से साधारणत: मिलता है कि ब्राह्मण दान्त (जितेन्द्रिय), कुलीन, मध्यस्थ (समबुद्धि), अनुद्वेगकारी (कोमल वचन), अटल, परलोक से भीरु (डरनेवाला), धार्मिक, उद्योगी और क्रोध रहित हो।[3] लक्ष्मीधर का कथन है कि युद्ध-भूमि में तथा शत्रुओं पर विजय के निमित्त ब्राह्मण होम और यज्ञ कराए।[4]

आपत्तिकालिक कर्म

सङ्कट के समय में जब ब्राह्मण अपना जीविकोपार्जन कर सकने में असमर्थ होता तो वह वर्णेतर व्यवसाय भी अपना सकता था।

व्यापार—अलबीरूनी लिखता है, "वह कपड़ों और सुपारियों के व्यवसाय में अपना भाग्य आजमा सकता है, किन्तु उत्तम यह है कि वह इसके लिए वैश्य को रखे स्वयं व्यापार न करे, क्योंकि व्यापार में झूठ और धोखा रहता है जो वर्जित है।[5] वह आगे कहता है कि गाय, घोड़ा आदि पशुओं का व्यापार करना ब्राह्मणों के लिए निषिद्ध है।[6]

प्राचीन धर्मशास्त्रकारों के अनुसार ब्राह्मण व्यापार नहीं कर सकते थे।[7] मध्यकालीन लेखक लक्ष्मीधर[8] ने भी ब्राह्मणों के लिए व्यापार करना मना किया

---

1. मनु० १·८८, याज्ञ० ५·१८८, शङ्ख १, २, गौ० ध० सू० १०·१-२, बौधा० ध० सू० ११०·१८·२, वा० ध० सू० २·१४, कौ० अ० १·३·५, कृत्यकल्पतरु १८५-८६ 'यजनाध्ययनेदानं याजनाध्यापनार्थिता:' समराङ्गण सूत्रधार, ७·१०।
2. *AI.*, Vol. II, p. 133.
3. शुक्र० ४·४३६।
4. कृत्यकल्पतरु, राजधर्मकाण्ड, पृ० १८६।
5. *AI.*, Vol. II, p. 132.
6. *Ibid.*
7. मनु १०·८६-११६, गौतम० ७·८-१४, वशिष्ठ २·३१, नारद० (ऋणदान) ६१-६३, याज्ञ० ३·४०-४२।
8. कृत्यकल्पतरु, गृहस्थ० १९२-२१२।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

है। आश्चर्य है, घोड़ों के व्यापार न करने की बात मनु[1] ने कही है जिसे अलबीरूनी भी कहता है, किन्तु नवीं शती के पेहोआ अभिलेख के अनुसार भट्ट विरुक का पुत्र वायुक घोड़ों के व्यापारियों में से था।[2]

ब्राह्मणों के व्यापार को अनुज्ञा के विषय में अलबीरूनी लिखता है, 'व्यापार की अनुज्ञा उन्हें विकटतम स्थिति में थी जब उनके पास जीविका का कोई और साधन न बच गया हो।[3]'

व्याज—अलबीरूनी लिखता है कि ब्राह्मणों को व्याज से लाभ उठाने की आज्ञा नहीं[4], किन्तु लक्ष्मीधर के अनुसार आपत्तिकाल में ब्राह्मण द्रव्य का लेन-देन कर सकता था।[5]

राज्यसेवा—अलबीरूनी के अनुसार ब्राह्मणों को राज्यों की सेवा करना वाञ्छनीय नहीं।[6] परन्तु लक्ष्मीधर का कथन है कि ब्राह्मण आपत्तिकाल में राजाओं की सेवा कर सकता है।[7] यही नहीं ब्राह्मण मन्त्री होते थे,[8] नगर-मुख्य होते थे,[9] दण्डनायक होते थे[10], साथ ही मूर्त्तिकार[11] और अभिलेखों के रचयिता भी।[12] कल्हण ने शिवरत्न ब्राह्मण को कायस्थ (लेखक) पद पर अवस्थित बताया है।[13] अतः स्पष्ट है कि ब्राह्मण राजसेवा में जीवन-यापन करते थे।

कृषि—आपत्तिकाल में ब्राह्मणों को खेती करने की अनुज्ञा मध्यकालीन धर्मशास्त्री देते हैं। डॉ० काणे ने ब्राह्मणों को खेती करने की स्थिति पर विवादपूर्ण मत व्यक्त किया है।[14] उन्होंने लक्ष्मीधर और शुक्र के मतों का विवेचन नहीं किया है। लक्ष्मीधर ने उदारवादी देबल को उद्धृत करते हुए कठिन परिस्थितियों में ब्राह्मणों को कृषि करने की अनुज्ञा दी है। कृषि उत्पादन से अगर वह १/६ राज्यकर देता है, १/१२ भगवान्[15] के नाम पर निकाल देता

---

1. मनु० १०·८९।
2. *EI.*, I, pp. 184, 478.
3. *AI.*, Vol. II, p. 132.
4. *Ibid.*
5. कृत्यकल्पतरु, गृहस्थ० २१४–२१।
6. *AI.*, Vol. II, p. 132.
7. कृत्यकल्पतरु, गृहस्थ०, पृ० २२२-२३।
8. राजतरङ्गिणी ८·१०८; *BI.*, 3, 32; *IHO.*, XVI, p. 581.
9. राजतरङ्गिणी ७·१०८।
10. *EI.*, II, 301.
11. बकुलस्वामी (गिरनार अभिलेख, *RLARBP.*, 322)।
12. कमौली प्लेट में मनोरथ, *EI.*, II, 394, सोमेश्वर गुजरात में, *EI.*, I, 31; चौलुक्य भीम द्वितीय के अन्तर्गत माधव, *EI.*, XV, 57,
13. राजतरङ्गिणी ८·२३८।
14. *HDS.*, II, ch. 3, pp. 724-6.
15. कृत्यकल्पतरु, गृहस्थ०, पृ० १९४।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

है, और १/३० ब्राह्मण को देता है, तो वह कोई पाप नहीं करता।[1] शुक्र ने भी ब्राह्मणों को विशेष स्थितियों में खेती करने का समर्थन किया है।[2] ब्राह्मणों के कृषि-कर्म का समर्थन मध्यकालीन लेखों से होता है। चौलुक्य सम्राट् कुमारपाल के समय के एक अभिलेख के अनुसार राजदेव, शूरदेव और सम्भवतः नगद ब्राह्मण कृषक थे।[3] यह अवस्था मध्यकाल की कोई नई बात नहीं थी। बौद्ध जातकों से यह ज्ञात होता है कि समाज के अपेक्षाकृत प्राचीन युग में भी ब्राह्मण खेती करते थे। खेतिहर ब्राह्मणों के गाँवों के अनेक उल्लेख उनमें मिलते हैं।[4] किन्तु आश्चर्य है अलबीरूनी ने ब्राह्मणों के लिए सङ्कटकालीन स्थितियों में भी कृषि-कर्म का कोई समर्थन नहीं किया है। लगता है ब्राह्मणों के कठोर आचरण पर ही उसका ध्यान अधिक था।

सैनिक वृत्ति—सङ्कटकालीन स्थितियों में ब्राह्मण शस्त्र ग्रहण कर सकता था। गौतम[5] और मनु[6] ने ब्राह्मणों को आपत्तिकाल में गौ, ब्राह्मण तथा अपनी रक्षार्थ शस्त्र-ग्रहण करने का निर्देश किया है। कौटिल्य[7] ने ब्राह्मण-सेना के गुणावगुणों की विशेष चर्चा की है। मध्यकालीन शास्त्रकार शुक्र[8] ने भी ऐसा ही उल्लेख किया है। राजतरङ्गिणी[9] के अनुसार युद्ध-भूमि में ब्राह्मण सैनिक भी भाग लेते थे। चन्देल, कलचुरि और चौलुक्य अभिलेख के अनुसार ब्राह्मण सैनिक अधिकारी थे।[10]

किन्तु अलबीरूनी जहाँ ब्राह्मणों के अन्य आपत्तिकालिक कर्मों का उल्लेख करता है वहाँ वह ब्राह्मणों के सैनिक-कर्म, कृषि-कर्म आदि के प्रति मौन है।

ब्राह्मणों की विशेष सुविधायें

ब्राह्मणों को प्राचीनकाल से ही अनेक सुविधाएँ प्राप्त थीं, जो अन्य वर्णों के लोगों के लिए नहीं थीं। राजनीतिक, धार्मिक, बौद्धिक, आर्थिक, सामाजिक आदि सभी क्षेत्रों में उनको अनेकानेक सुविधाएँ थीं, जो विशेषा-

---

1. वही, पृ० १९४-५।
2. शुक्र० ४·३·१९।
3. *HIG.*, III, 200.
4. *Fick*, p. 219.
5. गौतम० ७.६ और २५।
6. मनु० ८.३४८–४९।
7. कौ० अ० ९.२।
8. शुक्र० ४.१०१३, १०७१।
9. ७.१४८० और ८.१०१३, १०७१।
10. सेत्र प्लेट के अनुसार सेनापति कल्हण और उसका पुत्र सेनापति अजयपाल (*EI.*, *IV*, 158.)। इच्छवर प्लेट के अनुसार चंदेल परमर्दि के अन्तर्गत सेनापति मदनपाल शर्मन (*IA.*, *XXV*, *205*), वल्लिपट्टन प्लेट के अनुसार शिलाहार राज्य के रतराज के अन्तर्गत नागमैय (*IHQ.*, *1981*, *p.35*,), सपादलक्ष के राजा आणा की सेना का नेतृत्व राक ने किया था, द्वयाश्रय० १६।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

धिकार रूप में चल पड़ीं, जिससे वे स्वभावतः अन्य वर्णों से सर्वोपरि हो गए। ये विशेष सुविधाएँ उन्हें मध्यकाल में भी पूर्ववत् प्राप्त थीं जिन्हें वे अधिकार-पूर्वक उपभुक्त करते थे। अलबीरूनी ने ब्राह्मणों की ऐसी कई विशेष सुविधाओं का उल्लेख किया है, जो अन्य वर्णों के लिए नहीं थीं।

राजनीतिक—

राजनीतिक क्षेत्र में ब्राह्मणों का सम्मान था। मध्यकालीन विद्वान् लक्ष्मीधर[1] और कल्हण[2] से ज्ञात होता है कि राजा के अभिषेकोत्सव में ब्राह्मण प्रमुख रूप से सम्मिलित होता था। अलबीरूनी ब्राह्मणों की आदिकालीन राजनीतिक स्थिति के विषय में कहता है कि शासन और युद्ध के कार्य ब्राह्मणों के हाथ में थे। किन्तु देश की व्यवस्था बिगड़ गई, क्योंकि वे धर्मशास्त्रों के दार्शनिक सिद्धान्तों के अनुरूप शासन करते थे, जो जनता के अनिष्टकारी और उच्छृङ्खल तत्वों के सम्मुख असम्भव ठहरा। अतः उन्होंने अपने धर्म के स्वामी से प्रार्थना की। फलतः ब्रह्मा ने उन्हें वे ही कार्य दिये जो इस समय उनके पास हैं, शासन और युद्ध के कार्य क्षत्रियों को दिए।[3] किन्तु अलबीरूनी का यह कथन वास्तविकता के सैद्धान्तिक स्वरूप को ही व्यक्त करता है। ऊपर हम देख चुके हैं कि किस प्रकार अनेक ब्राह्मण सेनापति के पदों पर कार्य करते थे और प्रतिष्ठा पाते थे। राजसभाओं और न्यायिक परिषदों के वे हमेशा सदस्य बने रहे तथा न्यायाधीश और मन्त्रित्व के पदों को सँभालते रहे। इसके अनेक प्रमाण दिये जा सकते हैं। अवसर पड़ने पर ब्राह्मण शस्त्र ग्रहण कर सफलता-पूर्वक शासन स्थापित करते थे।[4] ह्वानच्वांग[5] द्वारा निरूपित उज्जयिनी का ब्राह्मण राजा, गुर्जरदेश का प्रथम ज्ञातव्य शासक हरिश्चन्द्र[6] आदि अनेकानेक ब्राह्मण राजाओं के ऐसे उदाहरण हैं जो ब्राह्मणों की अनुपम बुद्धि और सुदृढ़ शक्ति के ज्वलन्त परिचायक हैं।

प्राणदण्ड—प्राचीन धर्मशास्त्रकारों ने ब्राह्मणों को प्राणदण्ड न देने की

---

1. कृत्यकल्पतरु, राजधर्मकाण्ड, पृ० ९–१८। 2. राजतरङ्गिणी, ५.४६१–७७।
3. *AI.*, Vol. II, pp. 161–62.
4. Munshi, K. M., *The Glory that was Gurjaradesa*, p. 22 ff.
5. Beal, *Buddhist Records in Western World*, II, p. 271.
6. *JRAS.*, 1894, pp. 4–9; 1895, pp. 516–18. Cf. Munshi, K. M., *Op. Cit.*, pt. III, p. 36.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

व्यवस्था की है। भीषण से भीषण अपराध कर देने पर भी उन्हें प्राणदण्ड नहीं दिया जाता था जबकि अन्य जातियों के लिए प्राणदण्ड की व्यवस्था थी।[1]

मध्यकाल में भी ब्राह्मणों को ये सुविधाएँ प्राचीनकाल से रिक्थ में मिली थीं। अलबीरूनी लिखता है कि यदि हत्यारा ब्राह्मण है और मरा हुआ व्यक्ति किसी दूसरे वर्ण का है तो उसे उपवास, प्रार्थना और दान में, केवल प्रायश्चित्त ही करना होता था। अगर मरनेवाला भी ब्राह्मण है और मारनेवाला भी ब्राह्मण है तो उसे प्रायश्चित्त का अधिकार नहीं, क्योंकि प्रायश्चित्त से पाप समाप्त हो जाता है।[2] कृत्यकल्पतरु,[3] बार्हस्पत्य[4] अर्थशास्त्र, लघुवराहनीतिसार[5] आदि में ब्राह्मणों के लिए प्राणदण्ड की व्यवस्था निषिद्ध की गई है। किन्तु कुछ धर्मशास्त्रों द्वारा आततायी ब्राह्मण को प्राणदण्ड देने के लिए कहा गया है। सुमन्तु को उद्धृत करते हुए विज्ञानेश्वर[6] ने आततायी ब्राह्मण को प्राणदण्ड देने की व्यवस्था की है तथा स्मृतिचन्द्रिका[7] के लेखक देवन्नभट्ट ने भी ऐसा ही मत व्यक्त किया है।

कल्हण ने चन्द्रापीड के समय की घटना का उद्धरण दिया है, जिसमें चन्द्रापीड एक ब्राह्मण पर अभियोग लगाए जाने पर कहता है कि "दोष प्रमाणित होने पर किसी साधारण पुरुष को भी मृत्युदण्ड नहीं दिया जाता। फिर यह तो ब्राह्मण है। अतएव अपराध सिद्ध हो जाने पर भी मैं उसे मृत्युदण्ड नहीं दे सकता।[8] अत: इस प्रकार वह ब्राह्मण स्मृति-नियमानुसार प्राणदण्ड से मुक्त कर दिया गया।[9] ऐसे ही कई उदाहरण कल्हणकृत राजतरङ्गिणी में और मिलते है।[10]

मध्ययुग में साधारणत: ब्राह्मणों के लिए प्राणदण्ड की व्यवस्था नहीं थी।

चोरी का दण्ड—साधारण चोरी के अपराध में तो ब्राह्मणों को कोई दण्ड नहीं मिलता था, किन्तु बड़ी चोरी में कुछ दण्ड दिया जाता था। अलबीरूनी लिखता है, "यदि वस्तु बहुत बड़ी हो तो राजा ब्राह्मण को अन्धा

---

1. मनु० ८. ३७६, नारद० ९.११; कौ० अ० ४. ८. ३२–३७, विष्णुधर्मशास्त्र ५. ११, *Jatak* (Fousboll), I, p. 385; III, pp. 326; 392; V, p, 459; VI, p. 3, 387, 388, 427.
2. *AI.*, Vol. II, p. 162.
3. गृहस्थ०, पृ० ३९७ और राजधर्मकाण्ड ९१–
4. १.१७।
5. १.१.३७। २, १६०–१७५।
6. विज्ञानेश्वर—याज्ञ० २.२१।
7. १.३०।
8. राजतरङ्गिणी ४.९६।
9. वही, ४.९६–१०६।
10. वही, ७.१२२९, ८.१०१३, २०६०।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

करके उसका अङ्ग काट डालते हैं। वे उसका बायाँ हाथ और दायाँ पैर या दायाँ हाथ या बायाँ पैर काटते हैं।[1] आपस्तम्ब धर्मसूत्र के अनुसार हत्या के अपराध में, चोरी के अपराध में ब्राह्मण की आखें जीवनपर्यन्त के लिए बाँध देनी चाहिए, जबकि अन्य तीनों वर्णो को प्राणदण्ड की व्यस्थाया थी।[2] इस प्रकार चोरी के अपराध में ब्राह्मणों को अन्य वर्णों की अपेक्षा कम दण्ड मिलता था।

धार्मिक—

धार्मिक क्षेत्रमें भी ब्राह्मणों को अनेक विशेष सुविधाएँ प्राप्त थीं।[3] प्राचीन काल से प्रायः ब्राह्मण ही पुरोहित होता था। राजदरबार में उसका सम्मान और आदर था। सम्राट् हर्ष मुक्तहस्त से ब्राह्मणों को दान देता था।[4] अलबीरूनी के अनुसार धार्मिक यज्ञ कराने का अधिकार, दान लेने का अधिकार, वेद पढ़ाने का अधिकार केवल ब्राह्मणों को ही था।[5] वह लिखता है कि उन लोगों (राजाओं और ताल्लुकेदारों) के घरों में सर्वदा एक ब्राह्मण रहता है, जो वहाँ धर्म और पुण्य के कार्य कराता है। वह पुरोहित कहलाता है।[6] बड़े लोगों के यहाँ धर्म और पुण्य कराने से पुरोहितों को उपहार और दान मिलता जिससे वे अपनी जीविका चलाते।[7] मध्यकाल में भी ब्राह्मणों का यह अधिकार पूर्ववत बना रहा।[8] मध्यकालीन अभिलेखों से ब्राह्मणों के पुरोहित होने का विवरण मिलता है। गहड़वाल राजों ने जागुशर्मन[9] और देववर्त[10] को दान दिया था। देवमन्दिरों में ब्राह्मण ही प्रमुख कर्ता-धर्ता के रूप में नियुक्त होते थे। मन्दिरों में आए हुए दान उन्हें मिलते थे। सोमनाथ जैसे बड़े-बड़े मन्दिरों में हजारों की संख्या में ब्राह्मण नियुक्त होते थे। तेरहवीं सदी के मध्य में होनेवाले पर्सियन लेखक जकरीय अल-कजवीनी के अनुसार हजारों ब्राह्मण सोमनाथ मूर्ति के पूजन और दर्शनार्थियों की सेवा में नियुक्त थे।[11]

बौद्धिक—

प्राचीनकाल से ब्राह्मण बौद्धिक ज्ञान में सर्वश्रेष्ठ थे। सभी वर्णों के लोगों को शिक्षा देने का दायित्व ब्राह्मणों पर था। वेद पढ़ाने का एकमात्र अधिकार

---

1. *AI.*, Vol. II, p. 162. 2. २.१०.२७. १६–१७।
3. Kennedy, J., *"The Imperial Gazetteer of India"*, Vol. II, p. 309. 4. हर्षचरित, पृ० ८९, १११, १२२ आदि।
5. *AI.*, Vol. 1 p. 100; Vol. II. p. 133.
6. *AI.*, Vol. II, p. 132 7. *Ibid.*; Vol. II, pp. 131-2.
8. कृत्यकल्पतरु, राजधर्मकाण्ड, पृ० १७६।
9. *DHNI.*, 1, pp. 516-18, 521, 524, 525, 536.
10. *Ibid.*, I, p: 572. 11. ED., II, p. 98.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ब्राह्मण वर्ग को ही था। ब्राह्मणों का यही बौद्धिक स्तर मध्यकाल में भी था। मध्यकालीन धर्मशास्त्रकारों ने भी ब्राह्मणों को ही बौद्धिक दृष्टि से उच्च माना है। अलबीरूनी के अनुसार ब्राह्मणों को ही वेद पढ़ाने का एकमात्र अधिकार था।[१] वह कहता है कि ब्राह्मण अपनी जीविका ब्राह्मण और क्षत्रियों को पढ़ाकर चलाता है, जो उसे उपहार और दान के रूप में मिलता है, वेतन के रूप में नहीं।[२] अलबीरूनी के इस कथन का समर्थन समसामयिक निबन्धकार लक्ष्मीधर से भी होता है।[3]

आर्थिक

आर्थिक दृष्टि से ब्राह्मणों को अनेक विशेषाधिकार प्राप्त थे। दान लेने का अधिकार केवल ब्राह्मणों को ही था। इसके अतिरिक्त उन्हें राजकर में भी छूट मिलती थी। अलबीरूनी के अनुसार कर देना ब्राह्मणों के लिए अपेक्षित नहीं। सभी प्रकार के करों से केवल ब्राह्मण ही मुक्त हैं।[४] मध्यकालीन ग्रन्थों ने भी ब्राह्मणों को करों से मुक्त होने का निर्देश किया है।[५] केवल वे ही ब्राह्मण करमुक्त होते थे जो वेदपाठी (श्रोत्रिय) और आहिताग्नि थे, सभी नहीं। अन्य सबको तो कर देना पड़ता था।[६]

डा० अन्तेकर[७] और डा० घोषाल[८] ने यह मत प्रकट किया है कि न तो आदिकालीन महाभारत और नारदस्मृति में और न १३वीं शती के दक्षिणी भारत के अभिलेखों में ब्राह्मणों के सभी वर्गों को करों से मुक्त किया गया है। यहाँ यह बतला देना अनावश्यक न होगा कि कुछ मध्यकालीन परवर्ती अभिलेखों से ब्राह्मणों के ऐसे करमुक्ति का समर्थन मिलता है—एक १२३० ई० का जो गुजरात से मिला है और दूसरा उड़ीसा से जो क्रमशः १४३६ ई० और १४७० ई० के हैं।[९] "ब्रह्मदेय' नाम से कुछ भूमि ब्राह्मणों के पास अलग-अलग से थीं, जिससे यह स्पष्ट होता है कि ब्राह्मणों के कुछ वर्ग करमुक्त थे।[१०]

1. *AI.*, Vol. II, pp. 133, 137.
2. *AI.*, Vol. II, pp. 131–32.
3. कृत्यकल्पतरु, गृहस्थ०. पृ० २५२। 4. *AI.*, Vol. II, p. 149.
5. कृत्यकल्पतरु, राजधर्मकाण्ड, पृ० ९१-९२, मानसोल्लास, भा० १, पृ० ४४ श्लोक १६६।
6. कौ० अ० २·१। 7. Altekar, *State and Govt. in Anc. India*, p. 195.
8. Ghoshal, *Hindu Revenue System*, p. 138.
9. *EI.*, VIII, 211 & *JASB*. LXII, 1893, pt. I, No. 1.
10. *Inscriptions of Dharavarsh* V. S. 1220/1163 A. D.-*IA*, LVI, 1927. p. 51.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

'बृह्मदेय' उन ग्रामों को कहा जाता था, जो वेद अथवा अन्य शास्त्रों की शिक्षा देनेवाले बृाह्मणों को राजा की ओर से मिलते थे। 'बृह्मदेय' पर उन बृाह्मणों को कर नहीं देना पड़ता था, यह सही है, पर वह करमुक्ति उनके विशेष कार्यों जैसे वैदिक शिक्षा के वितरण—के लिए थी, जो उनकी अप्रत्यक्ष वृत्ति थी। दान में दिए गए सभी बृाह्मण-ग्रामों को यह छूट नहीं प्राप्त थी।

'बृह्मदेय' से कामरूप के बृाह्मण सम्मानित हुए थे।[1] ९२२ ई० के कलिङ्ग-गङ्गराजा अनन्त वर्मन के एक ताम्रपत्र से यह सूचना मिलती है कि राजा के भाई जयवर्मन ने अपनी कन्या के विवाह में विद्वान् बृाह्मण सोमाचार्य को भूमि भेंट की थी।[2]

सामाजिक

सामाजिक दृष्टि से भी बृाह्मणों की स्थिति समाज में सर्वोच्च थी। उन्हें कतिपय ऐसे कई सामाजिक अधिकार प्राप्त थे जिनका वे सुखपूर्वक उपभोग कर सकते थे। प्राचीन काल से बृाह्मणों को यह विशेषाधिकार था कि वे प्रत्येक वर्ण से चार पत्नियाँ कर सकते थे।[3] अलबीरूनी भी बृाह्मणों के इस सामाजिक अधिकार का समर्थन करता है।[4] देवल[5] ने बृाह्मणों के इस विवाह-सम्बन्धी विशेष अधिकार का उल्लेख किया है।

बृाह्मणों के स्वभाव, कर्म और लक्षण के विषय में अलबीरूनी 'गीता' का उद्धरण देता है, "बृाह्मण में प्रचुर बुद्धि, शान्त हृदय, सत्यसम्भाषण और यथेष्ट धैर्य होना चाहिए। वह इन्द्रियों का स्वामी, न्यायप्रिय, स्पष्ट, शुद्ध, सर्वदा ईश्वर-भक्ति में लीन और पूर्ण रूप से धार्मिक हो।"[6]

---

1. Barua, B. K., *A Cultural History of Assam*, Vol. I, p. 108.
2. *JAHRS.*, II, 271 etc.
3. अथर्ववेद ५.१७.८.९।
4. *AI.*, Vol. II, p. 155.
5. देवल गृह्यरत्नाकर' के पृ० ८५ पर उद्धृत।
6. *AI*, Vol. I, p. 103.
अलबीरूनी ने 'श्रीमद्भगवद्गीता' के जिस श्लोक का अनुवाद किया है, वह यह है—

शमो दमस्तपः शौचं क्षान्तिरार्जवमेव च।
ज्ञानं विज्ञानमास्तिक्यं ब्राह्मं कर्म स्वभावजम् ॥ १८.४२।

(अर्थात्, शम (दृष्ट एवम् अदृष्ट सब विषयों में भोगेच्छा की निःशेष निवृत्ति), दम (निषिद्ध अर्थों में अप्रवृत्ति), तप, शौच (वाह्य और आभ्यान्तर शुद्धि), क्षमा, अकुटिलता, ज्ञान (वेद शास्त्रों का अर्थगत ज्ञान), विज्ञान (अनुष्ठान करने-कराने में निपुण) और आस्तिक्य ब्राह्मण के स्वाभाविक कर्म हैं।)
अलबीरूनी ने उपर्युक्त श्लोक का अपनी भाषा में उद्धरण देने में काफी स्वतंत्रता से काम लिया है। अर्थ पूर्णतः युक्तियुक्त नहीं।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

यहाँ यह कहना अनुचित न होगा कि ब्राह्मणों की इन अनेकानेक क्षेत्रों में विभिन्न विशेष सुविधाओं का मूल कारण था, उनकी बौद्धिक श्रेष्ठता। प्राचीन काल से ब्राह्मण ही पठन-पाठन में दक्ष होते थे, इस कारण वे ही शास्त्रों के प्रधान रूप से रचयिता भी होते थे जिनमें वे अपने वर्ग के लिए विशेष सुविधाएं लिपिबद्ध कर रखते थे, जो कालान्तर में आकर पारम्परिक विकास की मुख्य तत्व बन गई।

क्षत्रिय

समाज के परिपोषण और रक्षण में क्षत्रिय वर्ण का प्राचीन काल से सराहनीय योग रहा है। देश और समाज की व्यवस्था का रक्षात्मक भार क्षत्रिय वर्ग पर था। बौद्धकाल में तो उनके द्वारा ब्राह्मणों से उत्कृष्ट होने की बात स्पष्ट की गई।[1] किन्तु पुनः हिन्दू धर्म शास्त्रकारों का प्रभाव बढ़ने से क्षत्रियों की सामाजिक स्थिति ब्राह्मणों से निम्न हो गई।

मध्यकाल में ही नहीं प्राचीनकाल में भी जब-जब देश पर शत्रुओं का आक्रमण हुआ, क्षत्रियों ने एकनिष्ठा और साहस के साथ देश और प्रजा की रक्षा की। अतः शूरता और वीरता की दृष्टि से क्षत्रियों का मान समाज में ब्राह्मणों की अपेक्षा अधिक था। नवीं शती के अरबी लेखक इब्नखुर्दाज्बा ने लिखा है कि क्षत्रियों के सम्मुख सब लोग सिर झुकाते हैं; लेकिन ये किसी को सिर नहीं झुकाते।[2] क्षत्रियों का किसी के लिए सिर न झुकाने की बात विश्वसनीय नहीं लगती। यद्यपि अलबीरूनी लिखता है, दूसरा वर्ण क्षत्रिय है, जैसा वे कहते हैं ब्रह्मा के कन्धों और हाथों से उत्पन्न हुए थे। उनका पद भी ब्राह्मणों से किसी प्रकार कम नहीं।[3] वस्तुतः क्षत्रियों की प्रतिष्ठा और सर्वप्रियता ब्राह्मणों से किसी प्रकार निम्न नहीं थी।

मध्ययुगीन विद्वान् लक्ष्मीधर ने क्षत्रिय शब्द को 'क्षतात्त्राणम्' से निःसृत किया है।[4] 'क्षतात्त्राणम्', अर्थात् उनका कर्म था अन्य तीन वर्णों के लोगों की हानि अथवा भय से रक्षा करना। क्षत्रियों के कर्म और स्वभावगत लक्षणों को अधिक स्पष्ट करते हुए राजा भोज का कथन है, "जो वीर, उत्साही, शरण देने और रक्षा करने में समर्थ, दृढ़ और लम्बे शरीरवाले थे, वे इस

---

1. *Jatak* (Fousboll), I, p. 326; II, p. 194; IV, pp. 205, 303., cf. *Fick*, p. 89; *JRAS.*, 1894, p. 342.
2. किताबुल्-मसालिक वल् ममालिक, ब्रेल लीडन, १८८९, पृ० ७१, देखिए अ० भा० सं०, पृ० २२, *ED.*, I, pp. 16-17.
3. *AI.*, Vol. I, p. 10.
4. कृत्यकल्पतरु, गृहस्थ०, पृ० २५२।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

संसार में क्षत्रिय हुए। उनका काम ब्राह्मणों के लिए निर्दिष्ट कार्यों के अतिरिक्त विक्रम, प्रजा की रक्षा, उनके नियमों (हिस्सों) आदि का प्रबन्ध और व्यवसाय करना था।[१] मनु, पराशर, पठीनसि, हारीत, बौधायन, आपस्तम्ब और देवल को उद्धृत करते हुए लक्ष्मीधर का कथन है कि राजा के रूप में उनका विशेष कर्त्तव्य है शस्त्र धारण करना, देश का निष्पक्ष शासन करना और वर्णाश्रम धर्म की रक्षा करना। इसके अतिरिक्त देवल का कथन है कि क्षत्रिय को ईश्वर की पूजा करनी चाहिए और इस कारण ब्राह्मणों की भी पूजा करनी चाहिए।[२] अतः इब्नखुर्दाज्बा का यह कथन, कि क्षत्रिय किसी को सिर नहीं झुकाते, युक्तियुक्त नहीं।

कर्म की दृष्टि से क्षत्रियों का कर्म अत्यधिक महत्त्व का था। प्रजा की रक्षा करना, वेद पढ़ना, दान देना, यज्ञ करना और सांसारिक विषयों में चित्त न लगाना, ये पाँच कर्म क्षत्रियों के नियत थे।[3] अलबीरूनी के अनुसार क्षत्रिय वेद को पढ़ता है, पढ़ाता नहीं। वह यज्ञ करता है, पुराणों के नियमानुसार आचरण करता है।—वह प्रजा पर शासन करता है और उनकी रक्षा करता है, क्योंकि वह इस काम के लिए उत्पन्न किया गया है।[४] शुक्र के अनुसार जो लोक की रक्षा करने में दक्ष, वीर, दान्त, पराक्रमी, दुष्टों को दण्ड देनेवाला हो, वही क्षत्रिय है।[५] पराशर के कथदानुरूप क्षत्रियों को चाहिए कि प्रजा की रक्षा करें, हाथ में शस्त्र धारण किए रहे, दण्ड भलीभाँति दें और दूसरों की सेनाओं को जीत कर धर्मपूर्वक पृथ्वी का पालन करें।[६]

आपत्तिकालिक कर्म

हिन्दू धर्मशास्त्रकारों के अनुसार सङ्कटकाल आने पर जिस प्रकार ब्राह्मणों के लिए विशेष कर्म निर्दिष्ट किए गए थे, उसी प्रकार सङ्कटापन्न काल में क्षत्रियों के लिए भी।

---

1. येतु शुरा महोत्साहाः शरण्या रक्षण क्षमाः ॥११॥
   दृढ़व्यायत देहाश्च क्षत्रियास्त इहाभवन्।
   विक्रमोलोकसंरक्षा विभागो व्यवसायिता ॥१२॥ समराङ्गणसूत्रधार अ० ७।
2. कृत्यकल्पतरु, गृहस्थ०, पृ० २५३।
3. प्रजानां रक्षणं दानमिज्याध्ययनमेव च।
   विषयेष्वसक्तिश्च क्षत्रियस्य समासतः ॥ मनु० १.८९, याज्ञ० ५.११८–१९, शंख० १. ३–४, गौ० ध० सू० १०. ७–८. बौ० ध० सू० १. १०. १८. ३, वा० ध० सू० ११. १७, पाणिनि ४. १. १६८, वि० पु० ३. ८. २६–२७, कौ० अ० १. ३. ६।
4. *AI.*, Vol. II, p. 136.
5. शुक्र० १.४१।
6. परा० स्मृति १.६६।

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

खेती—अलबीरूनी ने क्षत्रियों के लिए आपत्तिकाल में कृषि-कर्म का निर्देश नहीं किया है, किन्तु मध्यकालीन विद्वान् लक्ष्मीधर[1] ने मनु[2] को उद्धृत करते हुए आपत्तिकाल में क्षत्रियों को कृषिकर्म करने का विधान किया है। मध्ययुगीन समाज को देखते हुए अलबीरूनी का यह मौन युक्तियुक्त नहीं। राजा भोज के समय क्षत्रियपुत्र मेमाक का कृषि-कर्म करते हुए उल्लेख हुआ है।[3]

व्यापार—सङ्कट की स्थिति में जिस प्रकार ब्राह्मणों के लिए व्यापार करने का उल्लेख किया गया है उसी प्रकार क्षत्रियों को व्यापार करने का किसी ने भी उल्लेख नहीं किया है। मध्यकालीन लेखक भी इस विषय में मौन हैं। अलबीरूनी ने भी कुछ नहीं लिखा है।

विशेष सुविधाएँ

क्षत्रियों को भी अनेक प्रकार की विशेष सुविधाएँ प्राप्त थीं, किन्तु ब्राह्मणों की तुलना में कम और वैश्यों की तुलना में अधिक।

उपहार ग्रहण—क्षत्रियों को कभी किसी से न माँगना चाहिए और न दान ही लेना चाहिए, किन्तु वह उपहार ग्रहण कर सकता है। प्राचीनकाल के सम्राट् अपने अधीनस्थ राजाओं से उपहार ग्रहण करते थे। लक्ष्मीधर ने देवल को उद्धृत करते हुए क्षत्रियों को उपहार लेने की छूट दी है।[4] वल्लालसेन अपने 'दानसागर' में ऐसी ही रीति का उल्लेख करता है।[5] अभिलेख भी ऐसे उपहारों का निर्देश करते हैं। राजा जयचन्द्र ने वि० सं० १२३३।११७७ ई० और १२३६।११८० के बीच अन्तरवेदि के अनेक ग्राम वत्स गोत्रवाले राउत राज्यवर्मन को दिए थे।[6] किन्तु अलबीरूनी क्षत्रियों के उपहार ग्रहण करने के विषय में मौन है।

दण्ड—अलबीरूनी यह उल्लेख करता है कि चोरी के अपराध में क्षत्रियों को बिना अन्धा किए ही उसका अङ्ग काट देते हैं। वे उसका बायाँ पैर और दायाँ हाथ या दायाँ पैर और बायाँ हाथ काटते हैं। अन्य निम्न वर्णों को वे

---

1. कृत्यकल्पतरु, गृहस्थ०, पृ० १९१। 2. मनु० १०.८३।
3. *EI.*, I, 154.
4. कृत्यकल्पतरु, दानकाण्ड, पृ० ३७।
5. दानसागर, पृ० २०२१।
6. *IA.*, XVIII, pp. 137-143.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

चोरी के अपराध में प्राणदण्ड देते हैं ।[1] किन्तु आपस्तम्ब धर्मसूत्र के अनुसार चोरी के अपराध में ब्राह्मण वर्ण के अतिरिक्त अन्य वर्णों के लोगों को प्राणदण्ड की व्यवस्था है ।[2]

निषिद्ध कर्म

समाज में कुछ ऐसे कार्य थे, जो क्षत्रियों के लिए निषिद्ध थे । प्राचीन काल की तरह मध्यकाल में भी वेद पढ़ाने का अधिकार केवल ब्राह्मणों को था, क्षत्रियों को नहीं । वे वेद पढ़ सकते थे, पढ़ा नहीं सकते थे ।[3] अगर वे ऐसा करते थे तो प्रायश्चित्त करना पड़ता था ।[4] अतः ब्राह्मणों के कर्मों में से क्षत्रियों के लिए कर्म अविहित थे, पहला पढ़ाना, दूसरा यज्ञ कराना और तीसरा दान लेना ।[5]

क्षत्रियों के स्वभाव और चरित्र के विषय में अलबीरूनी 'गीता' का यह उद्धरण देता है, 'क्षत्रिय ऐसा हो जिससे लोगों के हृदय भयभीत हों, बड़ा शूर-वीर और उदार चरित हो प्रत्युत्पन्न वक्ता और उदार दानी हो तथा निर्भयता-पूर्वक सदैव अपने कर्तव्य का भलीभाँति पालन करने लगा हो ।[6]

वैश्य

भारतीय समाज के व्यावसायिक और कृषक कर्म का भार प्राचीन काल से वैश्य वर्ण के हाथों था ।[7] देश और समाज की आर्थिक स्थिति को सुदृढ़ और सुसङ्गठित बनाने के लिए वैश्य वर्ण को नियोजित किया गया था । अतः देश और समाज के आर्थिक आधार का संचालन वैश्य करते थे । पशुओं की रक्षा करना, दान देना, यज्ञ करना, वेद पढ़ना, व्याज लेना और खेती करना, ये

---

1. *AI.*, Vol. II, p. 164.
2. २.१०.२७, १६–१७ ।
3. *AI.*, Vol. II, p. 136.
4. मनु० १०. १ ।
5. मनु० १०. ७७; कृत्यकल्पतरु, गृहस्थकाण्ड, पृ० २५३ ।
6. *AI.*, Vol. I, p. 103.

अलबीरूनी द्वारा अनुवाद किया गया 'गीता' का यह श्लोक ठीक नहीं बैठता—

'शौर्यंतेजो धृतिर्दाक्ष्यं युद्धे चाऽप्यपलायनम् ।

दानमीश्वरभावश्च क्षत्रं कर्मस्वभावजम् ॥ १८.४३ ।

(अर्थात्, शौर्य, तेज, धृति (धैर्य), दक्षता, युद्ध में अपलायन, दान धर्मपूर्वक प्रजापालन, ये सब क्षत्रियों के स्वाभाविक कर्म हैं ।)

7. पाणिनि ने 'वैश्य' के लिए 'अर्य' व्यवहृत किया है—'अर्यः स्वामि वैश्ययोः ३.१०.१०३ ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सात कर्म प्राचीनकाल से वैश्यों के लिए नियत थे।[1] किन्तु पूर्व मध्यकाल तक आते-आते वैश्यों के कार्यों में कुछ कमी आ गई। अलबीरूनी लिखता है, "वैश्यों का धर्म है कि खेती करे, भूमि को जोते, पशु पाले और ब्राह्मणों की आवश्यकता को पूरी करे।"[2]

अलबीरूनी के उपरिलिखित कथन में वैश्य वर्ण के अन्य कर्म, जैसे व्यापार करना, वेद पढ़ना और व्याज लेना नहीं आते। दान देना और यज्ञ करना 'ब्राह्मणों की आवश्यकता पूरी करने' के अन्तर्गत आ जाते हैं। अलबीरूनी के पूर्व नवीं शती के अन्त में होनेवाले अरबी लेखक इब्नखुर्दाज्बा वैश्यों के केवल कारीगर होने और घर-गृहस्थी के काम करने का निर्देश करता है।[3] अलबीरूनी के परवर्ती, ११वीं सदी के अन्त में होनेवाले, अल-इदरीसी ने भी वैश्यों को कला-कौशल में निपुण कारीगर तथा मिस्त्री बताया है।[4] अतः स्पष्ट है कि १२वीं सदी तक आते-आते वैश्यों के कर्मों में काफी परिवर्तन होता गया। केवल व्यावसायिक कर्म ही उनके जिम्मे पड़ा। वेद आदि का अध्ययन करना उनसे छूट गया। अलबीरूनी के काल तक तो वैश्य खेती करते थे किन्तु बाद मे १२वीं शती के आरम्भ तक कृषिकार्य छोड़ दिया। उनका मुख्य कार्य व्यवसाय ही रह गया। उसका मुख्य कारण यह था कि वैश्यों पर जैन और बौद्ध-धर्म की शिक्षाओं का अन्य वर्णों की अपेक्षा अधिक प्रभाव पड़ा। उनके अहिंसा सिद्धान्त ने वैश्यों को उन कार्यों से धीरे-धीरे विरत कर दिया, जहाँ हिंसा की अधिक सम्भावनायें थीं। कृषि कर्म उनमें प्रमुख था और अन्ततोगत्वा वह वैश्यों से छूट गया।

वैश्यों की स्थिति

कालान्तर में वैश्य और शूद्र में अधिक अन्तर नहीं रह गया। डॉ० अल्तेकर[5] और घुर्ये[6] का कथन है कि वैश्य निश्चित रूप से शूद्र की स्थिति तक आ गए।

---

1. शङ्ख० १.४, मनु० १.९०, याज्ञ० १.११८, वि० पु० ३.८. ३०–३१, गौ० ध० सू० १०.४८. बौ० ध० सू० १. १०. १८.४, वा० ध० सू० २. १९, कौ० अ० १.३७, शुक्र० १. ४२।
2. *AI.*, Vol. II, p. 136.
3. *ED.*, II, p. 16.
4. *Ibid.*, p. 76.
5. Altekar, *The Rashtrakutas and their Times*, pp. 332-33.
6. Ghurye, *Caste and Class in India*, pp. 57, 64, 88, 96.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मुसलमानों के होनेवाले निरन्तर आक्रमण के फलस्वरूप समस्त हिन्दू समाज में ऐसी विषमता व्याप्त हो चली, जो आर्थिक और सामाजिक दृष्टि से अत्यन्त भयावह रही। वैश्य अपने निर्धारित कर्मों से च्युत होते रहे और धीरे-धीरे शूद्र वर्ण के निकट पहुँच गए। स्वयं अलबीरूनी वैश्य और शूद्र में कोई अन्तर नहीं पाता। वह इन दोनों वर्णों के लिए लिखता है, "पिछले दो वर्णों में कोई अन्तर नहीं। यद्यपि ये वर्ण एक दूसरे से विपरीत हैं, तथापि एक ही घर और मुहल्लों में साथ रहते हुए उसी गाँव और नगर में बसते हैं।"[1] अलबीरूनी का यह कथन विचारणीय है जब कि आज भी वैश्य और शूद्र एक साथ एक घर में नहीं रह पाते। चाहे वे एक नगर और ग्राम में भले रहते हों।

वह आगे कहता है, "यह सिद्ध हो जाय कि वैश्य या शूद्र ने वेद उच्चरित किया है तब ब्राह्मण राजा के सम्मुख उस पर दोषारोप करता, और राजा उसकी जीभ काट डालने की आज्ञा देता।"[2]

स्पष्ट है कि प्राचीनकाल में वैश्यों को वेद पढ़ने का जो अधिकार था वह अलबीरूनी के समय नहीं रह गया, उनका महत्त्व घट गया और वे शूद्र के स्तर तक आकर उनके साथ रहने लगे। किन्तु भारतीय ग्राम विभिन्न जाति के लोगों के आवास से सर्वथा पूर्ण होते थे। ग्राम की आवश्यकताओं की पूर्ति करनेवाले सभी व्यवसाय के लोग उसमें रहते थे, जिसमें केवल वैश्य और शूद्र ही नहीं ब्राह्मण और क्षत्रिय भी शामिल थे। वैश्य शूद्रों के स्तर तक आ गये, उपरुद्धृत कारण सही नहीं प्रतीत होता क्योंकि वे हिन्दू समाज के सभी संस्कारों के अब भी अधिकारी हैं। उन संस्कारों से संस्कृत होने के कारण ही वे 'द्विज' कहे जाते थे, जिसमें उनके साथ शूद्र नहीं, प्रत्युत् ब्राह्मण और क्षत्रिय सम्मिलित किये जाते थे। अतः आज की वर्तमान रहन-सहन को देखते हुए यह विश्वास नहीं किया जा सकता कि वैश्यों का स्तर शूद्रों जैसा हो गया। रही बात वैश्य और शूद्र को एक ही दण्ड देने की व्यवस्था, सो भी पूर्ण रूप से विश्वसनीय नहीं। यह सम्भव हो सकता है कि जो अन्तर ब्राह्मण और क्षत्रिय में था वह वैश्य और शूद्र में न रहा हो।

गीता का उद्धरण देते हुए अलबीरूनी कहता है, 'वैश्य का कर्म है खेती करना, पशु पालना और व्यापार करना।"[3]

1. *AI.*, Vol. I, p. 101. 2. *Ibid.*, Vol, II, p. 136.
3. *Ibid.*, Vol. I, p. 103.
'गीता' का यह श्लोक अलबीरूनी ने अनूदित किया है—
कृषिगौरक्ष्यवाणिज्यं वैश्यकर्मस्वभावजम्। १८.४३।
(अर्थात् खेती, गौ की रक्षा और वाणिज्य ये वैश्य के स्वाभाविक कर्म हैं।)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

शूद्र

भारतीय समाज में अन्य वर्णों के अपेक्षाकृत शूद्र निम्न माने जाते रहे हैं। सामाजिक आचार-विचार और व्यवहार-क्रम में उनका चौथा स्थान रहा है। इनके विषय में डॉ० आर० जी० भण्डारकर का मत है कि जब आर्य पञ्जाब से उत्तरी भारत की ओर फैले तो यहाँ के मूल निवासियों को अपने समाज में मिलाकर 'शूद्र' वर्ग से अभिहित किया।[1] अधिकार और कर्तव्य की दृष्टि से भी वे समाज में उपेक्षित होकर निचले स्तर में थे। न उन्हें वेद पढ़ने का अधिकार था, न व्यापार करने का। समाज की सर्वविधि से सेवा करना ही उनका प्रमुख कर्तव्य था। ईश्वर की ओर से शूद्र का एकमात्र कर्म ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य तीनों वर्ण की शुश्रूषा करना ही प्राचीन धर्मशास्त्रों में बताया गया है।[2] अगर किसी कारणवश शूद्र क्षत्रिय और वैश्य की सेवा नहीं कर पाता था तो यह किसी स्थिति तक क्षम्य भी था, किन्तु ब्राह्मणों की सेवा करना तो उनके जीवन का प्रधान लक्ष्य था।[3] अगर ब्राह्मण की सेवा से शूद्र का निर्वाह नहीं हो पाता था तब उसे क्षत्रिय और वैश्य की सेवा से निर्वाह करने का अधिकार था।[4] किन्तु शुक्र, पराशर और गौतम के अनुसार शूद्रों का प्रधान कर्म द्विज वर्ग की सेवा करना है।[5] भोज का कथन है कि अपने मान का ख्याल न करने वाले, पूर्ण रूप से पवित्र न रहने वाले, चुगलखोर और धर्म से विरत रहने वाले शूद्र जाति के अन्तर्गत हुए। कौशल दिखाकर, मुख से विशेष प्रकार की आवाज निकाल कर, कारीगरी और पशुपालन से जीविका चलाना तथा ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तीनों वर्णों की सेवा करना उनका प्रधान धर्म है।[6] दक्षिण में शूद्रों की स्थिति काफी सुदृढ़ थी। शासन में उनका मान ऊँचा था। गिरिपश्चिम शासन के दुर्जय परिवार और वेलनाण्डु के प्रधान, महामण्डलेश्वर पद तक पहुँचे थे, जो शूद्र थे।[7]

---

1. *CWB.*, II, pp. 512-13.
2. एकमेवतु शूद्रस्य प्रभुः कर्मसमृदिशत्।
   एतेषामेव वर्णानां शुश्रषामनसूयया॥
   मनु० १.९१, याज्ञ० ५.१२०, शङ्ख १.५, महा०, शांति पर्व ७२.८, गौ० ध० सू० १०.५६-५९, बौ० ध० सू० १·१०·१८·५, वा० ध० सू० २·२०।
3. मनु० १०·१२३।   4. वही, १०·१२१।
५. शुक्र० १·४३, परा० १·१·६४, वृहत् गौतम स्मृति २२·६१।
६. नातिमानभृतो नाति शुचयः पिशुनाश्च ये॥ ते शूद्रजातयो जाता नाति धर्मरताश्च ये। कलारम्भोपजीवित्यं शिल्पिता पशुपोषणम्॥ वर्णत्रितयशुश्रूषा धर्मस्तेषामुदाहृतः। समरांगणसूत्रधार, ७.१५-१६।
7. Ganguly, D. C., *The Eastern Calukyas*, p. 170.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पूर्वमध्ययुग में भी शूद्रों का प्रधान कर्म अपने से उच्च वर्णों की सेवा करना ही था। प्राचीनकाल की तरह ब्राह्मणों की सेवा करना उनका प्रधान कर्म था। अलबीरूनी अपने युग के शूद्रों के कर्म को लिखते हुए कहता है, "शूद्र ब्राह्मण के नौकर की तरह हैं, जो उनके कार्य-व्यापार की देख-भाल और उनकी सेवा करता है।—प्रत्येक ऐसा कार्य, जो ब्राह्मण का विशेषाधिकार समझा जाता है, ईश्वर की प्रार्थना करना, वेद पढ़ना और होम करना, उसके लिए वर्जित है, अगर वह ऐसा करता है तो ब्राह्मण राजा के सम्मुख उस पर आरोप लगाता है और राजा उसकी जबान काट डालने की आज्ञा देता है। इस प्रकार ईश्वर-भक्ति, धार्मिक-कार्य और दान करना उसके लिए वर्जित नहीं।"[1]

भारतीय धर्म-विश्लेषकों ने शूद्रों को वेद पढ़ने का निषेध किया था।[2] केवल ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य वेद पढ़ सकते थे।[3] शूद्र न वेद पढ़ सकते थे, न होम कर सकते थे[4] और न कोई उनके सामने ही वेद पढ़ सकता था।[5] अगर कोई शूद्र वेद पढ़ता था तो उसकी जिह्वा काट देने का विधान था।[6] किन्तु ये विधान प्रकट रूप से व्यवहार में बहुत कम प्रयुक्त होते रहे। इनका महत्त्व केवल लिपिबद्धता के कारण था।

अलबीरूनी आगे कहता है, "शूद्रों को खेती करना भी मना है, क्योंकि उसका यह कार्य पाप है, जो चोरी के अपराध से कम नहीं।"[7] किन्तु अलबीरूनी के पूर्ववर्ती अरबी लेखक (मृत्यु ९१२ ई०) इब्नखुर्दाज्बा के अनुसार शूद्र का प्रधान कर्म खेती करना था।[8] अलबीरूनी के परवर्ती लेखक अल-इदरीसी का भी यही कहना है।[9] वास्तव में, भारत में बहुत पहले से सर्वदा शूद्र ही प्रायः खेती करते आये हैं। इस सम्बन्ध में अलबीरूनी का कथन केवल भारतीय सामाजिक व्यवस्था के प्रचलित स्वरूप को उद्घाटित कर सकने में असमर्थ है।

अगर अलबीरूनी के कथन को सत्य माना जाय तो इब्नखुर्दाज्बा और अल-इदरीसी का कथन असत्य होता है और अगर इब्नखुर्दाज्बा और अल-

1. *AI.*, Vol., II, p. 136.
2. व० ध० सू० ४.३, मनु० २.१६, अपरार्क, पृ० २३।
3. जैमिनी० ६.१.३३।
4. वही, १.३.२५-३८।
5. व० ध० सू० १८.१३, गौतम० १६.१८-१९; आप० ध० सू० १.३.९.९; याज्ञ० १ ४८; महा० आदि पर्व, ६४.२०।
6. गौतम० १२.४; मृच्छकटिक ९.२१।
7. *AI.*, Vol. II, p. 137.
8. *ED.*, Vol. I, p. 16.
9. *Ibid.*, p. 76.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

इदरीसी के कथन को सत्य माना जाय तो अलबीरूनी का कथन असत्य ठहरता है। अलबीरूनी ने जहाँ भारतीय पुराणों, धर्मशास्त्रों, स्मृतियों आदि का अध्ययन-मनन करके तथा भारत के लोगों के रहन-सहन के विषय में लोगों से सुनकर अपने विवरण प्रस्तुत किए हैं वहाँ इब्नखुर्दाज्बा और अल-इदरीसी ने बिना कभी भारत आए केवल लोगों के सम्वादों के आधार पर भारतसम्बन्धी सूचनाएँ दी हैं। अतः इस सम्बन्ध में अलबीरूनी का ज्ञान अपेक्षाकृत ठोस होते हुए भी तत्तत समाज के व्यावहारिक जीवन को नहीं साकार करता। शूद्रों की बहुत-सी अयोग्यताएँ पुस्तकीय थीं जो व्यवहार में नहीं आती थीं।

यह निर्विवाद रूप से कहा जा सकता है कि अलबीरूनी ने शूद्रों के कार्य-कर्म का विश्लेषण करने में प्राचीन धर्मशास्त्रों का ही अनुसरण किया है। किन्तु समसामयिक ग्रन्थों और भाष्यों में शूद्रों को कुछ आदर की दृष्टि से देखा गया है। यद्यपि डॉ० घोषाल का यह कथन है, "इस काल (१००० से १३०० ई० तक) की कृतियाँ और टीकाएँ शूद्रों के व्यवसाय और स्तर के सम्बन्ध में पुराकालीन स्मृतियों का अनुसरण करती हैं।[1] परन्तु मेधातिथि के काल में शूद्रों की सामाजिक स्थिति और उनका व्यवसाय सद्भावना की दृष्टि से देखा गया। मेधातिथि और विश्वरूप दोनों ने यह आधार लिया कि शूद्र न सेवक बनाए जा सकते हैं, न ब्राह्मण पर निर्भर किए जा सकते हैं। वे व्याकरण तथा अन्य विद्याओं के शिक्षक हो सकते हैं, स्मृतियों द्वारा निर्दिष्ट उन सभी कृत्यों को कर सकते हैं जो अन्य वर्णों के लिए थे।"[2] हारीत को उद्धृत करते हुए लक्ष्मीधर ने यह मत व्यक्त किया है कि विशुद्ध मस्तिष्क का शूद्र निकृष्ट दुर्नामी ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य से उत्तम है।[3] लक्ष्मीधर एक स्थान पर और कहता है, "अगर शूद्र ब्राह्मण को चावल पकाने के लिए देता है तो वह कोई पाप नहीं करता।"[4]

मध्यकाल में लिखे गए उपर्युक्त विवरणों की समीक्षा करने पर यह स्पष्ट निष्कर्ष निकलता है कि प्राचीनकाल से चली आती हुई शूद्रों की व्यवस्था में मध्यकाल में कुछ सुधार हुए। ये सुधार निश्चय ही क्रान्तिकारी थे, जिनके आलोक में अलबीरूनी का कथन खरा नहीं उतरता।

---

1. *The Struggle for Empire*, p. 475.
2. मेधातिथि—मनु० ३.६७, १२१, १५६, १०.१२७।
3. कृत्यकल्पतरु, गृहस्थ०, पृ० ४२७।
4. वही, नियत०, पृ० ३५६, गृहस्थ०, पृ० ३३६।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

इस प्रकार स्पष्ट है कि पूर्वमध्ययुग में भी भारतीय वर्णव्यवस्था प्राचीनकाल की ही तरह थी। उनके विचार-कर्म और आचार-व्यवहार में युगानुरूप भिन्नता तो आ गई, किन्तु उनका मूल उत्स सदियों से चली आती हुई प्राचीन धारा से उत्प्रेरित रहा। हिन्दू समाज का विभाजन, जो प्राचीनकाल में चार वर्णों में किया गया था, तद्वत ही रहा। किन्तु विदेशियों के प्रभाव और युग की अपेक्षा के कारण उनके कार्य-कर्म में यत्र-तत्र अवश्य परिवर्तन आ गए। ये परिवर्तन वास्तव में क्रान्तिकारी थे।

अन्त्यज

भारतीय समाज में प्राचीनकाल से चार वर्णों के अतिरिक्त 'अन्त्यज' या 'अस्पृश्य' नाम की ऐसी जातियाँ भी थीं, जो शहर या गाँव के बाहर निवास करती थीं, जिन्हें स्पर्श करना अशुद्ध होना माना जाता था। ये अन्त्यज जातियाँ अस्पृश्य समझी जाती थीं। इसलिए ये अस्पृश्य कहलाती थीं। इन जातियों के आचार और कर्म निम्न कोटि के एवं अपवित्र थे। अतः ये निम्न समझी जाने लगीं। यद्यपि वैदिक युग में चर्मकार, चाण्डाल, पौल्कस, वस्त्रा, विदलकार, वास:पल्पुलि आदि जातियों को अस्पृश्य नहीं कहा गया है।[1] किन्तु बाद के धर्मशास्त्रकारों ने इनसे छू जाने पर शुद्ध होने का निर्देश किया है। अपरार्क का कथन है कि चाण्डाल, पुक्कस; भिल्ल, पारसी, महापातकियों से छू जाने पर सवस्त्र (सचैल) स्नान करे।[2] संवर्त के अनुसार कैवर्त (केवट या मल्लाह), मृगयु (मृग मारनेवाला), व्याध (बहेलिया), शौनि (कसाई), शाकुनिक (चिड़ीमार) तथा रजक (धोबी) अस्पृश्य हैं।[3] अत्रि का मत है कि चाण्डाल, पतित, म्लेच्छ, मद्यभाण्ड, रजस्वला और स्वपाक (कुत्ते का मांस खानेवाले) से छू जाने पर स्नान करना चाहिए।[4] चीनी यात्री श्वानच्वाङ्ग के अनुसार "कसाई, मछुए, मेहतर, जल्लाद तथा नट आदि के निवास स्थानों पर पहचान के लिए चिह्न लगा दिया जाता है। वे शहर से बाहर रहने के लिए बाध्य किए जाते हैं और गाँव में आते-जाते बाईं ओर दब कर चलते हैं। चाण्डाल, मृतक, श्वपाक आदि अछूतों में सम्मिलित थे।"[5]

अलबीरूनी के समय के भारत में भी प्राचीन काल की ये समाज-बहिष्कृत निम्न जातियाँ थोड़े-बहुत परिवर्तन के साथ तदनुरूप ही रहीं। बृहद्धर्मपुराण

---

1. ऋग्वेद, ८. ५. ३८।
2. अपरार्क, पृ० २९३।
3. वही, पृ० ११९६।
4. अत्रि० २६०-६९ और २८८.८९।
5. *Watters*, I, p. 147.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

के अनुसार ये निम्न सङ्कर जातियाँ ४१ की संख्या में थीं।[1] ब्रह्मवैवर्त पुराण ने तो यहाँ तक कह दिया कि इनकी इतनी संख्या है जिनका उल्लेख करना शक्य नहीं।[2] कल्हण[3] और कुल्लुकभट्ट[4] ने भी ऐसी अनेक जातियों का उल्लेख किया है।

अलबीरूनी ने भारतीय निम्न जातियों के बारे में पूरी जानकारी दी है। ऐतिहासिक दृष्टि से अलबीरूनी का यह विवरण अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। अन्य किसी भी पूर्वमध्ययुगीन भारतीय समाजशास्त्री और विदेशी यात्री ने तत्कालीन समस्त निम्न जातियों का इतने विस्तार से उल्लेख नहीं किया है। अलबीरूनी ही एकमात्र ऐसा लेखक है जिसने तद्‌युगीन भारतीय निम्न जातियों का सविस्तार विवरण प्रस्तुत किया है। अतएव अलबीरूनी के विवरण का ऐतिहासिक महत्त्व है। वह लिखता है, "शूद्रों के पश्चात् अन्त्यज हैं जो अनेक प्रकार की सेवाएँ करते हैं। ये किसी जाति के अन्तर्गत नहीं आते, बल्कि किसी विशेष दस्तकारी अथवा व्यवसाय के सदस्य के रूप में आते हैं। इनमें आठ वर्ग हैं जो खुल्लमखुल्ला एक दूसरे से विवाह करते हैं, केवल धोबी, मोची और बुनकर को छोड़कर, क्योंकि अन्य वर्ग के लोग उनके साथ व्यवहार के लिए तत्पर नहीं होते। ये आठ वर्ग हैं, धोबी, मोची (चमार), मदारी, टोकरी और ढाल बनानेवाले, माझी (नाविक), मछुआ (मछली मारनेवाले), पशु-पक्षी-हिंसक और बुनकर। चारो वर्ण जहाँ रहते हैं, वहाँ ये नहीं रहते। ये वर्ग चारों वर्णों के गाँव और नगर के बाहर, किन्तु नजदीक रहते हैं।

जो हाड़ी, डोम, चांडाल और बधतौ कहे जाते हैं वे किसी 'वर्ण' या 'वर्ग' में नहीं गिने जाते। इनके जिम्मे गन्दे कर्म होते हैं जैसे गाँव की सफाई-बुहराई तथा दूसरी सेवाएं। वे मिलकर एक पूर्ण वर्ग माने जाते हैं और केवल अपने व्यवसाय से ही जाने जाते हैं। सही में, वे विजातीय सन्तान की भाँति माने जाते हैं, क्योंकि लोकमतानुसार उन्हें शूद्र पिता और ब्राह्मण माता के अनुचित सम्बन्ध से उत्पन्न संतान माना जाता है। अत. वे जाति बाहर हैं।[5]

अलबीरूनी के उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट होता है कि उस समय अन्त्यजों में भी दो वर्ग थे, एक उच्च वर्ग और दूसरा निम्न वर्ग। उच्च वर्ग के अन्त्यजों में थे धोबी, मोची, जादूगर, टोकरी और ढाल बनाने वाले, नाविक,

---

1. २. १३–१४। 2. १. १०. १२२।
3. राजतरङ्गिणी, ८. २४०७। 4. कुल्लूक मनु० १०. ३१।
5. *AI.*, Vol. I, p. 102.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मछुआ, पशु-पक्षी हिंसक तथा बुनकर और निम्न वर्ग के अन्त्यजों में हाड़ी, डोम, चाण्डाल और बधताँ।

उच्च वर्ग के अन्त्यज

समाज की सेवा में लगे हुए अन्त्यजों में कुछ ऐसे सेवक थे जिनका कार्य बहुत अधिक निम्न नहीं था। वे अनेक प्रकार की सेवाओं से समाज को सन्तुष्ट रख जीविकोपार्जन करते थे। लेकिन थे वे अस्पृश्य ही। अलबीरूनी के अनुसार उनकी आठ श्रेणियाँ थीं—

१. धोबी—समाज के लोगों के वस्त्रों की स्वच्छता और धवलता धोबी जैसे सेवकों के ऊपर निर्भर थी। धोबी वर्ग के अन्त्यज समाज के लोगों के कपड़ों की सफाई और धुलाई करके जीविका चलाते थे। समाज की सेवा करने में धोबियों का वर्ग प्राचीनकाल से ही प्रमुख रहा है।[1] पूर्वमध्ययुग में भी लोगों की सेवा में ये पूर्ववत् तल्लीन थे। वैदिक काल में ये अस्पृश्य नहीं थे; किन्तु कुछ बाद के काल से ये अस्पृश्य माने जाने लगे।[2]

२. जूता बनाने वाले (मोची)—अन्त्यजों का यह वर्ग समाज के लोगों के जूते बनाकर उनकी सेवा करता था। प्राचीनकाल से ही इनका अस्तित्व था। इनका भरण-पोषण जूता बनाने की सेवा पर निर्भर था। चमड़े का कार्य करने वाले को मनु ने 'विग्वण' कहा है।[3] चमड़े का काम करने की वजह से इनका नाम 'चमार' भी हुआ।[4] जूता बनाने वाले को आजकल भी मोची ही कहते हैं।

३. जादूगर (मदारी)—अस्पृश्यों में कुछ लोग ऐसे थे जिनका धन्धा जादू दिखलाना था। यही उनका मुख्य पेशा था, जिस पर उनकी जीविका निर्भर थी। हाथ की सफाई और कुछ कौतुकपूर्ण करतब दिखाकर ये समाज का मनोरंजन करते थे। प्राचीनकाल से ही इनका अस्तित्व रहा है। जादू के खेल दिखाने वाले मदारी आदि इसी श्रेणी में आते हैं। 'इब्बच जातक' में ऐसे खेल दिखानेवाले का उल्लेख हुआ है।[5]

४. टोकरी और ढाल बनानेवाले—अछूतों में टोकरी और ढाल बनानेवाले भी थे। इस वर्ग के लोग बाँस की टोकरी आदि अनेक चीजें बनाते थे जिससे ये अपना पोषण करते थे। मनु ने बाँस का कार्य करने वाले

1. अग्रवाल, वासुदेवशरण, पाणिनिकालीन भारत, पृ० ९४।
2. संवर्त; अपरार्क, पृ० ११९६। 3. मनु० १०.४९।
4. व्यास स्मृति १.११।
5. जातक (अनु० भदन्त आनन्द कौसल्यायन), भा० २, पृ० २९।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अन्त्यजों को उत्पत्ति चण्डाल और वैदेहक की स्त्री के संयोग से मानी है।[१] 'अपणक जातक' से ज्ञात होता है कि पाँच नीच कुलों में बाँस का काम करने वाले भी एक थे।[२] आज डोम और धरकार बाँस की वस्तुएँ बनाकर अपना पेट पालते हैं।

५. नौका खेनेवाले (माझी)—अस्पृश्यों में एक वर्ग ऐसा था जो नौका चला कर पेट पालता था। इस अस्पृश्य वर्ग की उत्पत्ति के विषय में मनु का कथन है कि निषाद पुरुष और आयोगव स्त्री के सम्बन्ध से जो उत्पन्न हुआ उसका कार्य नौका चलाना था।[3] 'दधिवाहन जातक', 'सिलनिक्स जातक' आदि में नाविकों की कथा आई है।[४] अलबीरूनी के समय में भी इनका यही प्रधान पेशा था।

६. मछुआ—मछली के ऊपर निर्भर रहने वाले अन्त्यज मछुआ कहलाते थे। इनका काम मछली मारना था। अस्पृश्यों का यह वर्ग भारत में प्राचीनकाल से रहा है। इनकी उत्पत्ति ब्राह्मण पुरुष और शूद्र कन्या से हुई थी।[५] मनु के अनुसार निषाद नाम के अन्त्यज मछली पकड़ने का कार्य करते थे।[६] पाणिनि के समय मछली पकड़ने वाले मछुओं को 'मासिक' या 'मैनिक' कहा जाता था।[७] 'मच्छजातक', 'मितचित्ती जातक' आदि में मछुओं का उल्लेख हुआ है।[८] अलबीरूनो के कथन से प्रकट है कि पूर्व मध्ययुग में मछुओं का एक अलग वर्ग था। एक उल्लेख से विदित होता है कि निषाद नरेश पृथ्वीव्याघ्र ने पूर्वी चालुक्य शासक विष्णुवर्धन के राज्य का एक भाग अधिकृत कर लिया था।[९]

७. जंगली जानवरों और पक्षियों का शिकार करने वाले—इनकी उत्पत्ति ब्राह्मण और शूद्रा के संभोग से हुई थी।[१०]

(क) पशु-हिंसक—प्राचीनकाल से अस्पृश्यों में कुछ ऐसे वर्ग रहे हैं, जो जंगली जानवरों और पक्षियों का शिकार करते थे। मनुकालीन समाज भेद,

---

1. मनु० १०·३७।
2. जातक (अनु० भदन्त आनन्द कौसल्यायन) भा० १, पृ० १३६।
3. मनु० १०·३४।
4. जातक (अनु० ,, ,, ,,), भा० २, पृ० २६७।
5. मनु० १०·८। 6. वही, १०·४८।
7. पाणिनि ४।४।३५।
8. जातक (अनु० भ० आ० कौ०) भा० १, पृ० २७५, भा० २, पृ० २५।
9. Saletore, B. A., *The wild Tribes in Anc. India*, p. 36.
10. मनु० १०·८।

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अन्ध्र, चुञ्च और भार्गव वर्ग की निम्न जातियाँ पशु-हिंसा करती थीं।[1] 'कुरंगमिग जातक' में एक पशु-हिंसक की कथा कही गई है।[2]

(ख) पक्षी-हिंसक—पक्षियों का शिकार करनेवाले अन्त्यजों का उल्लेख भी प्राचीन काल से मिलता है। ऐसे लोगों का भरण-पोषण पक्षियों के शिकार से होता था। 'नच्च जातक', 'सझोदमाद जातक', 'बट्टक जातक', 'मोर जातक' आदि में पक्षियों का शिकार करनेवालों का उल्लेख हुआ है।[3] स्पष्ट है अल-बीरूनी के समय भी ये पक्षी-हिंसक जातियाँ वर्तमान थीं।

८. बुनकर—प्राचीनकाल से ही वस्त्र बुनने और सिलने के लिए एक अलग वर्ग था जो समाज के वस्त्र की आवश्यकता की पूर्ति करता था। अल-बीरूनी के समय में भी ये समाज की सेवा पूर्ववत् करते थे। मध्यकाल में जब मुसलमानों ने यह कार्य अपनाया तो वे 'जुलाहा' कहे जाने लगे।

डॉ० सुकुमार सेन[4] और निहाररंजन राय[5] की सूचना है कि जुलाहों के कुल में पैदा होनेवाला धोयी संस्कृत का एक प्रसिद्ध कवि हो गया और अपने कवित्व गुणों से ऊपर उठता हुआ राजा लक्ष्मणसेन के समय दरबारी कवि के पद पर पहुँच गया।

निम्न वर्ग के अन्त्यज

निम्न वर्ग के अन्त्यजों में वे थे जिनका कार्य गाँव और नगर की गन्दगी को साफ करना था, जो चारों वर्णों के आवास से काफी दूर अपना वर्गगत आवास बनाकर रहते थे। प्राचीनकाल से ही ये निम्न जातियाँ थीं। इनकी उत्पत्ति शूद्र पुरुष और ब्राह्मणी स्त्री के अनुचित सम्बन्ध से हुई थी।[6] इसका समर्थन मनु के इस कथन से होता है, 'शूद्र से वैश्य, क्षत्रिय और ब्राह्मण की कन्या से उत्पन्न पुत्र क्रमशः आयोगव, क्षत्ता और मनुष्यों में नीचतम चाण्डाल वर्णसंकर होते हैं।'[7] अलबीरूनी के अनुसार इन अन्त्यजों के चार वर्ग थे—हाँड़ी, डोम, चाण्डाल और बधतौ।

१. हाड़ी—हाड़ी वर्ग के अन्त्यज अन्य तीन निम्न वर्गों से ऊँचे थे, ये गाँव और नगर के गंदे और मैले साफ नहीं करते थे। अलबीरूनी लिखता

---

1. मनु० १०.४८।
2. जातक (अनु० भ० आ० कौ०), भा० १, पृ० २२५।
3. जातक (अनु० भ० आ० कौ०) भा० १, पृ० २६८–७०, भा० २, पृ० २७१, ३३, १२९।
4. प्राचीन बांगाला, पृ० १९।
5. बंगालीर इतिहास, पृ० ३१९।
6. *AI.*, Vol. I, p. 102.
7. मनु० १०.१२।

है, "नीची जातियों में हाड़ी अच्छे कहे जाते हैं, क्योंकि वे सब चीज साफ करने से अपने को मुक्त रखते हैं।'[१] पूर्वमध्ययुग में हाड़ी वर्ग की स्थिति अच्छी थी। प्राचीन धर्मशास्त्र में 'हाड़ी' वर्ग के अन्त्यज का संदर्भ नहीं मिलता। बुन्देलखण्ड में 'ढाढ़ी' नाम की निम्न जाति अभी भी 'आल्हा' गा-गा कर जीवनयापन करती है। निश्चय ही, यह 'ढाढ़ी' जाति पहले से चली आ रही है, जिसे अलबीरूनी ने 'हाड़ी' लिखा है।

२. डोम—यह अस्पृश्य जाति अलबीरूनी के बहुत पहले से भारत में रहती आ रही है।[२] नवीं शती के अरबी लेखक इब्नखुर्दाज्बा ने भारत की 'जम्ब' (डोम) जाति का उल्लेख किया है, जिनका मुख्य पेशा गाना-बजाना था।[3] अलबीरूनी लिखता है, 'इनके (हाड़ियों के) बाद डोम हैं, जो बाँसुरी बजाते और गाते हैं।[४] किन्तु आजकल के डोमों का मुख्य पेशा बाँस की टोकरी आदि बनाना है। गाना, बाँसुरी बजाना आदि नटों का मुख्य कार्य है। हो सकता है अलबीरूनी के समय डोमों का कार्य गाना तथा बाँसुरी बजाना भी रहा हो। राजतरङ्गिणी के उल्लेख के अनुसार इनका कार्य निम्न ही था।[५] चर्यापद में डोमों का उल्लेख हुआ है, जो शहर से बाहर रहने के लिए तथा ब्राह्मणों के लिए अस्पृश्य कहे गए हैं जिनका मुख्य कार्य टोकरी तथा बाँस की चीजें बेचना था।[६]

३. चाण्डाल—प्राचीनकाल से चाण्डाल वर्ग का उल्लेख मिलता है। अस्पृश्य वर्ग में इन्हें अत्यन्त नीच[७] समझा जाता रहा है। यहाँ तक कि जिस श्मशान में ये मरने के बाद जलाए जाते थे, वहाँ ब्राह्मण वर्ग मरने के बाद अपने को जलाना निषिद्ध मानता था। 'उपसाल्हक जातक' में ब्राह्मण पिता अपने पुत्र से कहता है कि मुझे किसी ऐसे श्मशान में मत जलाना जहाँ कोई चाण्डाल जलाया गया हो। मुझे किसी ऐसे श्मशान में जलाना जहाँ पहले कोई न जलाया गया हो।[८]

मनु के अनुसार चाण्डाल की उत्पत्ति शूद्र पिता ब्राह्मणी माता से हुई थी।[९]

---

1. *AI.*, Vol. I, p. 125.
2. मनु० १०.१२।
3. *ED.*, Vol. I, pp. 16-17.
4. *AI.*, Vol. I, p. 102.
5. ६·६९।
6. बौधगान ओ दोहा और चर्यागीत नं० ८, ४, १०।
7. *Fick.*, p. 40.
8. जातक (अनु० भ० आ० कौ), भा० २, पृ० २०२., *Jataka* (Ed. Fousboll) III, p. 233.; IV, pp. 380, 390.; cf *Fick*, p. 27.
9. मनु० १०·१२।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

समाज में इनका कर्म अत्यन्त गर्हित था। अलबीरूनी के अनुसार गाँव की सफाई तथा अन्य प्रकार की गंदगियों को साफ करना इनका मुख्य काम था।[1] अलबीरूनी की मृत्यु के बारह वर्ष बाद लिखनेवाले अरब लेखक गरदीजी ने भी अलबीरूनी जैसा ही जिक्र किया है।[2] प्रारंभिक पाँचवीं सदी के चाण्डाल वर्ग के बारे में फाह्येन लिखता है, "दस्यु को चाण्डाल कहते हैं। ये नगर के बाहर रहते हैं और नगर में जब पैठते हैं तो सूचना के लिए लकड़ी बजाते चलते हैं कि लोग जान जायँ और बच कर चलें, कहीं उनसे छू न जायँ।[3] मनु ने भी इन्हें गाँव के बाहर निवास करने का विधान किया है तथा राजाज्ञा से विशेष चिह्न लेकर काम से दिन में निकलने के लिए कहा है।[4] स्वानच्वाङ्ग[5] ने भी इन्हें अछूत बताया है।[5] बाण[6] ने अपनी 'कादम्बरी' में चाण्डाल को 'स्पर्शवर्जित' के साथ-साथ बाँस की छड़ी बजाकर अपने आने की सूचना से दूसरों को आगाह करने का निर्देश किया है। हेमचन्द्र के अनुसार भी चाण्डाल लकड़ी की आवाज करते चलें जिससे उच्च वर्ण के लोग छूने से बच जायँ।[7]

अलबीरूनी के पूर्ववर्ती अरब लेखक इब्नखुर्दाज्बा ने भी चाण्डालों का उल्लेख किया है। उसके अनुसार 'शंदाल' (चाण्डाल) खिलाड़ी और कलावंत हैं। इनकी स्त्रियाँ सुन्दर होतीं हैं।[8] अलबीरूनी के बाद में होनेवाले अरब लेखक अल-इदरीसी ने 'सण्डालिया' या 'संडालिया' (चाण्डाल) को गायक बताया है जिनकी औरतें खूबसूरती के लिए विख्यात थीं।[9]

बञ्जारा वर्ग खेल और गाने-बजाने में निपुण हैं। इनकी स्त्रियाँ निश्चय ही सुन्दर होती रही हैं। आज भी बञ्जारा जाति जगह-जगह खेल-तमाशे करती घूमती रहती हैं। चाण्डाल जाति खेल-कूद और गाने-बजाने में कभी नहीं रही है। आजकल चाण्डाल जाति का यह पेशा बिल्कुल नहीं है। इब्न-खुर्दाज्बा ने 'खिलाड़ी और कलावन्त' जाति को भ्रमवश चाण्डाल लिख दिया

---

1. *AI.*, Vol. I, p. 102.
2. *Kitab Zain-ul-Akhbar*, Ousley MS no. 240, p. 248 A.
3. फाह्येन, पृ० ४३।
4. मनु० १०·५१. ५५।
5. *Watters*, I, p. 147.
6. अमूर्तामिव स्पर्शवर्जितामालेख्यगतामिव दर्शन मानफलां। कादंबरी, पृ० २१, २५।
7. देशीनाममाला २·७३, शुक्र० १·४४।
8. किताबुल मसालिक वल् ममालिक (डी गोयजे), ब्रेल, लीडन प्रेस, १८८९, पृ० ७१, दे० अ० भा० सं०, पृ० २
9. *ED.*, I, p. 76,

है। बञ्जारे ही इस कला में निपुण रहे हैं। इस सम्बन्ध में अलबीरूनी का ही विवरण सत्य है। इब्नखुर्दाज्बा के विवरण को अल-इदरीसी ने पिष्टपेषण किया है।

प्राचीनकाल के चाण्डालों का मुख्य पेशा राजदण्ड पाए हुए अपराधियों का वध करना था।[1] पूर्व मध्यकाल में भी इनका यही कर्म था। ये 'डोम' वर्ग से निम्न माने जाते थे। अलबीरूनी लिखता है "इन (डोम) से भी नीची जातियों (चाण्डाल) का व्यवसाय मारना और राजदण्ड देना है।[2] 'फाश्येन ने चाण्डालों को मछली मारने, मृग मारने और मांस बेचनेवाला भी कहा है।'[3] स्पष्ट है, चाण्डालों का कर्म प्राचीनकाल से मछली मारने, मृग मारने, मांस बेचने के अतिरिक्त राजाज्ञा द्वारा अपराधियों को मारना भी था, यद्यपि फाश्येन ने मनुष्य वध करने का उल्लेख नहीं किया। किन्तु कल्हण के अनुसार इनका पेशा बहुत ही निकृष्ट कोटि का था।[4]

४—बधतौ—इस अन्त्यज वर्ग को अलबीरूनी ने सबसे निम्न कहा है। ऐसा लगता है कि अलबीरूनी के समय इस वर्ग का कर्म अत्यन्त निम्न श्रेणी का था। वैसे इनका मुख्य कार्य गन्दगी साफ करना तो था ही। अलबीरूनी कहता है, "सबसे बद्तर बधतौ हैं जो न केवल मृत पशुओं का मांस ही खाते हैं बल्कि कुत्ते आदि का भी मांस नहीं छोड़ते।[5]

पूर्वमध्ययुग के पहले कुत्तों का मांस खानेवाले 'श्वपाक' नाम के अन्त्यज थे।[6] इनकी उत्पत्ति के विषय में मनु का कथन है कि चाण्डाल से पुक्कस की स्त्री में 'सोपाक' जातिवाला पुत्र उत्पन्न होता है।[7] अलबीरूनी ने इस अन्त्यज वर्ग का नाम 'बधतौ' रखा है। सम्भव है, अलबीरूनी के समय इस नाम की कोई अस्पृश्य जाति रही हो, जिसका मुख्य पेशा बध करना ही रहा हो जिसे अलबीरूनी ने 'बधतौ' नाम से अभिहित किया।

अलबीरूनी के युग की ये भारतीय अस्पृश्य जातियाँ आज भी किसी न किसी रूप में पाई जाती हैं। मध्यकालीन भारत के अन्त्यजों के विभिन्न वर्गों तथा उनके अनेक कर्मों से परिचित होने के लिए एकमात्र अलबीरूनी का ही विवरण प्राप्य है जिससे उस काल के अन्त्यजों की सम्पूर्ण कार्यविधि सामने आ जाती है।

---

1. मनु० १०·५६।
2. *AI.*, Vol. I, p. 102.
3. फाश्येन, पृ० ३१।
4. राजतरङ्गिणी, ६·७५।
5. *AI.*, Vol. I, p. 102.
6. अत्रि० २८८-८९।
7. मनु० १०.३८।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

आश्रम

डॉ० र्‌हीज डेविड्स[1] का मत है कि जीवन के चारो आश्रमों का प्रचलन बुद्ध के पश्चात् अथवा पिटक की रचना के बाद हुआ क्योंकि इन रचनाओं ने इनका उल्लेख नहीं किया है। अपने मत की पुष्टि करते हुए वह कहते हैं कि प्राचीन उपनिषदों में चारो आश्रमों के नाम भी नहीं पाए जाते। 'ब्रह्मचारी' शब्द का प्रयोग अनेक स्थानों पर हुआ है, 'यति' का 'संन्यासी' के अर्थ में, दो या तीन स्थानों पर, लेकिन 'गृहस्थ', 'वानप्रस्थ' और 'भिक्षु' का कहीं नहीं। चारो आश्रमों का सबसे पहले उल्लेख गौतम और आपस्तम्ब की विधि संहिताओं में हुआ है, लेकिन विस्तार से नहीं।[2] डॉ० जैकोबी[3] के अनुसार चारो आश्रम जैन और बुद्ध धर्म से पुराने हैं। डॉ० नरेन्द्रनाथ ला[4] का कथन है कि 'आश्रम' शब्द का व्यवहार आरम्भिक समय से तो नहीं है, किन्तु इस बात से असहमति नहीं रखी जा सकती कि इसका अस्तित्व आर्यों के प्रारम्भिक समाज से है। 'ब्रह्मचारी'[5], 'गृहस्थ'[6] और 'मुनि' या 'यति'[7] के उदाहरण वैदिक ग्रन्थों में मिलते हैं। डाक्टर काणे[8] के अभिमत से निश्चित होता है कि 'जावालोपनिषद्' में सबसे पहले चारो आश्रमों का उल्लेख हुआ है। अतः व्यक्ति के सम्पूर्ण जीवन के चार भागों (आश्रमों) में विभाजित होने के संदर्भ प्राचीनतम हैं।

अलबीरूनी के काल के भारतीय समाज में प्राचीनकाल की तरह वर्ण-व्यवस्था के साथ-साथ आश्रम की भी व्यवस्था थी। सामाजिक तथा बौद्धिक उत्कर्ष में आश्रम व्यवस्था का बड़ा हाथ था।[9] समाज के समुदायगत, व्यक्तिगत तथा बुद्धिगत स्तर के नियमन और संघटन में आश्रम व्यवस्था आधारपीठिका रही है। निधनपुर अभिलेख से विदित होता है कि भास्कर वर्मन ने वर्णाश्रम

---

1. Rhys Davids, *The Dialogues of the Buddha,* Vol. I, p. 212.
2. *Ibid.*, p. 213.
3. *Jain-Sutras* (Translated by Jacobi), Introduction, p. 29.
4. Law, N. N., *Studies in Indian History and Culture*, p. 3.
5. ब्रह्मचारी चरति वेविषद् विषः स देवानः भवत्येकमंगम्।
   तेन जायामन्वविन्दद् बृहस्पतिः सोमेन नीतां जुह्वं न देवाः॥ ऋग्वेद १०.१०९.५।
6. ......ब्रह्मा चासि गृहपतिश्च नो दमे। ऋग्वेद २.१.२, १०.८५.३६।
7. येना यतिभ्यो भृगवे धने हिते येन प्रस्कण्वमाविथ। ऋग्वेद ८.३.९।
8. *HDS.*, Vol. II, pt. I, p. 422.
9. Valvalkar, P. H., *Hindu Social Institution*, p. 64.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

को पुनः निर्मित किया जो पहले से गड़बड़ हो गए थे ।[1] साधारणतः मनुष्य के सम्पूर्ण जीवन को कर्म के अनुरूप चार आश्रमों अथवा चार भागों में बाँटा गया ब्रह्मचर्य, गार्हस्थ्य, वानप्रस्थ और संन्यास ।[2] मनु ने इन चारो आश्रम को सौ वर्ष के चार भागों में विभाजित किया है और २५ वर्ष तक प्रत्येक आश्रमों में रहने को निर्देशित किया है । अलबीरूनी ने भी भारतीय आश्रम व्यवस्था पर लिखने का प्रयास किया है । वह लिखता है कि सात वर्ष के पश्चात् ब्राह्मण का जीवन चारो भागों (आश्रमों) में विभक्त है ।[3]

ब्राह्मणों के लिए तो ये चार आश्रम अत्यन्त आवश्यक थे । जो ब्राह्मण इन चारो आश्रमों का शास्त्रानुसार पालन करता था, वह परम गति को प्राप्त करता था । ब्राह्मण के अतिरिक्त अन्य तीन वर्णों के लिए केवल तीन आश्रम थे । उनके लिए संन्यास आश्रम का विधान नहीं था ।[४] ब्राह्मणों के चार आश्रमों के विषय में अलबीरुनी ने पुराण और स्मृतियों से सहायता ली है ।[५] वह लिखता है कि ब्राह्मण का जीवन सात वर्ष की अवस्था के पश्चात् चार आश्रमों (भागों) में विभाजित है ।[६] मध्ययुगीन लेखक शुक्र के अनुसार विद्या के लिए ब्रह्मचर्य, सबके पालन के लिए गार्हस्थ्य, इंद्रियों के दमन के लिए वानप्रस्थ और मोक्षसिद्धि के लिए संन्यास आश्रम है ।[७]

---

1. "अवकीर्णवर्णाश्रमधर्म प्रविभागार्यनिर्मितो ।"
   Barua, B. K., *A Cultural History of Assam*, Vol. I, p. 103.
2. ब्रह्मचारी गृहस्थश्च वानप्रस्थो यतिस्तथा ।
   एते गृहस्थप्रभवाश्चत्वारः पृथगाश्रमाः ॥ मनु० ६. ८७; cf. *Vadic Index*, vol. I, pp. 18-69.; *Vaidya*, C. V., *Hist. of Sanskrit Literature*, Vol. I, p. 180 ff.; *Proc. of Seventh all India Oriental Conference, Baroda*, 1933 (1935) pp. 315-16, article *on 'Development of the System of* Asramas'.
3. *AI.*, Vol. II, p. 131.
4. यां यां कलां समाश्रित्य तां तां कुर्यात्सएवहि ।
   ब्रह्मचारीगृहस्थश्चवानप्रस्थोयतिः क्रमात ॥
   चावार आश्रमाश्चैते ब्राह्मणस्यदैवहि ।
   अन्येषामंत्यहीनाश्चक्षत्रविट् शूद्र कर्मणाम् ॥ शुक्र० ४. ३९-४० ।
5. विष्णुपुराण खण्ड ३, अ०९से तथा मनुस्मृति के अन्य स्थलों से उसने अपनी भाषा में अनुवाद्र किया है ।
6. *AI.* , Vol. II. p. 130.
7. विद्यार्थं ब्रह्मचारीस्यात्सर्वेषांपालनेगृही ।
   वानप्रस्थः ०संदमनेसंन्यासी मोक्षसाधन ॥
   शुक्र० ४.४१.; स्मृतिमुक्ताफल, वर्णाश्रम, पृ० १७६ ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ब्रह्मचर्य

विद्या एवं शिक्षा ग्रहण करने के निमित्त ब्रह्मचर्य आश्रम की नियोजना थी, जिसमें छात्र गुरु के यहाँ निवास करके विद्या ग्रहण करता था। मध्यकालीन लेखक लक्ष्मीधर और भाष्यकार अपरार्क ने शिक्षा की संपूर्णता पर विस्तार से विचार किया है।

पाँच वर्षकी प्रारम्भिक अवस्था से ही शिक्षा प्रारम्भ हो जाती थी। एक शुभ दिन पर लिखने-पिढ़ने की योजना होती थी।[1] विद्यार्थी को गुरुगृह[2] में रहकर जिन-जिन कर्त्तव्यों के पालन करने लिए प्राचीन ग्रंथों[3] में निर्देश दिए गए हैं; उन्हीं आधार पर अलबीरूनी लिखता है, "वह दिन में तीन बार स्नान करता है तथा सुबह और शाम होम करता है। होम के पश्चात् वह गुरु की पूजा करता है। वह एक दिन उपवास करता है और एक दिन उपवास तोड़ता है।—गुरुआवास में ही वह निवास करता है, जिसे वह केवल भिक्षा माँगने के समय ही छोड़ता है और एक बार में पाँच से अधिक घरों से वह नहीं माँगता—दोपहर को या शाम को। जो कुछ भिक्षा उसे मिलती है गुरु के सम्मुख रख देता है, इसलिए कि इच्छानुसार वह ले ले। तब गुरु उसे शेष खाने के लिए आज्ञा देता है। इस प्रकार विद्यार्थी अपने गुरु के बचे भोजन से अपना पोषण करता है। फिर, वह अग्नि के लिए दो तरह के वृक्षों-पलास और दर्भ-की लकड़ी लाता है, इसलिए कि हिन्दू अग्नि की अधिक पूजा करते हैं, फूल चढ़ाते हैं।[4]

ऐतरेय ब्राह्मण[5] और शतपथ[6] ब्राह्मण से विदित होता है कि ब्रह्मचारी पिता से दूर गुरु के पास रहकर विद्याध्ययन करता था। छात्र के लिए नित्य भिक्षा माँगने, स्वच्छता के नियम, संध्यापूजन के अनुसरण, उपासन-पूजन, यज्ञ-होम आदि नियमों का उल्लेख मध्यकालीन विद्वान् लक्ष्मीधर ने भी किया है।[7] गुरु-

---

1. राजमार्तण्ड और भीमपराक्रम तथा वीरमित्रोदय और संस्कारप्रकाश में उद्धृत, पृ० ३२२, ३२५।
2. सेवेतेमांस्तु नियमान् ब्रह्मचारी गुरौ वसन्।
   संनियम्येन्द्रियग्रामं तपोवृद्ध्यर्थमात्मनः॥ मनु० २.१७५।
3. श०ब्रा० ११.३.३.५, महा० शांतिपर्व १९३.८, छान्दोग्य उप० ४.१०.१३ आदि।
4. *AI*. Vol. II, p. 131.
5. ऐ० ब्रा० २२.९, तै० सं० ३.१.९, ५।
6. श० ब्रा० ५.४. १—१७।
7. कृत्यकल्पतरु, ब्रह्मचारीकाण्ड, पृ० ११५-१२४, १६४-१८४, २२९-२३९।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

गृह में रहकर इन क्रियाओं का अनुगमन करना छात्र का प्रमुख धर्म था।[1] विज्ञानेश्वर ने याज्ञवल्क्य को उद्धृत कर यह समीक्षा दी है कि शिक्षा-प्राप्ति के काल में छात्र आवास और भोजन निश्चित रूप से प्राप्त करता था।[2]

अलबीरूनी ने विद्यार्थियों के वस्त्रों के बारे में कुछ नहीं लिखा है, जबकि हिन्दू धर्मशास्त्रकारों ने ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य छात्रों के वस्त्रों का उल्लेख किया है।

गृहस्थ

प्राचीनकाल से भारतीय समाज में गृहस्थाश्रम का अत्यधिक महत्त्व रहा है। इसी आश्रम पर अन्य आश्रम निर्भर थे।[3] अलबीरूनी लिखता है कि विवाह करके व्यक्ति परिवारका संचालन करता है।[4] संतानोत्पत्ति, परिवार-पोषण, सम्पत्तिविभाजन, धार्मिक कृत्य तथा अन्य सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक और धार्मिक कर्मों का पालन इसी आश्रम के अन्तर्गत था।

अहिंसा, सत्य, सब भूतों के प्रति दया, शम, सामर्थ्यानुसार दान आदि गृहस्थ के उत्तम कर्म थे। पर-स्त्रियों से संस्पर्क न बनाना, अपनी पत्नी तथा धरोहर की रक्षा करना, न दी गई वस्तु न लेना, मधु, मांस का सेवन न करना, ये पाँच प्रकार के कर्म सुख प्रदान करनेवाले थे,[5] जो गृहस्थों के लिए सच्चरित्रता की दृष्टि से वाञ्छनीय था।

गृहस्थाश्रम का मूल धर्म अर्जित करना था। क्योंकि परलोक में सहायता के लिए माता, पिता, पुत्र, भार्या और सम्बन्धी नहीं होते, प्राणी अकेला ही जन्म लेता है, अकेला ही मरता है, अकेला ही अपने पाप-पुण्य का फल भोगता है। केवल धर्म ही उसके साथ जाता है। धर्म की सहायता से ही दुस्तर नरक से निस्तार होता है, अतः परलोक में सहायता के लिए धर्म का सदैव धीरे-धीरे संचय करना चाहिए।[6] इस आश्रम में व्यक्ति स्वाध्याय से ऋषियों को, होम से

---

1. पाण्डेय, राजबली, हिन्दू संस्कार, पृ०१९०; cf. *The Struggle for Empire*, pp. 108–9; Mookerji, *Ancient Indian Education* (2nd Ed.), pp. 183-187.

2. विज्ञानेश्वर–याज्ञ० २.१८४।

3. यथा वायुं समाश्रित्य वर्तन्ते सर्वजन्तवः।
तथा गृहस्थमाश्रित्य वर्तन्ते सर्व आश्रमाः॥ मनु० ३·७७।

4. *AI.*, Vol. II p. 131.

5. महा०, अनुशासन पर्व, १३.१४१.२५-६। 6. मनु० ४-२३९–४२।

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

देवताओं को, तर्पण से पितरों को, बलि से भूतों को तथा अन्न से मनुष्यों को सन्तुष्ट करता है। वेद के अध्ययन से ऋषिगण, पुत्रों द्वारा पितृऋण तथा यज्ञों द्वारा देवऋण से मुक्त होकर पुत्र को सब कुछ देकर गृहस्थ संसार में अलिप्त भाव से रहता है।[1]

अलबीरूनी ने गृहस्थाश्रम के अनेकानेक कर्मों का कोई उल्लेख नहीं किया है।

वानप्रस्थ

मनु के अनुसार जब व्यक्ति यह देख ले कि उसके सिर के बाल भूरे होने लगे, शरीर पर झुर्रियाँ पड़ने लगीं तब वह वानप्रस्थ होकर जंगल की ओर चला जाय।[2] अलबीरूनी के अनुसार वह गृहस्थी को छोड़ देता है, ब्रह्मचर्य का पालन करता है, अगर उसकी पत्नी उसके साथ वानप्रस्थ नहीं अपनाती तो वह उसे अपनी सन्तति को सौंप देता है। वह जनसम्यता से बाहर रहता है, और उस जीवन को पुनः अपनाता है जिसे वह सबसे पहले आश्रम में अपना चुका रहता है। वह छाजन की छाया के नीचे आश्रय नहीं लेता और न कोई परिधान धारण करता है, केवल कटि भाग को ढकने के लिए वृक्ष की छाल मात्र पहनता है। वह पृथ्वी पर बिना किसी बिछावन के सोता है और केवल कन्द, मूल, फल खाकर अपना पालन करता है। वह बालों को बढ़ा लेता है और तेल को नहीं मलता।[3]

संन्यास

वानप्रस्थ के बाद संन्यासी के रूप में शेष जीवन बिताने की व्यवस्था की गई थी।[4] अलबीरूनी लिखता है कि चौथा काल जीवन के अन्त तक चलता है। वह लाल वस्त्र और हाथ में एक दण्ड धारण करता है। सर्वथा ध्यानस्थ रहता है। वह मस्तिष्क को शत्रुता और मित्रता से तथा काम, क्रोध और लालसा से रहित कर देता है। वह किसी से एकदम संभाषण नहीं करता। किसी स्वर्गीय पुरस्कार-प्राप्ति के हेतु जब वह विशेष गुणयुक्त स्थानों का भ्रमण करता है तब वह मार्ग के गाँव में एक दिन से अधिक और नगर में पाँच दिन से अधिक नहीं रुकता। अगर कोई उसे कुछ देता है तो वह दूसरे दिन के

1. मनु० ४·२५७।
2. वही, ६·१–२।
3. *AI.*, Vol., pp. 132–3.
4. कुल्लूक द्वारा शङ्ख का उद्धरण–मनु० ६·३३; वेदान्तसूत्र पर शङ्कर की टिप्पणी ३·४·२०, अपरार्क, पृ० ९४७।

लिए उसमें से नहीं बचाता। मुक्ति-मार्ग की चिन्ता करने और जहाँ से इस संसार में नहीं लौटता उस मोक्ष तक पहुँचने के अतिरिक्त उसके पास दूसरा कार्य नहीं।[1]

संन्यासियों के सम्बन्ध में अलबीरूनी के पूर्ववर्ती अरब-यात्री सुलेमान ने लिखा है, "भारत में ऐसे लोग भी हैं, जो सदा पहाड़ों और जंगलों में घूमा करते हैं और लोगों से बहुत कम मिलते-जुलते हैं। जब भूख लगती है तब वे लोग जङ्गल के फल या घास-पात खा लेते हैं।—उनमें से कुछ लोग बिल्कुल नङ्गे रहते हैं। हाँ चीते की खाल का एक टुकड़ा अवश्य उन पर पड़ा रहता है। मैंने इसी प्रकार के एक आदमी को धूप में बैठे हुए देखा था। सोलह बरस बाद जब मैं फिर उस ओर से गया, तब भी मैंने उसको उसी प्रकार और उसी दशा में देखा। मुझे आश्चर्य है, धूप की गरमी से उसकी आँखें क्यों न बह गईं।"[2]

सुलेमान का यह आश्चर्य स्वाभाविक था। सन्यास का जीवन व्यतीत करनेवाले भारतीय इसी प्रकार के तप किया करते थे, जो उनकी अभीष्ट-प्राप्ति के प्रमुख साधन-रूप में थे।

वस्तुतः मोक्ष-प्राप्ति के हेतु संन्यास को ही उत्तम साधन बताया गया है।[3] 'कुट्टनीमतम्' में सुन्दरसेन संन्यास (दण्ड) ग्रहण कर तपस्वियों के नियमानुसार वन में जाता है।[4] उसमें कहा गया है कि संन्यास आश्रम अविद्या के नाश तथा मोक्ष (सिद्धि)—प्राप्ति हेतु नियत है।[5] शुद्धता, संतोष, तप, स्वाध्याय तथा ईश्वर का ध्यान, ये संन्यासी के नियम थे।[6]

---

1. *AI.*, Vol. II, pp. 133.
2. सफरनामा, पृ० ५०-५१, देखिए, अ० भा० सं०, पृ० १८६।
3. मनु० ६.९५, याज्ञ० ३·५६-७, पराशर स्मृति २-१४७।
4. कुट्टनीमतम्, श्लोक ४९२, ४९७।
5. ....वयमप्यन्त्याश्रमे समाश्रयणम्।
   अङ्गोकुर्मो विद्या-प्रहाण-संसिद्धमे नियतम्॥ वही, श्लोक ४९५।
६. शौचसंतोषतपः स्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि नियमाः। योगदर्शन, ३.३२।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सातवाँ अध्याय

हिन्दू विवाह

हिन्दू विवाह का स्वरूप

विवाह-प्रथा प्राचीन काल से ही हिन्दू समाज के सङ्गठन में प्रमुख नियामक तत्त्व थी जो सामाजिक भी थी, धार्मिक भी। धार्मिकता की छाप होने के कारण व्यक्ति और समाज के आचरणों में मर्यादा की स्थिति रहती थी। विवाह का यह स्वरूप समयानुसार यत्किंचित परिवर्तन के साथ मध्ययुग में भी प्रायः परम्परागत ही था। हिन्दू-विवाह-पद्धति पर अलबीरूनी ने भारतीय धर्मशास्त्रों के आधार पर विस्तार से लिखा है। मध्ययुगीन भारतीय लेखकों के विवरणों के प्रकाश में उसका विवरण यद्यपि बहुत अधिक आधिकारिक नहीं सिद्ध होता, लेकिन उसके विवरण का ऐतिहासिक महत्त्व तो निश्चित ही है।

हिन्दुओं ने विवाह को यौन समस्या के रूप में नहीं देखा, यद्यपि अलबीरूनी हिन्दू-विवाह-पद्धति पर लिखते समय यौन-समस्या को ही मस्तिष्क में रखता है, 'व्यवस्थित वैवाहिक जीवन के बिना कोई जाति नहीं रह सकती, क्योंकि इसके द्वारा वासना के उस ज्वार का निरोध होता है जिसे सुसंस्कृत लोग पसन्द नहीं करते।[1] विवाह को भारतीय विचारकों ने प्राचीन-काल से ही महत्त्व दिया है। गृहस्थाश्रम का प्रारम्भ इसी से माना है।[2] किन्तु उनकी दृष्टि में विवाह का कारण 'वासना के ज्वार का विरोध' न रहा बल्कि विवाह ब्रह्मचर्य आश्रम के बाद गृहस्थ आश्रम में प्रविष्ट होने का एक सामाजिक और सुसभ्य पग रहा।[3] अतः विवाहोपरान्त गृहस्थ आश्रम मनुष्य की धार्मिक, सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक कर्त्तव्यों को समाहित करता है। जीवन का सर्वांगीण क्षेत्र उसके लिए नवीन कार्यविधियों से युक्त होता है।

भारतीय विचारकों के अनुसार विवाह के दो मुख्य अभिप्राय थे, पत्नी पुरुष को धार्मिक अधिकारों को सम्पन्न करने में समर्थ करती थी तथा यह समझा

---

1. *AI.*, Vol. II. p. 155.
2. मनु, ३.४।
3. कर्म स्मार्त्तं विवाहाग्नौ कुर्वीत प्रत्यहं गृही। दायकालाहृते वाऽपि श्रौतं वैतानिकाग्निषु ॥-याज्ञ०. ५.९७।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

जाता रहा कि सन्तान की माँ के रूप में वह पुरुष को नरक जाने से बचाती है।[1] यौन समस्या को प्रमुख मानकर हिन्दू विवाह की व्यवस्था नहीं की गई। प्रत्येक पुरुष पर मर्यादा और शील का अंकुश रहा। मनु के अनुसार पति देवों के द्वारा दी गई स्त्री को ही प्राप्त करता है, अपनी इच्छा से नहीं।[2] अतः इस कथन से स्पष्ट होता है कि भारतीय विचारकों ने विवाह को न यौन समस्या का समाधान माना था, न पुरुष की अपनी इच्छा (कामना) को महत्त्व दिया था। तत्कालीन समाज में बिना देवों की आज्ञा के कोई भी हिन्दू स्त्री नहीं प्राप्त कर सकता था। उसके ऊपर देवों की मर्यादा का अंकुश रहता था, इसलिए उसकी कोई अपनी यौनपरक इच्छा नहीं रहती थी। अतएव यौन समस्या हिन्दू-विवाह-पद्धति की प्रमुख तत्त्व न थी। इसमें कोई सन्देह नहीं कि समाज के काम-जीवन की मनोवैज्ञानिक व्याख्या करनेवालों का मत अलबीरूनी जैसा ही होगा किन्तु ऐसी व्याख्या हिन्दू विचारकों ने नहीं की। उन्होंने विवाह को 'वासना के ज्वार का निरोध' न मानकर नैतिक और सामाजिक जीवन की मर्यादा के रूप में माना। इसीलिए हिन्दू धर्मशास्त्रों में स्त्री को कामोपभोग का साधन तथा यौन समस्या का समाधान न मानकर 'शरीरार्द्ध'[3] माना गया है, 'पूज्या'[4] कहा गया है। दोनों का (स्त्री-पुरुष) एक दूसरे से अटूट सम्बन्ध है। बिना स्त्री के पुरुष अधूरा है, बिना पुरुष के स्त्री। दोनों की पूर्णता एकता में ही कही गई है। मनु के कथनानुसार केवल पुरुष कोई वस्तु नहीं, अपूर्ण है। स्त्री, स्वदेह तथा सन्तान ये तीनों मिलाकर ही पुरुष (पूर्ण) होता है, ऐसा ब्राह्मण कहते हैं।[5] जो पति है, वही स्त्री है। घर की शोभा और सम्पन्नता स्त्री से मानी गई है।[6] स्त्री से परिवार बनता है, बढ़ता है, अतः विवाह गार्हस्थ्य जीवन का मूल है और सभी आश्रम गार्हस्थ्य जीवन पर निर्भर करते हैं।[7] इसकी 'पालना'[8] के लिए गृहस्थाश्रम आवश्यक भी रहा। अलबीरूनी स्वयं कहता है कि आचार्य उसे (शिष्य को) विवाह करने की अनुज्ञा देता है। वह विवाह करके एक परिवार की स्थापना करता है।[9] आचार्य

1. आप० ध० सू० २.५.११.१२; मिताक्षरा—याज्ञ० १.७८।
2. मनु०, ९.९५।
3. आम्नाए स्मृतितन्त्रे च लोकाचारे च सूरिभिः। शरीरार्द्धं स्मृता भार्या पुण्यापुण्य फले समाः। अपरार्क, पृ० ७४०।
4. मनु०, ३.५६।
5. मनु०, ९.४५— कुल्लूक भट्ट का भाष्य।
6. मनु०, ९.२६।
7. वही, ३.७७।
8. शुक्र०, ४.१११।
9. *AI.*, Vol. II, p. 131.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

से अनुमति लेकर विवाह करने की बात भारतीय धर्मशास्त्रियों ने भी कही है।[1] विवाह से ही गृहस्थाश्रम का प्रारम्भ होता है,[2] क्योंकि पुरुष और स्त्री के व्यक्तित्व का विकास तथा वंश का उत्थान विवाह से ही हो पाता है। विवाह ही स्त्री और पुरुष को पूर्णता का आधार है।

विवाह-वय :

मध्यकाल में प्राचीनकाल[3] की तरह वधू की वय वर के अपेक्षाकृत अत्यधिक अल्प रही। वैदिककालीन प्रौढ़ विवाह-प्रथा कालान्तर में अल्प-वय-विवाह में परिवर्तित हो गई। अलबीरूनी के अनुसार हिन्दू बहुत छोटी अवस्था में विवाह करते हैं।[4] बारह वर्ष से अधिक आयु की स्त्री से विवाह करने का विधान नहीं।[5] वर की आयु वह पच्चीस वर्ष बताता है।[6] मनु का कथन है कि तीस वर्ष की अवस्था वाले पति बारह वर्ष की अवस्था वाली सुन्दरी कन्या के साथ विवाह करे अथवा शीघ्र विवाह करनेवाला पति चौबीस वर्ष की अवस्थामें आठ वर्ष की कन्या से विवाह करे।[7] पराशर स्मृति में भी बारह वर्ष की अवस्था में रजोदर्शन होने पर तुरन्त कन्यादान का विधान किया गया है, ऐसा न करनेवाला नरकगामी कहा गया है।[8] गृहस्थरत्नाकर के अनुसार कन्या की आयु क्रमशः ८,१२,१६ या २० वर्ष होनी चाहिए।[9] लेकिन इस बात पर सभी धर्मशास्त्री एक मत हैं कि पत्नी पति से कम से कम तीन वर्ष या इससे अधिक छोटी हो।[10]

ऐसा लगता है कालान्तर में कन्या का विवाह-वय बहुत कम माना जाने लगा था। अल्प-वय-विवाह (बाल-विवाह) के कतिपय ऐतिहासिक उदाहरण हमें मिलते हैं। रायपियौरा का पहला[11] विवाह मंडोवर के परिहार (प्रतिहार) नाहरराय की कन्या से और दूसरा[12] आबू नरेश सलख परमार की पुत्री जेतपर-

1. मनु०, ३. ४, याज्ञ०, ३.५१।
2. वि० पु०, ३. ११. २३।
3. महा०, अनु० ४४. १४।
4. *AI.*, II, p. 155.
5. *AI.*, Vol. II, p. 131.
6. *AI.*, Vol. II, p. 131.
7. मनु०, ९.९४।
8. परा०, ७.७–८। Cf. Kane, P. V., *The Marriageable Age of Girls in Ancient India*, JCV, pp. 191–97.
9. गृहस्थरत्नाकर, पृ० ८३।
10. गौतम० ४, याज्ञ० १.५२, मनु० ३.४, १२, कामसूत्र ३.१,२।
11. पृथ्वीराज-रासो, सातवां समय।
12. वही, चौदहवां समय।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मार की बहन इंच्छिनी से हुआ। विक्रमाङ्क (कल्याण) चालुक्य की कन्या का विवाह गोवा के कदम्ब युवराज से अल्प-वय में ही हुआ था।

अल्पवय-विवाह का कारण

श्री चिन्तामणि[1] विनायक वैद्य ने लिखा है कि अल्प-वय-विवाह का कारण स्त्रियों का बौद्ध भिक्षुणी हो जाना है, जिसे रोकने के लिए बाल-विवाह की प्रथा चली। इस कथन के विपरीत डॉ० राजबली[2] पाण्डेय का अभिमत है कि बाल-विवाह का कारण धार्मिक न होकर राजनीतिक है। विदित होता है कि बाल-विवाह का कारण भारतीय बौद्ध धर्म न होकर विदेशियों का अभियान ही रहा, जो तीसरी-चौथी शती में भारत के पश्चिमोत्तर प्रान्तों पर होने लगा था। ऐसे आक्रमणों से स्त्रियों की सुरक्षा की बात उठने लगी। फलतः तत्कालीन समाजशास्त्रियों ने विदेशी आक्रामकों द्वारा किए जाने वाले नारी-अपहरण से त्रस्त होकर, बाल-विवाह की व्यवस्था की। यही व्यवस्था सदियों हिन्दू विवाह को प्रभावित करती रही। अतः विदेशियों का अनवरत आक्रमण हिन्दू समाज में बाल-विवाह के प्रचलन का मुख्य कारण बना। हिन्दू समाज में स्त्रियों को सदा से पावन और पूज्या के रूप में देखा जाता रहा है।[3] उनके प्रति हिन्दू समाज में आदर और सहानुभूति की भावना रही है, जबकि विदेशी आक्रामकों की नजर में स्त्रियाँ सर्वदा विलासिनी और भोग्या के रूप में देखी जाती रहीं। अतः सामाजिक उत्थान के उदात्त स्वरूप को सुरक्षित एवं स्थिर रखने के लिए भारतीय नियायकों ने विवाह में, हिन्दू समाज के सुरक्षार्थ अल्पायु का प्रतिबन्ध लगाकर नारी-अपहरण में अवरोध उपस्थित किया।

विवाह की आज्ञा

प्राचीनकाल से हिन्दू समाज में यह व्यवस्था थी कि गुरु के यहाँ निश्चित अवधि तक ब्रह्मचर्याश्रम समाप्त कर स्नातक अपने घर गृहस्थाश्रम करने के निमित्त जाया करते थे। गृहस्थाश्रम का प्रारम्भ विवाह से ही होता था। आज की आधुनिक सभ्यता की तरह प्राचीनकाल अथवा मध्यकाल में यह व्यवस्था नहीं थी कि स्नातक बिना गुरु और माता-पिता की अनुज्ञा के विवाह कर ले। अलबीरूनी लिखता है, 'आचार्य उसे (शिष्य को) विवाह करने को आज्ञा देता है।'[4]

---

1. Vaidya, C.V., *Hindu Mediaval India,* Vol. III. Book 8, Sec.2.
2. पाण्डेय, राजबली, हिन्दी साहित्य की पीठिका, भा० १, पृ० १९।
3. मनु०, ३.५६। 4. *AI*.. Vol. II, p. 133.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

विवाह में गुरु के आदेश का निर्देश प्राचीनकाल के धर्मशास्त्रकारों ने भी किया है। मनु के अनुसार गुरु की अनुमति प्राप्त कर सुन्दरी कन्या से पाणिग्रहण संस्कार सम्पन्न करना चाहिए।[1] कामन्दक ने तो गुरु अथवा गुरुपुत्र की अनुज्ञा के अभाव में स्वेच्छा का निर्देश भी किया है।[2]

माता-पिता की शुभाशंसा

गुरु की अनुज्ञा के बाद मातापिता की स्वाभाविक शुभाशंसा अपनी सन्तान के प्रति थी। अलबीरूनी लिखता है कि माता-पिता अपने पुत्रों के विवाह की व्यवस्था करते हैं।[3] निश्चय ही सन्तान के विवाह की सारी व्यवस्था माता-पिता करते थे। पुत्र पर माता-पिता का प्रकृततः स्नेह और आशीर्वाद रहता था जिनकी अनुज्ञा से वह विवाह करता था।[4] आज भी हिन्दू समाजमें सन्तान की शादी का सारा भार माता-पिता वहन करते हैं।

दहेज-प्रथा

आज हिन्दू-विवाह में दहेज की प्रथा का जो प्राधान्य है, उसका पहले अस्तित्व न था। अलबीरूनी लिखता है, 'किसी प्रकार के लेन-देन की बात दोनों पक्ष में नहीं होती।''[5] मनु ने 'कन्या शुल्क' लेनेवाले पिता को 'विक्रयी' और 'स्त्रीधन' लेनेवाले बान्धव को 'अधोगति' प्राप्त करनेवाला 'पापी' बताया है।[6] इससे यह प्रकट होता है कि 'लेन-देन' अथवा 'दहेज' जैसे नाम की कोई चीज पहले नहीं थी। यह आधुनिक काल की ही त्रुटि है। सिद्ध है कि पूर्ववर्ती काल में विवाह दहेज के बिना, क्रय-विक्रय से दूर दोनों पक्षों के आपसी मन-मिलाप पर होता था।

विवाह-क्रिया

हिन्दू समाज में विवाह का आयोजन अत्यन्त शुभदायक तथा मङ्गलकारी माना गया है। विवाह के शुभ अवसर पर दानादि के साथ यज्ञ-क्रिया भी की जाती थी। अलबीरूनी लिखता है कि उस अवसर पर ब्राह्मण यज्ञों का अनुष्ठान करते हैं तथा एक दूसरे को दान मिलता है। विवाह के उपकरण उपस्थित किए जाते हैं। पति स्त्री को विवाह के पहले एक उपहार देता है, जिसको वह लौटा सकने का अधिकार नहीं रखता, यदि पत्नी

---

1. मनु० ३.४। 2. का०, २.२३।
3. *AI.*, Vol. II, p. 155.
4. हिरण्यकेशिपण—'गृह्यसूत्र'—हस्तलेख—पूना।
5. *AI.*, Vol. II, p. 155, 6. मनु०, ३.५१-५२।

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

चाहे तो अपनी इच्छानुसार लौटा सकती है।[1] इस सम्बन्ध में सुलेमान का कथन अधिक सुस्थ है। वह कहता है कि यहाँ विवाह करने से पहले लड़के और लड़की वाले एक-दूसरे के पास सन्देशा भेजते हैं। फिर उपहार और भेंट आदि भेजते हैं और सामर्थ्य के अनुसार दान देते हैं।[2] अलबीरूनी का उपर्युक्त बिवरण भारतीय देव-विवाह-प्रकार का है, जिसका अनुष्ठान बिना यज्ञ के नहीं सम्पन्न होता था,[3] जिसमें दोनों पक्ष के लोग उत्तम-मङ्गल कामना के साथ उपस्थित होते थे। तैतरीय ब्राह्मण[4] में विवाह को एक प्रकार का यज्ञ माना गया है। पाणिनि[5] ने भी यज्ञ के संयोग की बात कही है। विवाह के उपकरण में क्या-क्या था, इसका अलबीरूनी ने कोई विवरण नहीं दिया है।

विवाह-भेद : देव विवाह

प्राचीनकाल से हिन्दू समाजशास्त्री विवाह के आठ प्रकार की व्याख्या करते आ रहे थे ब्राह्म, प्रजापत्य, आर्ष, देव, गन्धर्व, असुर, राक्षस और पैशाच[6]। मध्ययुग में भी आठ ही प्रकार के विवाह की चर्चा तत्कालीन हिन्दू समाजविश्लेषकों ने की है[7]। किन्तु अलबीरूनी ने विवाह के प्रकार पर कुछ भी नहीं लिखा है। उसने केवल यज्ञ के प्रकरण का वर्णन किया है, जिसमें वर और वधू यज्ञ के सम्मुख उपस्थित होते हैं तथा वर वधू को विवाह के पूर्व एक उपहार देता है[8]। विवाह के इस प्रकार को मनु,[9] याज्ञवल्क्य,[10] देवल[11] और विज्ञानेश्वर[12] ने 'देव विवाह' कहा है। देव विवाह प्रकार ब्राह्मणों के लिए उत्तम था[13]। ऐसा लगता है अलबीरूनी 'देव' विवाह प्रणाली ही जानता था।

---

1. *AI.*, Vol. II, p. 154.
2. *Silsiltut Tawarika*, p. 53, (Paris, 1811)
3. मनु० ३·२८, याज्ञ० ३·५९। 4. २·२·२ ६।
5. ४·१·३३।
6. मनु० ३ ३१, आश्व० गृ० सू० १·६, गौतम० ४·६–१३, बौधा० ध० सू० १·११, वि० ध० सू० २४·१८–१९, याज्ञ० १·५८, कौ० अ० ३·१। वि० पु० ३·११·२४।
7. विज्ञानेश्वर–मिताक्षरा–याज्ञ० ३·५८–६१।
8. *AI.*, Vol. II, p. 155. 9. मनु० ३·२८।
10. याज्ञ० ३·५९। 11. गृह्य रत्नाकर, ६९।
12. विज्ञानेश्वर मिता०–याज्ञ० १·५९। 13. विश्वरूप–याज्ञ० १·५९–६०।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सवर्ण विवाह : सजातीय विवाह

हिन्दू समाज में प्राचीनकाल से 'सवर्ण'[1] और 'सजातीय'[2] विवाह को महत्त्व दिया जाता रहा है। प्रत्येक हिन्दू को अपने वर्ण के भीतर ही विवाह करने का विधान था।[3] हिन्दू धर्मशास्त्रों में सवर्णा नारी को सर्वश्रेष्ठ बतलाया गया है।[4] इस संदर्भ में अलबीरूनी का कहना है कि एक वर्ण का पुरुष अपने वर्ण की या अपने से निचले वर्ण की स्त्री से विवाह कर सकता है।[5] अलबीरूनी का यह कथन पहले सवर्ण विवाह का ही समर्थन करता है बाद में अनुलोभ विवाह का। मध्यकालीन भारतीय समाज में भी प्राचीनकाल की ही तरह सवर्ण विवाह का प्रचलन था। धङ्गदेव के खजुराहो अभिलेख से विदित होता है कि कामारि हर्षदेव ने सम कुलशील (सवर्ण) चाहमान वंश की उत्पन्न सुयोग्य कन्या से विवाह किया।[6]

अंतर्जातीय विवाह : अनुलोम विवाह और प्रतिलोम विवाह

प्रत्येक युग के समाज में कोई न कोई विषम तत्व सर्वदा रहा है। अनुलोम और प्रतिलोम विवाह अंतर्जातीय विवाह के ही रूप हैं, जिन्हें समाज में साधारणत: अच्छा नहीं माना जाता रहा। भारत में अनुलोम विवाह का प्रचलन वैदिककालीन है। वैदिक युग के कतिपय उदाहरण भी मिलते हैं। ब्राह्मण ऋषि च्यवन का विवाह क्षत्रिय राजकुमारी सुकन्या से, ऋषि श्यावश्य का विवाह क्षत्रिय राज-कन्या रथवीति से और ऋषि बक्सीवन का विवाह स्वनय की पुत्रियों से हुआ था।[7] अथर्ववेद में यह कहा गया है कि ब्राह्मणों का सभी वर्णों की कन्याओं से विवाह करने का अधिकार है।[8]

अलबीरूनी का यह कथन है कि पुरुष अपने से निम्न वर्ण की स्त्री से विवाह कर सकता है।[9] उसका यह उद्घाटन मध्यकाल में अनुलोम विवाह प्रचलन का अनुमोदन करता है। नारद के अनुसार ब्राह्मण अनुलोम से तीन स्त्रियाँ और व्याह सकता है। किन्तु अलबीरूनी का उक्त कथन प्रत्येक वर्ण के

---

1. मनु १०.५। 2. नारद० ४।
3. वैदिक इण्डेक्स, २,२६८, मनु० ३.४।
4. मनु० ३.१२, याज्ञ० ३.६२।
5. *AI.*, Vol. II. pp. 155-56.
6. *EI.*, I, p. 126, verses 20-21.
7. श० ब्रा० ४.१.५, १३.२.९.८, बृहद्देवता ५.४०, ऋ० १.१२६।
8. अथर्ववेद, ४. १७.८.९।
9. *AI.*, Vol. II, p. 156.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

लिए लागू होता-सा प्रतीत होता है, जिससे यह पूर्णतः स्पष्ट हो जाता है कि ब्राह्मण क्षत्रिय की कन्या से विवाह कर सकता था, क्षत्रिय वैश्य की कन्या से, वैश्य शूद्र की कन्या से, किन्तु क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र अपने से ऊँचे वर्ण वालों से विवाह नहीं कर सकते थे।[1] अलबीरूनी का उक्त कथन स्मृतियों तथा गृह्यसूत्रों से संपुष्ट होता है, जिनके अनुसार ब्राह्मण, ब्राह्मण क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र कन्या से, क्षत्रिय, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र कन्या से, वैश्य, वैश्य और शूद्र कन्या से विवाह कर सकते हैं।[2] याज्ञवल्क्य स्मृति के टीकाकार विश्वरूप[3] और मनुस्मृति के टीकाकार मेधातिथि[4] ने भी क्षत्रिय कन्या से ब्राह्मणों को विवाह करने का अधिकार बतलाया है।

भारतीय इतिहास में अनुलोम विवाह के कतिपय साहित्यिक और अभिलेखीय उदाहरण मिलते हैं। ब्राह्मण शासक पुष्पमित्र शुंग के पुत्र अग्निमित्र से क्षत्रिय कुमारी मालविका का विवाह हुआ था।[5] महाकवि बाण के सौतेले भाई चन्द्रसेन और मातृषेण शूद्रा से उत्पन्न हुए थे।[6] कविवर राजशेखर की पत्नी अवन्ति-सुन्दरी क्षत्रिय थी।[7] राजतरङ्गिणी के अनुसार संग्रामराज की बहन का पाणिग्रहण एक ब्राह्मण से हुआ था।[8] कथासरित्सागर से विदित होता है कि क्षत्रिय राजकुमारी का ब्राह्मण कुमारसे विवाह हुआ था।[9] प्रतिहारों की उत्पत्ति ब्राह्मण पुरुष हरिश्चन्द्र और क्षत्रिय कुमारी भद्रा के संयोग से हुई थी।[10] इन प्रमाणों के अतिरिक्त अलबीरूनी के समय से सदी पूर्व होने वाले अरबी लेखक इब्न खुर्दाज्बा के कथन से अलबीरूनी द्वारा निर्दिष्ट अनुलोम विवाह की पूर्णरूपेण पुष्टि होती है। वह क्षत्रियों को कहता है, 'वे ब्राह्मणों की कन्याओं को पत्नी नहीं बना सकते, बल्कि उनकी कन्याओं को ब्राह्मण पत्नी बना सकते हैं।'[11] लेकिन अलबीरूनी के समय अनुलोम विवाह का ब्राह्मणों में कहाँ तक प्रचलन था, इस पर वह स्वयं लिखता है कि हिन्दुओं को पहले अपने से निम्न वर्णों की

1. शङ्ख–विज्ञा० मिता० १·४, याज्ञ० स्मृ० ४·९१–९२।
2. मनु० ३·१३, याज्ञ० १·५७, ९१–९२, बौधा० ध० सू० १·८·२, त्रि० ध० सू० २४·१–४, पार० गृ० सू० १·४, वशि० ध० सू० १·२४–२७।
3. २·१२९, ३·२८३।
4. मेधातिथि–मनु० ३·१४।
5. मालविकाग्निमित्र, उच्छ्वास १।
6. हर्षचरित १।
7. कर्पूरमंजरी १·११।
8. राजतरङ्गिणी, ७.१०-१२।
9. कथासरित्सागर, २५.१७१।
10. *EI.*, Vol.XVIII.p.87. (बाउक के जोधपुर का लेख)
11. *AI.*, Vol,II, p. 156.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

स्त्रियों से विवाह करने का अधिकार था, किन्तु हमारे समय में ब्राह्मण कभी अपने से निम्न वर्ण की स्त्री से विवाह नहीं करते।[1] उसके इस कथन से स्पष्ट है कि अनुलोम विवाह ब्राह्मणों में नहीं प्रचलित था, बल्कि क्षत्रियों और वैश्यों में प्रचलित था।

प्रतिलोम विवाह

भारतीय समाज में प्रतिलोम विवाह को प्राचीनकाल से हेय दृष्टि से देखा जाता रहा हैं और इनसे उत्पन्न सन्तान को अस्पृश्य तथा नीच ('वर्ण संकर') माना जाता रहा है।[2] रक्त की इस संकरता को सभी शास्त्रकारों ने निन्द्य और वर्जित माना है। मध्ययुग के हिन्दू समाज में भी प्राचीनकाल का यह स्वरूप तद्वत वर्तमान था। अलबीरूनी कहता है कि किसी मनुष्य को अपने से ऊँचे वर्ण की स्त्री से विवाह करने को आज्ञा नहीं।[3] निश्चय ही निम्न वर्ण को अपने से ऊँचे वर्ण की कन्या से विवाह का विधान नहीं था। ऐसा लगता है, इन नियमों के प्रणेता ब्राह्मण थे जिन्हें इतर वर्ण को अपनी कन्या देना स्वीकार नहीं था, बल्कि उन्हीं की कन्या लेना स्वीकार था। यही कारण है कि सवर्ण विवाह व्यवस्था की सुरक्षा हिन्दू समाज में हो पाई। यद्यपि ऋग्वैदिककालीन उदाहरण मिलता है कि ब्राह्मण कन्या अङ्गिरसी क्षत्रिय भावयव्य की पत्नी थी।[4] किन्तु ऐसे विवाह की सन्तान को याज्ञवल्क्य ने 'सर्वधर्मबहिष्कृत' किया है। इब्नखुर्दाज्बा से जहाँ अलबीरूनी का समर्थन होता है, वहाँ अल-इदरीसी से खण्डन। अलइदरीसी लिखता है, 'क्षत्रिय ब्राह्मणों की कन्या से विवाह कर सकते हैं, किन्तु ब्राह्मण क्षत्रियों की कन्याओं को पत्नी नहीं बनाना चाहते।'[5] लेकिन ऐसे स्थलों पर हम अलबीरूनी को ही प्रामाणिक मानते हैं, क्योंकि उसने भारतीय आचार-विचारों पर इस देश में कुछ वर्ष रहकर स्मृतियों और धर्मशास्त्रों को पढ़कर अपना विवरण लिखा है। उसके कथन की पुष्टि भारतीय धर्मशास्त्रों से भी होती है तथा उसी जैसे अरबी लेखक इब्नखुर्दाज्बा से भी। निष्कर्षतः यह सत्य है कि मध्ययुग में सवर्ण और अनुलोम विवाह का प्रचलन रहा, प्रतिलोम विवाह कादाचित्य था। प्रतिलोम विवाह का मध्यकालीन शिलालेखीय उदाहरण मिलता है। चन्देलों की उत्पत्ति गहड़वाल नरेश इन्द्रजित के काशीस्थ पुरोहित हेमराज की

---

1. *AI.*, Vol.II,p.156.
2. मनु० १०.१२।
3. *AI.*, Vol.II. p.156.
4. ऋग्वेद, १.२६।
5. *ED.*, Vol.II, p. 76.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कन्या हेमावती और आकाशवासी चन्द्रमा के संयोग से हुआ था।[1] किन्तु यह वृत्तान्त साहित्यिक ही अधिक प्रतीत होता है।

सगोत्र विवाह

हिन्दू विवाह में गोत्र का ध्यान प्राचीनकाल से रखा जाता रहा है। तदनुसार पति-पत्नी का गोत्र भिन्न होना आवश्यक था। असगोत्र विवाह की व्यवस्था सभी स्मृतिग्रन्थों ने की है, यद्यपि वैदिक ग्रन्थों में सगोत्र विवाह को वर्जित नहीं माना गया है, किन्तु प्राचीनकाल के हिन्दू धर्मशास्त्रों में सगोत्र विवाह को निन्द्य माना जाने लगा जो क्रमशः पूर्णरूप से निषिद्ध हो गया।[2] मध्ययुगीन हिन्दू परिवार में भिन्न गोत्र विवाह की ही व्यवस्था थी।[3] अलबीरूनी भी लिखता है कि वे अपने विवाह-नियम के अनुसार किसी सम्बन्धी की अपेक्षा किसी अपरिचित से विवाह करना उचित समझते हैं। पति और पत्नी का सम्बन्ध जितना दूर का होता है, उतना ही वह अच्छा रहता है। अपनी वंशजा अर्थात् पोती या परपोती तथा अपनी पूर्वजा माता, दादी या परदादी दोनों प्रकार की सगोत्र स्त्रियों के साथ विवाह वर्जित है।[4] मध्यकालीन हिन्दू समुदाय में सगोत्र कन्या प्राचीनकाल को ही तरह विवाह के लिए निषिद्ध ठहराई गई। बौधायन ने सगोत्र कन्या से मातृवत व्यवहार करने को लिखा है।[5] सगोत्र कन्या से विवाह करने पर चन्द्रायण व्रत के अनुष्ठान का सङ्केत किया गया है।[6] फूफी, मौसी एवं नाना की कन्या से विवाह करने वाले को मनु[7] ने 'नरकगामो' बताया है। इतना ही नहीं समानगोत्र–प्रवरा कन्या से विवाह करने वाले ब्राह्मण को चण्डाल उत्पन्न करनेवाला कहा गया है।[8]

सपिण्ड विवाह

हिन्दू विवाह में सपिण्डता का भो निषेध किया गया है। एक ही पिण्ड की स्त्रो से विवाह वर्जित था।[9] मध्यकालीन व्याख्याकार विज्ञानेश्वर के अनुसार असपिण्डता वह स्त्री है जो सपिण्डा नहीं है। सपिण्डा वह है जिसमें

---

1. *Arch.* Survey Report., Vol. II, p. 445.
2. मनु०, ३·५, गो० ४·२, याज्ञ० ३·५३।
3. स्मृतिचन्द्रिका, १. पृ० ७१, स्मृतिमुक्ताफल; पृ० १३१, निर्णयसिन्धु ३, पृ० ३०२, उद्वाहतत्व, पृ० १११, संस्कार प्रकाश, पृ० ६८० ॥
4. *AI.*, Vol. II p. 155.
5. बौधा० परा० स्मृति द्वारा उद्धृत–आ० का० २.२।
6. अपरार्क, पृ० ८० ॥
7. मनु०, ११·१७१-७२ ॥
8. समान गोत्र प्रवरांम् कन्यामूढ़ोपगम्य च। तस्यामुत्पाद्य चाण्डालं ब्रह्मण्यारेव हीयते ॥ आपस्तम्ब द्वारा उद्धृत, पृ० ११६,
9. मनु०, ३.५,

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

समाने पिण्ड (अर्थात् एक ही शरीरांश) हो। व्यक्तियों से सपिण्डता का सम्बन्ध इस तथ्य से उत्पन्न होता है कि दोनों में एक ही शरीर के अंश हैं। पुत्र का पिता के साथ सपिण्ड सम्बन्ध इसलिए है कि पिता के शरीर के कण उसमें वर्तमान हैं। इसीप्रकार पितामह और प्रपितामह आदि से उसका सपिण्ड सम्बन्ध है। पुत्र का माता के साथ सपिण्ड सम्बन्ध इसलिए है कि उसमें माता के शरीर के अंश वर्तमान हैं। इसी प्रकार मातामह, मातुल, मातृश्वसा आदि से उसका सपिण्ड सम्बन्ध है। अतएव शरीर के अवयवों की क्रमबद्धता से समान पिण्डता सिद्ध होती है।[1] अलबीरूनी लिखता है कि सपिण्ड सम्बन्धियों के साथ भी जैसा कि बहिन, भतीजा, मौसी या फूफी और उनको पुत्रियाँ, विवाह के लिये निषिद्ध हैं। सिवा उस दशा में जब सम्बन्धियों का जोड़ा जो आपस में विवाह करना चाहता है, पाँच क्रमागत पीढ़ियों द्वारा एक दूसरे से दूर हो चुका हो, उस अवस्था में निषेध नहीं रहता, किन्तु इतना होने पर भी ऐसा विवाह उनमें पसन्द नहीं।[2] शूद्रों को छोड़कर हिन्दुओं में सपिण्ड बहिन, फूफी, मौसी तथा उनकी पुत्रियों से विवाह नहीं किया जाता था।[3] वैसे दक्षिण भारत के ब्राह्मण मामा की लड़की से शादी करते हैं।[4] उत्तर भारत में साधारणतः माता को पाँच पीढ़ी तथा पिता की सात पीढ़ी तक सपिण्डता माना जाती थी।[5] इस तरह सपिण्ड विवाह भी सामान्यतः हिन्दू समाज में वर्जित था। गौतम के अनुसार सात और पाँच पीढ़ी के बाद सपिण्डता से निवृत्ति मिलती है।[6] पाणिनि ने सामान्यतः सात पीढ़ी तक का संकेत किया है।[7]

बहुपत्नित्व

प्राचीन भारतीय हिन्दू समाज में बहुपत्नित्व[8] का विधान रहते हुए भी एकपत्नित्व को आदर और श्रद्धा की दृष्टि से देखा जाता रहा है। सम्पूर्ण हिन्दू

---

1. विज्ञानेश्वर-मिताक्षरा—याज्ञ० १.५२। 2. *AI.*, Vol, II, p. 155.
3. मनु० ११.१७१, वसिष्ठ-विज्ञानेश्वर द्वारा मिताक्षरा में उद्धृत १.५३, निर्णयसिन्धु ३ पूर्वार्द्ध, पृ० २८४, नारद उद्वाहत्व में उद्धृत, पृ० १०८।
4. बृहस्पति-स्मृतिचन्द्रिका में उद्धृत १, पृ० १०, व्यवहारमूयख, पृ० ७, स्मृतिमुक्ताफल, पृ० १३१।
5. नारद-उद्वाहत्व में उद्धृत, पृ० १०८, विज्ञानेश्वर मिताक्षरा- १.५३, पैठीनसि को विपरीत स्पष्ट करते हुए-उद्वाहत्व, पृ० १०९, निर्णयसिन्धु ३, पृ० २८५, मदनपारिजात, पृ० १३८-१४०।
6. पिण्डनिवृत्तिः सप्तमे पंचमे वा, गौ० ४.४.१३।
7. ४.१.१५४।
8. Sircar, D.C., *Some Aspects of the Earliest Social Hist. of India*, p. 88

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

धर्मशास्त्र एकपत्नित्व की शालीनता का समर्थन करता है,[१] किन्तु अलबीरूनी लिखता है कि पुरुष एक से चार स्त्रियाँ ब्याह सकता है। उसे चार से अधिक रखने का विधान नहीं, किन्तु उनमें से कोई एक मर जाय तो ३ संख्या की पूर्ति के निमित्त चौथो पत्नी रख सकता है, किन्तु उसे इसका उल्लंघन नहीं करना चाहिए।[२] वह आगे कहता है, 'कुछ हिन्दुओं का विचार है कि पत्नियों की संख्या वर्ण पर आधारित है, इसके अनुसार ब्राह्मण चार, क्षत्रिय तीन, वैश्य दो और शूद्र एक पत्नी के अधिकारी हो सकते हैं।[3] अलबीरूनी के पूर्ववर्ती अरबयात्री सुलेमान स्त्रियों की संख्याओं की अनिश्चितता पर लिखता है कि स्त्रियाँ रखने की संख्या भी यहाँ निश्चित नहीं। जो जितनी चाहे, उतनी रखे।[४]

अनेक पत्नित्व की प्रणाली तो वैदिक कालीन है।[५] अथर्ववेद[६] में ब्राह्मण को प्रत्येक वर्ण से पत्नी पाने को कहा गया है। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि ब्राह्मण की चारो पत्नियाँ प्रत्येक वर्ण से मिलाकर होती थीं। यह भी कम आश्चर्य की बात नहीं कि वैदिक कालीन युवा विवाह व्यवस्था कालान्तर में अल्प-वय-विवाह के रूप में परिवर्तित हो गई, किन्तु ब्राह्मणों की चार पत्नियों का अधिकार अलवीरूनी के काल तक अपरिवर्तनीय बना रहा। अलबीरूनी का कथन देवल के कथन से पूर्णतः मिलता है। उसके अनुसार ब्राह्मण की चार, क्षत्रिय की तीन, वैश्य की दो और शूद्र को एक पत्नी हो सकती है।[७]

समाज की ऐसी परम्परा थी कि सन्तान की उत्पत्ति व्यक्ति के लौकिक और पारलौकिक सुख के लिए वाञ्छनीय थी। अतः मनु ने यह व्यवस्था दी कि अगर पत्नी बन्ध्या हो, या सन्तान उत्पन्न होकर मर जाती हो अथवा पत्नी अप्रियवादिनी हो तो पुरुष दूसरी शादी कर सकता है।[८] देवल ने मनु की व्यवस्था को दुहराते हुए अप्रियवादिनी स्त्री का उल्लेख नहीं किया है।[९] मनु की उदार भावना ने स्त्री की स्थिति का भान

---

1. आप० ध० सू० २.५.१२-१३, नारद (स्त्रीपुंजस) ९५।
2. *AI.*, Vol. II, p. 155.
3. *AI.*, Vol. II, p. 155.
4. *Silsilatut Tawarikh*, p. 54.
5. तै० सं० ६.६.४.३, ६.५.१.४, ऐ० ब्रा० १२.११।
6. अ० वे० ५.१७.८.९।
7. एक शूद्रस्य वैश्यस्य द्वे तिस्रः क्षत्रियस्य च। चतस्रो ब्राह्मणस्य स्युर्भार्या राजो यथेच्छतः॥—देवल 'गृह्यरत्नाकर' पृ० ८५ पर उद्धृत।
8. मनु० ९.८१। 9. दे० स्मृतिचन्द्रिका, २४४।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

करते हुए उसकी इच्छा को भी महत्त्व दिया है। उनका कथन है कि अगर स्त्री हितैषिणी, शीलसम्पन्न और रोगिणी हो तो उसकी अनुमति से विवाह करना चाहिए।[1]

कभी-कभी व्यक्ति केवल कामवासना से प्रेरित होकर दूसरा विवाह करता था। ऐसी स्थिति में उसके लिए यह आवश्यक ठहराया गया कि वह पहली पत्नी को धन से सन्तुष्ट करे, तदनन्तर दूसरा विवाह करे।[2]

एक से अधिक पत्नी की प्रथा निःसन्देह राजकुलों से सम्बन्धित रही। पूर्वमध्ययुगीन साहित्यिक ग्रन्थों से अनेक उदाहरण देखने को मिलते हैं। नवसाहसाङ्क चरित, विक्रमाङ्कदेव चरित, वृहत्कथामञ्जरी, कथासरित्सागर आदि में इसके प्रचुर प्रमाण हैं। साधारण जनता तो एक पत्नी ही की भक्त थी, क्योंकि उसके पास इतना साधन न था कि वह तीन-चार विवाह करके निभा सके। बहुपत्नित्व के साधारणतः निम्नलिखित कारण माने जा सकते हैं—

(१) कामलिप्सा से ग्रसित होकर अनेक स्त्रियों को पत्नी बनाना।

(२) सन्तति लिप्सा से, उसके अभाव में, अनेक विवाह किया जाता था।

(३) शौर्य लिप्सा से सबल कन्या अपहरण कर कई विवाह किया जाता था।

अलबीरूनी के कथन पर भारतीय धर्मशास्त्रकारों का प्रभाव देखते हुए यह प्रतीत होता है कि ब्राह्मण प्रत्येक कर्म में प्राचीन युग की तरह मध्ययुग में भी श्रेष्ठ और पूज्य माने जाते रहे। इसीलिए उन्हें विवाह में भी विशेषाधिकार प्राप्त रहा और वे चार पत्नियों के स्वामी होते रहे। और, यह असत्य नहीं कि अलबीरूनीकालीन अधिकांश सम्पन्न ब्राह्मण चार पत्नियों के पति रहते रहे। पुराण और इतिहास में तो राजाओं की पत्नियों की संख्या अलबीरूनी द्वारा विवृत्त चार से अधिक देखने को मिलती है। कृष्ण की सोलह हजार पत्नियाँ थीं।[3] पृथ्वीराज चौहान की आठ पत्नियाँ थीं।[4] जबलपुर में पाए गए यशःकर्णदेव के लेख से विदित होता है कि चेदिवंशी गाङ्गेयदेव ने अपनी सौ गृहिणियों के साथ प्रयाग में मुक्ति-लाभ किया था।[5] अतः बहुपत्नित्व

---

1. मनु० ९.८३।
2. एकामुत्क्रम्य कामार्थमन्या लब्धुं यदीच्छति।
   समर्थस्तोषयित्वार्थैः पूर्वोढामपरां वहेत्॥ —स्मृतिचन्द्रिका, २४४।
3. महा०, मौसलपर्व, ५.६। 4. पृथ्वीराजरासो।
5. प्राप्ते प्रयागवट्मूलनिवेशबन्धौ सार्धं शतेन गृहिणीभिरपुत्र मुक्तिम्।
   EI., II. p. 4.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

की प्रथा राजघरानों में ही अधिक थी। साधारण समाज में इसका प्रचलन नहीं के बराबर था। आज भी यत्र-तत्र एक से अधिक पत्नियों वाले पति दीख पड़ते हैं।

एक पत्नित्व का महत्त्व

एक से अधिक पत्नी हिन्दू धर्मसमाज में वर्जित मानी गई है, किन्तु श्री चिन्तामणि विनायक वैद्य का यह कहना कि बहुपत्नित्व पर हिन्दू धर्मशास्त्रों में कहीं भी प्रतिबन्ध नहीं है, युक्तियुक्त नहीं।[१] नारद का कथन है कि अनुकूल, अवाग्दुष्ट (मधुभाषिणी), गृहकार्य में निपुण, साध्वी (पतिभक्ति), प्रजावती (सन्तानयुक्त) पत्नी का त्याग करनेवाले पति को कठिन दण्ड से राजा उचित पथ पर रखे।[२] आपस्तम्ब धर्मसूत्र में कहा गया है कि धर्मप्रजायुक्त पत्नी के रहते हुए दूसरी स्त्री से विवाह नहीं करना चाहिए।[3] हिन्दू समाज में सभी पत्नियाँ 'धर्मपत्नी' के नाम से नहीं सम्बोधित की गई हैं। धर्मपत्नी एक ही कही गई है जिसका पद हिन्दू समाज में बहुत ऊँचा और अभिराम रहा है, इसीलिए वह 'शरीरार्द्ध[४]', (अर्धाङ्गिनी) भी कही गई है।

नियोग

भाई के मर जाने पर उसकी विधवा पत्नी को अपनी पत्नी बना लेने की प्रथा हिन्दू परिवार में व्यवहारतः बहुत कम रही।[५] वैदिक और प्राचीनकाल में 'नियोग' का चलन कुछ स्थितियों में था।[६] मनु के अनुसार सन्तान की इच्छा रखनेवाली विधवा मृत पति के भाई अथवा सपिण्ड से गमन कर सकती है।[७] मेधातिथि ने इस कथन पर टिप्पणी देते हुए इस प्रथा का विरोध नहीं किया है।[८] महानिर्वाणतन्त्र के अनुसार ऐसी व्यवस्था थी कि अगर स्त्री का पति विवाह के तुरन्त बाद मर जाता है और स्त्री समागम नहीं किए रहती तो वह पुनः विवाह कर सकती है।[९] किन्तु अलबीरूनी नियोग का विरोध करते हुए

---

1. Vaidya : *Hindu Mediaeval India*, Vol. III, Book 8, Section 2.
2. नारद (स्त्री पुंस०) ९५। 3. आ० ध० सू० २.५.११-१२।
4. अपरार्क, पृ० ७४०।
5. बृहस्पति-स्मृतिचन्द्रिका में उद्धृत १.१०; स्मृतिमुक्ताफल, पृ० १३०।
6. Sircar, D.C.; *Some Aspects of the Earliest Social History of India*, pp. 78–79
7. मनु० ९.५९। 8. मेधातिथि–मनु ९.५८–५९ पर भाष्य।
9. महानिर्वाणतन्त्र, ११.६७।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

लिखता है कि यदि स्त्री के पति की मृत्यु हो जाए तो वह दूसरे पुरुष से विवाह नहीं कर सकती।[1] लक्ष्मीधर ने मनु[2] के नियोग-विरोधी मत को उद्धृत किया है, जिसमें मनु ने नियोग को 'पशुधर्म' कहा है। बृहस्पति[3] के अनुसार भी नियोग निषेध योग्य है।

विधवा-विवाह का उदाहरण प्रबन्धचिन्तामणि से मिलता है। कुमारदेवी बालविधवा थी, जिससे आशाराज ने विवाह किया। फलतः वस्तुपाल और तेजपाल उत्पन्न हुए।[4]

अलबीरूनी के अनुसार नियोग की यह प्रथा मूर्तिपूजक अरबवासियों में भी थी। इस प्रथा को वे 'निकाह अलमक्त' (Matremonium exocum) कहते थे, अर्थात् जब कोई व्यक्ति अपने पिता या पुत्र की विधवा से विवाह करता था। ऐसे विवाह के बच्चे को 'दैंजन' कहा जाता था।[5] इसके साथ-साथ अलबीरूनी ने ऐसी ही यहूदी-विवाह-प्रथा का उल्लेख किया है। वह कहता है कि यह प्रथा प्रायः वही है जैसे यहूदी विवाह, जिसके लिए यहूदियों के पास कानून है कि व्यक्ति अपने भाई की विधवा से अवश्य शादी करे अगर वह निःसंतान मरा है।[6]

उपरिलिखित विवरण से यह स्पष्ट होता है कि नियोग की यह प्रथा अलबीरूनी के समकालिक अरब-समाज में भी थी। यह प्रथा जिस प्रकार यहूदी-समाज में निःसन्तान स्त्री के लिए आवश्यक थी, उस प्रकार भारतीय समाज की स्त्री के लिए नहीं। भारत में नियोग का व्यवहार अत्यन्त अव्यावहारिक था। विधवा के लिए विवाह की अपेक्षा अनुमरण अथवा ब्रह्मचर्य का जीवनयापन करना श्रेयस्कर समझा जाता था। लेकिन नियोग की व्यवस्था उसकी वर्तमानता तो निश्चित करती ही है।

बहुपतित्व

एक पत्नी के कई पतियों का उल्लेख अलबीरूनी महाभारत के उद्धरण देने में करता है। वह लिखता है कि पाण्डु के चार पुत्रों की एक ही स्त्री थी।

---

1. *AI.*, Vol. II, p, 135.
2. मनु० ९.६५–६६।
3. कृत्यकल्पतरु, व्यवहारकाण्ड, पृ० ६४३ पर उद्धृत।
4. प्रबन्धचिन्तामणि (Tawney) पृ० १५५–५६, वही, (जिनविजय मुनि), पृ० ९८, जैनसाहित्य संशोधक, ३.१०७,
Cf. Diskalkar, D. B., *Some Unpublished Inscriptions of Vastupala*–ABORI, IX, 174 f. n.
5. *AI.*, Vol. I, p. 109.
6. *Ibid.*

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

यह एक-एक महीने प्रत्येक के पास क्रम से रहती थी।[1] पाण्डु के पाँच पुत्र थे युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन, नकुल और सहदेव, जिनकी पत्नी द्रौपदी थी। कुमारिलभट्ट ने 'तन्त्रवार्तिक' में कहा है कि द्रौपदी सदृश्यरूपा कई द्रोपदियाँ थीं जो एक दूसरे से बहुत अधिक साम्य रखती थीं इसलिए महाकाव्य एक ही द्रौपदी पर विवरण प्रस्तुत करता है।[2] किन्तु प्राचीनकाल और मध्यकाल में यह प्रथा व्यवहार में नहीं थी। ऐतरेय ब्राह्मण और तैत्तरीयसंहिता में कई पतियों वाली पत्नी की निन्दा की गई है।[3] स्मृतिचन्द्रिका[4] के अनुसार कुल (समूह) को कन्या देना अन्य देशों में सुना जाता है (अर्थात् भारत में नहीं)। अतः मध्ययुगीन भारतीय समाज विश्लेषकों के विवरण की तुलना में अलबीरूनी का उपरिलिखित कथन मात्र कथा ही है। इससे यह न समझ लेना चाहिए कि भारत में यह प्रथा व्यवहार में थी।

अलबीरूनी ने पाण्डु की उत्पत्ति की भी कथा दी है। वह लिखता है कि पाण्डु के पिता शान्तनु श्रापवश अपनी स्त्रियों से सम्भोग कर सकने में असमर्थ थे अतः उन्होंने अपनी स्त्रियों को बारी-बारी से व्यास के पास पुत्रोत्पत्ति के लिए भेजा।[5]

बहुपतित्त्व की ऐसी रीति अलबीरूनी के समय के अरब लोगों में व्यवहार-रूप में थी। वह लिखता है कि बहुत से लोग एक पत्नी के साथ सम्भोग करते थे। जब वह बच्चे को जन्म देती थी तब वह घोषित करती थी कि बच्चे का पिता कौन था, और जब वह यह न जान पाती थी तब भविष्यवक्ता को जानना पड़ता था।[6] अलबीरूनी के इस उल्लेख से विदित होता है कि मध्ययुगीन अरबवासियों में बहुपतित्व को प्रथा प्रचलित थी। लेकिन भारत में यह प्रथा बिलकुल नहीं थी। केवल महाभारत जैसे ग्रन्थों को छोड़कर बहुपतित्त्व का

---

1. *Ibid.*, Vol. I, p. 108.
   अलबीरूनी ने यह अंश महाभारत के आदिपर्व १९५.२७–२९ से लिया है।
2. तन्त्रवार्तिक, पृ० २०९।
3. ऐ० ब्रा० १२.११, तै० सं० ६.६.४.३, ६.५.१.४। *Cf. Cambridge Hist. of India,* Vol. I, p. 88.
4. स्मृतिचन्द्रिका १.१०।
5. *AI.*, Vol. I, p. 107.
   टि० अलबीरूनी ने यह कथा विष्णुपुराण के ४थे अंश और २०वें अध्याय से ली है।
6. *AI.*, Vol. I, p. 109.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

उल्लेख प्रायः नहीं मिलता। इतिहास में इसका उदाहरण पाना अत्यन्त दुष्कर है। भारतीय समाज में धर्म और नैतिकता का इतना बड़ा अंकुश था कि भारतीय विवाहित स्त्रियों के लिए एक से अधिक पति की बात सोचना मात्र घोर पाप-तुल्य था।

पति-पत्नी का सम्बन्ध

हिन्दू समाज में पति-पत्नी का सम्बन्ध अत्यन्त पावन और पवित्र माना जाता रहा है। पत्नी अपने पति को सच्चे सात्त्विक स्नेह से सदा 'देवता'[1] के रूप में पूजती रही है और पति अपनी पत्नी को एकनिष्ठ आस्था से 'पूज्या'[2] के रूप में। दोनों का पारस्परिक सम्बन्ध और स्नेह अविच्छिन्न और अटूट रहा। मध्यकाल में भी पति-पत्नी का सम्बन्ध प्राचीनकाल की ही तरह था। एक बार विवाह की छाया में आ जाने पर 'आमरण'[3] उसी छाया के नीचे 'धर्मकार्य' करते हुए बने रहते थे और वे परस्पर कभी 'पृथक्'[4] होने की बात नहीं सोचते थे। शुक्र के अनुसार 'पति के समान कोई 'नाथ' और 'सुख' नहीं।[5] वह सर्वस्व है, 'शरण'[6] का दाता। उनका पारस्परिक सौहार्द्र जीवनपर्यन्त 'क्षमायुक्त'[7] था। अतः पति-पत्नी अपने बीच सम्बन्ध विच्छेद (मोक्ष) जैसी बातों को बिरले ही महत्त्व देते थे। अलबीरूनी लिखता है कि पति-पत्नी का सम्बन्धविच्छेद मृत्यु द्वारा ही हो सकता है, क्योंकि उनमें पार्थक्य की प्रथा नहीं।[8] अलबीरूनी का यह कथन शत-प्रतिशत सत्य है। आज भी हिन्दू समाज में पति-पत्नी का सम्बन्ध अविच्छिन्न रूप में अटूट है। सभ्य समाज में इसकी कल्पना मात्र को जघन्य पाप समझा जाता है।

ऐसी अनेक पत्नियों के उदाहरण भारतीय साहित्य में उपलब्ध है जो पति की विभिन्न दुर्अवस्थाओं के अतिरिक्त यावत्‌जीवन उनमें मनोनिशेषपूर्वक अनुरक्त थीं, सुदर्चला सूर्य में, शची इन्द्र में, अरुन्धती वसिष्ठ में, लोपामुद्रा अगस्त्य में, सावित्री सत्यवान में, मदयन्ती सौदास में, केशिनी सगर में और दमयन्ती नल में। सुकन्या अपने पति च्यवन के लिए कहती है कि जिसके लिए मेरे पिता ने मुझे अर्पित कर दिया है उसका जीवन-पर्यन्त परित्याग नहीं करूँगी।[9] इसी तरह सावित्री अपने पति सत्यवान के लिए कहती है कि पति

---

1. स्मृति०, व्यवहार०, पृ० २५१, पराशर माधवीय, भा० २, खण्ड १, पृ० ३८।
2. मनु०, ३. ५६।
3. वही, ९. १०१।
4. वही, ९. १०२।
5. शुक्र० ४. ३६६।
6. वही, ४. ३६७।
7. मनु०, ५. १५८।
8. *AI.*, Vol. II, p. 155.
9. दीर्घायुरथवाल्पायुः सगुणों निर्गुणोऽपि वा।
सकृद्वृतो मया भर्ता न द्वितीयं वृणोम्यहम्॥ महा० ३.२९४.२७।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

लम्बी आयु वाला हो या छोटी आयु वाला, गुणवान हो या अगुणवान, मैंने एक बार पति चुन लिया है, दूसरा पति नहीं चुनूँगी ।[१] ये कथन भारतीय हिन्दू पत्नी की मर्यादा और आदर्श को उद्घाटित करते हैं ।

सम्बन्ध-विच्छेद (तलाक)

सम्बन्ध-विच्छेद (मोक्ष) की व्यवस्था विशेष स्थितियों में थीं । नष्ट, प्रव्रजित, क्लीब (नपुंसक), पतित, राजविलविषी (राजयोग से पीड़ित), लोकान्तर्गत (दूरदेशवासी), पति स्त्रियों के लिए त्याग योग्य है । पति के जीवित या मृत रहने पर स्त्री दूसरा पति बना सकती है; किन्तु यह सन्तान की रक्षा के लिए है, स्त्री की स्वतन्त्रता के लिए नहीं ।[२] नारद और पराशर के अनुसार अगर पति क्लीब हो तो सम्बन्ध-विच्छेद किया जा सकता है ।[३] मध्यकालीन विद्वान् विज्ञानेश्वर ने पति-पत्नी के सम्बन्ध के विवेचन में यह स्वीकार किया कि जब दोनों के सम्बन्ध में ऐसी बात उत्पन्न हो तो शासन को हस्तक्षेप करना चाहिए ।[४] किन्तु एक दूसरे के विरुद्ध अभियोग लगाने का विधिक अधिकार नहीं था ।[५] बिना अपराध एक दूसरे की इच्छा के विपरीत पति-पत्नी सम्बन्ध-विच्छेद नहीं कर सकते थे ।[६] हारीत ने गर्भघातिनी, शराबी तथा धनधान्यक्षयकरी पत्नी के त्याग का विकल्प किया है ।[७] बोधायन ने पति की सेवा न करने वाली, स्वैरिणी तथा पति-घातिनी पत्नी के परित्याग का विधान किया है ।[८] विज्ञानेश्वर का भाष्य है कि पत्नी के शराबी, कुल्टा, रोगिणी, हिंस्र या अपव्ययी होने पर दूसरा विवाह कर लेना चाहिए ।[९] लेख-पद्धति में एक प्रमाण है जिसमें सम्बन्ध-विच्छेद की आज्ञा को 'धौकनपत्र' कहा गया है ।[१०] गुजरात में 'धौकन-पत्र' का उदाहरण प्रारम्भिक सम्बन्ध-विच्छेद का प्रबल प्रमाण हैं, जो वहाँ की नीची जातियों में अब भी है । उत्तर भारत की निम्न जातियों में यह प्रथा यत्र-तत्र आज भी है । किन्तु भारतीय समाज में सम्बन्ध-विच्छेद का व्यवहार आज भी नहीं के बराबर है ।

---

1. श० ब्रा० ४. १. ५. ९ ।
2. कृत्यकल्पतरु, व्यवहार०, पृ० ६४१ ।
3. नारद, १२.१६, परासर, ४. २८ ।
4. मिताक्षरा–याज्ञ० २. २९. ४ ।
5. नारद०, स्त्रीपुंस, श्लोक ८९ ।
6. को० अ०, ३. ३. १७–२० ।
7. व्यव० १३२, १४६ ।
8. स्मृ० चन्द्रिका० २४७ ।
9. १. ७३ ।
10. लेखपद्धति, ५२ ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

आठवाँ अध्याय

समाज में स्त्री की स्थिति

स्त्री की महत्ता

भारतीय समाज में स्त्रियों का आदर और सम्मान प्राचीनकाल से ही अत्यन्त सहानुभूतिक रहा। उनके प्रति समाज को स्वाभाविक श्रद्धा और पावन भावना रही। उनका महत्त्व इतना अधिक रहा कि उनके बिना अकेला पुरुष अपूर्ण और अधूरा समझा जाता रहा।[1] पुरुष शब्द की निर्मिति स्त्री, सन्तान और व्यक्ति की समष्टि से मानी गई।[2] स्त्री 'शरीरार्द्ध'[3] और 'अर्द्धाङ्गिनी'[4] कही गई। एक दूसरा एक दूसरे का पूरक। 'लक्ष्मी'[5] और 'श्री'[6] के रूप में स्त्री जीवन को सुख और संवृद्धि प्रदान करने वाली निर्देशित की गई।

समाज में स्त्री की स्वतन्त्रता

प्राचीन और मध्ययुगीन समाज में इतना मान और महत्त्व मिलकर भी पुरुषों की तरह उन्हें स्वतन्त्रता नहीं थी। वे अनेक प्रकार से पुरुष पर निर्भर थीं। बचपन में पिता द्वारा, विवाह के पश्चात् पति द्वारा और वृद्धावस्था में पुत्र द्वारा संरक्षित की गई।[7] मध्ययुगीन समाज में उनकी परतन्त्र स्थिति थी।[8] लक्ष्मीधर,[9] विज्ञानेश्वर,[10] मेधातिथि,[11] कुल्लूकभट्ट[12] उनकी परतन्त्र

---

1. श० ब्रा० ५,२.१.१०। 2. मनु० ९.४५।
3. बृहस्पति० २५. ११, अपरार्क ७. ४०, कृत्यकल्पतरु, व्यवहारकाण्ड, पृ० ६३४।
4. महा० आदि० ७४.४०।
5. बृहत्संहिता, ७४.५, ६, ११, १५, १६।
6. मनु० ९. २६।
7. गौतम० १८. १. बौ० ध० सू०, २. २.५०–५२, नारद० दायभाग ३१, वशि० ध० सू० ५.१.३, मनु० ५.१४६–४८, ९.२–३।
8. शुक्र० (Ed. Cal.) ४.४. २६–२७।
9. कृत्यकल्पतरु, गृहस्थ०, पृ० १०५।
10. मिताक्षरा–याज्ञ० २.१४८।
11. मेधातिथि–मनु० ५.१४७।
12. कुल्लूक–मनु० ५.१४७।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

स्थितिका भान कराते हैं। अलबीरूनी लिखता है कि जब सन्तान का जन्म होता है तब कन्या की अपेक्षा युवक पर अधिक ख्याल रखते हैं।[1] अलबीरूनी के इस कथन से स्पष्ट है कि पुरुषों की अपेक्षा समाज में स्त्रियों की स्थिति दुर्बल थी। यद्यपि आज की २०वीं सदी में भी, अलबीरूनी से नौ सौ वर्ष बाद, स्त्रियों की स्थिति पुरुषों की तुलना में दयनीय है।

स्त्री का सम्पत्तिविषयक अधिकार

डॉ० राजबली पाण्डेय ने लिखा है, 'मध्ययुग की परिस्थितियों में स्त्री-जीवन के सभी क्षेत्रों में परिवर्तन हुए। सामान्यतः इन परिवर्तनों की प्रवृत्तियाँ थीं नियन्त्रण, संकोच और ह्रास।'[2] 'डॉ० पाण्डेय के इस मत के विपरीत, स्मृति-चन्द्रिका, विज्ञानेश्वर, धारेश्वर और विश्वरूप के मतों की विवेचना करते हुए डॉ० घोषाल और डॉ० आर० सी० मजूमदार इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि स्त्रियों के संपत्तिविषयक अधिकार को देखते हुए उनके स्तर में अपेक्षाकृत उन्नति हुई।[3] किन्तु तद्युगीन समाज का परिप्रेक्ष्य करने पर यह स्पष्ट परिलक्षित होता है कि स्त्रियों की स्थिति नियन्त्रण, संकोच और ह्रास की ओर ही उन्मुख थी। समाज द्वारा अनुमोद्य निर्दिष्ट देवमन्दिरों में दासियों के रूप में उनका व्यक्तित्वहीन निवास, समाज के विलास और वासनाजन्य रुचियों की पूर्ति में उनकी विद्रोहहीन वृत्ति, पति की मृत्यु पर उनका सबल सती किया जाना, अवगुण्ठन में उनकी स्वतन्त्र भावनाओं की आबद्धता आदि कतिपय ऐसी नियन्त्रात्मक और संकोचात्मक स्थितियाँ थीं जो उनकी ह्रासोन्मुखी अवस्था की द्योतक थीं। अतः उनके केवल सम्पत्तिविषयक अधिकार में कुछ समाजशास्त्रियों द्वारा व्यक्त किए गए उदार दृष्टिकोण ही उनकी उन्नतिशील स्थिति के परिचायक नहीं। वस्तुतः तद्युगीन समाज में स्त्रियों पर अनेक प्रकार के निन्यत्रण और प्रतिबन्ध थे, जो उनकी स्थिति को सङ्कुचित कर निरन्तर ह्रास की ओर अग्रेसारित कर रहे थे।

निश्चय ही, डॉ० घोषाल और डॉ० मजूमदार के कथनों की पुष्टि पूर्ववर्ती लेखक विष्णु[4] और याज्ञवल्क्य[5] तथा परवर्ती लेखक लक्ष्मीधर[6] और जीमूत-

---

1. *AI.*, Vol. I, p. 181.
2. पाण्डेय, राजबली, हिन्दी साहित्य का बृहद् इतिहास, प्र० भा०, पृ० १४५।
3. *Struggle for Empire*, pp. 483, 496.
4. विष्णु० १७.४३।
5. याज्ञ० २.१३५-३६।
6. कृत्यकल्पतरु, दायभाग खण्ड ११।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

वाहन[1] से होती है जिनके अनुसार नि:सन्तान विधवा को अपने पति की सम्पत्ति पाने का अधिकार है। अलबीरूनी के कथनानुसार अगर मृत व्यक्ति का कोई उत्तराधिकारी है तो विधवा, जबतक वह जीवित रहती है तबतक भोजन और वस्त्र देना पड़ता है।[2] अलबीरूनी का यह कथन प्राचीन लेखक नारद[3] के इस विचार से मिलता है कि नि:सन्तान विधवा का भरण-पोषण उत्तराधिकारी व्यक्ति अथवा सपिण्ड पर है। मध्यकालीन भारतीय व्याख्याताओं के मतों के बीच अलबीरूनी का उपर्युक्त कथन सही नहीं ठहरता। इस सम्बन्ध में मध्ययुगीन लेखकों ने उदारतापूर्वक विवेचन किया है। लेखपद्धति[4] के अनुसार सम्पत्ति में विधवा का उतना ही हिस्सा है जितना पुत्र का और कन्या के विवाह में उत्तराधिकारियों को समान सहायता देने का दायित्व है। दायभाग[5] और विज्ञानेश्वर[6] के अनुसार पति के सम्पूर्ण धन को विधवा प्राप्त करती है। यह निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि मध्ययुग में विधवाओं के सम्पत्ति-विषयक अधिकारों में परिवर्द्धन हुआ। इस सम्बन्ध में अलबीरूनी का कथन आधिकारिक नहीं।

कन्या के सम्पत्तिविषयक अधिकार पर अलबीरूनी लिखता है कि उनके सम्पत्तिपरक विधिक (Law of Inheritence) का प्रधान नियम यह है कि स्त्रियाँ, केवल लड़की को छोड़कर, सम्पत्ति को अधिकारी नहीं। मनु[7] की पुस्तक के उद्धरण के अनुसार वह पुत्र के हिस्से की चौथाई पाती है। अगर वह विवाहित नहीं है तो उसके विवाह के समय तक उस पर धन व्यय किया जाता है और उसका दहेज उसके हिस्से से क्रय किया जाता है। इसके बाद

---

1. *Hist. of Bengal* Vol. I. (Ed. R. C. Majumdar), p. 610; Mitter : *The Position of women in Anc., India*, pp. 433-650; HDS, III pp. 701-712.
2. *AI.*, Vol. II, p. 146.
3. नारद० (दायभाग) श्लोक २८-३०।
4. लेखपद्धति, ४७-४९, ५६ cf. Majumdar, A. K., *Chaulu kyas of Guj rat*, pp. 334-36.
5. दायभाग, खण्ड १३।
6. मिताक्षरा-याज्ञ० २.१३६।
7. मनु ९.११८ का निम्नलिखित श्लोक अलबीरूनी ने अनूदित किया है—

स्वाभ्यः स्वाभ्यस्तु कन्याभ्यः प्रदद्युर्भ्रातरः पृथक्।
स्वात्स्वादंशाच्चतुर्भागं पतिताः स्युरदित्सवः॥

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

उसे अपने पिता के घर से और कुछ आय नहीं होती ।[१] अलबीरूनी के इस कथन का समर्थन अन्य मध्यकालिक समाजविश्लेषकों से भी होता है । कात्यायन के अनुसार विभाजन के समय 'अदत्त' कन्या को चतुर्थ भाग मिलता था ।[२] जीमूतवाहन[3] और विज्ञानेश्वर[४] के मतानुरूप पुत्र होने पर जो प्राप्त होता है उसका चौथाई कन्या को मिलता है । किन्तु इस सम्बन्ध में अलबीरूनी का ज्ञान अल्प रहा, मनु तक ही सीमित था । वह सम्भवतः गौतम[५] और याज्ञवल्क्य[६] के मत से अनभिज्ञ था, जिसे विज्ञानेश्वर[७] उद्धृत करते हुए लिखता है कि विवाहित पुत्रियों में धनी पुत्री की अपेक्षाकृत दीन पुत्री उत्तराधिकार के लिए पसन्द की जाती है । जीमूतवाहन[८] का यह मत है कि पुत्रियों में पुत्रवती उत्तराधिकारी ही युक्तिपूर्ण है, विधवा और निःसन्तान पुत्री नहीं । शुक्र[९] का विचार है कि अविवाहित पुत्री को पुत्र के हिस्से का आधा मिले और विवाहित पुत्री के पुत्र को उसका आधा । पुत्री स्वयं एक-अठाई भाग पाती है जबकि विधवा अपने पति की सम्पत्ति से एक चौथाई । प्राचीन-काल की अपेक्षा मध्यकाल में स्त्रियों के केवल सम्पत्तिविषयक अधिकारों में हो उन्नति हुई ।

स्त्री का स्वतंत्र अस्तित्व

प्राचीनकाल से भारतीय समाज में पति द्वारा पत्नी का आदर और सम्मान होता था । उसका परिवार में स्वतन्त्र अस्तित्व समझा जाता था । गम्भीर स्थितियों तथा साधारण अवसरों पर उसके सुझावों को स्वीकार किया जाता था । अलबीरूनी लिखता है कि सभी विचारों और गम्भीर स्थितियों में वे पत्नी की सलाह लेते हैं ।[१] इससे स्पष्ट होता है कि समाज और परिवार में स्त्रियों का स्वतन्त्र अस्तित्व था । उनके विवेकसंवलित विचारों का आदर था । अलबीरूनी के इस कथन का समर्थन तत्युगीन अभिलेखों और साहित्य से किया जा सकता है । चाहमान और गहड़वाल रानियाँ तथाकथित रियासतों को स्वतन्त्र रूप से शासित करती थीं । चाहमान रानी जल्हणदेवी,[१०] हरिराज की रानी

1. *AI.*, Vol. II. p. 164.
2. मिताक्षरा में उद्धृत २.१३५ ।
3. दायभाग ११.२.४ (जीवानन्द, पृ० १७५) ।
4. मिताक्षरा-याज्ञ० २.१३५ ।
5. गौतम० २८.२२ ।
6. याज्ञ० २.१३५ ।
7. मिताक्षरा-याज्ञ० २.१३५ ।
8. दायभाग ११.२.१-३ ।
9. शुक्र (Ed, Cal.) ४.५.२९९-३०१ ।
10. *AI.*, Vol.I, p. 181.
2. *EI.*, Vol. XI. 51-52.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

प्रतापदेवी,[१] गहड़वालनरेश जयचन्द की रानी[२] आदि स्वच्छन्द रूप से कार्यसंचालन करती थीं। भोज के विद्रोह के समय डायर रानी राजा जयसिंह के प्रति अत्यन्त विश्वासशील रही।[3] इस प्रकार के अनेक उदाहरण हैं जिनसे सिद्ध होता है कि स्त्रियों का मध्ययुगीन समाज में स्वतन्त्र अस्तित्व था। उनके सुझावों, सलाहों की ही नहीं बल्कि उनके निर्देशन-परिचालन की भी अपेक्षा थी। उनमें कार्य-संचालन और सम्पादन-क्षमता थी जो उनके स्वतन्त्र अस्तित्व को ओर दिग्दर्शित करती है।

व्यभिचारिणी स्त्री का त्याग

विवाहित स्त्री का दूसरे पुरुष के साथ गमन करने पर मध्ययुगीन समाज में प्रायश्चित्त आदि की व्यवस्था थी। किन्तु स्त्री द्वारा बार-बार व्यभिचार किए जाने पर त्याग का नियम था। अलबीरूनी लिखता है कि व्यभिचारिणी को पति के घर से निकाल कर निष्कासित कर दिया जाता है।[४] परन्तु इस कथन का मध्ययुगीन लेखकों के मतों से समीक्षा करने पर अलबीरूनी का उल्लेख खरा नहीं उतरता। सामान्यतः समाज में ऐसी व्यवस्था थी कि पत्नी के पहली बार एक दूसरे पुरुष से व्यभिचार करने पर उसका परित्याग नहीं होता था। उसे दूसरे ऋतुकाल तक या गर्भ रह जाने पर सन्तान प्रसव तक घर के एकान्त कक्ष या बाहरी घर में रहने का दण्ड मिलता था और प्रायश्चित्त के बाद शुद्ध समझी जाती थी।[५] लेकिन अगर वह दूसरी बार फिर व्यभिचार करती थी तो उसका परित्याग किया जा सकता था।[६] मिताक्षरा में विज्ञानेश्वर[७] ने वसिष्ठ के इस मत की ओर ध्यान आकर्षित किया है कि शूद्र के साथ व्यभिचार करनेवाली ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य की स्त्रियों को यौन-सम्बन्ध से सन्तान न हो तो प्रायश्चित्त से शुद्ध की जा सकती हैं, किन्तु दूसरे प्रकार की नहीं।[८] इस कथन से स्पष्ट है कि व्यभिचार से सन्तान उत्पन्न होने पर पत्नी का त्याग कर देना चाहिए, किन्तु त्याग से यह अर्थ नहीं कि पत्नी को घर से निष्कासित कर दिया जाय, बल्कि धार्मिक एवं दाम्पत्य कृत्यों से उसे अलग कर देना। इस सम्बन्ध में व्यास ने अत्यन्त सहानुभूति प्रकट की है। उसके अनु-

---

1. *EI.*, Vol. XX. 62. 2. *EI.*, X., 99.
3. राजतरङ्गिणी, ८·३११५।
4. *AI.*, Vol. II, p. 162,
5. वशिष्ठ० २·१०-१२, मिताक्षरा–याज्ञ० १·७२।
6. वही।
7. मिताक्षरा–याज्ञ० १·७०–७२
8. वशिष्ठ० २१.१०–१२।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सार व्यभिचारिणी आगामी ऋतुकाल के पश्चात् पवित्र हो जाती है। उसके बाद उससे पूर्ववत् व्यवहार करना चाहिए।[१] अत्रि[२] और देवल[3] भी उदारता दिखलाते हुए व्यभिचारिणी को आगामी ऋतुकाल के बाद शुद्ध हो जाने का निर्देश करते हैं।

मध्यकालीन भारतीय विचारकों के मतों के आलोक में अलबीरूनी का कथन सही नहीं मालूम पड़ता। तत्कालीन भारतीय समाज में पत्नी के व्यभिचार करने पर निष्कासन की व्यवस्था नहीं थी। इस सम्बन्ध में अलबीरूनी का विवरण आधारपूर्ण नहीं।

स्त्री-धन

भारत में प्राचीनकाल से स्त्री-धन का उल्लेख किया गया है। मनु के अनुसार जो वैवाहिक अग्नि के सम्मुख कन्या को दिया जाता है, जो कन्या को पति-गृह जाते समय मिलता है, जो स्नेहवश दिया जाता है, जो माता-पिता और भाई से मिलता है, वह छह प्रकार का स्त्रीधन कहा जाता है।'[४] मध्ययुगीन लेखक विज्ञानेश्वर ने भी मिताक्षरा में स्त्रीधन को कम से कम छह प्रकार का बताया है।[५] इस सम्बन्ध में अलबीरूनी लिखता है कि वर द्वारा विवाह के पूर्व स्त्री को उपहार दिया जाता है जिसे लौटा सकने का अधिकार उसे नहीं होता।[६] निश्चय ही यह स्त्रीधन ही रहा होगा, जिस पर स्त्री का पूर्ण स्वत्व था। संपति-विभाजन के समय पत्नी या माता का पुत्र के समान अंश, भाइयों के अंश का चतुर्थांश आदि को अपरार्क ने स्त्रीधन के अन्तर्गत उल्लिखित किया है।[७] अलबीरूनी यह भी उल्लेख करता है कि कन्या का पुत्र के भाग का चतुर्थांश हिस्सा है। अगर वह अविवाहित रहती है तो वह अंश उस पर व्यय होता है और उसका दहेज उसके भाग से क्रय किया जाता है।[८] पति द्वारा स्त्री को दिया गया, उत्तराधिकार में उसका अंश मिला हुआ, आदि संपति स्त्री का धन था।[९] पराशर[१०] माधवीय और व्यवहारमयूख[११] में भी स्त्री के अन्य प्रकार के धन का उल्लेख किया गया है।

---

1. व्यास० २.४९–५०।
2. अत्रि० श्लोक १९५–९८। 3. देवल श्लोक ४८–५१।
4. मनु० ९.१९४। 5. मिताक्षरा–याज्ञ० २.१४३–४४।
6. *AI.*, Vol.II, p. 154. 7. अपरार्क, पृ० ७५१।
8. *AI.*, Vol.II, p. 164. 9. मिताक्षरा– याज्ञ० २.१४१
10. पराशरमाधवीय, पृ० ३००। 11. व्यवहारमयूख, पृ० १६०।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मध्ययुगीन भारतीय लेखकों की तुलना में अलबीरूनी ने स्त्रीधन पर विस्तार से नहीं लिखा है। ऐसा लगता है कि उसे इस सम्बन्ध में पता नहीं था

वेश्याप्रथा

विश्व की प्रत्येक जाति में वेश्याओं का अस्तित्व आदिकाल से रहा है। भारत में भी इनका अलग से एक वर्ग था जो इस प्रथा को अपनाकर अपना जीवनयापन करता था। वेश्याप्रथा का कारण व्यक्तियों की काम और सौंदर्ययुक्त भावना ही प्रधानतः थी, जो समाज की प्राचीन धारा में ही नहीं मध्ययुगीन धारा में भी हिलोरें ले रही थी। राजकुलों के सम्बन्धियों, नगर-श्रेष्ठियों, सामन्तों आदि का उत्प्रेरक उत्साह ही वेश्यावृत्ति की चरम परिणति थी। नर्तकी, गणिका, सामान्या, रूपजीवा, वेश्या, देवदासी आदि विभिन्न प्रकार की भिन्न वृत्ति अपनाने वाली वेश्याओं की प्रधानता पूर्वमध्ययुगीन समाज में उत्कर्ष पर थी। कुट्टनीमतम्, समयमातृका, प्रबन्धचिन्तामणि, मानसोल्लास, राजतरङ्गिणी आदि ग्रन्थों से वेश्याओं के विभिन्न स्वरूपों पर प्रकाश पड़ता है।

देवदासी

वेश्याओं के अतिरिक्त स्त्रियों का एक और वर्ग था जो मन्दिरों से अधिक सम्बद्ध था। इस वर्ग की स्त्रियाँ मन्दिरों के देवताओं की सेवा में नियुक्त थीं, जो देवदासियाँ कही जाती थीं। इनका मुख्य कार्य था देवमन्दिरों में नाचना और गाना। देवदासियों का सर्वप्रथम उल्लेख चीनी यात्री श्वानच्वाङ्ग ने किया है। उसके अनुसार मुल्तान के मन्दिर में परम्परा से कार्य करती हुई ऐसी दासियाँ थीं जो नृत्य करती थीं।[1] अलबीरूनी लिखता है कि वेश्याओं को दण्डित करने में हिन्दू बहुत कठोर नहीं। इस प्रकार इसमें त्रुटि राजा को है, देश की नहीं। लेकिन जो स्त्रियाँ उनके देवमन्दिरों में नृत्य, गायन और क्रीड़ा करती हैं, उनके लिए न कोई ब्राह्मण दुःख प्रकट करना चाहता है और न कोई पुरोहित। राजा उन्हें अपने नगरों के आकर्षण के लिए, अपने विषय-सुख के लोभ के लिए छूट देते हैं, आर्थिक कारणों को छोड़कर और कोई कारण नहीं। राजकरों-व्यापार और अर्थदण्ड-को, जिन्हें उनके कोष सेना पर व्यय करते हैं, उन व्ययों को पुनः पूरा करना चाहते हैं।[2] वह आगे लिखता है कि इसी ढंग पर बुइया सुल्तान अदुद-अल-दवल[3] (Buyide Prince Adudaldaula) भी चलता था, वैसे

1. *Watters.*, II, p. 254.   2. *AI.*, Vol. II.p. 157.

3. अदुद-अद-ददल (९३६-९८३) अपने समय का फारस का महान विजेता शासक था। इस्लाम जगत् का वह पहला सुल्तान था जिसने बादशाह की खिताबत पाई थी और शाहंशाह मलिक अल मुलूक नाम से विख्यात था। —*Encyclopaedia of Islam*, Vol. I, p. 143.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

उसका दूसरा भी उद्देश्य था अर्थात् अपने अविवाहित सैनिकों की कामुकता से अपनी विषय-नीतियों की रक्षा करना ।[1]

अलबीरूनी के इस कथन से वेश्यावृत्ति पर नवीन प्रकाश पड़ता है । भारत ही नहीं फारस आदि अन्य देशों में भी ऐसी प्रथा से राजा आर्थिक लाभ के अतिरिक्त अपने सहयोगियों की कामतृप्ति का शमन भी करवाता था ।

अलबीरूनी का कथन कौटिल्य के इस कथन से मिलता है कि वेश्याओं को अपनी मासिक आमदनी में से १।१५ राज-कर में देना आवश्यक था, ऐसा न करने पर भारी आर्थिक दण्ड उठाना पड़ता था और जो कोई उनके लिए विवाद करता था उसे और भी आर्थिक दण्ड देना पड़ता था ।[2] अत: अलबीरूनी और कौटिल्य के अनुसार राजकोष को वेश्याओं से आर्थिक लाभ था ।

अबू जैद अलहसन नामक अरब लेखक (८६७ ई०) लिखता है कि स्त्रियों में उनके पास सामाजिक स्त्रियाँ हैं, जो मूर्ति की स्त्रियाँ (देवदासियाँ) कही जाती हैं । उनकी संस्था का निर्माण इस प्रकार हुआ, जब एक स्त्री ने अपने को वचन से बाँधा कि उसे बच्चे हों । अगर ऐसा होता है कि उसे एक सुन्दर कन्या होती है, तो वह उस सन्तान को मूर्ति के निकट लाती है, मूर्ति का आह्वान करती है, पूजा करती है और वहाँ उसे छोड़ जाती है । जब लड़की यथोचित अवस्था प्राप्त कर लेती है, तब वह इस सामाजिक स्थान में एक आवास लेती है । अपने दरवाजे के सामने एक पर्दा फैला देती है । वह भारतीयों के अतिरिक्त अन्य जातियों के नवांगुतों के आने की प्रतीक्षा करती है । उसके लिए यह भ्रष्ट आचरण निषिद्ध नहीं है । वह अपने को निश्चित दर पर वेश्यित करती है और मन्दिर के लिए तथा मन्दिर की सहायता में खर्च के लिए वह मूर्ति के पुजारी के हाथों में लाभ दे देती है ।[3] ९८५ ई० के लगभग भारत आनेवाले यात्री मुकद्दसी ने भी सिन्ध के मन्दिरों में देवदासियों का उल्लेख किया है ।[4]

तेरहवीं सदी के मध्य में होने वाले पर्सियन लेखक जकरीय-अल-कजवीनी ने चीन और भारत का भ्रमण करनेवाले तत्कालीन यात्रियों के सम्वादों के आधार पर अपनी पुस्तक 'आसारुबिसाद' में लिखा है कि सोमनाथ मन्दिर के

---

1. *AI.*, Vol. II, p, 157.
2. कौ० अ० (अध्यक्षप्रचार, अ० २७) ।
3. *Ancient Accounts of India and China* (by two Mohammedan travellers) translated by (into English) Ranaudot, p. 88.
4. *Ahsunat Takasim. p. 483.*

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

द्वार पर पाँच सौ कुमारियाँ गातीं नाचती थीं। ये सब मन्दिर के दान पर पलती थीं।[1]

जकरीय अल क़जवीनी से एक महत्त्वपूर्ण तथ्य यह उद्घाटित होता है कि देवदासियों का भरण-पोषण मन्दिर के मिलनेवाले दान पर होता था। अबूजैद अलहसन और अलबीरूनी ने जहाँ देवदासियों को कामोपभोग का साधन उल्लिखित किया है, वहाँ कजवीनी ने मन्दिर के दान पर निर्भर होना बताया है।

इन कथनों से प्रकट होता है कि देवदासियाँ देशवासियों के ही काम-शमन की मुख्य साधन नहीं थीं; बल्कि विदेशी यात्रियों के उपभोग की प्रमुख साधन थीं। इनके मुख्य कार्य देवमन्दिर में नृत्य, गायन और काम-क्रीड़ा थे जिन्हें समाज में निन्दित नहीं माना जाता था।

यह निःसन्देह कहा जा सकता है कि देवदासियों की संख्या मध्यकालीन भारतीय समाज में अत्यधिक प्रमुखता प्राप्त करती जा रही थी। हुद्द-उल-आलम (रचना-काल ९२८-९८३ ई०) के लेखक के अनुसार रामियान के मन्दिर में तीस नर्तकियाँ थीं जिनका मुख्य कार्य प्रतिमा के चारों ओर नृत्य करना था।[2] देवदासियों की यह संख्या मन्दिरों में क्रमशः बढ़ने लगी। चौ-जु-कुअ (Chau-ju-kua) के आधार पर डॉ० घोषाल कहते हैं कि केवल गुजरात के चार हजार मन्दिरों में बीस हजार से ज्यादा नर्तकियाँ थीं।[3]

समसामयिक अभिलेखों से विदित होता है कि देवदासियाँ प्रधान रूप से मन्दिरों में रहने लगी थीं। विजयसेन[4] द्वारा निर्मित प्रद्युम्नेश्वर के मन्दिर में, सोमवंशी राजा उद्योतकेसरी[5] की माता डागर रानी कलावती द्वारा निर्मित ब्रह्मेश्वर के मन्दिर में, भुवनेश्वर[6] के अनन्तवासुदेव के मन्दिर में तथा कटक से तीस मील दक्षिण राजा वैद्यनाथ द्वारा निर्मित सभानेश्वर[7] शिव के मन्दिर में देवदासियों के होने की सूचना मिलती है। राजाओं द्वारा निर्मित मन्दिरों में ही नहीं; बल्कि साधारण जनता द्वारा निर्मित मन्दिरों में भी देवदासियाँ होती

---

1. *ED.*, Vol. I, p. 98. 2. *PIHC.*, 1939, p. 157.
3. *The Struggle for Empire*, pp. 495-96.
4. *EI.*, I, verse 30, p. 310.
5. *JRASB.*, XIII, 1947, p. 71.
6. *EI.*, VI, verse 25, pp. 196-20.
7 *JBORS.*, XVII, 1931, p.124.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

थीं। इशानशिव साधु द्वारा वदायूँ में बनवाए गए शिव मन्दिर में देवदासियाँ नियुक्त थीं।[१] दक्षिण के अधिकांश मन्दिरों में नर्तकियाँ सेवा करती थीं।[२]

कल्हण[3] काश्मीर के मन्दिरों की देवदासियों का उल्लेख करता है और मेरुतङ्गु[४] सोमनाथ पट्टन के कुमारविहार की देवदासियों का।

इन समस्त विवरणों से प्रकट है कि देवदासियों का मन्दिरों में होना साधारण बात थी। देवदासियों की बढ़ती हुई इस संख्या में राजाओं एवं उच्चवर्गीय अधिकारियों ने अपना सहयोग देकर और वृद्धि की। वे स्वयं मन्दिरों के विभिन्न उत्सवों और मनोरञ्जन में सम्मिलित होते थे तथा देवदासियों के कार्यक्रमों को मनोनिवेशपूर्वक देखते थे।

मारवाड़ के चाहमानवंशी जोजाल्लदेव के दो अभिलेखों से पता चलता है कि इन विरोधी तत्त्वों के प्रति राजा का मन्तव्य देवदासी-प्रथा के समर्थन में था। दोनों अभिलेख प्रकट करते हैं कि भगवान के उत्सव में राजा और अन्य दरबारी उपस्थित होते थे। राजा अपने समस्त आभूषणों और परिधानों से अलङ्कृत होकर अपने शूलपालों के साथ नृत्योत्सव, गानोत्सव और वाद्योत्सव में सम्मिलित होने जाते थे। जोजाल्लदेव गम्भीरतापूर्वक अपने राजकुमारों को ऐसे त्योहारों और उत्सवों को प्रसन्नतापूर्वक मनाने के लिए निर्देश करता है। साथ ही वह यह भी कहता है कि जो व्यक्ति, साधु, वृद्ध, विद्वान उसके विरुद्ध आवाज दे उसके विरुद्ध कार्यवाही हो।[५] अतः इससे स्पष्ट है कि देवमन्दिरों में दासियों के विभिन्न कार्यकलापों में राजाओं का खुला समर्थन प्राप्त था।

मध्ययुगीन राजाओं द्वारा थोड़े से आर्थिक लाभ के कारण देवदासियों को प्रोत्साहन और प्रश्रय देना नैतिक और व्यावहारिक दृष्टि से अत्यन्त निन्द्य और गर्हित था। यह सही है कि इस प्रथा से राजाओं और पुजारियों का आर्थिक लाभ हुआ, किन्तु देश और समाज का बहुत बड़ा नुकसान हुआ, जिसकी पूर्ति असम्भव रही। तत्कालीन समाज का प्रत्येक प्राणी देवदासियों का दास बनकर पश्चिम से आनेवाले भीषण तूफान से अनभिज्ञ हो गया।

देवमन्दिरों का निर्माण धार्मिक और नैतिक भावनाओं की प्रेरणा से हुआ था। पहले जहाँ मनुष्य क्षण भर के लिए जाकर सांसारिक मोह-माया और

---

1. *EI.*, I, verse 17, pp. 61-66.
2. Minakshi, C., *Administration and Social life under the Pallavas, p. 177.*
3. राजतरङ्गिणी. ७.८५८। 4. प्रबन्धचिन्तामणि (सिन्धी जैन) पृ० १०८।
5. *EI.*, XI, p. 26.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

काम-लिप्सा को भुलाकर जगतनियन्ता का आराधन करता था, वहाँ अब शृङ्गारश्लथ कामिनियों की पायलों की झङ्कार, सुमधुर कण्ठस्वर की गूँज, साज-शृङ्गार के तारों की लहर, मनुष्य के कामोद्दीपक स्नायुओं को उद्वेलित करने लगा। राजाओं और श्रेष्ठियों के कामुक आयासों से मध्ययुगीन देवमन्दिर काम-मन्दिर अधिक बन गये। देवपूजन के स्थान पर कामपूजन पर जोर दिया जाने लगा। अतः मध्ययुगीन रक्षकों की इन विलासी प्रवृत्तियों ने जनता और समाज की राष्ट्रीय चेतना को ग्रस कर उसकी शक्ति और आत्मा को इतनी जर्जर कर दी कि देखते-देखते विदेशी आक्रामकों ने भारत को नष्ट-भ्रष्ट कर दिया। भारतीयों के अधःपतन के कारणों में यह भी एक प्रमुख कारण है।

मृतभर्तृका (विधवा) : सती (अनुमरण) या सच्चरित्र (ब्रह्मचर्य) जीवन

भारत में प्राचीनकाल से स्त्रियों के लिए मृत-पति के साथ चितारोहण करके सती होने की व्यवस्था रही है। सती-प्रथा के उदाहरण महाभारत में मिलतेहैं।[१] ग्रीक इतिहासकारों ने भी भारत में प्रचलित सती प्रथा का उल्लेख किया है। स्ट्रैबो तक्षशिला के रीति-रिवाज के सन्दर्भ में अरिस्तोबोउ्लस (Aristo-boulos) को उद्धृत करते हुए लिखता है कि यहाँ पत्नियाँ प्रसन्नतापूर्वक अपने मृत पतियों के साथ जल जाती हैं और जो स्त्रियाँ जलने से इनकार करती हैं वे निरादृत होती हैं।[२] इसी तरफ का दूसरा वर्णन करते हुए स्ट्रैबो दिदोरस (Didorus) को उल्लिखित करता है, जिसके अनुसार विधवाओं के लिए यह रिवाज था कि वे मृत पति के साथ जल जायँ। वह आगे लिखता है कि अगर वह ऐसा नहीं करतीं तो जीवनपर्यन्त उन्हें यज्ञ एवं अन्य अधिकारों को सम्पन्न करने का कोई अधिकार नहीं होता।[3]

मृतभर्तृका स्त्री के लिए दो मुख्य कर्त्तव्य विहित थे, एक पति के साथ सहमरण या अनुमरण (सती) और दूसरे ब्रह्मचर्यपूर्वक नियम-व्रत से शेष जीवन बिताना। समाज नियामकों द्वारा निर्देशित ये ऐसी व्यवस्थाएँ थीं जिन पर नैतिकता और मर्यादा का कठोर अङ्कुश था। मनःस्थिति के अनुसार युवा स्त्री के लिए ये व्यवस्थाएँ निश्चय ही कष्टप्रद रहीं, लेकिन इसके लिए भी प्राचीन भारतीय समाज में विचार और व्यवहार थे।

पति के अवसान होने पर समाज में साधारणतः दो ही क्रम प्रचलित थे। पति के साथ सती हो जाना या शेष जीवन पर्यन्त ब्रह्मचर्यपालन करना।[४]

1. महाभारत– आदि० ९५. ६५, १२५. २९, विराट्० २३. ८, शान्ति० १४८.१०–१२, मौसल० १७. ७. १८–२४।
2. M' Crindle, J. W., *Ancient India*, p. 69.
3. *Ibid.*, pp. 69–70.
4. वि० ध० सू० २५.१४।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

बृहस्पति का यह कथन है कि पति के मरने पर पत्नी अन्वारोहण करे या शेष जीवन सच्चरित्रता के साथ व्यतीत करे।[१] अन्वारोहण की अग्नि पति-पत्नी की अविच्छिन्नता की द्योतक थी।[२]

मृत पति की स्त्रियों के विषय में अलबीरूनी लिखता है कि वह दो चीजों में से एक चुनती हैं, जीवनपर्यन्त विधवा रहना या अपने को जला देना। पिछली घटना को ही अच्छा समझा जाता रहा है क्योंकि विधवा के रूप में जब तक वह जीवित रहतीं उससे बुरा बर्ताव किया जाता। राजाओं की पत्नियों के सम्बन्ध में चाहे वे चाहती हों या नहीं, उनके यहाँ जला देने का व्यवहार है जिसमें वे चाहते हैं कि उनमें से कोई ऐसा कार्य न करे जो उनके प्रसिद्ध पति के विरुद्ध हो। उन स्त्रियों के लिए यह अपवाद है जो अधिक उम्र की हैं और जिनको सन्तान हैं क्योंकि पुत्र अपनी माता का उत्तरदायी रक्षक है।[3]

अलबीरूनी के पूर्ववर्ती अरबयात्री सुलेमान ने भी भारत में सती-प्रथा के प्रचलन का उल्लेख किया है। वह लिखता है कि यहाँ यह नियम है, जब राजा मरता है तब उसके साथ उसकी सब रानियाँ भी जल जाती हैं। पर यह केवल उनकी इच्छा पर है, इसमें कोई जबरदस्ती नहीं।[४]

अलबीरूनी के कथन से विदित होता है कि राजाओं की पत्नियों को न चाहते हुए सती होने के लिए बाध्य होना पड़ता है। जब कि उससे डेढ़ सौ वर्ष पहले आने वाले लेखक सुलेमान ने विधवा की अपनी इच्छा को महत्त्व दिया, चाहे वह सती हो या न हो।

मध्यकालीन व्याख्याकार विज्ञानेश्वर ने मेधातिति[५] का विरोध करते हुए सती-प्रथा को सभी वर्णों में प्रचलित होने का निर्देश किया है।[६] लक्ष्मीधर ने विधवा के कर्तव्य का विस्तार से विवेचन किया है। विधवा के सती होने की व्यवस्था के निमित्त वह अङ्गिरास्मृति को उद्धृत करता है, जिसके अनुसार पति के मृत हो जाने पर जो स्त्री हुताशन (अग्नि) पर आरोहण करती है वह अरुन्धती (वसिष्ठ की स्त्री) के सदृश आचरणवाली स्वर्गलोक में महत्त्व प्राप्त करती है। मनुष्य के शरीर में साढ़े तीन करोड़ जो रोएँ होते हैं उतने वर्षों तक पति का सहगमन करनेवाली स्त्री स्वर्ग में निवास करती है।[७] व्यासस्मृति,[८]

---

1. बृहस्पति० २५. ११।
2. *CWB.*, II, p. 460.
3. *AI.*, Vol. II, p. 155.
4. *Silsiltut Tawarikh*, p. 50.
5. मेधातिथि-मनु० ५.१५६ (मेधातिथि ने सतीप्रथा का विरोध किया है और इसे आत्महत्या बताया है।
6. मिताक्षरा-याज्ञ० १.८६।
7. कृत्यकल्पतरु, व्यवहार०, पृ० ६२२-३३।
8. वही, पृ० ६३४ पर उद्धृत।

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

विष्णु,[1] बृहस्पति[2] और ब्रह्मपुराण[3] के अनुसार पति के साथ सहमरण करनेवाली स्त्री सत्स्त्री है।

अलबीरूनी का यह कथन सही है कि सती-प्रथा राजपरिवारों में ही अधिक प्रचलित थी। पाराशर,[4] विष्णु,[5] दक्ष[6] और व्यास[7] के अनुसार राजकुलों की विधवाओं में अन्वारोहण व्यवहार में था। भारतीय साहित्यिक कृतियों में पति के साथ सती हो जानेवाली स्त्रियों की भूरि-भूरि प्रशंसा की गई है। कुमारसम्भव,[8] गाथासप्तशती,[9] कामसूत्र,[10] बृहत्संहिता[11] आदि में पति के साथ अन्वारोहण करनेवाली स्त्री को सम्मान-योग्य माना गया है।

प्राचीन और मध्ययुगीन समाज में सती होने के अनेक उदाहरण मिलते हैं। महाभारत से विदित होता है कि पाण्डु के मृत होने पर माद्री सती हो गई।[12] कृष्ण के पिता वासुदेव के मरने पर उनको चार पत्नियों ने अन्वारोहण किया।[13] हर्षचरित से पता चलता है कि प्रभाकरवर्धन की स्त्री यशोमती अग्नि-प्रवेश के लिए सन्नद्ध हुई।[14] राजतरङ्गिणी[15] में सती होने के कई उल्लेख मिलते हैं। राजा शङ्करवर्मन के मर जाने पर उसकी प्रधान रानी, दूसरी विधवाएँ तथा चार विश्वासी सेवक अन्वारोहण में शरीक हुए।[16] कन्दर्पसिंह के मरने पर उसकी पत्नी बिम्बा सती हुई।[17] कथासरित्सागर से विदित होता है कि पति के मरने पर स्त्री सती हो गई।[18]

इस प्रकार मध्ययुगीन ग्रन्थों में सती होने के अनेकानेक उदाहरण मिलते हैं, जिनसे यह स्पष्ट होता है, यह प्रथा राजकुलों में ही अधिक प्रचलित थी।

मध्यकालीन उत्कीर्ण लेखों से ज्ञप्ति मिलती है कि सती का व्यवहार सामान्यतः समाज में प्रचलित था। नेपाली अभिलेख के अनुसार राजा धर्मदेव

---

1. विष्णु० २५.१४।
2. कृत्यकल्पतरु, व्यवहार०, पृ० ६३४ पर उद्धृत।
3. वही, पृ० ६३४ पर उद्धृत।
4. परा० ४.३०-३१।
5. विष्णु० २५.१४।
6. दक्ष० ४.१८।
7. व्यास० २.५३।
8. कुमारसम्भव, ४.३४ (काम के भस्म होने पर उसकी पत्नी सती होने जा रही थीं, किन्तु आकाशवाणी द्वारा रोक ली गई)।
9. गा० स० श० ७.३३।
10. कामसूत्र, ६.३.४३।
11. बृ० सं० ७४.१६।
12. महा० आदि० १२६. २५-२६।
13. वही, मौसलपर्व, १७.७.१८-२४।
14. हर्षचरित, उच्छ्वास ५।
15. रा० तं० ७.४७८, आदि।
16. वही, ५.२२५।
17. वही, ७.१०३।
18. कथासरित्सागर, १०.५८।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

के मरने पर विधवा रानी राज्यवती ने अपने पुत्र को राज्य सौंप कर पति के साथ अन्वारोहण किया।[१] जोधपुर (मिस्तरा देवली) के उत्कीर्ण लेख से पता लगता है कि गुहिलवंशी दो रानियाँ चिता में जलकर सती हो गईं।[२] ८९० ई० के घटियाला (जोधपुर) से पाए गए अभिलेख से यह स्पष्ट होता है कि राजपूत प्रधान राणुक के मर जाने पर उसकी पत्नी सम्पल देवी सती हो गई।[3] एरण के अभिलेख से विदित होता है कि भानुगुप्त के सेनापति गोपराज की स्त्री पति की मृत्यु के बाद सती हो गई।[४]

तद्युगीन समाज के समस्त विवरणों पर दृष्टिपात करने से यह पूर्णरूपेण स्पष्ट होता है कि सती-प्रथा का प्रचलन राजकुलों एवं बड़े-प्रतिष्ठित परिवारों में ही प्रचलित था। यदा-कदा लोभवश सम्पत्ति में से स्त्री को हिस्सा न देने के इरादे से स्त्रियाँ सती कर दी जाती थीं।[५] किन्तु यह निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि सती होने का प्रचलन समस्त जनता के व्यवहार में नहीं था। यह विधवा पर निर्भर था कि वह सती हो या ब्रह्मचर्य का जीवन यापन करे।[६]

———

1. *IA*, IX, p. 164, Cf. 14, 344, 350.
2. *EI.*, Vol. XX, p. 58.
3. *Progress Report of the Arch. Survey of India.* W. C., 1906-7, p. 35, para 33. Cf. Bhandarkar. D. R., *List of Inscriptions of Northern India,* No. 39.
4. *CII.*, Aran Inscription.
5. जीमूतवाहन, दायभाग, (जीवानन्द संस्करण, १८९२), पृ० ४६, ५६। Cf. Colebrooke, *Meceleneous Essays,* Vol. I, 1837. p. 122; On the Duties of a Faithful Widerw', *JRAS,* 1868, 3, 183ff Tomson, Edward, *Sati,* 1928.
6. *AI.*, Vol. II, p. 170.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

नवाँ अध्याय
शिक्षा और विद्याध्ययन

शिक्षा

भारतीय समाज में प्राचीनकाल से शिक्षा का प्रबन्ध योजनाबद्ध और सुनियोजित था। गुरु आश्रम में रहकर विद्याध्ययन किया जाता था। वेद, पुराण, धर्म, दर्शन, विज्ञान आदि सभी विषयों की शिक्षा सम्यक् रूप से विद्यार्थी को दी जाती। अलबीरूनी के युग में भारतीय समाज में शिक्षा का साधारणतः यही सामान्य स्वरूप था। यद्यपि ऐतिहासिक कारणों से उसमें आन्तरिक कारण आ गये थे। यत्र-तत्र आंशिक परिवर्तन हो जाने पर भी उसका पारम्परिक स्वरूप तद्वत था।

विद्यारम्भ

विद्यारम्भ पाँच वर्ष की अवस्था से हो जाता था। मध्ययुगीन लेखक अपरार्क[1] और स्मृतिचन्द्रिका[2] ने मार्कण्डेयपुराण को उद्धृत करते हुए सन्तान के विद्यारम्भ की अवस्था पाँच वर्ष निर्देशित की है। संस्कारप्रकाश[3] और संस्काररत्नमाला[4] में भी विद्या का आरम्भ उपनयन के पहले पाँच वर्ष की अवस्था से माना गया है। अलबीरूनी का ज्ञान इस सम्बन्ध में अद्यतन नहीं। उसने ब्रह्मचर्य आश्रम से ही विद्या का प्रारम्भ माना है।[5]

चीनी यात्री ह्वानच्वाङ्ग ने बच्चों की आरम्भिक शिक्षा 'सिद्धमचङ्ग' से प्रारम्भ होना बताया है। 'सिद्धम' सफलता का द्योतक था। 'सिद्धम' की समाप्ति के पश्चात् सातवें वर्ष पञ्चविद्याओं का अध्ययन कराया जाता था। ये पञ्चविद्याएँ थीं, (१) शब्दविद्या (जिसे व्याकरण भी कहा जाता था), (२) शिल्पविद्या (जिससे अनेक शिल्प और कला का ज्ञान प्राप्त होता था), (३) चिकित्सा विद्या, (४) हेतुविद्या (न्याय अथवा तर्क) और (५) आध्यात्म विद्या (दर्शनशास्त्र)।[6] इत्सिङ्ग ने भी बालकों की प्रारम्भिक शिक्षा का

---

1. अपरार्क, पृ० ३०-३१।
2. स्मृतिचन्द्रिका, १, पृ० २६।
3. संस्कारप्रकाश, पृ० २२१-२५।
4. संस्काररत्नमाला, पृ० ९०४-७।
5. *AI:*, Vol. II, p. 130.
6. *Waiters* I, p. 155.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

प्रारम्भ 'सिद्धिरस्तु' नामक पुस्तक से माना है, जिसमें वर्णमाला, स्वर और व्यञ्जन का विनियोग था।[१]

प्रारम्भिक शिक्षा में लेखन उपकरण

प्रारम्भिक शिक्षा में छात्र को लिखने के लिए काली पटिया और खड़िया दी जाती थी। वह लम्बवत् पटिया (तख्ती) पर बाएँ से दाएँ खड़िया से लिखने का अभ्यास करता था। अलबीरूनी लिखता है कि वे बच्चों के लिए विद्यालय में काली तख्ती प्रयोग में लाते हैं और उस पर लम्बाई की ओर से, न कि चौड़ाई की, बाएँ से दाएँ सफेद वस्तु से लिखते हैं।[२]

आज भी भारतीय पाठशालाओं में, अनेकानेक नवीन लेखक उपकरणों के बावजूद, कालिख पुती हुई काठ की पटरी पर खड़िया (दुधिया) से लिखा जाता है। अलबीरूनी ने जिस सफेद वस्तु का निर्देश किया है वह निश्चय ही दुधिया ही रही होगी। बच्चों को पटरी की लम्बाई की ओर से बाएँ से दाएँ लिखने के लिए सभी पाठशालाओं में बताया जाता है।

गुरु-आश्रय में विद्याध्ययन

गुरु के निकट रहकर प्राचीनकाल[3] में तो छात्र विद्याध्ययन करते ही थे, मध्यकाल में भी करते थे। इस आवास-काल में वेद-स्मृति, आचार, धर्म, दर्शन आदि के अतिरिक्त शिल्प, कला, कारीगरी आदि की भी शिक्षा विद्यार्थियों को मिलती थी।[४]

अलबीरूनी लिखता है कि उसका कर्त्तव्य ब्रह्मचर्य का पालन, भूमि को अपना बिछौना बनाना, वेद और उसके भाष्य का तथा ब्रह्मविद्या (दर्शन) और धर्मशास्त्र का अध्ययन प्रारम्भ करना है। यह सब उसको एक गुरु पढ़ाता है जिसकी वह दिन-रात सेवा करता है।[५]

गुरु और शिष्य का सम्बन्ध

समाज में गुरु और शिष्य का नाता अत्यन्त घनिष्ठ था। शिष्य का यह कर्तव्य था कि वह गुरु की 'दिन-रात सेवा' करता, और गुरु का यह कर्तव्य था कि वह स्नेहसिक्तता से शिष्य को पुत्रवत् स्नेह करता तथा उसकी समस्त

---

1. Itsing, *Records of the Buddhist Religion*–Takusus, p. 165.
2. *AI.*, Vol. I. p. 182.
3. छान्दोग्य उपनिषद् ७. १. २, १, ४, ७. १, बृ० उप० २. ४. १०, ४. ५. ११, मुण्डुक उप० १. १५, याज्ञ० १. ४४-४५, वि० पु० ३९. १।
4. स्मृतिचन्द्रिका, २ पृ० १९५। 5. *AI.*, Vol, II, p.

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

जिज्ञासाओं का समाधान करता।[1] किसी भी अध्यापक को यह उचित नहीं था कि वह किसी विद्यार्थी को अपेक्षित ज्ञान से वञ्चित रखता। विद्या अध्यापक की सम्पत्ति न मानकर धरोहर मानी जाती थी।[2] किन्तु लक्ष्मीधर राष्ट्रीयता को महत्त्व देते हुए कहता है कि जो अध्यापक देश का शत्रु हो उससे विद्यार्थियों को सम्पर्क नहीं रखना चाहिए।[3]

वेद का अध्ययन

तद्युगीन समाज में वेद का अध्ययन पहले की ही तरह किया जाता था। देश के अध्येता वेद का अध्ययन करके सोल्लास वैदिक यज्ञ करते थे।[4] वेदाध्ययन के सम्बन्ध में अलबीरूनी द्वारा दी गई सूचना ठीक है। मेधातिथि,[5] विश्वरूप,[6] अपरार्क[7] आदि मध्ययुगीन लेखकों के अनुसार छात्र को गुरु के सान्निध्य में रहकर वेद का वास्तविक ज्ञान और धर्म की समस्त धाराओं को समझना था। लक्ष्मीधर बृहस्पति को उद्धृत करते हुए लिखता है कि ब्राह्मणों का पहला कर्तव्य है कि वे वेद पढ़े तदनन्तर 'स्मृति' और 'सदाचार'।[8]

प्राचीनकाल से ब्राह्मणों को ही वेद पढ़ाने का अधिकार था। अलबीरूनी के अनुसार ब्राह्मण वर्ण का ही व्यक्ति वेद पढ़ा सकता था, और किसी वर्ण का नहीं।[9] केवल ब्राह्मण और क्षत्रिय वेद का अध्ययन कर सकते थे, और अन्य कोई वर्ण नहीं।[10] मध्यकालीन लेखक लक्ष्मीधर के अनुसार ब्राह्मण वेद की शिक्षा देता था।[11]

स्मृतिचन्द्रिका[12] और कृत्यकल्पतरु[13] के अनुसार एक वेद का अध्ययन करना ही यथेष्ट था, जो बारह वर्ष के लिए उपयुक्त था। लक्ष्मीधर ने जीवन-पर्यन्त छात्र रहनेवाले नैषधीक ब्रह्मचारी का उल्लेख किया है।[14]

---

1. कृत्यकल्पतरु, ब्रह्मचारी काण्ड पृ० १९९-२०१, २१०-२२७, २४०-२४३।
2. वही, पृ० २४०, आपस्तम्ब (१८. २४-२८) को उद्धृत करते हुए।
3. कृत्यकल्पतरु, ब्रह्मचारी काण्ड, पृ० २४२ मनु० (२. ११४) को उद्धृत करते हुए।
4. *EI.*, I, p. 41.
5. मेधा–मनु० ३.१।
6. विश्वरूप–याज्ञ० १.५१।
7. अपरार्क, पृ० ७४-७५, मेधा–मनु० ३.१९।
8. कृत्यकल्पतरु, ब्रह्मचारीकाण्ड, पृ० २६६-६७।
9. *AI.*, Vol., II, p. 136.
10. *Ibid*, Vol. II. p. 136.
11. कृत्यकल्पतरु, गृहस्थ०, पृ० २५२।
12. स्मृतिचन्द्रिका, १, पृ० २९।
13. कृत्यकल्पतरु, ब्रह्मचारी काण्ड, पृ० २६३।
14. वही, पृ० २७१-७४।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

जो लोग वेद को पूरी तरह नहीं पढ़ सकते थे, उन लोगों के लिए हलायुध ने ४०० मन्त्रों को इकट्ठा कर 'ब्राह्मण सर्वस्व' लिखा। उसने अपनी रचना के विषय में स्वयं लिखा है कि वाजसनेयी, राढीय और वारेन्द्र ब्राह्मणों के लिए इसकी रचना की गई है।[1] यह निश्चित है कि वेदों के कुछ अंश ही छात्रों को याद होते थे।

सम्पूर्ण वेदों का अध्ययन-क्रम समय के प्रवाह में मन्द पड़ने लगा था। ११वीं-१२वीं सदी के इन उल्लेखों से यह पूर्णतः स्पष्ट है कि सभी वेदों में पारङ्गत होना अपेक्षित नहीं था। किन्तु सातवीं सदी के बाण के उल्लेख से विदित होता है कि उसने खड्ग सहित वेदों का सम्यक् अध्ययन किया था।[2] श्वानच्वाङ्ग का भी यही कथन है कि ब्राह्मण चारों वेदों का अध्ययन करते थे।[3]

वेद का पाठ : मौखिक

वेद का ज्ञान स्मरण-शक्ति पर ही आधारित था। इसकी शिक्षा मौखिक ही दी जाती थी।[4] अलबीरूनी लिखता है कि वे वेद को लिखने की स्वीकृति नहीं देते। क्योंकि यह स्वर के निश्चित् उतार-चढ़ाव पर विवृत किया गया है और इस तरह वे लेखनी का प्रयोग इस कारण उपेक्षित करते हैं कि कुछ त्रुटियाँ न हो जायँ और लिखे गए पाठ में कुछ कमी-वेशी न हो जाय। परिणाम यह हुआ कि वे अनेक बार वेद को भूले और गँवाए।[5]

वेद के मौखिक पाठ का प्रचलन तो १२वीं सदी तक था।[6] किन्तु वेद के लिपिबद्ध होने का उल्लेख अलबीरूनी ही करता है, फलतः हमारे समय से बहुत पहले नहीं, कश्मीरवासी प्रसिद्ध ब्राह्मण वसुक्र ने अपनी इच्छा से वेद को लिखने और व्याख्या करने का कार्य लिया। वह ऐसा कार्य था जिसे करने में प्रत्येक व्यक्ति पीछे हटता था; लेकिन उसने इसे समाप्त किया। वह भयभीत था कि वेद भूल न जाय और पूर्णतः मनुष्य की स्मृति से निकल न जाय

---

1. ब्राह्मण सर्वस्व, पृ० ३८।
   Cf. Durgamohan Bhattacharya, *Our Heritage*, Vol. I., p. 147, 1953.
2. 'सम्यक् पठित साम्नो वेदः श्रुतानि च यथाशक्ति शास्त्राणि', हर्षचरित, पृ० १२३।
3. *Watters*, I, p. 155.
4. दक्ष० २.३४ मिताक्षरा द्वारा उद्धृत याज्ञ० ३.११० और अपरार्क पृ० १२६।
5. *AI.*, Vol. I, pp. 125-6.
6. कृत्यकल्पतरु, दानकाण्ड, पृ० २०७, २१३।

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

क्योंकि उसने परखा कि लोगों के चरित्र गिरते गए और उन्होंने न सद्धर्म पर ध्यान दिया न कर्म पर।[1]

वेदाध्ययन का स्थान

वेदाध्ययन में ऐसा निर्देश था कि घर से बाहर उन्मुक्त वातावरण में ही वेद का पाठ करना चाहिए इसीलिए गुरु और शिष्य नगर और ग्राम से दूर एकान्त स्थान में निवास करते थे। अतः गुरु के आवास को 'गुरुकुल' कहा जाता था। विद्याध्ययन का यही निर्जन स्थल ब्रह्मचर्य-आश्रम था। अलबीरूनी लिखता है कि वेद में कुछ ऐसे अंश हैं जिनका वर्णन रहनेवालों के बीच नहीं होना चाहिए। वे आशङ्का करते हैं कि कहीं यह औरत और भैंस के गर्भपात का कारण न हो। अतः वे इसका वर्णन करते समय बाहर खुले मैदान में चले जाते हैं। इस तरह मुश्किल से एकाध श्लोक ही हैं जो ऐसे प्रमुख आदेश से विरत हों।[2]

लक्ष्मीधर के अनुसार वेद न सड़क पर, न नगर में पढ़ा जाना चाहिए और न शूद्र के सम्मुख न असभ्य के; बल्कि खुली जगहों पर पढ़ा जाना चाहिए।[3]

'गुरुकुल' में निवास करके विद्याध्ययन की प्रणाली प्राचीनतम है। ७वीं सदी के बाण के उल्लेख से विदित होता है कि गुरुकुल में अध्ययन की विधि तद्वत चली आ रही थी। बाण ने स्वयं गुरुगृह में शिक्षा प्राप्त की थी।[4]

वेद के अध्ययन की त्रुटिपूर्ण रीति

वेद अध्येताओं के विषय में अलबीरूनी यह कहता है कि ब्राह्मण लोग बिना अर्थ समझे ही इसका (वेद का) पाठ करते हैं। इसी प्रकार इसे वे कण्ठस्थ कर लेते हैं, एक से सुनकर दूसरा स्मरण कर लेता है। ब्राह्मणों में वेद का अर्थ जाननेवाले बहुत कम हैं। उन लोगों की संख्या तो और भी अल्प है जिनकी विद्वत्ता ऐसी हो जो वेद के विषयों और उसकी व्याख्या पर धार्मिक विवाद कर पावें।[5]

1. *AI.*, Vol. I, pp. 126-7.
2. *AI.*, Vol. I, p. 127.
3. कृत्यकल्पतरु, ब्रह्मचारी काण्ड, पृ० २५७-५९।
4. हर्षचरित, पृ० ६६।
5. *AI.*, Vol. I, p. 135.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अलबीरूनी का यह कथन कि ब्राह्मण वेद को बिना समझे पढ़ते हैं वह निरुक्त[1] के इस कथन से साम्य रखता है कि जो वेद का अध्येता होता है वह इसका अर्थ नहीं जानता। भारत में सामान्यतः वेद को वही ब्राह्मण पढ़ते थे जो इसका अर्थ और व्याख्या कर पाने में समर्थ थे। लेकिन कभी-कभी अर्थ और व्याख्या न कर पाने वाले भी पढ़ते थे। व्यास के कथन को विस्तार से विवृत्त करते हुए अपरार्क[2] ने मात्र वेद कण्ठस्थ करने की रीति की आलोचना की है। मेधातिथि[3] ने भी यही विचार प्रकट किया है। वेद अध्ययन की त्रुटि-पूर्ण रीति की आलोचना आदित्यसेन के इस कथन से भी होती है कि वैदिक ज्ञान की यह परम्परा उन वेद वक्ताओं को नहीं थी, जो वेदज्ञ होने का दावा करते थे, वे नियमानुसार वेद पढ़ते थे; किन्तु छिछले रूप में, एक भी शब्द समझ सकने में असमर्थ थे। वे केवल पाठ से ही सन्तुष्ट थे।[4]

अन्य विषयों का अध्ययन

बाण के अनुसार ब्राह्मण गुरु नियमित रूप से वेद, व्याकरण, मीमांस आदि की शिक्षा देता था। गुरुकुल में वेदों का निरन्तर पाठ होता था। यज्ञ की अग्नि जलती थी। अग्निहोत्र की क्रियाएँ होती थीं और विश्वदेव को बलि दी जाती थी। विधिपूर्वक यज्ञ का सम्पादन होता था तथा ब्राह्मण उपाध्याय ब्रह्मचारियों को पढ़ाने में संलग्न रहते थे।[5]

ज्योतिष, गणित, भूगोल, रसायन, भौतिक, दर्शन, नीति, इतिहास, साहित्य संस्कृत आदि अनेकानेक विषयों का भारत में असीम भण्डार रहा है। इन विभिन्न विषयों पर प्राचीनकाल से विपुल ग्रन्थों का प्रणयन होता रहा है। सभी विषयों पर इतनी प्रचुर सामग्री थी कि जिनका अध्ययन कर पाना शक्य नहीं था। अलबीरूनी लिखता है, 'विज्ञान और साहित्य की अन्य अनेक शाखाओं का विस्तार हिन्दू करते हैं तथा उनका साहित्य सामान्यतः अपरिसीम है। इस प्रकार मैं अपने ज्ञान के अनुरूप न समझ सका।[6]

निश्चय ही किसी एक व्यक्ति के लिए विभिन्न विषयों के समस्त ग्रन्थों का ज्ञान प्राप्त कर पाना अत्यन्त दुष्कर है।

---

1. निरुक्त० १. १८। 2. अपरार्क, पृ० ७४।
3. मेधातिथि–मनु० ३. १९।
4. पाकयज्ञविवृत्ति—लौगाक्षिगृह्यसूत्र की भूमिका में प्रकाशित (काश्मीर संस्कृत सिरीज), पृ० ८।
5. हर्षचरित, पृ० १३०।
6. *AI.*, Vol. I, p. 159.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अलबीरूनी ने चार वेदों, अठारह पुराणों, बीस स्मृतियों, महाभारत, गौड़कृत ग्रन्थ, पतञ्जलिकृत ग्रन्थ, कपिलकृत न्यायभाषा, जैमिनीकृत मीमांसा, बृहस्पतिकृत लोकायत, आगस्त्यकृत अगस्तमत, शर्ववर्मनकृत कातन्त्र, शशिदेव-वृत्त; उग्रभूतिकृतं शिष्यहितावृत्ति, पुलिश का गणितविषयक सिद्धान्त, वराह-मिहिर, आर्यभट्ट वशिष्ट आदि के विभिन्न विषयगत मतों और ग्रन्थों का उल्लेख किया है जिससे यह स्पष्ट होता है कि उस समय अनेकानेक विषयों पर भारतीय ग्रन्थ थे जिनका अध्ययन भारत में ही नहीं; बल्कि विदेशों में भी होता था।

अलबीरूनी से चार सौ वर्ष पहले, सातवीं सदी के पूर्वी चालुक्यों के एक दान-अभिलेख से विदित होता है कि भेंट पानेवाले व्यक्ति का पितामह जो स्थानीय विद्यालय का प्राध्यापक था, वह दो वेदों में पारङ्गत तथा पद, क्रम, अनुक्रमणिका, कल्प, उपनिषद्, पुराण, इतिहास और धर्मशास्त्र का ज्ञाता था। भेंट पानेवाला स्वयं यज्ञ कराने में निपुण तथा उपनिषद्, इतिहास, पुराण और धर्मशास्त्र में दक्ष था।[1]

अलबीरूनी के समय के भारत में भी वेदों के अतिरिक्त, धर्मशास्त्र, पुराण, ज्योतिष, व्याकरण, विज्ञान, भौतिक और रसायन आदि का भी अध्ययन किया जाता था। जैनेन्द्र, कातन्त्र और हेमचन्द्र के व्याकरण के नवीन समुदाय भी थे।[2] आश्वलायन[3], वाजसनेय[4] छान्दोग्य[5], सांख्य[6] आदि की अपनी अलग-अलग शाखा थी। स्वयं अलबीरूनी ने अपनी पुस्तक में स्थान-स्थान पर विभिन्न भारतीय विषयों की पुस्तकों से अनेक उद्धरण दिए हैं, जिनसे स्पष्ट होता है कि उस काल में अनेक भारतीय विषयों की शिक्षा दी जाती थी। मीमांसा, साङ्ख्य, न्याय, चार्वाक सिद्धान्त आदि दर्शन शास्त्रों का अध्ययन किया जाता था।[7]

---

1. *Annual Report of South Indian Epigraphy*, 1927, p. 115.
2. *The Struggle for Empire*, pp. 319-20.
3. *EI.*, VIII, p. 154.
4. *Ibid.*, XIX, pp. 18, 19.
5. *AI.*, XVIII, pp. 12, 13; *EI.*, V. pp. 117-18.
6. *IA.*, XVI, p. 103; *EI.*, VIII, p. 154.
7. मीमांसाद्वय पारगो गुरु रसौ यः काश्यपीये नये।
सांख्ये चाप्रतिमल्लता नयनिधित्रयक्षोपादोक्ति दृक ॥
यश्चार्वाक-विशाल-मान मलनो दुर्वारबौद्धाम्बुधेः।
पानानन्दित कुम्भसम्भवमुनिदिंग्वास सामन्तकः ॥-*EI.*, I, p. 51.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

हिन्दू-गणित की विशेषता पर लिखते हुए अलबीरूनी का यह कथन है, "अङ्कों के व्यवहार में जो सहस्र से आगे जाते हैं, वे हिन्दू ही हैं, कम से कम अपनी गणित की विशेष परिभाषाओं में। ये (परिभाषाएँ) या तो उन्होंने स्वतन्त्र रूप से अनुसन्धित की हैं या निश्चित व्युत्पत्तियों के अनुसार निकाली हैं, जब कि दोनों तरीके मिलाकर बने हैं।"[1]

व्याकरण

उस समय व्याकरण का भी बहुत प्रचार था। अलबीरूनी के बहुत पहले से भारत में व्याकरण के अनेक विद्वान् हो चुके थे, जिन्होंने व्याकरण पर ग्रन्थ-रचना की थी। शाक्ट, पाणिनि, शर्ववर्मन, शशिदेव आदि अनेक विचारकों ने व्याकरण पर बहुचर्चित ग्रन्थों का प्रणयन किया था। इत्सिङ्ग के विवरण से विदित होता है कि काशिकावृत्ति और पतञ्जलि के महाभाष्य का चार अथवा छह साल में अध्ययन पूर्ण होता था।[2] व्याकरणाचार्य उग्रभूति का उल्लेख अलबीरूनी ने किया है।[3] वह पञ्जाब के शाहिय नरेश आनन्दपाल (१०००-११००) का गुरु था और व्याकरण ग्रन्थ 'शिष्यहितावृत्ति' का रचनाकार। उग्रभूति की पुस्तक और उसके प्रचार-प्रसार कार्य पर अलबीरूनी लिखता है, 'ग्रन्थ पूरा कर लेने के बाद उसने इसे कश्मीर भेजा, लेकिन घमण्डी और परिवर्तन विरोधी होने के कारण वहाँ के लोगों ने इसे नहीं अपनाया। अतः उसने इसकी शाह से शिकायत की, और शाह ने गुरु के प्रति शिष्य के कर्तव्य को आचरित करते हुए, उससे उसकी इच्छा को पूर्ण करने का वचन दिया। अतएव उसने २०,००० दिरहम तथा इतने ही मूल्य के उपहार कश्मीर में बाँट देने के लिए आज्ञा दी जो उसके गुरु की पुस्तक पढ़ते थे। परिणामस्वरूप उन्होंने ग्रन्थ पर भीड़ लगा दी और किसी अन्य व्याकरण की प्रतिलिपि नहीं की। लेकिन यह उनमें एक लालच की आधारशिला थी। ग्रन्थ प्रचारित और अत्यन्त पुरस्कृत हुआ।"[4]

विदेशियों के लिए भारतीय व्याकरण सीख पाना अत्यन्त कठिन था। अलबीरूनी ही कहता है, "हम मुसलमान इसका कुछ नहीं सीख सकते, इसलिए कि यह ऐसे मूल से निकली शाखा है जो हमारी समझ के अन्तर्गत नहीं—मेरा तात्पर्य अपनी भाषा से है।"[5]

1. *AI.*, Vol. I, p. 174.
2. Altekar, *Education in Anc. India*, p. 133.
3. *AI.*, Vol. I, p. 135.
4. *AI*, Vol. I, p. 136.
5. *Ibid.*, p. 135.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

रसायन विद्या पर लिखते हुए अलबीरूनी प्रसिद्ध रसायनशास्त्री नागार्जुन का उल्लेख करता है। वह कहता है, "नागार्जुन इस कला (रसायन विद्या) का विख्यात विद्वान् था। यह सोमनाथ के निकट देहककोट का निवासी था। वह इस विद्या में पारङ्गत था और एक ग्रन्थ की रचना की थी, जिसमें इस विषय पर लिखे गए समस्त साहित्य का सार है। यह पुस्तक अत्यन्त दुर्लभ है। वह हमारे समय से कोई एक सौ वर्ष पहले हुआ था।"[1]

अलबीरूनी द्वारा उल्लिखित यह नागार्जुन कोई दूसरा है। क्योंकि नालन्दा में दीक्षित होने वाले तथा माध्यन्तिका दर्शन का प्रवर्तन करने वाले प्रसिद्ध नागार्जुन का समय वाटर ने प्रायः तीसरी सदी बताया है।[2] डॉ० आर० सी० मजूमदार के अनुसार नागार्जुन सम्राट् कनिष्क का समकालीन था।[3] नागार्जुन अपने समय का प्रसिद्ध विद्वान् था।[4] उसने विज्ञान, औषधि, ज्योतिष आदि विभिन्न विषयों पर अनेक कृतियों का निर्माण किया था।[5]

इस काल में दार्शनिक ग्रन्थों का अध्ययन भी रुचिपूर्वक किया जाता था।[6] भोज[7] का 'राजमार्तण्ड', 'भीमपराक्रम', 'भुजबल निबन्ध', सोमेश्वर का मानसोल्लास तथा भवदेवो के ग्रन्थों का निर्माण इसी काल में हुआ। विज्ञानेश्वर, अपरार्क, कुल्लूक और गोविन्दराज की स्मृतियों और धर्मशास्त्रों पर टीकाएँ, इसी युग में लिखी गईं। लक्ष्मीधर ने 'कृत्यकल्पतरु', बल्लालसेन ने 'आचारसागर', दानसागर, अद्भुतसागर, वरदराज ने 'व्यवहारनिर्णय', देवन्नभट्ट ने 'स्मृतिचन्द्रिका', हेमाद्रि ने 'चतुर्वर्गचिन्तामणि, और जीमूतवाहन ने 'दायभाग नियम' इसो मध्ययुग में लिखा। खगोल विद्या पर भोज ने 'राजमृगाङ्क' और शतानन्दने 'भासवती' ११वीं सदी में ही लिखा। द्वयाश्रय से विदित होता है कि चौलुक्य राजा जयसिंह ने ज्योतिष के अध्ययनार्थ एक शिक्षा संस्था का निर्माण कराया था।[8] खगोलशास्त्री भास्कराचार्य की कृतियों के निमित्त खानदेश के प्रधानों ने एक विद्यालय की स्थापना की थी।[9] उस काल में तर्कशास्त्र का भी अध्ययन खब होता था। चक्ररक्तसङ्ग्रह,

1. *Ibid.*, p. 189. 2. *IA.*, 1908, p. 206,
3. Majumdar, R. C., *Ancient India*, p. 175.
4. *IA.*, 1886, p. 353.
5. Keith, A. B., *The Glories of Magadh*, p. 141.
6. *EI.*, I, p. 59.
7. Kane, *JORI.*, XXIII, pp. 94-127.
8. द्वयाश्रय, १५।
9. *JRAS* (N. S.), I, p. 414.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

प्रबोधचन्द्रोदय, वाचस्पतिमिश्रकृत 'द्वैतसंग्रह', चण्डीदास-कृत 'काव्यप्रकाश-दीपिका', शङ्खधर-कृत 'लतकमालक' इस युग की महत्त्वपूर्ण उपलब्धियाँ हैं।[1] यशपाल के गया अभिलेख का कर्ता मुरारी न्याय का अध्येता था।[2] न्यायविद्यालय की जयसिंह ने स्थापना की थी।[3] उज्जयिनी में ऊवट ने वाजसनेयी संहिता पर अपनी प्रसिद्ध टीका की रचना राजा भोज के काल में ही की थी।[4]

शिक्षा और विद्या के प्रमुख केन्द्र

प्राचीनकाल से तक्षशिला[5], नालन्दा[6], विक्रमशिला[7], वाराणसी आदि नगर विद्या के प्रधान केन्द्र थे।[8] पाली साहित्य में तक्षशिला विद्या और संस्कृति का प्रधान केन्द्र होकर वर्णित हुआ है।[9] तक्षशिला के बाद वाराणसी का विश्वविद्यालय ही प्रमुख था जहाँ दूर-दूर से विद्यार्थी शिक्षा ग्रहण करने के निमित्त आते थे।[10] पूर्वमध्यकाल में जब मुसलमानों ने पञ्जाब को तहस-नहस करके अपने अधीन कर लिया तब वहाँ के विद्वान् और शिक्षाविद् दूसरे प्रमुख नगरों में निवास के निमित्त प्रस्थान किए। कुछ तो पञ्जाब के निकट काश्मीर प्रस्थित हो गए और कुछ वाराणसी जैसे सुदूर विद्याकेन्द्रों में चले गए। अलबीरूनी लिखता है कि हिन्दू विद्याएँ हमारे विजित प्रदेशों से भागकर काश्मीर, वाराणसी जैसे सुदूर स्थानों में चली गई जहाँ मेरे हाथ नहीं पहुँच सकते।[11] लेकिन वाराणसी तो बहुत पहले से विद्या और शिक्षा का प्रधान केन्द्र था। मध्ययुगीन

---

1. *IH*, XXII, pp. 131-39.
2. *IA.*, XVI, p. 65, verse 14.
3. *Ibid*, IV, p. 267.
4. Lard & Lele, *Dhar & Parmara of Malwa*, p. 29.
5. Keay, *Indian Education in Ancient India and Later Times*, p. 145.
6. *Watters*, II, p. 165.
7. Majumdar, N. M, *A History of Education in Ancient India*, p. 98.
8. Rai Sarat Chandradas Bahadur, *Universities in Ancient India., The Hindustan Review*, March, 1906.
9. Fick, p. 96.
10. *J.*, I, p. 463; II, p. 100.
11. *AI.*, Vol. I, p. 22.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अभिलेखों से विदित होता है कि वाराणसी,[१] गया[२] और नागर[३] तीर्थ में वेद आदि का अध्ययन होता था। वाराणसी और काश्मीर में अनेक उच्चतम विद्यालय थे जहाँ अनेकानेक विषयों की शिक्षा दी जाती थी। अलबीरूनी लिखता है कि यह नगर (वाराणसी) और काश्मीर हिन्दू विद्याओं के श्रेष्ठतम विद्यालय हैं।[४]

काश्मीर में दर्शन, साहित्य, न्याय, ज्योतिष, इतिहास आदि के प्रतिभा-सम्पन्न विद्वान् हुए जिन्होंने साहित्य और संस्कृति के अनेक ग्रन्थों की रचना की। 'हरिविजय'[५] का रचनाकार रत्नाकर (८०० ई० के लगभग वर्तमान), 'शिवाङ्क' का रचयिता शिवस्वामी (८५८-८८५ ई० के लगभग वर्तमान); 'बृहत्कथामञ्जरी', रामायणमञ्जरी, भारतमञ्जरी, बोधिसत्वावदान के कर्ता अद्भुत कथाकार क्षेमेन्द्र (१०५० ई० के लगभग वर्तमान), 'कला-विलास, चतुर्वर्गसंग्रह, चारुचर्या, नीतिकल्पतरु, समयमातृका आदि ग्रन्थों के रचयिता (क्षेमेन्द्र का पुत्र) सोमेन्द्र, अलङ्कार शास्त्र के आचार्य रुय्यक (११३० ई० के लगभग वर्तमान), 'राजतरङ्गिणी' का कर्ता इतिहासज्ञ कल्हण (११५० ई० के लगभग वर्तमान), 'श्रीकण्ठचरित' के कर्त्ता मङ्खक (११७० ई० के लगभग वर्तमान), वेदान्त ग्रन्थ 'खण्डनखण्ड-खाद्य', महाकाव्य नैषधीयचरित के कर्त्ता दार्शनिक महाकवि श्रीहर्ष आदि काश्मीर के ही थे।

वाराणसी गहड़वालों की दूसरी राजधानी के रूप में थी।[६] प्रसिद्ध काश्मीर-कवि श्रीहर्ष के पिता 'हीर' गहड़वालनरेश विजयचन्द के सभासद थे। विख्यात काव्य नैषधीचरित् की रचना श्रीहर्ष ने काशी-आवास में ही किया था।[७] बाद में कबीर और तुलसीदास जैसे ज्ञानी काशी से ही विख्यात हुए।

काश्मीर और वाराणसी के अतिरिक्त कन्नौज, उज्जैन, धारा, मथुरा, नदिया नगर आदि विद्या और संस्कृति के प्रमुख केन्द्र थे। परमारों की राजधानी

---

1. *EI.*, XIX, 299.
2. गौड़ लेखमाला पृ० ११२, श्लो० ३ कृष्णद्वारिका मन्दिर अभिलेख।
3. *IA.*, XI, 102.
4. *AI.*, Vol. I, p. 173.
5. Keith, *A Berriedale, A History of Sanskrit Literature*, p. 134.
6. *IA.*, XV., pp. 7-8; XVIII., pp. 16, 18; *EI.*. I, pp. 198, 204 ff.; *ED.*, Vol. II, pp. 222-23,300 etc., Briggs, *Firishta*, I, p. 178; Cf. Hist. of Kanauj, p. 324.
7. नैषधीचरित ११.११८-१९।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

धारा नगर अलबीरूनी के काल में शिक्षा और विभिन्न विद्याओं के लिए विख्यात था। भोजराज के पिता सिन्धुराज के काल में ऐतिहासिक महाकाव्य 'नवसाहसाङ्कचरित' का रचयिता पद्मगुप्त परिमल १००५ ई० के लगभग वर्तमान था। राजा भोज स्वयं साहित्यानुरागी था। धारा नगरी में उसने संस्कृत विश्वविद्यालय की स्थापना की तथा स्वयं अनेक ग्रन्थों की रचना की।[1] उसकी सभा अनेक विद्वानों से सुशोभित थी। कवि धनपाल और सूक्तियों के सङ्ग्रहकर्ता चित्तप[2] उसी के समयुगीन थे।

मथुरा के निकट भदावर के डल्हण तथा बङ्गाल के नयपाल का राजवैद्य चक्रपाणि, इन दोनों ने चरकसंहिता पर टीकाएँ लिखीं।

बङ्गाल के सेन राजाओं के नेतृत्व में नदिय (नवद्वीप) नगर विद्या और वाङ्मय का प्रधान केन्द्र बन गया। हलायुध, जयदेव, धोयी, उमापति आदि श्रेष्ठ कवि-विद्वानों ने अपनी अलौकिक प्रतिभा के तेज से इस नगर को प्रकाशित किया।[3]

———

1. *An Advance History of India*, p. 198.
2. उपाध्याय, बलदेव-संस्कृत साहित्य का इतिहास, पृ० ३०३, १९५८।
3. Mookerji, R. K., *Ancient Indian Education*, pp. 598-99.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

दसवाँ अध्याय

समाज में धर्म

अलबीरूनीकालीन भारत में हिन्दू धर्म प्रधान था। इस धर्म के प्रधान नियामक ब्राह्मण थे। देश में शिव, ब्रह्मा, विष्णु, सूर्य, दुर्गा आदि विविध देव-देवियों की पूजा की जाती थी। इन्हीं देवताओं के मूर्त्ति की प्रतिष्ठापन के निमित्त विभिन्न स्थानों पर सहस्रों मन्दिरों का निर्माण किया गया था। अतः विभिन्न देव-मूर्त्तियों के उपासक होने के कारण, हिन्दू धर्म के अन्तर्गत विभिन्न मतावलम्बी भी हो गए थे।

हिन्दू धर्म के अतिरिक्त देश में जैन और बौद्धधर्म का भी प्रचार था। राजपूताना और गुजरात में जैन धर्मावलम्बी अधिक थे। उसी प्रकार बङ्गाल, बिहार[1], और नेपाल[2] में बौद्ध धर्म का प्रभाव था।

तद्‌युगीन समाज में अनेक प्रकार के धार्मिक सम्प्रदाय रहते हुए भी उनमें मनमुटाव नहीं था। किसी प्रकार का लड़ाई-झगड़ा अथवा वैमनस्य की बात नहीं उठती थी। सभी अपने इच्छानुसार विभिन्न धर्म को मानते थे। अलबीरूनी लिखता है "समग्र रूप से धार्मिक विषयों पर वे अपने में बहुत कम झगड़ते हैं। अधिक से अधिक उनकी लड़ाई शब्दों की होती है। धार्मिक शास्त्रार्थों में वे कभी अपने प्राण, शरीर या सम्पत्ति को जोखिम में नहीं डालते।"[3]

उसके इस कथन से स्पष्ट है कि हिन्दुओं के अतिरिक्त अन्य देशों के विभिन्न धर्मावलम्बी लड़ाई-झगड़े में अपने प्राण और शरीर को भी खतरे में डाल लेते थे। किन्तु हिन्दू विपरीत धर्म-सिद्धान्तों की लड़ाई में कभी भी अपना जीवन और धन नहीं लगाते थे। वे लड़ते भी तो केवल शब्दों से। इसका कारण यह है कि मत-भेद रखते हुए भी वे दूसरों के विचारों को सहन करते और उनके प्राण और सम्पत्ति का आदर करते थे।

हिन्दू धर्म

वैदिक धर्म से उत्प्रेरित हिन्दू धर्म की व्यापकता प्राचीनतम है। इस धर्म के अन्तर्गत विष्णु, शिव, ब्रह्मा, सूर्य, दुर्गा आदि के उपासक आ जाते हैं। अलबीरूनी के काल के हिन्दू समाज में इन सभी देवमूर्तियों की पूजा करने-

---

1. मजुमदार, हिस्ट्री ऑफ बङ्गाल, १, सम्बद्ध अध्याय देखिए; बाङ्गलाय बौद्धधर्म।
2. रेग्मी, हिस्ट्री ऑफ नेपाल, देखिए सम्बद्ध अध्याय।
3. *AI.*, Vol. I, p. 19.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

वाले विभिन्न सम्प्रदाय वर्तमान थे। तद्युगीन शासकों में कोई वैष्णव था, कोई शैव। कोई शिव मन्दिर का निर्माण कराता था, कोई विष्णु के मन्दिर का। उनमें किसी प्रकार का कट्टरपन अथवा मनोमालिन्य नहीं था। सभी हिन्दुओं का प्रत्येक देवी-देवताओं के प्रति जगत्नियन्ता के रूप में आदर और पूज्य भाव था।

सम्राट् हर्ष की मृत्यु के पश्चात्, बौद्ध धर्म का पतन और हिन्दू धर्म का पुनरुत्थान प्रारम्भ हो गया था। इस पुनरुत्थान में कुमारिलभट्ट (७वीं सदी ई०)[1] और शङ्कराचार्य (८वीं सदी ई०)[2] का मुख्य हाथ था, जिन्होंने हिन्दू-धर्म के उद्धार-उत्थान के लिए समस्त भारत की हिन्दू जनता के बीच भ्रमण किया तथा पुनः हिन्दू तत्त्वज्ञान का बीज-वपन किया। फलतः कालान्तर में आकर बौद्ध धर्म का प्रसार नहीं के बराबर रह गया और हिन्दू धर्म समस्त भारत में व्याप्त हो गया। प्रतिहारों, गहड़वालों, परमारों, चन्देलों, चालुक्यों आदि के युग में हिन्दू धर्म पुनः अपनी परिणति पर पहुँच गया। एक बार फिर हिन्दू-देव-देवियों के मन्दिरों का निर्माण तीव्रता से होने लगा। राजों-महाराजों से लेकर गरीब जनता तक नवीन उत्साह से हिन्दू धर्म के पुनरुद्धार में लग गई।

अलबीरूनी के पहले होने वाले मुसलमान लेखक इब्न नदीम (२७७ हि०-८८३-८४ ई० के लगभग) ने कुछ भारतीय सम्प्रदायों के विषय में लिखा है। उसने 'महाकाल्या' + (महाकालपूजक), 'अद्दनियकतियः अल् अदतबकतियः (आदित्य भक्त), 'चन्दर भक्तयः' (चन्द्र भक्त), 'बकरन्ततिया', (संन्यासी होकर रहनेवाले), 'गङ्गाजाना' (गङ्गा यात्री), 'राजपूतिया' (राजपूत) और बस्ती से दूर पहाड़ पर रहनेवाले संन्यासी नामक सात सम्प्रदायों का उल्लेख किया है।[3]

इब्न नदीम ने अल्प ज्ञानवश भारतीय राजपूत जाति को धार्मिक सम्प्रदाय के रूप में ले लिया तथा गङ्गास्नान करनेवालों को भी अलग सम्प्रदाय के अन्तर्गत मान लिया, जो युक्तियुक्त नहीं।

---

1. Majumdar, R. C., *Ancient India*, p. 457.
2. *Ibid*.

+ 'महाकाल्या' को सुलेमान नद्वी ने महाकाली का उपासक बताया है, (*ICH*., VIII, p. 130) जो ठीक नहीं प्रतीत होता। 'महाकाल्या' वस्तुतः महाकाल की पूजा करनेवाले थे।

3. किताबुल फिहरिस्त, पृ० ३४५-४९, Cf. *ICH*., VIII, 1934, p. 130.

इब्न नदीम के बाद अरबवासी मुतह्हिर (३७५ हि०–९८५-८६ ई०) ने 'किताबुल् बिदअ वत् तारीख' नामक पुस्तक में लिखा है कि "भारत में नौ सौ सम्प्रदाय हैं, किन्तु उनमें से केवल निन्यावनवें का हाल मालूम है। और ये सब पैंतालिसं धर्मों के अन्तर्गत हैं, और ये सब भी चार सिद्धान्तों में परिमित हैं। इनके सही विभाग दो ही हैं–समनी (श्रमण=बौद्ध) और बरमहनी (ब्राह्मण)।"[1]

निश्चय ही भारत में अनेक धार्मिक सम्प्रदाय थे जिन्हें समझ पाना किसी विदेशी के लिए साधारणत: सरल नहीं था। मुतह्हिर ने हिन्दू धर्म को 'ब्राह्मण' इसलिए कहा कि इसके सञ्चालक अधिकतर ब्राह्मण होते रहे।

मूर्त्ति–पूजा

हिन्दू धर्म के अन्तर्गत मूर्ति-पूजा का विधान प्राचीनकाल से रहा है। रुद्र, विष्णु, ब्रह्मा, सूर्य, दुर्गा, लक्ष्मी आदि देवी-देवताओं की मूर्तियों का निर्माण कर सविधि पूजन किया जाता था। अलबोरूनी बिना सन्दर्भ के एक उद्धरण में लिखता है "विष्णु मूर्ति के पूजन में लगा हुआ वर्ग 'भागवत' कहलाता था, सूर्य-मूर्ति में लगा हुआ वर्ग 'मग' या 'मगिया', महादेव की मूर्ति में लगा हुआ वर्ग एक प्रकार के साधु और यति जो लम्बे बालों के साथ शरीर में राख लगाते, मृत व्यक्तियों की हड्डियों को लटकाते तथा खप्पड़ों में भोजन करते। ब्राह्मण अष्टमाताओं की पूजा करते हैं, शमानी बुद्ध की, नग्न 'अर्हन्त' की। समग्र रूप से प्रत्येक मूर्ति के एक विशेष वर्ग के लोग पूजक हैं, जिन्होंने इन्हें निर्मित किया वे ही उत्तम विधि जानते हैं कि कैसे सेवा की जाती है।"[2]

भारत में ही नहीं विश्व के अन्य धार्मिक सम्प्रदायों में भी मूर्ति-पूजन का विधान रहा है। अलबीरूनी लिखता है "साधारण जनता मूर्तिमान चित्र देखकर सन्तोष करती है। इसी कारण कई धार्मिक सम्प्रदायों के नेता सही मार्ग से इतने हट गए हैं कि अपनी पुस्तकों और पूजा-गृहों में स्थान दे डाला है, जैसे यहूदी, ईसाई और सबसे बढ़कर मनीचियन लोग।"[3] वह आगे कहता है कि 'मेरे इन शब्दों की वास्तविकता जाँचनी हो तो भविष्य-वक्ता (मुहम्मद साहब) अथवा मक्के या काबे का चित्र किसी अनपढ़ पुरुष या स्त्री को दिखाए जायँ। देखते ही उसकी प्रसन्नता चित्र को चूम लेने के लिए

---

1. Vol. IV, pp. 9-10 (Paris).
2. *AI.*, Vol. I, p. 121.
3. *AI.*, Vol, I, p. 111.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

प्रेरित करेगो और वह अपने गालों को उसके साथ मलेगा, और धूल में उसके सामने लोटेगा, जैसे वह चित्र को न देखकर मूल पदार्थ को देख रहा हो और इस स्थिति में वह जैसे तीर्थयात्री के अधिकारों को सम्पन्न करते हुए किसी तीर्थस्थान में हो।"[1]

अलवीरूनी का यह आलोचनात्मक कथन शत प्रतिशत सही है। प्रत्येक धार्मिक व्यक्ति यही करता है। मूर्ति-पूजन के कारण पर प्रकाश डालते हुए वह लिखता है कि 'यह साफ है कि मूर्ति-पूजन का पहला कारण मरे हुओं की यादगार में और जीवित लोगों को सन्तोष देने के लिए रहा, किन्तु इससे बढ़कर यह एक हानिकारक और मलीन कुरीति बन गई।"[2]

अलवीरूनी का यह विचार है कि "हिन्दुओं में मूर्ति-निर्माण और मूर्ति-पूजन अशिक्षितों में है, न कि शिक्षितों में। वह मूर्ति-निर्माण पर कहता है कि केवल अनपढ़ और निम्न जाति के बुद्धिहीनों के लिए ही बनाई जाती है और हिन्दुओं ने किसी दैवी प्रकृति की कभी मूर्ति नहीं बनाई, ईश्वर की बात तो दूर रही।"[3]

मूर्ति-निर्माण केवल अलौकिक सत्ता की विभिन्न रूपों में छविकृति था। साधारण जनता को ही इन मूर्तियों के पूजन-अर्चन से सन्तुष्टि मिलती थी। जो लोग दर्शन और ब्रह्मज्ञान में लिप्त थे, उनके लिए इन विधियों से कोई सरोकार नहीं था। अलबीरूनी कहता है "जो सत्य मार्ग पर चलते हैं, दर्शन और ब्रह्मज्ञान पढ़ते हैं उन्हें केवल ईश्वर को छोड़कर किसी अन्य के पूजन की अपेक्षा नहीं। वे कभी भी स्वप्न में उन मूर्तियों को (जो ईश्वर के प्रतिनिधित्व के लिए निर्मित थीं) पूजने की इच्छा नहीं रखते।"[4]

आज के युग को देखते हुए प्रायः यह स्पष्ट है कि मूर्तिपूजन अशीक्षितों में ही अधिक है। वही भिन्न-भिन्न देवी-देवताओं की पूजा करते हैं। शिक्षित वर्ग मूर्तिपूजन में रुचि नहीं रखता। अलबीरूनी का यह विश्लेषण सामान्यतः सही है कि मूर्तिपूजन में अशिक्षित वर्ग ही प्रमुख था।

वह कहता है, "हिन्दू मूर्तियों का आदर स्थापना के कारण करते हैं न कि निर्माण-सामग्री के कारण। क्योंकि मैंने पहले ही उल्लेख किया है कि मुल्तान की मूर्ति लकड़ी की थी।"[5]

---

1. *Ibid.*
2. *Ibid.*, p. 124.
3. *Ibid.*, p. 122.
4. *AI.*, Vol. I, p. 113.
5. *Ibid.*, p. 121.

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

यह सत्य है कि मूर्ति का आदर प्रतिष्ठापन के कारण ही है। चाहे वह मूर्ति किसी भी धातु अथवा वस्तु की क्यों न बनी हो, उसकी प्रसिद्धि उसकी प्राण-प्रतिष्ठा से ही है।

शिव-उपासक

शैव सम्प्रदाय के लोग शिव-लिङ्ग की पूजा-अर्चना करते थे। भारतीय समाज में इस सम्प्रदाय के लोग प्राचीन-काल से थे। पूर्व मध्ययुगीन समाज में साधारणत: इनके चार सम्प्रदाय थे[1]—शैव या शैव-सिद्धान्त को माननेवाले, कालानन या कारुक, पाशुपत-लकुलीश और कापालिक। अलबीरूनी-युगीन भारतीय समाज में लकुलीश-पाशुपत का पूजन अत्यधिक प्रचारित था।[2] सरस्वती पुराण[3] के अनुसार लकुलीश के मन्दिर का निर्माण सिद्धराज ने कराया था। शैव मत के पाञ्चरार्थिक के व्यवहरण के निमित्त लकुलीश ने इस मत को चलाया था। माधवाचार्य के 'सर्वदर्शनसंग्रह' में लकुलीश मतावलम्बियों के दर्शन और व्यवहार पर विस्तार से लिखा गया है।[4] कापालिक भी शैव धर्म के प्रमुख सम्प्रदाय थे।

स्कन्द पुराण[5] के अनुसार देश के विभिन्न स्थानों पर शिवलिङ्ग थे, जिनमें नेपाल, कालञ्जर, प्रभास, उज्जैन, वाराणसी के महादेव के मन्दिर अत्यधिक प्रख्यात थे। प्राचीनकाल के साहित्यकारों में महाकवि कालिदास, भवभूति, सुबन्धु, बाणभट्ट आदि शिवोपासक थे। कश्मीरी कवि दामोदरगुप्त ने वाराणसी के शिव-मन्दिरों की बड़ी प्रशंसा की है।[6]

अलबीरूनी गुजरात के सोमनाथ मन्दिर का उल्लेख करता हुआ कहता है, "सोमनाथ, महादेव के मूत्रेन्द्रिय का परिचायक है, 'लिङ्ग' से सम्बोधित है।[7]

दूसरे स्थल पर वह लिखता है, "सिन्ध देश के दक्षिण पश्चिम में यह मूर्ति हिन्दुओं की पूजा के लिए नियत मन्दिरों में बहुधा मिलती है, किन्तु इन स्थानों

---

1. Pathak, V. S., *History of Saiva Cults in Northern India* (700-1200 A. D.), p. 3.
2. Buhler; *EI.*, I, 274, f. n. 10; Cf. Chaulukyas of Gujarat, pp. 292-94.
3. *Sarswati Purana*, 16, 112; Cf. Santimoy Bannerji; *IHC.*, III, 491.
4. *Sarvadharmasangraha*–Tr. Cowell and Gough, 103. 11.
5. स्कन्द पुराण, अ० १०७।
6. कुट्टनीमतम्, श्लोक ३–५। 7. *AI.*, Vol. II, p. 117.

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

में सबसे विख्यात सोमनाथ था। वहाँ नित्य गङ्गा-जल का एक लोटा और कश्मीर से फूलों की एक टोकरी आती थी। लोगों का विश्वास था कि सोमनाथ का लिङ्ग प्रत्येक बद्धमूल रोग को समाप्त और हताश और असाध्य रोग शान्त कर देता है।[1]"

शिव-उपासकों की यह अपूर्व निष्ठा थी कि उनके प्रत्येक दुःखों का अन्त शिव-पूजन से हो जाता है। आज भी शिव का पूजन इसी विश्वास और श्रद्धा से होता है।

चौलुक्य भीम प्रथम[2] शिवोपासक था। उसने सोमनाथ के प्रस्तर-मन्दिर का निर्माण कराया था, जो कालान्तर में महमूद गजनी द्वारा तोड़ दिया गया।[3] तत्पश्चात् कुमारपाल ने सोमनाथ के मन्दिर का पुनर्निर्माण कराया।[4] चौलुक्य सम्राटों के ये मन्दिर-निर्माण-कार्य उनके शिव-आराधन के परिचायक हैं।

परमार सम्राट् भोज भी शिवभक्त था। उसने सोमनाथ मन्दिर में निर्माण कराया था।[5] भोज का यह निर्माण-कार्य सम्भवतः महमूद गजनी के सोमनाथ-आक्रमण के पूर्व रहा। उदयपुर प्रशस्ति से विदित होता है कि धारनरेश भोज ने सुदूर स्थानों पर शिवालयों का निर्माण कराया। रामेश्वर सुण्डीर (पूर्व समुद्र-तट पर), केदार तथा मालव में महादेव के मन्दिरों का निर्माण-कार्य उसके परम शैव होने का स्पष्ट प्रतीक है।[6]

चन्देल सम्राट् धङ्ग शैव धर्मावलम्बी था। उसने प्रस्तर एवं मरकत के अनेक शिवमन्दिरों को बनवाया।[7] उसके उत्तराधिकारियों ने शिवोपासना को ग्रहण किया। सम्राट् परमर्दि ने अपने को 'परम माहेश्वरउपाधि से विभूषित किया था।[8] खजुराहो के मन्दिरों में शिव के भी मन्दिर हैं। उनमें कदरिया

---

1. *Ibid.*, p. 104.
2. भाववृहस्पति का वरवल प्रशस्ति (Weizer Zutsohrift fur die Kunde des Morgenlaudes also known as *Vienna Oriental Journal;* III, 1*ff*. *EI.*, XI-XII, 208.
3. *AI.*, Vol. II, p. 134.
4. बरवल प्रशस्ति, *EI.*, XI-XII, 208.
5. *EI.*, I, p. 236.
6. *Ibid.*,

   केदार रामेस्व (श्व) रसोमनाथ–
   (सु) डीरकालानलरुद्रसत्कैः ।
   सुराश्रं (ये) र्व्याप्य च यः समन्ता–
   द्यथार्थसंज्ञा जगतीं चकार ॥

7. *EI.*, I, 138.
8. *Ibid.*, IV, p. 153.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

महादेव का मन्दिर विशेष उल्लेखनीय है।[1] पूर्वी चालुक्यों के इतिहास से विदित होता है कि नरेन्द्र मृगराज ने १०८ शिव-मन्दिरों का भव्य रूप में निर्माण कराया था।[2] परमेश्वरवर्मन प्रथम ने कूरम में शिव-मन्दिर को बनवाया था।[3]

उत्तर भारत में शिव[4] अनेक नामों से अभिहित थे। उमामहेश्वर,[5] महेश्वर, त्रिलोचन,[6] लच्छुकेश्वर महादेव,[7] योगस्वामिन्,[8] पशुपति,[9] शम्भु आदि नाम समाज में बहुप्रचलित थे।

वैष्णव धर्म

गुप्त साम्राज्य में वैष्वण धर्म का अत्यधिक प्रचार-प्रसार हुआ था। गुप्त सम्राट् स्वयं भी वैष्णव धर्मावलम्बी होकर 'परमभागवत्', 'परमवैष्णव', 'परमदैवत' आदि उपाधियों से विभूषित थे।[10] हर्ष के काल में बौद्ध धर्म के कारण वैष्णव धर्म का विकास अवरुद्ध हो गया था; किन्तु अलबीरूनी के समय के भारतीय समाज में वैष्णव धर्म उन्नति के शिखर पर था। साधारण जनता से लेकर सम्राट् तक वैष्णव धर्मानुयायी थे। अलबीरूनी के पूर्व ९वीं सदी ई० के कश्मीरनरेश अवन्ति वर्मन (८५५–८४ ई०) परम वैष्णव था।[11] कश्मीरी महाकवि क्षेमेन्द्र ने १०६६ ई० में विष्णु के विभिन्न अवतारों को आधार बनाकर 'दशावतारचरित' की रचना की।[12]

अलबीरूनी स्थाण्वीश्वर के 'चक्रस्वामी' (अर्थात् विष्णु) के मन्दिर का उल्लेख करता है "तानेशर नगर हिन्दुओं द्वारा अत्यधिक आदरित है। उस स्थान की मूर्ति 'चक्रस्वामिन्' कहलाती है अर्थात् चक्र का स्वामी।"[13]

स्पष्ट है कि स्थाण्वीश्वर के चक्रस्वामी का मन्दिर अलबीरूनी के समय बहुत अधिक विख्यात था, जिसके प्रति देश की हिन्दू जनता का एकनिष्ठ सम्मान

---

1. *'Ancient India'*, No. 15, *1959*, p. 43.
2. *Annual Report of Sonth Indian Epigraphy*, 1915, p. 91.
3. Minakshi, C., *Administration and Social Life under the Pallavas*, p. 176
4. *IA.*, XVIII, pp. 33-35.
5. *EI.*, I, pp. 162–79.
6. *IA.*, XVIII, pp. 11, 13.
7. *EI.*, III, pp. 263–67.
8. *IA.*, IV, pp. 174, 175.
9. *EI.*, VII, p. 95.
10. *JNSI.*, X, p. 104.
11. Vaidya, C. V., *History of Medieval India*, Vol. III, p. 415.
12. Kieth, A. B., *A History of Sanskrit Literature*, p. 136.
13. *AI.*, Vol. I, p. 117.

था। यद्यपि श्वानच्वाङ्ग के अनुसार हर्ष के समय में भी स्थाण्वीश्वर में सौ से ऊपर देवमन्दिर थे।[1] किन्तु इन देवमन्दिरों में किन-किन देवताओं की मूर्तियाँ थीं स्पष्ट नहीं।

उस काल में स्थाण्वीश्वर के चक्रस्वामी मन्दिर के अतिरिक्त अनेक मन्दिर भी थे जिन्हें देश के सम्राट् और धनी व्यक्तियों ने निर्मित कराए थे। 'दशावतार' का मन्दिर सिद्धराज ने निर्मित कराया था।[2] यह मन्दिर सहस्रलिङ्ग झील के किनारे स्थित था।[3] जयसिंह के मन्त्री ने दधिपुर में गङ्ग नारायण के मन्दिर का निर्माण कराया था।[4] भीम द्वितीय के एक शासकीय अधिकारी ने केशव का मन्दिर बनवाया था।[5]

अभिलेखों से विदित होता है कि विष्णु के अनेक नाम थे तथा उनके प्रति समाज की अपरिसीम आदर की भावना थी। सियदोनि अभिलेख[6] में 'विष्णु भट्टारक', 'नारायण भट्टारक', 'वामन स्वामी देव' (अहर[7] अभिलेख में उल्लिखित), 'चक्र स्वामीदेव', 'त्रिभुवन स्वामी देव' तथा 'मुरारि' कहा गया है। ग्वालियर[8] अभिलेख में (भोज प्रतिहार) 'नरकद्विष' कहा गया है। पेहोआ[9] अभिलेख में 'विष्णु गरुड़ासन' उत्कीर्ण है। गहड़वाल ताम्रलेखों[10] से पता लगता है कि वरुणा और गंगा के संगम पर 'आदिकेशव' का मन्दिर था। यह मन्दिर आज भी है।

सूर्य की पूजा

समाज में कुछ लोग ऐसे थे जो सूर्य की उपासना करते थे। उनकी दृष्टि में सूर्य की सत्ता सर्वोपरि और अपरिसीम थी। कार्यसिद्धि का वही एकमात्र जगतनियन्ता था। अलबीरूनी के बहुत पहले से हिन्दू समाज में सूर्य की पूजा होती थी। हर्ष के जन्म के अवसर पर, प्रथानुसार नवजात शिशु का आगम बतलाने के लिए ज्योतिष-विद्या के जो बड़े-बड़े विद्वान् आए थे, उनमें तारक

---

1. *Wattars*, p. 314; *Beal.*, I, pp. 183–84.
2. द्व्याश्रय० १५·११९; सरस्वती पुराण, १५, ५.१६२।
3. Banerji, The Sahsralinga Lake, *IHC.*, III, 1939, 491.
4. दोहद अभिलेख, *IA.*, X, 158. 5. *EI.*, II, 439.
6. *EI.*, I, pp. 168, 173-79.
7. *Ibid.*, XIX, pp. 52-62.
8. *Ibid.*, XVIII, pp. 107, 110 verse 1.
9. *Ibid.*, I, pp. 184-90.
10. Tripathi, R. S., *History of Kanauj*, p. 353.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

नाम का भी एक ज्योतिषी था। वह 'भोजक' अर्थात् 'मग' था। टीकाकार लिखता है 'भोजको रविमर्चयिता', अर्थात् भोजक उसे कहते हैं जो सूर्य की पूजा करता हो।[1] बाण के अनुसार उज्जैन के लोग सूर्योपासक थे।[2]

मुल्तान का सूर्यमन्दिर देश का प्रसिद्ध सूर्य मन्दिर था, जहाँ देश के हर कोने से लोग दर्शनार्थ आते थे। श्वानच्वाङ्ग अपने यात्रा-विवरण में लिखता है कि मूल-स्थानपुर में सूर्य का एक प्रसिद्ध मन्दिर था। मूर्ति स्वर्ण निर्मित थी और बहुमूल्य पदार्थों से अलंकृत थी। उसमें अलौकिक शक्ति थी और उसके गुण दूर-दूर तक फैल गए थे। वहाँ पर स्त्रियाँ बारी-बारी से निरन्तर गाती-बजाती थीं। रात भर दीपक जलते रहते थे। फूलों की भीनी-भीनी सुगन्ध बराबर आती रहती थी। समस्त भारत के राजा और सरदार वहाँ जाते और मूर्त्ति पर बहु-मूल्य पदार्थ चढ़ाते थे। उन्होंने वहाँ विश्रामगृह भी बनवा दिए थे जहाँ के लोग निःशुल्क रहते थे। रोगियों और गरीबों के लिए भोजन, शरबत और औषधि का प्रबन्ध भी वे अपनी ओर से करते थे। इस मन्दिर में हर समय विभिन्न देशों के लगभग एक हजार यात्री प्रार्थना करने के लिए उपस्थित रहते थे।[3]

मुल्तान के सूर्य-मन्दिर की प्राचीनता और प्रसिद्धि के विषय में स्वयं अलबीरूनी लिखता है, "सूर्य को अर्पित की गई उनकी सबसे प्रसिद्ध मूर्ति थी, और एतदर्थ 'आदित्य' कहलाती थी। वह लकड़ी की थी और लाल चमड़े से ढकी थी। उसकी दोनों आँखों में दो लाल पद्मराग थे। यह कहा जाता है कि वह पिछले 'कृतयुग' में बनी। मानलिया जाय कि वह कृतयुग के अन्त में बनी, तो उस समय से आज तक २, १६, ४३२ वर्ष हुए।"[4]

सूर्य-मूर्ति लकड़ी की थी, उसके ऊपर लाल खाल लिपटी थी, उसकी दोनों आँखों की जगह दो लाल थे और सिर पर सोने का मुकुट था, अलबीरूनी से

---

1. त्रि...लज्ञान......भोजकस्तारको नाम गणकः समुपसत्य विज्ञापितवान्।
—हर्षचरित, पृ० १८४।

टीकाकार 'भोजक' शब्द की टीका इस प्रकार करता है—"भोजक रविमर्चयिता—पूजकाद्धि भूयसा गणका भवन्ति ये मगा इति प्रसिद्धाः।"

2. "दिवसेनेव मित्रानुवर्तिना।" कादम्बरी, पृ० ८८।

3. *Watters.*, II, p. 254. 4. *AI.*, Vol. I, p. 116.
वर्षों की गणना करने में अलबीरूनी गलती कर गया है।
—Sachau, *AI.*, II, p. 296.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मिलते-जुलते ये विवरण मुकद्दसी[1] और कजवीनी[2] जैसे अन्य अरब लेखकों से भी दिए हैं।

अलबीरूनी के पूर्ववर्ती अरब लेखकों ने भी मुल्तान के मन्दिर के विषय में विस्तार से लिखा है। मसूदी (३०० हि०–९१३ ई० के लगभग भारत आनेवाले), इस्तखरी (३४० हि०–९५१ ई० में भारत आनेवाले), इब्न हौकल (३६७ हि०–९७७ ई० में मुल्तान आनेवाले) आदि लेखकों ने मुल्तान के मन्दिर की आय और महत्ता पर प्रकाश डाला है।

गुजरात के सोमनाथ मन्दिर की तरह इस मन्दिर में भी अतुल धन और सम्पत्ति थी। चाँदी और सोने के उपकरण थे। देश के कोने-कोने से दर्शनार्थी आकर मन्दिर में भेंट और उपहार देते थे।[3] श्रद्धालु सेवक दो-दो अशर्फियाँ अगर (बत्ती) जलाने के लिए भेजते थे, जिसे पुजारी अरब व्यापारियों के हाँथ वेंच देते थे।[4]

इस मन्दिर की मूर्ति भी बेजोड़ थी, अत्यधिक मूल्यवान। बुशारी (३७५ हि०) ने इसे देखा था। उसके कथन से अलबीरूनी के कथन की पुष्टि होती है कि मूर्त्ति की आँखों की जगह मूल्यवान रत्न जड़े थे और सिर पर सोने का मुकुट था।[5] ३०० हिजरी (९१३ ई०) के बाद आनेवाले अरब यात्री मसूदी ने इस मन्दिर की लोकप्रियता पर लिखा है "यही वह मन्दिर है—मुल्तान के अमीर की अधिक आय उन्हीं सुगन्धित+ लकड़ियों से है जो दूर-दूर से इस मन्दिर के लिए आती हैं—।"[6] मसूदी के बाद आनेवाले (३४० हि० में) इस्तखरी ने भी मुल्तान के मन्दिर की ख्याति का उल्लेख किया है, "यहाँ एक मन्दिर है जिसमें दर्शन के निमित्त दूर-दूर से लोग जाते हैं। वे इस मन्दिर और पुजारियों पर बहुत अधिक धन व्यय करते हैं।"[7]

---

1. अहसुनत् तकासीम, पृ० ४८३, अ० भा० सं०, पृ० १७४–५।
2. आसारुल विलाद पृ० ८१, अ० भा० सं०, पृ० १७५।
3. मुअजमुल बुलूदान (इस्तखरी के आधार पर) : याकूत, आठवाँ खण्ड, पृ० २०१, अ० भा० सं०, पृ० १६३
4. अबूजेद सैराफी, सफरनामा, पृ० १३०, अ० भा० सं०, पृ० १६३।
5. सफरनामा बुशारी मुकद्दसी (जो अहसुनत् तकासीम के नाम से प्रसिद्ध है), पृ० ४८३।

+ लेखक का अभिप्राय चन्दन की लकड़ी से है।

6. मुरुज्जुहब, पहला खण्ड, पृ० ३७५-६, अ० भा० सं०, पृ० २५१।
7. ० भा० सं०, पृ० २५२

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

देश के विख्यात इस सूर्यमन्दिर के साथ मुसलमान आक्रामकों का बहुत ही गर्हित और निम्नतापूर्ण व्यवहार हुआ था। अलबीरूनी लिखता है, 'जब मुहम्मद इब्न अलकासिम इब्न अलमुनब्बिह ने मुल्तान विजित किया तो यह जाँच किया कि नगर कैसे इतना ऐश्वर्य-सम्पन्न और धनधान्य से युक्त हुआ ? तब उसे पता लगा यह मूर्त्ति ही कारण थी जिसके लिए वहाँ दूर-दूर से यात्री दर्शनार्थ आते थे। इस तरह उसने सोचा कि मूर्त्ति उसी तरह रहने दी जाय जिस तरह है, लेकिन उसने उपहास के लिए उसके (मूर्त्ति के) गले में गाय के मांस का टुकड़ा लटका दिया।''[1]

७११-१२ ई० के सिन्ध-मुल्तान आक्रमण में कासिम ने तो इस मन्दिर की इतनी ही दुर्दशा की, किन्तु बाद में करमतियों ने मुल्तान विजित किया तो मूर्त्ति को तोड़ कर मसजिद बनवा डाला। अलबीरूनी लिखता है "जब करमतियों ने मुल्तान जीता, तो राज्य अपहरणकर्त्ता जलम इब्न शैबान ने मूर्त्ति को टुकड़ों में तोड़ डाला और उसके पुजारियों को मार डाला।''[2]

सूर्य-पूजा के प्राचीनकालीन अभिलेखीय प्रमाण मिलते हैं।[3] कुमारगुप्त प्रथम के मन्दसोर अभिलेख से विदित होता है कि मन्दसोर में ४३७-३८ ई० में आकर्षक विशाल सूर्य मन्दिर बना था।[4] गुप्तकाल के अनेक सूर्य मन्दिर भारत में थे जो मध्ययुग में मुल्तान से कच्छ तक फैले थे।[5] वल्लभीनरेश धरपट्ट (५५० ई०) सूर्य का उपासक था।[6]

अभिलेखों में सूर्य का उल्लेख अनेक नामों से हुआ है। तरुणादित्यदेव[7] इन्द्रराजादित्य देव या इन्द्रादित्यदेव,[8] गङ्गादित्य,[9] लोलार्क[10] आदि नाम सूर्य के लिए प्रयुक्त हुए हैं। 'भैलसवामदेव' नाम भी सूर्य की उपाधि रूप में व्यवहृत था।[11]

---

1. *AI.*, Vol. I, p. 116.
2. *AI.*, Vol. I, p. 116.
3. *Corpus Inscriptionum Indicarum*, III, 81.
4. *Architectural Antiquities of Western India*, IX; *Architectural Antiquities of Northern Gujurat*. 88-9.
5. Banerjea, J. N., Surya, *JISOA*, XVI, 1948, 79.
6. Virji Krishnakumari, J.; *Ancient History of Saurashtra*, p. 165.
7. *EI.*, IX, pp. 1,5. 8. *Ibid.*, XIV, pp. 180-85.
9. *Ibid.*, IV, pp. 121-23.
10. *Ibid.*, V, pp. 116-17; IV, pp. 128-29.
11. *JASB.*, XXXI, p. 112.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

वाराणसी में आज भी शरद ऋतु में 'लोलार्क कुण्ड' पर उत्सव के रूप में स्नान और पूजन होता है । ऐसा ही कुण्ड मुल्तान में भी था जहाँ बहुत से हिन्दू स्नान और पूजन के निमित्त जाते थे ।[1]

सबसे प्रसिद्ध सूर्य मन्दिर चौलुक्य भीम प्रथम के शासनकाल का मधेर का था । सरस्वती पुराण से विदित होता है कि सिद्धराज ने सहस्रलिङ्ग सरोवर के निकट 'भयलस्वामी'[2] नामक सूर्य मन्दिर का निर्माण करवाया था ।

मुरलीधर अभिलेख से विदित होता है कि सूर्यमन्दिर की स्थापना पर प्रशस्ति भी उत्कीर्ण हुई थी ।[3] इसके अतिरिक्त गुजरात में अन्य सूर्यमन्दिरों और प्रशस्तियों का उल्लेख मिलता है ।[4]

हिन्दू धर्म के अंतर्गत इन मूर्तिपूजक विभिन्न सम्प्रदायों के अतिरिक्त तद्युगीन भारतीय समाज में गणेश,[5] कार्त्तिकेय,[6] दुर्गा-काली[7] आदि मूर्त्तिपूजकों के भी वर्ग थे, जो अपने निश्चित मतों और रुचियों के अनुरूप इष्ट देवों की मूर्त्ति निर्मित कर उपासना करते थे ।

धार्मिक तीर्थों की यात्रा

भारत में धार्मिक तीर्थस्थलों का महत्त्व प्राचीनकाल से है । अलबीरूनी के काल में भी तीर्थस्थलों का महत्त्व तद्वत् रहा । इष्ट देवों की पूजा के निमित्त धर्मप्रवण जनता प्रमुख तीर्थ स्थानों की यात्रा करती थी । अलबीरूनी लिखता है, "हिन्दुओं के लिए तीर्थ यात्राएँ वाञ्छनीय ही नहीं बल्कि अनुमत और श्लाघ्य हैं । एक मनुष्य कुछ पवित्र स्थान के लिए, किसी महत्त्वपूर्ण पूजनीय मूर्त्ति के लिए, अथवा कुछ पवित्र नदियों के लिए चल पड़ता है । उनमें वह पूजन-विधि करता है, मूर्त्ति की पूजा करता है, भेंट चढ़ाता है, स्तवन और प्रणयन करता है । व्रत रहकर ब्राह्मणों, पुरोहितों तथा अन्य लोगों को दान देता है । सिर और डाढ़ी मुड़ाकर वह घर लौटता है ।[8]

---

1. *AI.*, Vol. II; p. 145.
2. Hall. F. W., *JASB.*, XXI. 112 f. n.
3. *Buddhiprakas*, 1910, 77.
4. Majumdar, A. K., *Caulukyas of Gujarat*, p. 330
5. *EI.*, IX, p. 279 (Gahadvala Plates); Inscription of Vastupala, Cf. *Chaulukyas of Cujarat*, p. 300.
6. *EI.*, VIII, pp. 109 114, verse 22.
7. *EI.*, XIV, p. 188 line 33 (Pratihara-Southern Rajput Pratihara Stone Inscription.)
8. *AI.*, Vol. II, p. 142.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

आज हिन्दू समाज के व्यवहार में यह है कि जब कोई किसी धार्मिक स्थान की यात्रा करता है तब वह उस स्थान पर पूर्वजों के श्राद्ध के निमित्त सिर और डाढ़ी मुड़ा देता है। वाराणसी, प्रयाग, गया आदि तीर्थस्थल इस तथ्य के ज्वलन्त प्रमाण हैं।

वाराणसी—वाराणसी या काशी का तीर्थों में सर्वोपरि स्थान रहा है। इसकी प्रशंसा करते हुए दामोदरगुप्त ने लिखा है कि "यह ब्रह्मा से बनाई दूसरी अमरावती है। इसमें नन्दनवन हैं। यहाँ पर बड़े-बड़े विबुध विद्वान् हैं। यहाँ नाकवाहिनी गङ्गा है, अतः यह दूसरी अमरावती बनी हुई है।"[1] यह इतना पवित्र तीर्थस्थल माना गया है कि यहाँ मरने पर 'मोक्ष' की प्राप्ति होती है, जिसे 'काशीलाभ' कहा जाता है। अलबीरूनी के समय में हिन्दुओं के लिए 'काशीलाभ' का प्रधान महत्त्व था। वह लिखता है "हिन्दुओं के कुछ स्थान ऐसे हैं जो उनके लिए धर्म और विधि के कारण पूजित हैं, जैसे 'वाराणसी' (बनारस)। उनके तपस्वी वहाँ घूमने जाते हैं और हमेशा के लिए रुक जाते हैं जिस प्रकार काबा के निवासी मक्का में हमेशा के लिए रह जाते हैं। वे वहाँ शरीरान्त तक रहना चाहते हैं, इस कारण कि मृत्यु के पश्चात् इसका पुरस्कार उत्तम हो जाए। वे कहते हैं कि हत्यारा अपने अपराध का जिम्मेवार और अपराधी अपनी गलती का दण्डित है, केवल उस स्थिति को छोड़कर जब वह वाराणसी नगर में प्रवेश करता है, जहाँ वह क्षमा पाता है।"[2]

अलबीरूनी के इस कथन से स्पष्ट है कि वाराणसी का मान और महत्त्व पूर्वमध्यकाल में भी बहुत अधिक था। वाराणसी तीर्थ के प्रति लोगों का विश्वास और आदर अपरिसीम था। यहाँ तक कि हत्यारा और अपराधी भी वाराणसी में प्रवेश करके पवित्र हो जाता था। उसके सम्पूर्ण अपराध समाप्त हो जाते थे।

स्थाण्वीश्वर—अलबीरूनी के समय स्थाण्वीश्वर की भी लोग यात्रा करते थे। इसका महत्त्व महाभारत[3] काल से है। अलबीरूनी लिखता है, "इस प्रकार का दूसरा स्थान 'तानेशर' है, कुरुक्षेत्र भी कहा जाता है अर्थात् गुरु की भूमि, जो कृषक था, धार्मिक और पुण्यात्मा जो दैवी शक्ति से लौकिक कर्म करता था। इस तरह उसके बाद देश उसके नाम पर कहलाया और

---

1. कुट्टनीमतम्, श्लोक १७।
2. *AI.*, Vol. II, pp. 146-7.
3. महा०, वनपर्व, ८१.१.६।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

उसके कारण पूजा गया। इसके अतिरिक्त तानेशर भारत और दुष्टों के विनाश के युद्धों में वासुदेव के विक्रमों का रंङ्गमञ्च है। यही कारण है कि लोग उस स्थान की यात्रा करते हैं।"[१] पूर्वमध्ययुगीन भारतीय विद्वान् लक्ष्मीधर[२] ने वामनपुराण[3] के आधार पर स्थाण्वीश्वर के माहात्म्य पर विस्ता से लिखा है। वल्लालसेन[४] मत्स्यपुराण को उद्धृत करते हुए कुरुक्षेत्र को ही तीर्थ और दान आदि के लिए उपयुक्त स्थान निर्देशित किया है।

मथुरा—इसका वैष्णव तीर्थस्थानों में प्रमुख स्थान था। पद्म[५] और वाराह[६] पुराण में इसका वर्णन हुआ है। कालिदास[७] ने यहाँ की अद्भुत छटा का दिग्दर्शन कराया है। ११वीं सदी के प्रारम्भ में वहाँ हजारों मन्दिर थे।[८] अलबीरूनी ने 'मथुरा' को 'माहूर' लिखा है। वह मथुरा तीर्थ के विषय में कहता है, "माहूर भी ब्राह्मणों से भरा हुआ एक तीर्थ-स्थान है। वह इसलिए प्रसिद्ध है कि वासुदेव वहाँ पैदा हुए थे और 'नन्दगोल' नाम्क पड़ोस के स्थान पर लाये गये थे।"[९]

श्रीकृष्ण का जन्म मथुरा में हुआ था। मामा कन्स के अत्याचार के कारण वह नन्द के गाँव लाए गये थे। कालान्तर में श्रीकृष्ण ने मामा कन्स का वध किया। इसी कारण मथुरा तीर्थ की प्रसिद्धि हुई। १२वीं सदी के प्रारम्भ में लिखे गए अपने ग्रन्थ 'कृत्यकल्पतरु' के 'तीर्थविवेचनकाण्ड' में लक्ष्मीधर ने वाराहपुराण[१०] के आधार पर मथुरा का विशद वर्णन किया है।

यहाँ यह कहना अनावश्यक न होगा कि लक्ष्मीधर के ग्रन्थ से पूर्णतः अनभिज्ञ होने के कारण डॉ० फर्कुहर[११] ने लिखा है कि 'वाराहपुराण' का 'मथुरा माहात्म्य, श्रीचैतन्य के अनुयायी सनातन गोस्वामी से उद्धृत किया गया है। इसी तरह डॉ० आर० सी०[१२] हाजरा ने भी १२वीं सदी के लक्ष्मीधरकृत 'कृत्यकल्पतरु' के 'तीर्थविवेचनकाण्ड' को (जिसमें वाराहपुराण के अंश उद्धृत किए गए हैं) देखने का कष्ट नहीं उठाया है और यह मत व्यक्त किया है कि

1. *AI.*, Vol. II, p. 147.
2. कृत्यकल्पतरु, तीर्थविवेचनकाण्ड, पृ० १७५-६।
3. वामनपुराण ५२।
4. दानसागर, पृ० ३७।
5. पद्मपुराण २१.४६।
6. वाराहपुराण अ० १५२-९८।
7. रघुवंश ६.५०।
8. *ED.*, II, p. 45-5.
9. *AI.*, Vol. II, pp. 147-8.
10. वाराहपुराण अ० १५२।
11. Farquhar, J. N., *An outline of the Religious Literature india*. pp. 309-10.
12. Hazra, R. C., *Studies in Puranic Records*, p. 105.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

'वाराहपुराण' का उक्त अंश पन्द्रहवीं सदी के अन्तर में लिखा गया है। अतः लक्ष्मीधर के विवरण से स्पष्ट है कि मथुरा ११वीं-१२वीं सदी में प्रधान तीर्थस्थल था।

कश्मीर—संस्कृत शिक्षा और विद्या का प्रधान केन्द्र होने के कारण बहुत से लोग कश्मीर की भी यात्रा करते थे। वहाँ एक 'शारदा'[१] देवी की मूर्त्ति थी, जिसके कारण वहाँ सुदूरवर्ती दर्शनार्थियों की अपार भीड़ होती थी। अलबीरूनी लिखता है, "आजकल हिन्दू कश्मीर की भी यात्रा करते हैं।[२]"

'शारदा' की मूर्त्ति पर लिखते हुए वह कहता है "कश्मीर के भीतर राजधानी से करीब दो या तीन दिनों की यात्रा के बाद बोलोर+ पर्वतों की दिशा में शारद कहलाने वाली लकड़ी की मूर्त्ति है, जो यात्रियों द्वारा अत्यधिक आदरित और सम्मानित है।"[3]

अलबीरूनी ने 'शारदा' की जगह 'शारद' लिखा है। यह मूर्त्ति देवी की थी या देवता की, इस पर भी उसने नहीं लिखा है। ऐसा लगता है, उसे इस विषय में अधिकारी सूचना नहीं प्राप्त थी।

शारदा देवी का मन्दिर बहुत अधिक विख्यात और आकर्षक था, जो मधुमती के दाएँ किनारे पर स्थित था।[४] इसकी ख्याति कश्मीर के बाहर सुदूरवर्ती स्थानों तक थी, जहाँ से लोग इसके (शारदा के) दर्शनार्थ आते थे। कल्हण ने शारदा देवी के दर्शनार्थ बंगाल (गौड़) के नरेश के निश्चित अनुयायियों के आने का उल्लेख किया है।[५] कश्मीरी कवि बिल्हण (११वीं सदी) ने भी शारदा मन्दिर पर अपना विवरण दिया है, जब वह दक्षिण में था।[६] हेमचन्द्र ने 'प्रभावकचरित' नामक व्याकरण ग्रन्थ लिखने के सन्दर्भ में शारदा के मन्दिर का उल्लेख किया है, जिसमें उसे कश्मीर के 'सरस्वती मन्दिर' से व्याकरण सामग्री की प्राप्ति का भान था।[७] सरस्वती का मन्दिर

---

1. *AI.*, Vol. I, p. 117.
2. *Ibid.*, Vol. II. p. 148.

\+ 'बोलोर' सिन्ध नदी के ऊपर गिलगिट और लद्दाख के बीच में है।
Stein, *Op.* cit., Vol. II, p. 258.

3. *AI*,. Vol. I, p. 117.
4. Stein, *Rajtarangini*, Vol., II, p. 282.
5. राजतरङ्गिणी, ४.३२५।
6. Stein, *Rajtarangini*, Vol. II, p. 285.
7. *Ibid.*, p. 286.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

'शारदा' का था ।[१] 'सरस्वती-शारदा' के कारण ही कश्मीर तीर्थ-स्थल था ।[२] द्वितीय राजतरंगिणी का रचयिता जोनराज ने भी शारदा देवी के मन्दिर की स्थिति और ख्याति पर विस्तार से लिखा है ।[3] इस मन्दिर की स्थिति १६वीं सदी तक थी, यह अबू-ल-फजल के 'आईने-अकबरी' को पढ़ने से विदित होता है, जिसमें लिखा गया है कि 'हाचामून से दो दिन की यात्रा की दूरी पर पद्मती नामक नदी है जो दर्दु (दर्द) देश से बहती है। सोना भी इस नदी में पाया जाता है। इसके किनारे पर पत्थर का मन्दिर है, जो 'शारदा' कहा जाता है, दुर्गा को समर्पित है तथा अत्यधिक पूजित है ।[४]

मुल्तान-कश्मीरी भाष्यकार उत्पल को उद्धृत करते हुए अलबीरूनी ने मुल्तान की व्युत्पत्ति दी है कि "मुल्तान असल में 'कश्यमपुर' कहा गया, फिर क्रमश: 'हम्सपुर', 'बगपुर', 'सम्बपुर' और मूलस्थान ।"[५] अत: 'मुल्तान' शब्द 'मूलस्थान' से ही बना है ।

मुल्तान भी हिन्दुओं का प्रमुख तीर्थ स्थान था। बहुत से हिन्दू स्नान और पूजन के निमित्त वहाँ की यात्रा करते थे। वहाँ एक विशाल सूर्यकुण्ड था और एक अत्यन्त दिव्य सूर्य-मन्दिर। सूर्यकुण्ड का उल्लेख पुराणों[६] में हुआ है, जिससे विदित होता है कि कृष्ण के पुत्र शम्ब सूर्यकुण्ड में स्नान कर पवित्र हुए थे। अलबीरूनी लिखता है कि "मुल्तान में एक तालाब है, जिसमें हिन्दू यदि न रोका जाय तो स्नान करते हैं ।"[७] अलबीरूनी के अतिरिक्त अन्य अनेक अरब यात्रियों ने मुल्तान का तीर्थ के रूप में उल्लेख किया है ।[८]

सरोवरों की प्रसिद्धि और तीर्थों की विख्याति पर अलबीरूनी का यह विचार पूर्णत: सही है कि "तालाब विशेषकर पवित्रता के लिए इस कारण प्रसिद्ध हो जाते हैं या तो वहाँ कुछ महत्वपूर्ण घटना हुई हो या पवित्र (धर्म) ग्रन्थों अथवा परम्परा से उनका सन्दर्भ हो ।"[९]

---

1. *Ibid.*
2. श्रीकण्ठचरित, ३.१० ।
3. कलौपातकिनां पुंसां स्पर्शदर्शन विक्लला। अवश्यं शारदा देवी तदान्त धनिमात्र-यत् ॥ १०५६ ॥
   नदीं मधुमतीं स्नानपानाऽयां फलयन्नयम् । शारदा चैत्रमासी- दत्सीदत्परिपदाकुलम् ॥ १०६१ ॥ राजतरङ्गिणी (संपा० संशोधक—डॉ० पीटर्सन) ।
4. *Ain-Akbari*, II, 365.
5. *AI.*, Vol. I, p. 298.
6. पद्मपुराण १.१३, ब्रह्मपुराण १.४०, भविष्यपुराण अ० १७ ।
7. *AI.*, Vol. II, p. 145.
8. *ICH.*, VIII, 1934, pp. 125-6.
9. *AI.*, Vol. II, p. 145.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सरोवरों के निर्माण और रचना को देखकर अलबीरूनी अचम्भित हो गया था। उसने हिन्दुओं के सरोवर-निर्माण को मुक्तकण्ठ से प्रशंसा की है। वह लिखता है कि "प्रत्येक स्थान पर जहाँ ऐसी पवित्रता निर्देशित की जाती है, हिन्दू स्नान के लिए सरोवरों का निर्माण कराते हैं। इसमें उन्होंने कला की चरम परिणति को प्राप्त किया है, अतः हमारे यहाँ के लोग (मुसलमान) जब उनको देखते हैं तो उन पर आश्चर्य करते हैं और उनके समान कोई चीज बनाना तो दूर रहा, वे उनका वर्णन तक नहीं कर सकते। वे (हिन्दू) इन्हें (सरोवरों) बड़े-बड़े पत्थरों का बनाते हैं। ये पत्थर, बहुत-सी पर्तों के सदृश पैड़ियों (या चौतरों) के रूप में, तेज और सुदृढ़ लौह, शृङ्खलाओं द्वारा, एक दूसरे के साथ जोड़े हुए होते हैं, और ये चौतरे मनुष्य के कद से भी अधिक ऊँचाई तक, तालाब के चारो ओर जाते हैं। वे दो चौतरों के बीच पत्थरों के बहिर्भाग पर कंगूरों के सदृश ऊपर को उठती हुई सीढ़ियाँ बनाते हैं। इस प्रकार पहली पैड़ियाँ या चौतरे (तालाब के इर्द-गिर्द जानेवाली) सड़कों की तरह हैं और कङ्गूरे (ऊपर और नीचे जानेवाली) पैड़ियाँ हैं। यदि कभी बहुत से लोग तालाब के नीचे उतरते हैं और चढ़ते हैं तो वे एक दूसरे से मिलते नहीं और रास्ता (सीढ़ियाँ) कभी भीड़ से बन्द नहीं होता, क्योंकि चौतरे बहुत से होते हैं और ऊपर चढ़नेवाला व्यक्ति उस चौतरे को छोड़कर जिस पर उतरनेवाले लोग जाते हैं सदा किसी दूसरे चौतरे की ओर मुड़कर एक ओर को हो सकता है। इस व्यवस्था से कष्टपूर्ण भीड़ छट जाती है।"[1]

सातवीं सदी में श्वानच्वाङ्ग ने वहाँ स्वर्ण की सूर्य मूर्त्ति देखी थी। एक अरब लेखक ने अपने ग्रन्थ 'हुदुद-उल-आलम' (९८२-८३ ई०) में लिखा है कि "मुल्तान बहुत बड़ा नगर है। इसमें एक मूर्ति है। लोग उसकी पूजा के लिए यात्रा करते हैं।'[2] किन्तु मुसलमानों ने उसे तोड़-फोड़ कर नष्ट कर दिया।[3] अलबीरूनी लिखता है कि "मूर्त्ति मन्दिर के विनाश के पूर्व तक वे मुल्तान की यात्रा करते थे।'[4]

सोमनाथ—गुजरात के सोमनाथ तीर्थ के प्रति भारत के सभी लोगों को अनुपम श्रद्धा और भक्ति थी। इसलिए मन्दिर के मूर्तिपूजन के निमित्त नित्य

1. *AI.*, Vol. II, pp. 144-45.
2. *PIHC.*, 1939, (Calcutta Session), p. 567.
3. *AI.*, Vol. II, p. 116. 4. *Ibid.*, p. 148.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कश्मीर से फूलों की टोकरी और जाह्नवी से जल का घड़ा आता था।[1] अलबीरूनी लिखता है कि "लोगों का विश्वास था कि सोमनाथ का लिङ्ग प्रत्येक बद्धमूल व्याधि को शान्त और असाध्य रोग को समाप्त कर देता है।[2]

इब्न असीर (११६० ई० में जन्म) के अनुसार सोमनाथ में असङ्ख्य यात्री आते थे।[3] तीन सौ व्यक्ति यात्रियों के बाल और दाढ़ी बनाने के लिए नियुक्त थे। एक हजार ब्राह्मण मूर्ति के पूजन में संलग्न रहते थे।[4] हेमचन्द्र के 'द्व्याश्रय महाकाव्य' से सोमनाथ के यात्रियों का उल्लेख मिलता है।

सन् १०२७ ई० में महमूद सोमनाथ मन्दिर को ध्वस्त कर मन्दिर की समस्त सम्पत्ति गजन उठा ले गया।[5] अतः इस भग्न मन्दिर का पुनर्निर्माण चौलुक्य कुमारपाल ने कराया।[6]

हिन्दुओं के धार्मिक त्यौहार

हिन्दू समाज में विभिन्न देवी-देवताओं को धर्मप्रवण कथात्मक परिवेश में आकलित कर ऐसी तिथियाँ नियत की गई थीं, जो विशेष पर्व अथवा त्यौहार के नाम से जानी गई। उन तिथियों को व्रत, उत्सव और खुशियाँ मनाई जाती थीं तथा उन देवी-देवताओं का समारोहपूर्वक पूजन होता था। फलतः हर साल इन तिथियों को यथानिरूपित त्यौहार व्यहृत था, जिनका स्वरूप पावन और धार्मिक होता था।

इनमें कुछ पर्व ऐसे थे जिन्हें केवल स्त्रियाँ और बच्चे ही मनाते थे और कुछ को स्त्री-पुरुष सभी। अलबीरूनी लिलता है कि "बहुत से हिन्दू त्यौहार औरतों और बच्चों द्वारा मनाए जाते हैं।"[7]

अलबीरूनी ने हिन्दू त्यौहारों पर निश्चित तिथियों को देते हुए विस्तार से लिखा है। यह पहला विदेशी लेखक है जिसने हिन्दू त्यौहारों पर सविशद

---

1. *Ibid.*, p. 104. 2. *Ibid.*
3. *ED.*, II (Aligarh Ed.), p. 474.
4. *AI.*, Vol. II, p. 103.
5. *AI.*, Vol. II, p. 103. 6. प्रबन्ध चिन्तामणि, चतुर्थ प्रकाश।
7. *AI.*, Vol. II, p. 178.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

लिखा।[1] यहाँ मैं उसके द्वारा निरूपित हिन्दू त्योहारों का समसामयिक ग्रन्थों से परीक्षण करता हुआ उनकी मूल प्रकृति का आलोचनात्मक विवरण प्रस्तुत कर रहा हूँ।

चैत्र मास (मार्च-अप्रैल)

२ चैत्र—अलबीरूनी लिखता है कि "चैत्र मास का दूसरा दिन अगदूस कहा जाता है, कश्मीरियों के लिए त्योहार का दिन है, और राजा + मुत्ते की तुर्कों पर विजय प्राप्ति के कारण सम्पन्न किया जाता है।[2]

इस त्यौहार का समसामयिक लेखकों ने कोई संकेत नहीं दिया है।० सम्प्रति अलबीरूनी के कथन से इतना अवश्य स्पष्ट है कि अलबीरूनी के काल में कश्मीर की जनता यह त्यौहार मनाती थी।

६ चैत्र—अलबीरूनी का कथन है कि 'चैत्र का छठाँ दिन व्रत का दिन है और सूर्य के लिए पवित्र है।'[3] अलबीरूनी के इस कथन का समर्थन चण्डेश्वर के इस कथन से होता है कि चैत्र का छठां दिन सूर्य का दिन है जिसमें पूजन आदि का उपक्रम होता है।[4]

११ चैत्र—अलबीरूनी के अनुसार चैत्रमास की '११वीं तिथि का उत्सव' 'हिण्डोली चैत्र' कहलाता था। जब वे 'देवगृह' या वासुदेव के मन्दिर में मिलते हैं और उसकी प्रतिमा को इधर-उधर हिलाते हैं, जैसे कि वह शैशवावस्था में

---

1. अलबीरूनी के भारतीय धार्मिक त्यौहारों के विवरण को गरदीजी (Gardizi) नामक अरब लेखक ने अपनी पुस्तक 'जैन-उल-अकबार' में तद्वत अनूदित कर लिया है।+ उसने अपनी पुस्तक फारसी में लिखी है, अलबीरूनी की पुस्तक से इक्कीस वर्ष बाद, १०५२ ई० + + में।

   + Sachau, *AI.*, Vol. II, p. 397.

   + + Sharma, Sriram, *An Almost Contemporary Accounts of Mahmnd's Invasion of India, IHQ.*, Vol. IX, No. 4, 1933, p. 941.

   + मुत्तै नाम सिविस्तान के एक राजा के नाम से मिलता है—*ED.*, Vol. I, pp. 145–53.

2. *AI.*, Vol. II, p. 178.

० श्रीनगर (कश्मीर) आवासकाल में मैंने वहाँ के निवासियों से इस विषय में जिज्ञासा प्रकट की किन्तु उन लोगों को मौनता इस त्यौहार की अवर्तमानता ही व्यक्त की।

3. *Ibid.*, p. 176.

4. कृत्यरत्नाकर, पृ० १२१–२३।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

झूले में झुलाया जाता था। वे इसी को अपने घर में पूरे दिन सम्पन्न करते हैं और आनन्द मनाते हैं।[1]

किन्तु अभयतिलकगणि के अनुसार 'डोल' या 'डोला' त्यौहार चैत्र के शुक्ल पक्ष के १४वें मास के चारों वर्णों द्वारा मनाया जाता था। उस अवसर पर शम्भु और गौरी झुलाए जाते थे।[2] भविष्यत् पुराण को उद्धृत करते हुए अभयतिलकगणि का कथन है कि सोमनाथ का 'डोल' उत्सव सभी लोगों द्वारा सम्पन्न होता था।[3] ब्रह्मपुराण को उद्धृत करते हुए लक्ष्मीधर[4] और चण्डेश्वर[5] का कथन है कि इस अवसर पर सुन्दर वस्त्राभूषण से सज-धज कर लोग मांस आदि ग्रहण करते थे। परमार उदयादित्य के अभिलेख से प्रकट होता है कि यह उत्सव 'दमनक' कहलाता था।[6] एक प्रमाण से विदित होता है कि आश्रित राजा वागमल्ल ने इस उत्सव के निमित्त शैव मन्दिर को (वि० सं० १२४६–१२० ई०) सहायता दी थी।[7] 'दमनक' में 'दमन' नामक वृक्ष शिव या विष्णु को प्रार्थना के साथ भेंट किया जाता था।[8] इस पर्व के दिन गुजरात के प्रायः सभी शिवमन्दिरों में डोलोत्सव मनाया जाता था।[9]

अर्जुन वर्मन के धारप्रशस्ति से यह उद्घाटित होता है कि 'पारिजात-मञ्जरी नाटिका' 'चैत्र पर्व' (जो 'वसन्तोत्सव' भी कहा जाता है) पर खेली गयी थी।[10]

चैत्र पूर्णिमा का दिन—अलबीरूनी वसन्तोत्सव के विषय में लिखता है कि 'चैत्र के पूर्ण चन्द्रमा के दिन का उत्सव 'वसन्द' (बसन्त) कहलाता है, स्त्रियों का त्यौहार। जब वे आभूषण पहनती हैं और पतियों से उपहार की याचना करती हैं।'[11]

हेमचन्द ने 'देशीनाममाला' में बसन्तोत्सव के लिए 'फागु' व्यवहृत किया है।[12] सम्भवतः यह डोल पर्व ही है।

---

1. *AI.*, Vol, II p. 178.
2. अभयतिलकगणि का 'द्वयाश्रय' पर भाष्य—५.१४१।
3. वही, 'असमिंश्च पर्वणि सोमनाथस्य चतुर्वणरमहाविस्तरेण डोलामहोत्सवुः क्रियते।'
4. कृत्यकल्पतरु, नियत०, पृ० ३८४–८५।
5. कृत्यरत्नाकर, पृ० १३८–३९।
6. *EI.*, XXIII, 134.
7. *IA.*, VI, 338.
8. हेमाद्रि, स्मृतिकौस्तभ ९१।
9. Majumdar, A. K., *Chaulukyas of Gujarat*, p. 306.
10. *EI.*, VIII, 96.
11. *AI.*, Vol. II, p. 178.
12. देशीनाममाला, ६.८२।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

वैशाख मास (अप्रैल-मई)

३. वैशाख—अलबीरूनी लिखता है कि 'तीसरा वैशाख औरतों का त्यौहार है, 'गौर-त-र' (गौरी तृतीया) कहा जाता है, महादेव की पत्नी और हिमवन्त की पुत्री गौरी के कारण (यह पर्व) पावन है। वे स्वच्छ होती हैं और प्रसन्नतापूर्वक वस्त्र पहनती हैं। वे गौरी की प्रतिमा का पूजन करती हैं और उसके सामने दीप जलाती हैं। वे धूप देती हैं, भोजन से विलग रहती हैं और झूलों से खेलती हैं। बाद के दिन वे दान देती हैं और भोजन ग्रहण करती हैं।[1]

इस त्योहार का हेमाद्रि ने 'चतुवर्गचिन्तामणि' में विस्तार से विवेचन किया है, जिसमें पूजा की विधि और व्रत-उपवास का वर्णन है।[2]

१० वैशाख—अलबीरूनी के अनुसार '१० वैशाख को सभी ब्राह्मण राजा द्वारा खुले खेत में जाने के लिए निमन्त्रित किए जाते हैं, जहाँ वे पूर्णिमा तक पाँच दिन होम के लिए वृहद् हवन करते हैं। वे सोलह भिन्न स्थानों पर चार भिन्न समूहों में अग्नि जलाते हैं। प्रत्येक समूह में एक ब्राह्मण होम करता है। इस प्रकार चार हवन करनेवाले पुरोहित चार वेद की तरह हैं। १६ को वे घर लौट आते हैं।'[3]

इस त्योहार का भारतीय ग्रन्थों में उल्लेख नहीं मिलता। सम्भव है उस समय इसका कोई स्वरूप रहा हो।

वसन्त ऋतु का रात-दिन बराबर का समय—अलबीरूनी लिखता है कि 'इस महीने में रात-दिन बराबर का समय होता है, जो वसन्त कहलाता है। गणना के अनुसार दिन का निश्चय करते हैं और त्यौहार मनाते हैं, जब लोग ब्राह्मणों को निमन्त्रित करते हैं।'[4]

समसामयिक ग्रन्थों में इस त्यौहार का कोई उल्लेख नहीं। आज भी इस त्यौहार का कोई विवरण नहीं मिलता। किन्तु अलबीरूनी की विवृत्ति से प्रकट है कि उस समय के भारतीय समाज में इसका अवश्य प्रचलन रहा होगा। सम्भवतः यह कर्क-सङ्क्रान्ति रही हो। अलबीरूनी का ज्ञान अधिकतर सम्वाददाताओं की सूचनाओं पर आधारित रहा। ये सम्वाददाता विभिन्न भारतीय

1. *AI.*, Vol. II, p. 179, *Gardizi* MSS., p. 216.
2. *CC.*, Vol. II, pt. I, Vrata Khanda, Vol. VII pp. 450-52.
3. *AI.*, Vol. II. p. 179.
4. *AI.*, Vol. II, p. 179.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

प्रदेशों के थे जिन्होंने अलबीरूनी को समसामयिक समाज के धार्मिक पर्वों पर पारम्परिक विवरण दिये।

ज्येष्ठ मास (मई-जून)

१ ज्येष्ठ—अलबीरूनी कहता है, "प्रथम ज्येष्ठ या नवीन चन्द्र के दिन वे एक त्यौहार आयोजित करते हैं और सब फलों के पहले फल को अनुकूल पूर्व लक्षण जानने के लिए पानी में फेंकते हैं।"[1]

यह त्यौहार भी भारतीय ग्रन्थों को नहीं विदित था किन्तु अलबीरूनी इस त्यौहार के विषय में जानता था, जिसका उसने निरूपण किया और तद्युगीन समाज में प्रचलित एक त्यौहार को सम्मुख लाने का प्रयास किया।

ज्येष्ठ पूर्णिमा—अलबीरूनी ने इस पर्व का यथोचित विवरण नहीं दिया है। वह लिखता है कि 'इस मास का पूर्ण चन्द्र का 'रूप पञ्च' नामक दिन औरतों के लिए एक त्यौहार है।'[2]

उड़ीसा में इस दिन पुरुषोत्तम की प्रतिमा को सड़कों पर घुमाया जाता है। यह त्यौहार 'महाज्येष्ठि' के नाम से विख्यात है। इस पर्व का ब्रह्म[3], स्कन्द[4] और अग्निपुराण[5] में इसी रूप में वर्णन हुआ है। 'राजमार्तण्ड' में भोज ने कहा है कि महाज्येष्ठि त्यौहार पुरी या पुरुषोत्तम स्थान पर वर्जित है।[6]

यह दिन सम्भवतः सावित्री का दिन माना गया है। भोज[7] और चण्डेश्वर[8] ने इसी रूप में इसका विवेचन किया है। ऐसा विश्वास था कि इस त्यौहार को सम्पन्न करने से औरतें विधवा होने से बचती थीं। इस अवसर पर अनेक फल-फूल के साथ सावित्री और ब्रह्म का पूजन होता था तथा ब्राह्मण दम्पति को दान दिया जाता था।[9]

आज भी सावित्री व्रत इसी दिन मनाया जाता है।[10]

---

1. *Ibid.*
2. *Ibid.*, p. 179; *Gardizi,* MSS., p. 216.
3. ब्रह्मपुराण ६५.५८।
4. स्कंदपुराण, उत्कलखण्ड ३२.९।
5. अग्निपुराण १२१.६३।
6. राजमार्तण्ड ABORI, Vol. 36, p. 334, verse 245.
7. *Ibid.*, verse 335.
8. कृत्यरत्नाकर, पृ० १९२-९५, चतुर्वर्गचिंतामणि, भा० २, पार्ट २, व्रतखण्ड, ~~भा० २१,~~ पृ० २७२।
9. कृत्यरत्नाकर, पृ० १९५।
10. Gupte, *Hindu Holidays and Ceremon, iesp.* 238.

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

आषाढ़ मास (जून-जुलाई)

अलबीरूनी के अनुसार 'आषाढ़ मास के सभी दिन दान देने में व्यतीत होते हैं। यह 'आहारी' भी कहा जाता है। इस कालावधि में घर में नवीन बर्तन की व्यवस्था की जाती है।[1]

चण्डेश्वर[2] ने भविष्यपुराण के आधार पर यह व्यवस्था दी है कि इस महीने की सभी रातों में फल पर प्रतिबन्ध था। इस मास में 'भौम' नामक त्यौहार गौरीपूजन के सन्दर्भ में मनाया जाता था, यह हेमचन्द्र के 'देशीनाममाला' से विदित होता है।[3] यह त्यौहार फोर्ब्स के समय तक गुजरात में प्रचलित रहा है।[4]

आषाढ़ शुक्ल का आठवाँ दिन गणेश या विनायक पूजन के लिए था। यह त्यौहार वाद्यसङ्गीत से सम्पन्न किया जाता था।[5]

आज की तिथियाँ ऐसे त्योहार का अनुमोदन नहीं करतीं। 'कालविवेक' के अनुसार अर्द्ध आषाढ़ के कृष्ण पक्ष में केवल चतुर्दशी को शिव का पूजन होता था।[6]

अर्द्ध आषाढ़ के शुक्ल पक्ष में अनेक त्यौहार मनाए जाते थे। सातवें दिन 'भास्कर' (सूर्य) का पूजन किया जाता था। लोग सोत्साह खाना और पीना आयोजित करते थे।[7] नवें दिन व्रत के साथ दुर्गा इन्द्राणी के स्वर्ण प्रतिमा का पूजन किया जाता था। अपनी-अपनी स्थिति के अनुसार श्रद्धालु लड़कियों, औरतों और ब्राह्मणों को भोजन कराते थे।[8] यह त्यौहार 'मार्गशीर्ष' को भी नवें दिन मनाया जाता था।[9]

११ आषाढ़ : देवशयनी एकादशी—अलबीरूनी लिखता है कि 'आषाढ़ मास के सत्रहवीं राशि में जब चन्द्रमा अनुराधा में होता है तब वासुदेव के नाम पर व्रत का दिन होता है, 'देवसीनी' (देवशयनी) कहलाता है, अर्थात्

---

1. *AI.*, Vol. II, p. 179; *Gardizi*, MSS., p. 217 A.
2. कृत्यरत्नाकर, पृ० २०३।
3. देशीनाममाला ४.१०३।
4. Forbes, *Rasamala*, Vol. II, p. 319.
5. कृत्यकल्पतरु, नियतकालकाण्ड, पृ० ३९०, कृत्यरत्नाकर, पृ० १९९।
6. कालविवेक, पृ० ४७१।
7. कृत्यकल्पतरु, नियत०, पृ० ३९०-९१।
8. कृत्यरत्नाकर पृ० २०३-४
9. वही, पृ० ४४५-४६।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

देव सो रहे हैं, क्योंकि यह चार महीनों का प्रारम्भ होता है जिसमें वासुदेव सोता था। दूसरे लोग यह कहते हैं, दिन महीने का ग्यारहवाँ होना चाहिए।[1]

यह प्रकट है कि ऐसा दिन प्रत्येक वर्ष नहीं आता। इस दिन वासुदेव के अनुयायी मांस, मछली, मिठाई और सम्भोग से दूर रहते हैं। केवल दिन में एक बार फल लेते हैं। बिना बिस्तर के जमीन पर सोते हैं, खाट का उपयोग नहीं करते।[2]

वह आगे लिखता है कि 'लोग कहते हैं कि ये चार महीने देवों की रात्रि है, जिनमें एक महीना प्रारम्भ में, सन्ध्या के रूप में जोड़ देना चाहिए और एक महीना अन्त में सुबह के रूप में। इस प्रकार तब सूर्य के निकट होता है जो देवताओं के दिन में मध्याह्न है और मैं नहीं देखता कि चन्द्रमा दो सन्धियों के साथ कैसे सम्बद्ध है।'[3]

लक्ष्मीधर,[4] जीमूतवाहन,[5] चण्डेश्वर[6] और भोज[7] का कथन है कि इस अवसर पर विष्णु शयन करते हैं। भक्तजन व्रत रहते थे और ११वें दिन की रात्रि में जगते थे, १२वें दिन उनकी पूजा करते थे और १३वें दिन नृत्य और सङ्गीत का आयोजन करते थे। लक्ष्मीधर[8] और चण्डेश्वर[9] का यह कहना है कि अपनी-अपनी सामर्थ्य के अनुसार लोग अभिनेताओं को द्रव्य देते थे। ब्रह्मपुराण, वाराहपुराण और वामनपुराण का उद्धरण देते हुए चण्डेश्वर[10] देवशयनी एकादशी का विस्तृत विवरण प्रस्तुत करता है।

श्रावण मास (जुलाई-अगस्त)

अलबीरूनी कहता है कि 'श्रावण की पूर्णमासी को वे ब्राह्मणों को ज्योनार कराते हैं'[11] तथा यह दिन 'सोमनाथ' के लिए पवित्र उपवास का दिन है।[12] हेमचन्द्र ने 'देशीनाममाला' में इस त्यौहार का नाम 'वोरल्ली' दिया है

1. *AI.*, Vol. II, p. 176.
2. वही।
3. वही।
4. कृत्यकल्पतरु, नियत० पृ० ३९१।
5. कालविवेक, पृ० १७५-८५।
6. कृत्यरत्नाकर, पृ० २०४-५।
7. राजमार्तण्ड ABORI. Vol. 36, p. 314.
8. कृत्यकल्पतरु, नियत० पृ० ३९०-९४।
9. कृत्यरत्नाकर, पृ० २०४-५।
10. कृत्यरत्नाकर, पृ० २०४-७।
11. *AI.*, Vol. II, p. 179.
12. *Ibid.*, p. 177.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

और अर्द्ध श्रावण के शुक्ल पक्ष के चौदहवें दिन मनाये जाने का निर्देश किया है।[1]

लक्ष्मीधर ने श्रावण के केवल एक त्यौहार का उल्लेख किया है, जिस दिन तीन नक्षत्र मिलते थे, विष्णु की पूजा की जाती थी। मनोरञ्जनपूर्वक लोग अपने सम्बन्धियों के साथ भोजन करते थे। अगर कोई कन्या अच्छा पति चाहती थी तो वह पानी की प्रतियोगिता में हिस्सा लेती थी।[2] श्रावण के शुक्ल पक्ष के द्वादशी का दिन 'बुद्ध द्वादशी' के नाम से जाना जाता था।[3] इस दिन का न तो लक्ष्मीधर ने उल्लेख किया है न जीमूतवाहन ने। इस प्रकार इस त्योहार के दिन बुद्ध की स्वर्ण प्रतिमा का पूजन किया जाता था और तब ब्राह्मण को आमन्त्रित किया जाता था। यह व्रत का दिन होता था।[4] आधुनिक बङ्गाल में 'बुद्धद्वादशी' का त्यौहार ज्येष्ठ पूर्णिमा में होता है।

नदोल प्लेट (वि० सं० १२१८।११६१ ई०) के अनुसार इस अवसर पर चाहमान आश्रित प्रधान अल्हणदेव ने ब्राह्मणों को उपहार दिया था।[5] डॉ० बी० पी० मजूमदार ने[6] डॉ० अशोककुमार मजूमदार[7] के इस मत का खण्डन किया है कि यह शैव उत्सव था। किन्तु आज उत्तरी भारत में, विशेषकर श्रावण मास के प्रत्येक सोमवार को वाराणसी में लोग व्रत रहकर विश्वनाथ (महादेव) का पूजन करते हैं। यह क्रम परम्परा से चला आ रहा है। अत: बिना किसी तथ्य के आधार पर डॉ० बी० पी० मजूमदार का कथन आश्चर्यजनक है।

भाद्रमास (अगस्त-सितम्बर)

भादों में होनेवाले अनेक हिन्दू त्यौहारों का उल्लेख अलबीरूनी ने किया है।

१–७ भाद्र—अलबीरूनी लिखता है कि 'अर्द्ध कृष्ण का पहला दिन, उन सात दिनों में से पहला है, जो 'करार' कहलाता है। जब वे बच्चों को

1. देशीनाममाला ७.८१।
2. कृत्यकल्पतरु, नियत० पृ० ३९५, कृत्यरत्नाकर, पृ० २५१।
3. कृत्यरत्नाकर, पृ० २४७-४८, चतुर्वर्गचिन्तामणि, भा० २, पार्ट १, पृ० १०३७-३८।
4. कृत्यरत्नाकर, पृ० २४७।
5. *EI.*, IX, 65-66.
6. *Socio-Economic History of Northern India*, p. 284.
7. *Chaulukyas of Gujarat*, p. 308.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सुन्दरतापूर्वक सजाते हैं और उनको उत्तम भोजन देते हैं। वे अनेक जन्तुओं के साथ खेलते हैं। सातवें दिन पुरुष अपने को सज्जित करते हैं तथा उत्सव मनाते हैं।'[1]

८ भाद्र—भाद्रमास के ८वें दिन कृष्ण-जन्म[2] का उत्सव मनाया जाता है, जो 'कृष्ण जन्माष्टमी' नाम से विख्यात है। अलबीरूनी कहता है कि 'इस मास में जब चन्द्रमा 'रोहिणी' में हो तो यह वासुदेव के जन्म के व्रत का दिन है। दूसरे, इसके अतिरिक्त यह भी निर्देश करते हैं कि दिन कृष्णपक्ष का आठवाँ होना चाहिए। हम पहले ही यह सङ्केत कर चुके हैं ऐसा दिन प्रत्येक वर्ष नहीं आता, किन्तु वर्षों की बड़ी संख्या के विशेष वर्षों में ही आता है।'[3] चण्डेश्वर और जीमूतवाहन नक्षत्रों की सही स्थिति का भान कराते हैं। अलबीरूनी जहाँ इस दिन को उपवास का दिन बताता है वहीं लक्ष्मीधर[4] फल और दूध खाने का निर्देश करता है। जीमूतवाहन[5] ने श्रीकृष्ण जन्म के इस दिन को 'जयनी' के नाम से सम्बोधित किया है। जब रोहिणी नक्षत्र अष्टमी को होता है तब उसने व्रत रहने का निर्देश किया है। लक्ष्मीधर ने इस अवसर पर होनेवाले नाच-गाने का उल्लेख किया है, जो रात भर चलता था।[6] अलबीरूनी भी कहता है कि जब चन्द्रमा चौथे नक्षत्र रोहिणी में होता है तब इस समय को 'गुनालहीद' कहते हैं। वासुदेव के जन्म पर वे प्रसन्नतापूर्वक तीन दिन उत्सव करते हैं तथा एक दूसरे के साथ क्रीड़ा करते हैं।[7] वाराणसी में आज भी जन्माष्टमी का यह उत्सव तीन दिन तक चलता है।

भाद्रपद अमावस्या—भादों के कृष्ण पक्ष के आधे महीने में 'पितृपक्ष' रहता है। इन दिनों मरे हुए लोगों का श्राद्ध और तर्पण किया जाता है। अलबीरूनी लिखता है कि 'भाद्रपदा के महीने में जब चन्द्रमा दसवें स्थान मघा पर रहता है, वे एक त्यौहार मनाते हैं जिसे वे 'पितृपक्ष' कहते हैं अर्थात् पित्रों का आधा महीना, क्योंकि चन्द्रमा का इस स्थान में प्रवेश करना नए चन्द्रमा के

1. *AI.*, Vol. II, p. 181; *Gardizi*, MSS., p. 218 A.
2. श्री आयङ्गर ने 'कृत्यकल्पतरु' के तीसरे खण्ड की भूमिका पृ० ४७ पर श्रावस मास लिखा है, जो ठीक नहीं प्रतीत होता।
3. *AI.*, Vol. II, p. 177.
4. कृत्यकल्पतरु, नियत०, पृ० ३९५–९६, कृत्यरत्नाकर, पृ० २५७।
5. कालविवेक, पृ० २९७।
6. कृत्यकल्पतरु, नियत०, पृ० ३९५–९६। 7. *AI.*, Vol. II, p. 181.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

समुद्र के निकट गिरना है। वे पन्द्रह दिनों तक पित्रों के नाम पर भिक्षा वितरित करते हैं।'[1]

अमावस्या के दिन तो विशेषकर उन आदमियों के लिए पावन होता है जो वास्तविक श्राद्ध करते थे। वैसे ये सम्पूर्ण दिन पवित्र थे।[2] हेमचन्द्र के अनुसार इस पर्व का नाम 'महालवक्खो' हैं, जिसे 'महालयापक्ष' का विगड़ा रूप कहा जा सकता है। अभयतिलकगणि[3] ने इसे 'श्राद्धपक्ष' कहा है, जिसमें व्यक्ति को ब्रह्मचारी के रूप में रहने का निर्देश किया है, तथा पान, दन्तकाष्ठ, शरीर में तेल लगाना, भोजन बनाना, स्त्री, औषधि और दूसरे द्वारा आमन्त्रित भोजन को वर्जित बताया है। इस अवसर पर कश्मीर में वर्ष के भीतर मरे हुए व्यक्ति की हड्डियाँ पवित्र गङ्गाझील में छोड़ी जाती थीं।[4]

अर्द्ध भाद्र के शुक्लपक्ष में भी अनेक त्यौहार सम्पन्न किए जाते थे।

३ भाद्र—अलबीरूनी लिखता है कि 'तीसरी भाद्रपदा 'हर्बाली' का त्यौहार औरतों के लिए है। यह उनकी रीति है कि कुछ दिनों पहले वे सभी प्रकार के बीज टोकरियों में बो देती हैं और जब वे बढ़ना आरम्भ कर देते हैं तब इस दिन वे टोकरियों को सम्मुख लाती हैं। वे उन पर गुलाब के फूल और सुगन्ध फेंकती हैं तथा एक दूसरे से रात भर खेलती हैं। दूसरे दिन सुबह वे उन्हें तालाब पर लाती हैं, उन्हें साफ करती हैं, स्वयम् स्वच्छ होती हैं और दान देती हैं।[5]

जीमूतवाहन[6] के अनुसार शुक्लपक्ष के भाद्रपद का चौथा दिन औरतों के लिये व्रत और पूजन का दिन है। औरतें उपवास करती हैं तथा शिव या पार्वती का पूजन करती हैं। वे सास और श्वसुर को गुड़, नमक और पूप देती हैं। यह दिन 'हरितालिका' के नाम से प्रसिद्ध है। भोज[7] के अनुसार पार्वती के नाम से यह दिन पवित्र है।

५–६ भाद्र—अलबीरूनी के अनुसार 'भाद्रपद का 'षट्' कहलाने वाला पाँचवाँ दिन, व्रत का दिन है, सूर्य के लिए पवित्र। वे सौर किरणों का, विशेषतः उन किरणों को जो वातायनों से प्रवेश करती हैं, अनेक प्रकार की औषधियुक्त विलेपन से उन पर सुगन्धयुक्त पौधे और फूल रखते हैं।'[8]

---

1. *Ibid.*, Vol. II, p. 180; *Gardizi* Mss. 217 B.
2. कृत्यकल्पतरु, नियत०. पृ० ३९६, कृत्यरत्नाकर, पृ० २५७।
3. देशीनाममाला, ६.१२७।
4. द्वयाश्रय० ३.५.१७।
5. *AI.*, Vol. II. p. 180.
6. कालविवेक, पृ० ४११।
7. राजमार्तण्ड ABORI., Vol. 36, p. 323.
8. *AI.*, Vol. II, p. 177.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

लक्ष्मीधर[1] और चण्डेश्वर[2] ने छठें और सातवें भाद्रपद को पवित्र उल्लिखित किया है, जब कृष्ण को प्रसिद्धि मिली थी। चण्डेश्वर का कहना है कि इस अवसर पर लोग नौकरों, मित्रों और पत्नियों को भेंट प्रदान करते हैं। वह आगे निर्देश करता है कि छठें दिन तेल का प्रयोग नहीं करना चाहिए। इस दिन सूर्य की पूजा होती है और 'पायस' और 'गुड़' दिया जाता है।[3] अलबीरूनी[4] ने छठें भाद्रपद को 'गाइहत' कहा है तथा इस अवसर पर 'कारावास' में रहनेवाले लोगों को भोजन देने की बात कही है। लक्ष्मीधर और जीमूतवाहन ने इस पर्व को सूर्य के लिए पवित्र नहीं बताया है। अतः प्रकट होता है कि सूर्य-पूजा पूर्वी उत्तर प्रदेश और बङ्गाल में नहीं प्रचलित थी। लेकिन अलबीरूनी ने जब लिखा है तब यह भारत में अवश्य प्रचलित रहा होगा। वैसे मुल्तान में भारत प्रसिद्ध सूर्य मन्दिर और सूर्यकुण्ड था, जहाँ सूर्य-पूजा होती थी तथा दूर-दूर के यात्री भी दर्शनार्थ आते थे।[5]

८ भाद्र—शुक्ल भाद्रपद का ८वाँ दिन अनेक त्यौहारों के लिए ख्यातव्य है। अलबीरूनी लिखता है कि '८वीं (तिथि), जब चाँदनी विकास के आधे पर पहुँची रहती है, वे एक पर्व करती हैं जो 'ध्रुवगृह' कहलाती हैं। वे अपने को स्वच्छ करती हैं और उगनेवाला फल खाती हैं कि उनके बच्चे स्वस्थ हों। औरतें इस त्यौहार को इसलिए मनाती हैं या वे गर्भयुक्त होती हैं या सन्तान की इच्छा रखती हैं।'[6] लेकिन अलबीरूनी द्वारा विवृत्त हिन्दू त्यौहारों को फारसी में अनूदित करते हुए गरदीजी[7] का कथन है कि पूजा करनेवाला ही फल खाता है, उसकी सन्तान नहीं। चण्डेश्वर[8] के अनुसार इस पर्व पर अगर व्यक्ति, विशेषकर स्त्री व्रत रहकर अनेक फलों से शङ्कर और गणेश का पूजन करती है तो वे विद्या, सन्तान और धन से पुरस्कृत होती हैं। पर्व 'दुर्वाष्टमी' के नाम से जाना जाता था। इस 'दुर्वाष्टमी' से अलबीरूनी के 'ध्रुवगृह' का समर्थन होता है।

११ भाद्र—अलबीरूनी के अनुसार '११वीं भाद्रपदा 'पर्वती' कहलाता है। यह एक धागे का नाम है जिसे पुरोहित उन सामग्रियों से बनाता है जो उसे इस प्रयोजन से दी गई रहती है। इसका एक भाग वह केसर के साथ रङ्ग देता है

1. कृत्यकल्पतरु, नियत० पृ० ३९७।
2. कृत्यरत्नाकर, पृ० २७७।
3. वही, पृ० २७८–७९।
4. *AI.*, Vol. II, p. 180.
5. *Ibid.*, Vol. I, p. 116.
6. *AI.*, Vol. II, pp. 180–81.
7. *Gardizi*, MSS., p. 217 B.
8. कृत्यरत्नाकर, पृ० २८३–८५।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

दूसरा, उसी तरह छोड़ देता है। वह धागे को, जितनी ऊँची वासुदेव की मूर्त्ति होती है, बनाता है। तब वह उसे अपनी गर्दन पर फेंकता है जिससे वह उसके पैर तक लटकता है। यह बहुत ही पूजनीय त्यौहार है।'[1]

समयुगीन भारतीय ग्रन्थों में इसका उल्लेख नहीं मिलता। सम्भवतः अलबीरूनी के समय इसका प्रचलन रहा हो। हेमचन्द्र ने देशीनाममाला में १०वें दिन होनेवाले 'णेड्डरिया' त्यौहार का उल्लेख किया है।[2]

२६, २७ भाद्र—इन तिथियों के अन्तर्गत अलबीरूनी ने कश्मीर में होनेवाले त्यौहार का वर्णन किया है। इस त्यौहार का पता उसे जीवशर्मन नामक व्यक्ति से लगा था, जिसे सखाउ[3] ने अलबीरूनी का समकालीन माना है। अलबीरूनी लिखता है कि 'जीवशर्मन बताता है कि इस मास के २६वें और २७वें दिन लकड़ी के विशेष टुकड़ों के कारण कश्मीर के लोग एक त्यौहार मनाते हैं, जो 'गण' कहा जाता है, जिन्हें वितस्ता (झेलम) नदी का पानी उन दो दिनों में राजधानी अधिष्ठान में ले आता है। लोग मानते हैं कि महादेव इन्हें भेजता है। इन लकड़ी के टुकड़ों को यह विशेषता है कि जैसा वे कहते हैं, कोई भी इन्हें नहीं रोक पाता। इस प्रकार वह ऐसा प्रकट करते हैं कि वे (लकड़ी के टुकड़े) हमेशा उसकी पकड़ से निकल कर आगे बढ़ जाते हैं।'[4]

वह आगे कहता है कि 'अतः इस विषय पर जिन कश्मीर वालों से मैंने वार्ता की, वे स्थान और समय पर भिन्न विवरण देते हैं और जिस नदी (वितस्ता-झेलम) का अभी उल्लेख हुआ है वह उसके उद्गम स्थान की बाईं ओर कूदे शहर नामक तालाब में, वैशाख मास के मध्य में होता है। बाद का कथन अधिक सम्भाव्य है, इसलिए कि इस समय से पानी बढ़ने लगता है। यह बात जुर्जान नदी में लकड़ी की याद दिला देती है जब इसके उद्गम स्थल से जल बढ़ने लगता है।'[5]

---

1. *AI.*, Vol. II, p. 181.
2. देशीनाममाला, ४.४५। 3. Sachau, *op. cit.*, Vol. II, p. 309.
4. *AI.*, Vol. II, p. 181. 5. *Ibid.*

नोट:—श्रीनगर (कश्मीर) की अध्यापनकालावधि में मैंने वहाँ के कई ब्राह्मणों से इस त्यौहार के विषय में जिज्ञासा प्रकट की थी, किन्तु उन्होंने अलबीरूनी जैसा कोई विवरण नहीं दिया।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

आश्वयुज या आश्विन या कुआर मास (सितम्बर-अक्तूबर)

८ आश्वयुज—अलबीरूनी के अनुसार 'आश्वयुज के आठवें दिन जब चन्द्रमा उन्नीसवें नक्षत्र 'मूल' में होता है, ईख का चूसना प्रारम्भ होता है। यह त्यौहार महादेव की बहन महानवमी पर पवित्र है, जब वे चीनी के पहले फल और अन्य चीजों को उसकी प्रतिमा के लिए, जो भावती कही जाती हैं, देता है। वे इसके सामने बहुत भेंट रखते हैं और बकरी के बच्चों की बलि देते हैं। वह, जब कुछ भी भेंट नहीं चढ़ा पाता तो मूर्ति की बगल में बिना कभी बैठे सीधा खड़ा रहता है और कुछ समय में किसी के भी मिलने पर उस पर प्रहार कर बलि कर डालता है।[१] अलबीरूनी द्वारा जीव बलि के स्पष्ट उल्लेख के विपरीत उपर्युक्त कथन पर डॉ० ए० के० मजूमदार की यह टिप्पणी कि 'इस उद्धरण का यह महत्त्व है कि अलबीरूनी यह नहीं कहता कि कोई पशु-बलि की जाती थी,'[२] आश्चर्य ही है।

दुर्गापूजा त्यौहार को 'हेमचन्द्र'[3] ने 'नवाह' नाम से सम्बोधित किया है और उसके भाष्यकार अभयतिलकाणि ने 'महानवमी'। प्रथम दिवस से नौ दिन तक यह पूजा चलती थी और 'नवरात्र' कहा जाता था। मारकण्डेयपुराण[४] के देवीमाहात्म्य को उद्धृत करते हुए अभयतिलकाणि ने 'चण्डी' के पूजन को अत्यन्त लाभप्रद बताया है। हेमचन्द्र ने देशीनाममाला में अलबीरूनी के कथन से साम्य रखते हुए ईख का चूसना त्यौहार का मुख्य नैवेद्य निर्दिष्ट किया है।[५]

दुर्गापूजा में बलि की प्रथा थी। असंख्य जानवरों की बलि दी जाती थी। जयसिंहसूरि,[६] राजशेखर[७] और जिनमण्डन[८] ने चौलुक्य कुमारपाल के बलि बन्द कर दिए जाने का निर्देश किया है। इस पर मन्दिर के पुरोहितों ने राजा से देवी का पूजा के पर्व को साधारण ढङ्ग से मनाने के लिए प्रार्थना की। बङ्गाल और उसके बाहर बलि अधिक संख्या में होती थी। स्वामी दुर्गा

---

1. *AI.*, Vol. II, pp. 179–80.
2. *Chaulukyas of Gujarat*, p. 483, "But the importance of this passage is that al–Baruni does not say that any animal was sacrificed."
3. द्वयाश्रय ३·६।
4. मारकण्डेयपुराण ९१, अ० ९२
5. देशीनाममाला १·३२।
6. कुमारपालभूपालचरित ७.१०९–१०।
7. राजशेखर, प्रबन्धकोश 'हेमसूरिं प्रबन्ध' ४७।
8. जिनमण्डन, कुमारपालप्रबन्ध ६१।

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

चैतन्य[1] भारती के अनुसार बङ्गाल और उसके बाहर, काठमाण्डु आदि में असंख्य पशुओं की बलि दी जाती रही है।

१५ आश्वयुज—अलबीरूनी लिखता है कि '१५वें दिन जब चन्द्रमा अपने अन्तिम नक्षत्र रेवती में रहता है तब 'पुहाई' त्योहार होता है, वे एक दूसरे के साथ शास्त्रार्थ करते हैं तथा जानवरों के साथ खेलते हैं। यह वासुदेव के लिए प्रसिद्ध है क्योंकि उसके मामा कंस ने शास्त्रार्थ के लिए उसे अपने सम्मुख उपस्थित होने का आदेश दिया था।'[2] अलबीरूनी द्वारा दी गई यह तिथि भोज[3] के 'युक्तिकल्पतरु' में दी गई तिथि से मिलती है। लेकिन अलबीरूनी ने त्योहार की प्रसिद्धि की जो कथा दी है वह किसी भी समकालीन लेखक से अनुमोदित नहीं होती।

गुजरात में इस मास में एक त्योहार मनाया जाता था जिसमें पत्नी के हाथ से पति मालपुवा खाता था।[4]

१६ आश्वयुज—अलबीरूनी के अनुसार '१६वीं (तिथि) को एक पर्व होता है क्योंकि वे ब्राह्मणों को दान देते हैं।'[5]

इस दिन के त्योहार का अलबीरूनीयुगीन किसी भारतीय लेखक ने कोई जिक्र नही किया है।

२३ आश्वयुज—अलबीरूनी कहता है कि '२३ को जब चन्द्रमा ७वें नक्षत्र पुनर्वसु पर होता है तब 'अशोक' त्योहार होता है, 'आहोई' भी कहा जाता है। यह आनन्द और शास्त्रार्थ का दिन है।'[5]

उत्तरी भारत में आज भी 'अशोक' वृक्ष की पूजा की जाती है, आनन्दोत्सव मनाया जाता है। हो सकता है, यह वही पर्व हो।

कार्त्तिक मास (अक्तूबर-नवम्बर)

१ कार्त्तिक—अलबीरूनी के अनुसार 'प्रथम कार्त्तिक या नवीन चन्द्रमा का दिन, जब सूर्य तुला राशि में रहता है, 'दीवाली' कहा जाता है। लोग सबसे पहले स्नान करते हैं, वस्त्र धारण करते हैं, एक दूसरे को पान और सुपाड़ी का उपहार देते हैं। वे सवार होकर दान देने के लिए मन्दिर जाते हैं और दोपहर तक प्रफुल्लतापूर्वक एक दूसरे के साथ क्रीड़ा करते हैं। रात में वे

1. समाधान, पृ० ६९।
2. *AI.*, Vol. II, p,180.
3. युक्तिकल्पतरु, पृ० १७७।
4. देशीनाममाला ६'८१।
5. *AI.*, Vol. II, p. 180.
5. *Ibid.*, Vol. II, p. 180.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

प्रत्येक स्थान पर अनेक की संख्याओं में दीप जलाते हैं जिससे वायु पूर्णतः स्वच्छ हो जाती है। इस त्यौहार का कारण यह है कि वासुदेव की पत्नी, लक्ष्मी, साल में एक बार इस दिन विरोचन के पुत्र बलि को जो सातवीं पृथ्वी (पाताल) पर बन्दी है, बन्धनमुक्त करती हैं और उसे संसार में बाहर जाने देती हैं। इस प्रकार यह त्यौहार 'बलिराज्य' अर्थात् 'बलि का राज्य' कहा जाता है। हिन्दू मानते हैं कि कृतयुग में यह समय भाग्य का दिन था और वे प्रसन्न होते हैं क्योंकि इस त्यौहार का समय कृतयुग के उस समय के बराबर है।'[१]

मेरुतुङ्ग[२] ने सिद्धराज सम्बन्धी कथा का निरूपण करते हुए 'दीवाली' उत्सव का वर्णन किया है। इस अवसर पर 'महालक्ष्मी' की पूजा होती थी। यह पूजा दीवाली के दिन के पहले होती थी। कोल्हापुर में 'महालक्ष्मी' की पूजा दीवाली के दिन से पहले हुई थी यह सिल्हारों के एक विरुद 'श्रीमहालक्ष्मीदेवी-लब्ध-वर-प्रसाद' से विदित होता है।[3] अतः लक्ष्मी से सम्बन्धित अलबीरूनी का कथन सही है। यद्यपि अलबीरूनी ने भ्रमवश अपने विवरण में लक्ष्मीपूजा, दीवाली, और बलिपूजा तीनों को एक साथ वर्णित किया है। हेमचन्द्र ने द्वयाश्रय में 'बलिपूजा' के लिए 'बलिमह' कहा है, जिसे भाष्यकार अभयतिलकगणि ने स्पष्ट करते हुए 'बलिराज्यदिन' सम्बोधित किया है। भविष्यपुराण के आधार पर अभयतिलकगणि का कथन है कि 'बलिमह' उत्सव दीवाली की रात से प्रारम्भ होता था। असल मे दूसरा दिन ही 'बलिमह' उत्सव का था जिसमें औरतें एक दूसरे को अभ्यर्थना करती थीं।[४]

दीवाली हिन्दुओं का बहुत पुराना त्यौहार है। नीलमन्त,[५] स्कन्द,[६] पद्म,[७] वाराह और भविष्यपुराणों को उद्धृत करते हुए हेमाद्रि,[८] नागानन्द[९] और वात्स्यायन[१०] इसकी प्राचीनता की पुष्टि करते हैं। कार्त्तिक अमावस्या की गहन

1. *AI.*, Vol. II, p. 182; *Gardizi.* MSS. 219 A.
2. प्रबन्धचिन्तामणि (Tr. Tawny.) III.; वही, (सम्पादक जिनविजयमुनि) ७२।
3. Gode, P. K., *Some Notes on the History of Diwali Festival* ABORI, XXVI, 237.
4. द्वयाश्रय ३·३२।
5. नीलमतपुराण (लाहौर संस्करण), ४२, श्लो० ४०५–१५ Ed. D. Verse श्लो० 398–406.
6. स्कन्दपुराण, वैष्णवखण्ड, अ० ९।
7. पद्मपुराण, उत्तरखण्ड अ० १२२।
8. चतुर्वर्गचिन्तामणि, कालनिर्णयखण्ड, पृ० ९१४–१५।
9. नागानन्द अ० ४।
10. वात्स्यायन, कामसूत्र १·४·४३।

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

रात्रि में इस त्यौहार का आयोजन किया जाता था। 'ब्रह्मपुराण' का उद्धरण देते हुए लक्ष्मीधर[1] और चण्डेश्वर[2] ने इस त्यौहार को 'सुख सप्तिका' के नाम से अभिहित किया है। भोज[3] ने इसे 'सुखरात्रि' नाम से सम्बोधित किया है। इस अवसर पर भूखों को भोजन और दान दिया जाता था। रात में सर्वत्र दीप जलाए जाते थे तथा लक्ष्मी की पूजा की जाती थी। इसीलिए जीमूतवाहन[४] ने भी इसे सुखरात्रि' कहा है। सोमदेव[५] के अनुसार इस पर्व पर सब स्थान दीपमालिकाओं से सुमज्जित और लोग आनन्दविभोर रहते थे।

जीमूतवाहन,[६] लक्ष्मीधर[७] और चण्डेश्वर[८] स्पष्ट करते हैं कि दीवाली कार्तिक अमावस्या के बाद प्रतिपदा को मनाई जाती थी। कार्त्तिक अमावस्या बलिराज प्रवर्त्तिनी थी।[९] इस दिन को सुबह लोग जूआ खेलते थे। जूए का हारना और जीतना व्यक्ति के अभाग्य और भाग्य का द्योतक था।[१०] 'कृत्य-तत्वार्णव' में इस त्यौहार को 'द्यूत प्रतिपदा' कहा गया है।[११]

हेमचन्द्र ने इस त्यौहार को 'दीपोत्सव पक्ष' कहा है, जिसे अभयतिलकगणि ने अपनी व्याख्या से 'दीपमालिका'[१२] 'देशीनाममाला' में हेमचन्द्र[13] ने इस त्यौहार के संस्कृत शब्द 'दीवाली' और दीपालिका' को देशी शब्द 'जक्खरत्ती' से स्पष्ट किया है। 'जक्खरत्ती' वात्स्यायन[१४] के 'यक्षरात्रि' का बिगड़ा रूप लगता है।

११ कार्त्तिक : देवोत्थनी एकादशी—अलबीरूनी का कथन है कि 'कार्त्तिक के महीने में जब चन्द्रमा अपने अन्तिम नक्षत्र रेवती में रहता है तो वह वासुदेव के जागने के उपलक्ष में व्रत का दिन होता है। यह 'देवोत्थनी' कहा जाता है, अर्थात् देव का उत्थान। इसके अतिरिक्त, दूसरी स्थिति जोड़ते

---

1. कृत्यकल्पतरु, नियत० ४२१–२३। 2. कृत्यरत्नाकर, पृ० ४१०–११।
3. राजमार्तण्ड ABORI, Vol. 36, p. 329.
4. कालविवेक, पृ० ४०३–४।
5. यशस्तिलकचम्पू (निर्णयसागर प्रेस, पृ० ५९७-९८) बुक ३, श्लोक ४६२-६६।
6. कालविवेक. पृ० ४०६-७।
7. कृत्यकल्पतरु, नियत०, पृ० ४२१-२२।
8. कृत्यरत्नाकर, पृ० ४१०-११।
9. कृत्यतत्वार्णव, *HB.*, Vol. I, p. 607.
10. कृत्यकल्पतरु, नियत०, पृ० ४२२, , कृत्यरत्नाकर, पृ० ४११।
11. कृत्यतत्वार्णव, *HB.*, Vol. I, p. 607.
12. द्वयाश्रय २.१०६। 13. देशीनाममाला ३.४३।
14. कामसूत्र १.४.४३।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

हैं कि यह शुक्ल पक्ष का ग्यारहवां दिन होना चाहिए। उस दिन गौओं के गोबर से अपने को पोतते और गाय के दूध, मूत्र और गोबर की सम्पृक्ति लेकर व्रत तोड़ते हैं। यह दिन उन पाँच दिनों का पहला है जो 'भीष्म पाँचरात्रि' कहे जाते हैं। वे वासुदेव के सम्मान में उस बीच उपवास करते हैं। उनमें से दूसरे दिन ब्राह्मण उपवास तोड़ते हैं, जिनके बाद अन्य लोग।[1]

भोज[2], लक्ष्मीधर[3] और चण्डेश्वर[4] ने देवोत्थनी एकादशी पर विस्तार से लिखा है। यह त्यौहार अत्यन्त महत्त्वपूर्ण था। रात में वेद और पुराण का पाठ किया जाता था। देव के स्वागतार्थ गाने-बजाने का आयोजन निष्पन्न होता था। वैष्णव लोग वासुदेव की कीर्त्ति और जोवन पर व्याख्यान देते थे। बारहवें दिन वासुदेव को घी, तेल और शहत में स्नान कराया जाता था।[5] द्वयाश्रय पर भाष्य करते हुए अभयतिलकगणि[6] ने भी इस त्यौहार को 'विष्णु के जागने का दिन' निर्देशित किया है। चालुक्य आश्रित शासक वेजल्लदेव के ११७३ ई० के एक अभिलेख से विदित होता है कि इस अवसर पर उसने उपवास किया था।[7] 'हरिभक्तिविलास' से पता लगता है कि इस त्यौहार का दूसरा नाम 'प्रबोधिनी एकादशी' था तथा कृष्ण का जलूस निकलता था।[8] आज भी काशी में कुछ वैष्णवोपासक इस दिन स्थान-स्थान पर श्रीकृष्ण को जलूस में लेकर निकलते हैं।

कार्तिक पूर्णिमा—अलबीरूनी लिखता है कि 'उसी महीने में जब पूर्ण रूप से चन्द्रमा रहता है, वे कृष्णपक्ष के सभी दिनों तक ज्यौनार करते हैं तथा अपनी स्त्रियों को सज्जित करते हैं।'[9]

कार्तिक की चतुर्दशी या पूर्णिमा का दिन अत्यन्त पावन समझा जाता है। लक्ष्मीधर[10] और चण्डेश्वर[11] ने पूर्णिमाकी पावनता का विशद् वर्णन किया है।

---

1. *AI*., Vol. II, p. 177.
2. राजमार्तण्ड ABORI, Vol. 36, p. 315.
3. कृत्यकल्पतरु, नियत० पृ० ४२७।
4. कृत्यरत्नाकर, पृ० ४२० और ४२७।
5. कृत्यकल्पतरु, नियत० पृ० ४२६-२९, कृत्यरत्नाकर, पृ० ४२०-२२ और ४२६-२७।
6. अभयतिलकगणि का द्वयाश्रय पर भाष्य ३.२५।
7. *IA*., XVIII, p. 83.
8. हरिभक्तिविलास अ० १६, श्लोक १७६-९८।
9. *AI*., Vol. II, p. 182.
10. कृत्यकल्पतरु. नियत० पृ० ३२५-२६।
11. कृत्यरत्नाकर. पृ० ४१३-१४।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

स्नान के बाद स्त्रियाँ फल वाले वृक्ष का पूजन करती थीं। यह व्यवहार था कि सबसे पहले भेंट सन्तानवाली औरतों को दिया जाता था। उत्सव में मित्रों, सेवक, सम्बन्धी, सभी लोगों को भोजन कराया जाता था। अभयतिलकगणि[1] ने कार्तिक पूर्णिमा की पवित्रता और पावनता का उल्लेख किया है।

आज भी वाराणसी में 'कार्त्तिक मास' को पुरुषोत्तम मास' कहा जाता है तथा पूरे कार्त्तिक मास तक अधिकांश हिन्दुओं द्वारा गङ्गास्नान और देवपूजन होता है। कार्त्तिक पूर्णिमा के दिन सभी प्रफुल्ल होकर व्रत रहते हैं, दान देते हैं और पुरुषोत्तम का पूजन-अर्चन करते हैं।

मार्गशीर्ष या अगहन मास (नवम्बर-दिसम्बर)

३. मार्गशीर्ष—अलबीरूनी लिखता है कि 'तीसरी मार्गशीर्ष, गुवान-वात्रीज' (-तृतीया) कहलाती है, जो औरतों का त्यौहार है, गौरी को पवित्र है। वे अपने में से अमीरों के घर इकट्ठा होती हैं, वे देवी की अनेक रजतमूर्तियाँ सिंहासन पर रखती हैं, धूप देती हैं और पूरे दिन एक दूसरे के साथ क्रीड़ा करती हैं। दूसरे दिन सुबह दान देती हैं।"[२]

चण्डेश्वर[3] और हेमाद्रि[४] ने इसका उल्लेख किया है कि इस दिन गौरी का पूजन होता था और यह दिन शुक्ल पक्ष का था। किन्तु अलबीरूनी ने शुक्ल अथवा कृष्ण पक्ष का उल्लेख नहीं किया है।

१५ मार्गशीर्ष—अलबीरूनी के अनुसार 'उसी महीने का पूर्ण चन्द्रमा का दिन औरतों के दूसरे त्योहार का दिन है।'[५]

चतुर्दशी या पूर्णिमा के दिन लक्ष्मीधर[६] और चण्डेश्वर[७] ने हिमपूजा का निर्देश किया है, जो विशेषकर स्त्रियों का त्योहार था। इस सम्बन्ध में अलबीरूनी का कथन सही है।

पौष मास (दिसम्बर-जनवरी)

अलबीरूनी लिखता है कि "पौष महीने के अधिकांश दिनों में, वे काफी मात्रा में 'पूहवल' तैयार करते हैं, अर्थात् मिठाई, जिसे वे खाते हैं।"[८]

---

1. अभयतिलकगणि का द्वयाश्रय पर भाष्य–७.६९, भा० २, पृ० ३०७।
2. *AI.*, Vol. II. p. 182.
3. कृत्यरत्नाकर, पृ० ४५२-५३।
4. चतुर्वर्गचिन्तामणि, भा० २, पार्ट २, पृ० ४०२-३।
5. *AI.*, Vol. II, p. 183.
6. कृत्यकल्पतरु
7. कृत्यरत्नाकर, पृ० ४७८-७९।
8. *AI*

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

लक्ष्मीधर[1] और चण्डेश्वर[2] के अनुसार इन पर्वों का, पवित्रता के विचार से अधिक महत्त्व था।

८ पौष—पौष कृष्ण पक्ष में मुख्यतः दो पर्व के दिन रहे हैं, किन्तु अलबीरूनी ने कृष्ण पक्ष के एक ही पर्व का दिग्दर्शन कराया है। वह लिखता है कि 'कृष्णपक्ष' के आठवें दिन को 'साकार्तम' कहा जाता है। वे शलजम खाते हैं।[3] लक्ष्मीधर[4] और चण्डेश्वर[5] के अनुसार इस दिन लोग वनस्पति खाते हैं।

६ पौष—अलबीरूनी के अनुसार 'शुक्ल पक्ष' के छठें पौष को सूर्य के सम्मान में व्रत रहता है।[6]

अलबीरूनी के समसामयिक भारतीय ग्रन्थों में इसका कोई उल्लेख नहीं मिलता है. लेकिन अलबीरूनी के विवरण से यह स्पष्ट है कि उस समय इसका कुछ न कुछ अस्तित्व अवश्य रहा होगा।

८ पौष—अलबीरूनी लिखता है कि 'पौष शुक्ल पक्ष के अष्टमी के दिन जिसे 'अष्टक' कहा जाता है, वे ब्राह्मणों को जुटाते हैं, उन्हें बथुए-अर्थात् अरबी में सरमक-के पौधे से तैयार हुई थालियाँ उपहार में देते हैं और उन पर अपना ध्यान प्रदर्शित करते हैं।'[7]

भविष्यपुराण को उद्धृत करते हुए चण्डेश्वर[8] कहता है कि यह दिन महादेव के लिए पवित्र था। इस अवसर पर विशेष रूप से ब्राह्मण भोजन करते थे। यह शैव त्योहार था।

माघ मास (जनवरी-फरवरी)

३ माघ—अलबीरूनी लिखता है कि 'तीसरा माघ', औरतों का त्योहार है और गौरी को पवित्र है, 'महात्रीज' (माह–तृतीया) कहलाता है। वे अपने में से अत्यधिक प्रमुख घरों में गौरी को प्रतिमा के सामने जुटती हैं, इसके पहले वे अनेक बहुमूल्य वस्त्र, मनलुभावन गन्ध और उत्तम भोजन रखती हैं। प्रत्येक मिलन स्थान में वे १०८ पानी से भरा पात्र रखती हैं और पानी के ठण्ढे हो जाने के बाद वे उस रात की चार पहर को चार बार

1. कृत्यकल्पतरु, नियत० पृ० ४३४। 2. कृत्यरत्नाकर, पृ० ३७८-७९।
3. *AI.*, Vol. II, p. 183.
4. कृत्यकल्पतरु, नियत० पृ० ४३४।
5. कृत्यरत्नाकर, पृ० ४७८-७९। 6. *AI.*, Vol. II, p. 177.
7. *Ibid.*, p. 183. 8. कृत्यरत्नाकर, पृ० ४८०-८२।

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

स्नान करती हैं, दूसरे दिन वे दान देती हैं, भोजन कराती हैं और अतिथि-सत्कार करती हैं। औरतों का ठण्ढे पानी से नहाना इस महीने के लिए सामान्य है।'[1]

इस त्यौहार के बारे में एक दूसरे स्थान पर वह और कहता है, "माघ का तीसरा दिन औरतों के लिए उपवास का है, मर्दों के लिए नहीं। यह 'गौर-त-र' (गौरी-तृतीया) कहा जाता है और सारे दिन-रात रहता है। दूसरे दिन सुबह वे अपने पति के निकटतम सम्बन्धियों को उपहार देती हैं।'[2]

चण्डेश्वर[3] के विवरण से अलबीरूनी का कथन अनुमोदित होता है। इस त्यौहार को चण्डेश्वर ने 'रसकल्याणीव्रतम' नाम से अभिहित किया है; लेकिन अलबीरूनी की तरह वह यह नहीं कहता कि १०८ पात्रों में रखे गये ठण्ढे पानी से उस रात की चार पहर में चार बार औरतें स्नान करती हैं। लक्ष्मीधर[4] इस त्यौहार का उल्लेख औरतों के विशेष सन्दर्भ में अवश्य करता है, लेकिन वह त्यौहार का दिन शुक्लपक्ष के माघ को चौथी रात्रि निर्देशित करता है। चण्डेश्वर[5] ने भी यही तिथि उल्लिखित की है। उसके अनुसार इस महीने के चौथे और पाँचवें दिन क्रमशः 'वर चतुर्थी और 'श्र.पञ्चमी' के नाम से प्रसिद्ध थे, जो 'विनायक' के लिए पवित्र थे।[6] जीमूतवाहन[7] ने इस त्यौहार पर गणेश की पूजा का विधान किया है और पौष के केवल चौथे दिन सम्पन्न करने का निर्देश किया है। वह आगे कहता है कि यह व्रत का दिन था और औरतें गुरु की पूजा करती थीं। भोज[8] के अनुसार ये दिन 'श्री' के लिए भी विख्यात थे।

२३ माघ—अलबीरूनी कहता है कि '२३वीं (तिथि) को, जिसे 'मांसर्तक' कहा जाता है, और 'महातन' भी, वे अतिथियों को आदरित करते हैं और उन्हें मांस तथा बड़ी काली मटर खिलाते हैं।[9]

---

1. *AI.*, Vol. II, p. 183, *Gardizi* MSS., p. 219 B.
2. *Ibid.*, p. 177.
3. कृत्यरत्नाकर, पृ० ४९८-५००।
4. कृत्यकल्पतरु, नियत०, पृ० ४३७-३८।
5. कृत्यरत्नाकर, पृ० ५०३
6. वही, पृ० ५०४।
7. कालविवेक, पृ० ४११। ABORI, Vol. 36, p. 331.
8. राजमार्तण्ड।
9. *AI.*, Vol. II, p. 183.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

इस अंश को फारसी में अनूदित करते वक्त 'गरदीजो'[1] ने २३वें दिन को २७वां कर दिया है और 'मांसर्तक' को 'मंसडतक' तथा 'माहातन' को 'हमातान।'

इस त्यौहार का भारतोय ग्रन्थों में कोई उल्लेख नहीं मिलता।

२९ माघ—अलबीरूनी के अनुसार 'इस मास के अन्तिम दिन अर्थात् २९वीं को, जब केवल ३ दिन-मिनट अर्थात् डेढ़ घण्टे बचे होते हैं, सभी हिन्दू पानी में घुसते हैं और उसमें सात डुबकियाँ लगाते हैं।'[2]

अलबीरूनी द्वारा उल्लिखित इस त्यौहार का भी भारतोय ग्रन्थों द्वारा कोई पुष्टि नहीं होती।

१५ माघ—अलबीरूनी लिखता है कि 'इस महीने का पूर्ण चन्द्रमा का दिन 'चामाह' कहा जाता है। वे ऊँचे स्थानोंपर दीप जलाते हैं।[3]

मध्ययुगीन भारतीय लेखकों ने इस महीने की पूर्णिमा के किसी पर्व का वर्णन नहीं किया है। अलबीरूनी के भारतीय त्यौहारों को फारसी में अनुवाद करनेवाले लेखक गरदीजी ने भी इस अंश को छोड़ दिया है। लक्ष्मीधर[4] और चण्डेश्वर[5] ने इस दिन पितरों को तिल देने के लिए निर्देशित किया है।

फाल्गुन मास (फरवरी-मार्च)

८ फाल्गुन—अलबीरूनी कहता है कि "८ फाल्गुन को 'पूरार्टाकु' कहा जाता है, वे ब्राह्मणों के लिए आटे और मक्खन (घी) के अनेकानेक भोजन बनाते हैं।"[6]

अलबीरूनी ने अपने इस कथन में यह निर्देश नहीं दिया है कि यह त्यौहार कृष्णपक्ष के आठवें दिन अथवा शुक्लपक्ष के आठवें दिन मनाया जाता था। लक्ष्मीधर[7] और चण्डेश्वर[8] ने फाल्गुन के कृष्णपक्ष के दिन सीता के जन्म दिन का उत्सव नियोजित करनेका विधान किया है। इस अवसर पर ब्राह्मण, मित्र और सम्बन्धियों को भोजन कराया जाता था।

---

1. *Gardizi*, MSS. p. 220 A.
2. *AI*., Vol. II, p. 183.
3. *AI*., Vol. II, p. 183.
4. कृत्यकल्पतरु, नियत०, पृ० ४३८-३९।
5. कृत्यरत्नाकर, पृ० ५१२-१३।
6. *AI*., Vol. II, p. 183.
7. कृत्यकल्पतरु, नियत०, पृ० ४३९।
8. कृत्यरत्नाकर, पृ० ५१८।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

१६ फाल्गुन—अलबीरूनी के अनुसार 'दूसरे दिन अर्थात् १६ को 'शिव-रात्रि' कहा जाता है, वे रात भर महादेव की पूजा करते हैं, जागते रहते हैं, सोने के लिए लेटते नहीं और उस पर धूप और फूल चढ़ाते हैं।"[१]

अलबीरूनी ने शिवरात्रि के लिए फाल्गुन का जो '१६वाँ' दिन बताया है, वह गलत है। फारसी में इसी का अनुवाद गरदीजी ने भी किया है।[२] वस्तुत: इस त्योहार का दिन फाल्गुन के कृष्णपक्ष का १४वाँ होना चाहिए।

लक्ष्मीधर[3] और चण्डेश्वर[४] ने फाल्गुन कृष्ण के १४वें दिन ही शङ्कर की पूजा करने की व्यवस्था दी है। लोग सारी रात जागते थे, नृत्य तथा गायन में निमग्न रहते थे तथा शिव सम्बन्धी कथाओं को सुनते थे।

उत्तरी और मध्यभारत में शिवरात्रि विख्यात और जनस्वीकृत पर्व था। कश्मीर में यह त्यौहार राजा और प्रजा दोनों में समान रूप से प्रचलित था। वहाँ के शासक इस पर्व के दिन दान दिया करते थे।[५] राजपूताना और मध्यप्रदेश के कुछ अभिलेखों से विदित होता है कि शिवरात्रि पर्व मनाया जाता था, किन्तु इन्हें माघ में आयोजित होने का निर्देश किया गया है।[६] आज के पत्राओं के अनुसार माघ कृष्ण त्रयोदशी के दिन शिवरात्रि का व्रत किया जाता है। यह व्रत फाल्गुन कृष्ण महाशिवरात्रि उत्सव से ठीक एक महीने पहले किया जाता है। इन अभिलेखों में सम्भवत: इसी व्रत का उल्लेख है।

२३ फाल्गुन—अलबारूनी लिखता है कि 'तेईसवें दिन, जो 'पूयत्तान' कहा जाता है, वे मक्खन (घी) और चीनी के साथ चावल खाते हैं।"[७]

यह शुक्ल पक्ष का आठवाँ दिन था। मध्ययुगीन ग्रन्थों में इसका उल्लेख नहीं मिलता।

१५ फाल्गुन—अलबीरूनी लिखता है कि "फाल्गुन के पूर्ण चन्द्र (पूर्णिमा) का दिन 'औदाद' या 'धोल' (अर्थात् दोल) औरतों के त्यौहार का है, जब वे उन स्थानों में आग जलाते हैं जो उन स्थानों से नीचे हैं जहाँ वे 'चामाह' पर्व में जलाते हैं और वे आग को गाँव के बाहर फेंक देते हैं।"[८]

---

1. *AI.*, Vol. II, p. 184.
2. *Gardizi* MSS., p. 220 A.
3. कृत्यकल्पतरु, नियत० पृ० ४४०।
4. कृत्यरत्नाकर, पृ० ५२०-२१।
5. राजतरङ्गिणी १. ११६, ८.७० और १११।
6. *EI.*, XI, 31-32 (Inscription 1115 A. D.); *Ibid*, 45 (Inscription 1153 A. D.); *Ibid.*, XXI, p. 150 (Inscription 972 A. D.).
7. *AI.*, Vol. II, p. 183.
8. *Ibid.*, p. 183.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

यह हिन्दुओं का प्रमुख त्योहार होली है, जिसे स्त्री-पुरुष सभी सोत्साह मनाते हैं। परम्परा से इस त्यौहार में 'होलिका' जलने और रंग-गुलाल खेलने की व्यवस्था रही है। अलबीरूनी का 'घोल' या 'दोल' 'होली'-'होलिका' या 'दोलयात्रा' से मिलता है। गरदीजी[1] ने इसे 'होली' नाम से फारसी में अनूदित किया है तथा इस त्योहार को केवल औरतों के लिए व्यवहृत बताया है।[2] फाल्गुन की पूर्णिमा को होनेवाले 'दोल' नामक दूसरे त्यौहार का उल्लेख हेमचन्द्र ने भी किया है।[3] भाष्यकार अभयतिलकगणि[4] के अनुसार इस अवसर पर बच्चे एक कमरे में रखे जाते थे जहाँ उन्हें अच्छा भोजन (गुड़ और पक्कान्न) दिया जाता था तथा इस दिन सभी जगह से लोग आकर सोमनाथ की पूजा करते थे। भोज[5] के अनुसार इस त्योहार पर रंग और गुलाल फेंके जाते थे।

हिन्दू संस्कार

हिन्दू समाज में संस्कारों का प्रचलन उत्तरवैदिक काल से प्रारम्भ हुआ। मध्यकाल में भी उनकी मान्यता बनी रही। दैहिक और भौतिक क्रियाओं को निष्पन्न करने के निमित्त मनुष्य के सम्पूर्ण जीवन को विभिन्न कालावधि में विभाजित कर अनेक संस्कारों की नियोजना हिन्दू समाज में की गई थी।[6] हिन्दू समाज के वैयक्तिक जीवनको योग्य[7], गुण[8], परिष्कृत और व्यवस्थित रूप प्रदान करने में संस्कारों का महत्त्वपूर्ण योग रहा है। प्रारम्भ से सामान्यतः ये संस्कार सोलह[9] थे, गर्भाधान, पुंसवन, सीमंत, जातकर्म, नामकरण, अन्नप्राशन, चौल, मौंजी (उपनयन), व्रत (चार), गोदान, समावर्तन, विवाह और अन्त्येष्टि।[10]

भारतीय संस्कारों के सम्बन्ध में अलबीरूनी ने भी विवरण दिया है। वह पहला विदेशी यात्री है जिसने हिन्दू संस्कारों पर लिखा है। उसके पूर्ववर्ती और

---

1. Sachau, *op.cit.*, Vol. II, p. 377.
2. *Gardizi*, MSS. p. 220 A.
3. द्व्याश्रय ५. १४१, Cf. *Chaulukyas of Gujarat*, p. 306.
4. अभयतिलकगणि-द्व्याश्रय ५.१४१।
5. राजमार्तण्ड ABORI, Vol. 36. p. 332, verses 227-8.
6. देखिए, पाण्डेय, राजबली, हिन्दू संस्कार।
7. योग्यताञ्चादधानाः क्रियाः संस्कारा इत्युच्यते।–कुमारिल, तन्त्रवार्तिक. पृ० १०७८।
8. संस्कारो हि नाम गुणाधानेन वारयाद्दोषापनयनेन व। शङ्करभाष्य वेदान्तसूत्र, ११४।
9. गर्भाधान···विवाहश्चेत्यावश्यकाः षोडश प्राधानाः संस्काराः। –स्मृत्यर्थसार, पृ० ३।
10. संस्कारप्रकाश, पृ० १३५।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

परवर्ती किसी भी विदेशी यात्री ने इस विषय पर नहीं लिखा। यद्यपि उसका विवरण भारतीय सम्वाददाताओं और धर्मग्रन्थों के आधार पर ही हैं, किन्तु इस सम्बन्ध में उसका प्रवेश कहाँ तक सही और युक्तियुक्त है इसका विवेचन किया जा रहा है। यह सही है कि कुछ संस्कार उसे ज्ञात नहीं थे और जो उसे ज्ञात थे उनमें कुछ का उपयुक्त भारतीय नाम वह नहीं जानता था। इसीलिए संस्कारों में जहाँ वह 'गर्भाधान', 'सीमन्तोन्नयन', 'जातकर्म' और 'नामकरण' का भारतीय नाम दे सकने में समर्थ है, वहाँ वह 'चूड़ाकरण' और 'कर्णवेध' जैसे नामों से अनभिज्ञ होने के कारण असमर्थ भी। 'पुंसवन', 'गर्भरक्षा', 'विष्णुबलि', 'सौष्यन्ती कर्म' आदि संस्कार उसे पता नहीं थे। इसी तरह प्रसूतावस्था के भारतीय शौच-अशौच लक्षणों को जानते हुए भी 'जननाशौच' जैसे भारतीय नाम से वह अपरिचित था।

गर्भाधान

जिस कर्म के द्वारा पुरुष स्त्री में अपना बीज स्थापित करता है उसे 'गर्भाधान' संस्कार कहते हैं।[1] भारतीय समाज में इसका प्रचलन वैदिक काल से प्रारम्भ हुआ।[2] तत्पश्चात् प्राचीन और मध्य काल में भी इसका प्रचलन रहा। अलबीरूनी लिखता है कि अगर व्यक्ति सन्तान के निमित्त पत्नी से सम्भोग करता है तो यह उसका कर्त्तव्य है कि वह 'गर्भाधान' नामक यज्ञ करे।[3] कुछ भारतीय लेखकों ने इस कर्म को 'निषेक'[4] (ऋतुसंगम) नाम से और कुछ ने 'चतुर्थीकर्म' या 'चतुर्थीहोम'[5] नाम से अभिहित किया है।

किन्तु मध्यकाल में इस संस्कार को सम्पन्न करने का चलन मन्द पड़ने लगा था। अलबीरूनी के उल्लेख से विदित होता है कि इस कर्म को लज्जावश छोड़ दिया जाता था।[6] मेधातिथि की समीक्षा है कि गर्भाधान यज्ञ प्रत्येक बार नहीं किया जाता था। विवाहोपरान्त पहले पहल जब सम्भोग किया जाता था

---

1. पूर्वमीमांसा १·४, वी० मि० सं० में उद्धृत, बौ० ग० सू० १४·६·१, काठक गृ० सू० ३०·८, याज्ञ० १·११।
2. अथर्ववेद ५·२५·३,५, बृ० उप० ६·४·२१। 3. *AI.*, Vol. II, p. 156.
4. निषेकादिश्मशानान्तो मन्त्रैर्यस्योदितो विधिः।
तस्य शास्त्रेऽधिकारोऽस्मिन् ज्ञेयो नान्यस्य कस्यचित्॥ मनु० २·१६, याज्ञ० १·१०-११, वि० ध० सू० २·३ और २७·१।
5. शाङ्खायन गृ० सू० १·१८-१९, पार० गृ० सू० १·११, आप० गृ० सू० ८·१०-११।
6. *AI.*, Vol. II, p. 156.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

तब केवल एक बार गर्भाधान संस्कार को सम्पन्न किया जाता था।[१] बाद के मध्ययुगीन लेखकों[२] ने भी हारीत को उद्धृत करते हुए यह व्यवस्था दी है कि गर्भाधान संस्कार केवल एक ही बार करना चाहिए। डॉ० आर० जी० भण्डारकर ने अनेक भाष्यकारों के साक्ष्य पर श्री तर्कचूडामणि के इस कथन का विरोध किया है कि 'गर्भाधान' कर्म सम्पन्न करना हिन्दू समाज के प्रत्येक व्यक्ति के लिए आवश्यक था।[3]

पुंसवन

गर्भ के तीसरे महीने 'पुंसवन संस्कार' का आरोपण किया जाता था।[४] यह संस्कार पुरुष-सन्तानोत्पत्ति के निमित्त निष्पन्न होता था।[५] किन्तु अलबीरूनी ने इस संस्कार के विषय में कुछ भी नहीं लिखा है। ऐसा लगता है, उसे इस संस्कार के विषय में कुछ ज्ञात नहीं था।

सीमन्तोन्नयन

सीमन्तोन्नयन गर्भ का तीसरा संस्कार था जो गर्भ के चौथे महीने में सम्पन्न किया जाता था। इसकी सम्पन्नता में गर्भिणी स्त्री के केशों (सीमन्त) को ऊपर (उन्नयन) उठाया जाता था।[६] इस संस्कार का गृह्यसूत्रों और स्मृतियों में विस्तार से विवेचन किया गया है।[७] अलबीरूनी लिखता है कि सीमन्तोन्नवन गर्भ के चौथे महीने में सम्पन्न होता था।[८] सीमन्तोन्नयन की कार्यपद्धत्ति आदि के विषय में अलबीरूनी ने कुछ नहीं लिखा है। ऐसा समझा जाता था कि स्त्री के गर्भ को खाने के लिए कुछ राक्षसियाँ आती हैं, जी स्त्री को पीड़ा और कष्ट पहुँचाती हैं। इसके निवारणार्थ पति को 'श्री' का आवाहन

---

1. गर्भाधानं च विवाहादनन्तरं प्रथमोपगमे विष्णुर्योनिं कल्पयत्विति मंत्रवत्केषां चिद्विहितम्। परेषामागर्भग्रहणात्प्रत्यृतु। मेधातिथि—मनु० २.१६।
2. मिताक्षरा—याज्ञ० १.११, स्मृतिचन्द्रिका १, पृ० १७, अपरार्क पृ० २५, रघुनन्दनकृत संस्कारतत्त्व, पृ० ९०९।
3. *CWB.*, Vol. II, pp. 559–65.
4. आ० गृ० सू० १.१३.२–७।
5. पुंसवनमिति कर्मनामधेयं येन कर्मणा निमित्तेन गर्भिणी पुंमासमेव सूते सत्पुंसवनम्। सुदर्शन की टीका—आ० गृ० सू० १४.९, संस्कारप्रकाश, पृ० १६६–७।
6. वी० मि० सं०, १, पृ० १७२।
7. आश्व० गृ० सू०, १.१४.१–९, शाङ्खा० गृ० सू० १.२२, आ० गृ० सू० १४.१–८, बौ० गृ० सू० १.१०; याज्ञ० १.११।
8. *AI*, Vol. II, p. 156.

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

करना चाहिए जिससे राक्षसियाँ भाग जाएँ।[1] इस संस्कार का यही मुख्य उद्देश्य था। मध्ययुगीन ग्रन्थों में भी सीमन्तोन्नयन के उल्लेख मिलते हैं।[2]

जातकर्म

जातकर्म संस्कार का उल्लेख ब्राह्मणग्रन्थों,[3] गृह्यसूत्रों[4] आदि में विशदता से हुआ है। मनु[5] के अनुसार नाभिछेदन (नार काटने) के पहले जातकर्म किया जाता है। सोना, घी तथा मधु का गृह्योक्त मंत्रों से नवोत्पन्न बच्चे को प्राशन कराया जाता है। आश्वलायन[6] का कथन है कि जब पुत्र जन्म लेता है तब सबसे पहले पिता उसे स्पर्श करे और सन्तान को शहद और स्वर्णयुक्त घी खिलाए।

अलबीरूनी इन सारी क्रियाओं से अनभिज्ञ था। वह केवल यही जानता था कि पत्नी द्वारा बच्चा प्रसव करने के बाद, और माँ द्वारा उसका पोषण प्रारम्भ करने के बीच तीसरा यज्ञ किया जाता है। यह 'जातकर्मन्' कहलाता है।[7] मध्यकालीन लेखकों ने भी जातकर्म संस्कार पर प्रकाश डाला है।[8] स्मृति-चन्द्रिका[9] के अनुसार जातकर्म संस्कार को सम्पन्न करने के पहले अवश्य स्नान करना चाहिए।

'जातकर्म' सम्पन्न करने का ऐतिहासिक ताम्रपत्रीय प्रमाण मिलता है। पुरोहित प्रहराजशर्मन को गहड़वाल नरेश जयचन्द्र ने अपने हरिचन्द्र के 'जात-कर्म' के उपलक्ष में बदेसर ग्राम दान में दिया था।[10]

---

1. आश्व० गृ० सू० १. १३.१४, गौतम ध० सू० ८.१४।
2. वी० मि० सं०, १, पृ० १७२, स्मृतिचन्द्रिका १, पृ० १७।
3. तै० सं० २,२५ ३–४, जैमिनी० ४.३.३८, श० ब्रा० (···), बृह० उप० १.५.२, ६.४.२४–२८।
4. आ० गृ० सू० १५.१.७, आश्व० गृ० सू० १५,१४४, काठक गृ० सू० ३४–३५, खादिर गृ० सू० २.२. ३२–३४, गोभिल गृ० सू० २.७,१७–२३, पारस्कर गृ० सू० १.१६, भारद्वाज गृ० सू० १.२३–२६।
5. प्राङ् नाभिवर्धनात् पुंसो जातकर्म विधीयते।
   मन्त्रवत प्राशनं चास्य हिरण्यमधुसर्पिषाम् ॥ मनु० २,२९।
6. आश्व० गृ० सू० १. १५, १–४।
7. *AI.*, Vol. II, p. 156.
8. संस्काररत्नमाला, पृ० ८९६–७, संस्कारप्रकाश, पृ० २०१–३।
9. स्मृतिचन्द्रिका १, पृ० १९–२०।
10. *EI*. IV, pp. 126-7.

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

जननाशौच

सन्तान जन्म के कुछ दिन बाद तक स्त्री सूतक में रहती है। अलबीरूनी लिखता है कि जब तक स्त्री जननाशौच में रहती है, वह किसी बर्तन को स्पर्श नहीं करती और उसके घर में कुछ खाया नहीं जाता, न वहाँ ब्राह्मण आग (होम) जलाता है। ये दिन ब्राह्मण के लिए आठ, क्षत्रिय के लिए बारह, वैश्य के लिए पन्द्रह और शूद्र के लिए तीस हैं। किसी भी जाति में न गिनी जाने वाली निम्न जातियों के लोगों के लिए ऐसी कोई अवधि निश्चित नहीं की गई।[1]

लक्ष्मीधर[2] ने ब्रह्मपुराण को उद्धृत किया है, जिसके अनुसार सूतक में स्पर्श न करने का निर्देश तथा ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य प्रसूता स्त्री को दस दिन बाद और शूद्रा स्त्री को तेरह दिन बाद शुद्ध होने का सङ्केत है। मनु ने दस दिन का सूतक बताया है, जिसमें पिता को भी सम्मिलित किया है। माता को निर्धारित दिन तक अशौच में रहना पड़ता है जब कि पिता स्नान के बाद 'स्पर्श्य' हो जाता है। लेकिन पिता की यह शुद्धता पूर्णतः नहीं रहती। वह दस दिन तक धार्मिक कार्य नहीं कर सकता। साथ ही अगर वह सन्तान की माँ से सम्पर्क करता है तो अशुद्ध हो जाता है।[3]

नामकरण

ब्राह्मण ग्रन्थों[4] गृह्यसूत्रों[5] स्मृतियों[6] आदि में नामकरण संस्कार पर सविस्तार व्याख्या की गई है। भाष्यकार विश्वरूप[7] और कुल्लूक[8] के अनुसार ११वें दिन यह संस्कार सम्पन्न करना चाहिए। मेधातिथि[9] के विचारानुरूप यह संस्कार १०वें दिन होना चाहिए। इस सम्बन्ध में प्राचीन और मध्ययुगीन लेखकों के विभिन्न मत हैं। किन्तु अलबीरूनी किसी निश्चित दिन का उल्लेख नहीं करता। वह कहता है कि प्रसूतावस्था के बीत जाने के पश्चात्

---

1. *AI.*, Vol. II. pp. 156-7
2. कृत्यकल्पतरु, शुद्धिकाण्ड, पर्व २ पर उद्धृत।
3. मनु० ५.६१-६३, पराशर० ३.२७.२५।
4. श० ब्रा० ६.१,३,९, तै० सं० ६.१.१३।
5. आ० गृ० सू० १५.८-११, आश्व० गृ० सू० १,१५.४-१०, भारद्वाज० गृ० सू० १.२६।
6. नामधेयं दशम्यां तु द्वादश्यां वास्य कारयेत्।
पुण्ये तिथौ मुहुर्ते वानक्षत्रे वा गुणान्विते॥ मनु० २.३०, याज्ञ० १.१२।
7. विश्वरूप—मनु० १.३०।
8. कुल्लूक—मनु० २.३०।
9. मेधातिथि—मनु० २.३०।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सन्तान नाम ग्रहण करता है। नामप्रदान के यज्ञ का यन अवसर 'नामकर्मन्' कहलाता है।[1]

नामकरण का ऐतिहासिक ताम्रलेखीय उदाहरण मिलता है। कन्नौज के महाराज जयचन्द्र ने अपने पुत्र हरिचन्द्र के 'नामकरण' के संस्कारोत्सव पर (११७५ ई०) महापण्डित ऋषीकेश शर्मन् को दो ग्राम दान में दिए थे।[2]

वृहस्पति की यह व्यवस्था है कि शिशु का नामकरण जन्म से दसवें, बारहवें, तेरहवें, सोलहवें, उन्नीसवें अथवा बत्तीसवें दिन सम्पन्न करना चाहिए।[3] विभिन्न वर्णों की स्त्रियों की प्रसूतावस्था की अवधि भिन्न थी। नामकरण साधारणतः सूतक के बाद तथा कभी-कभी अपनी सुविधा के अनुसार आयोजित होता था। कम से कम १० दिन और अधिक से अधिक एक मास बाद नामकरण संस्कार सम्पन्न किया जाता था।[4]

बाण की 'कादम्बरी' से विदित होता है कि तारापीड़ ने अपने पुत्र चन्द्रापीड़ का नामकरण जन्म से दस दिन बाद किया था।[5] कन्नौज के राजा जयचन्द्र ने अपने पुत्र का 'नामकरण', जातकर्म संस्कार के तीन सप्ताह बाद किया था।[6]

चौल या चूड़ाकरण (मुण्डन)

सन्तान के बालों को पहले पहल जब काटने का आयोजन किया जाता था, उसे 'चूड़ाकरण' संस्कार कहा जाता था।[7] अधिकांश धर्मविचारकों[8] के अनुसार तीन साल बाद यह संस्कार सम्पन्न किया जाता था। लेकिन कुछ लेखकों ने पहले साल या तीसरे साल इसे संयोजित करने का विकल्प दिया,[9] और कुछ ने उदारतापूर्वक परिवार की रीतिरिवाज को दृष्टि में रखकर यह

---

1. *AI.* Vol. II, p. 156.
2. *IA.*, XVIII, pp. 129-34.
3. वी० मि० सं०, १, पृ० २३४ पर उद्धृत।
4. अपरार्क, पृ० ३६, गोभिल गृ० सू०–परिशिष्ट।
5. प्राप्ते दशमेहनि पुण्ये मुहुर्त्ते—चद्रापीड इति नाम चकार। कादम्बरी, पूर्वभाग, पैरा ६८।
6. *IA.* Vol, XVIII, p. 129. *EI.*, IV, p, 120; X. p. 95.
7. संस्कारप्रकाश, पृ० २९५, महाभाष्य, भा० २, पृ० २६२।
8. आश्व० गृ० सू० १.१७.१–१८, आ० गृ० सू० १६.३–१०, गोभिल गृ० सू० २.९. १–२९, कौ० गृ० सू० २.४।
9. चूड़ाकर्म द्विजातीनां सर्वेषामेव धर्मतः।
प्रथमेऽब्दे तृतीये वा कर्त्तव्यं श्रुतिचोदनात्॥ मनु० २.३५।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

व्यवस्था दी कि तीसरे साल या परिवार में जब सम्पन्न करने की चलन हो तभी इसे आयोजित करना चाहिए।[1]

अलबीरूनी लिखता है कि सन्तान के बालों को पहली बार काटने का आयोजन तीन साल बाद किया जाता है।[2] मध्यकालीन ग्रन्थों में भी चूड़ाकरण संस्कार पर विस्तार से विचार किया गया है।[3] हिन्दू परिवारों में आज भी मुण्डन संस्कार का आयोजन धूमधाम से किया जाता है।

कर्णवेध

भारतीय हिन्दू संस्कार में कर्णवेध की व्यवस्था वैदिककालीन है।[4] परिवार में इसका आयोजन सन्तान के सातवें महीने में होता था। किन्तु विद्वानों का इसमें मतवैभिन्न्य है। गर्ग के अनुसार इस संस्कार के लिए छठाँ, सातवाँ, आठवाँ या बारहवाँ मास उपयुक्त है।[5] सुश्रुत के विचार से छठाँ या सातवाँ महीना श्रेयस्कर है।[6]

अलबीरूनी लिखता है कि कर्णवेध[7] सातवें और आठवें महीने होता है। अलबीरूनी के कथन की पुष्टि बौधायन[8] के इस वाक्य से होती है कि कर्णवेध सातवें या आठवें महीने करना चाहिए। संस्कारप्रकाश[9] में बृहस्पति का उद्धरण है कि कर्णछेद जन्म से १०वें, १२वें या १६वें दिन करना चाहिए या जन्म के ७वें या १०वें महीने में। किन्तु आज के हिन्दू परिवार के व्यवहार में चूड़ाकरण के साथ ही कर्णवेध भी हो जाता है।

उपनयन

हिन्दू समाज में उपनयन संस्कार आश्रम शिक्षा के पहले सम्पन्न किया जाता रहा है। यह संस्कार इस बात का द्योतक था कि अनियमित और अनुत्तरदायी जीवन समाप्त होकर, जब नियमित, गम्भीर और अनुशासित जीवन प्रारम्भ हुआ।[10] अलबीरूनी लिखता है कि जब ब्राह्मण उसे शिक्षा देने

---

1. आश्व० गृ० सू० १.१७.१–१८। 2. *AI.*, Vol, II, p. 157.
3. स्मृतिचन्द्रिका ९, पृ० २३, अपरार्क, पृ० २९, संस्काररत्नमाला, पृ० ९०१।
4. अथर्ववेद ६।
5. पाण्डेय, राजबली, हिन्दू संस्कार, पृ० १३०।
6. सुश्रुत, सूत्रस्थान, पृ० १६.१।
7. *AI.*, Vol. II, p. 157. 8. बौधायन गृ० सू० १.१२।
9. संस्कारप्रकाश, पृ० २५८, संस्काररत्नमाला, पृ० ८७३, संस्कार कौस्तुभ, पृ० ३७०।
10. Altekar, *Education in Anc. India*, p. 19.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

और उसके कर्त्तव्यों को सिखलाने, उन पर स्थिर रहने तथा जीवनपर्यन्त उन पर चलने के लिए निर्देशित करने आते हैं, तब वे उसकी कमर में सूत्र (कर्धनी) बांधते हैं और उसे यज्ञोपवीत का एक जोड़ा, अर्थात् नौ इकहरे तन्तुओं (सूत्रों) से इकट्ठी बटो गई मजबूत डोरी तथा तीसरा यज्ञोपवीत जो कपास का बना होता है, देते हैं। यह बाएँ कन्धे से दाएँ कूल्हे (हाथ के नीचे) तक जाता है।[1] आपस्तम्ब धर्मसूत्र के अनुसार उपनयन संस्कार में विद्यारम्भ की नियोजना होती है।[2] सन्तान को आचार्य के निकट ले जाने (उपनयन) के निमित्त उपस्थित किया जाता है।[3] ब्राह्मण-परिवार में यह संस्कार बालक के आठवें वर्ष में किया जाता रहा।[4] पारस्कर[5] के अनुसार उपनयन संस्कार ब्राह्मण के लिए आठवें वर्ष, क्षत्रियों के लिए ग्यारहवें वर्ष और वैश्यों के लिए बारहवें वर्ष करने का विधान था। धर्मशास्त्रों में मूञ्ज की मेखला (कटिसूत्र) बाँधने के लिए कहा गया है।[6] अलबीरूनी के यज्ञोपवीत सम्बन्धी कथन की पुष्टि प्राचीन गृह्यसूत्रों[7] से तो होती ही है मध्यकालीन कथनों से भी होती है। यज्ञोपवीत की रचना के विषय में मेधातिथि[8] और स्मृतिचन्द्रिका[9] का भी यही कथन है कि नौ तन्तुओं से निर्मित तीन डोरों वाले यज्ञोपवीत ब्राह्मणों को धारण करने चाहिए। स्मृतिचन्द्रिका[10] और अपरार्क[11] ने उपनयन के विधान और विभिन्न विधियों पर प्रकाश डाला है।

क्षत्रियों को सन के बने सूत का यज्ञोपवीत पहनना चाहिए।[12] अलबीरूनी लिखता है कि वह तिहरे यज्ञोपवीत की एक डोरी से और कपास की इकहरी

1. *AI.*, Vol. II, p. 130.
2. आ० ध० सू० १.१,१.१९.
3. संस्कारप्रकाश, पृ० ३३४।
4. गर्भाष्टमे ब्राह्मण उपनेय इति सवृदुपनीय कृतः शास्त्रार्थः। महाभाष्य, भा० ३, पृ० ५७।
5. अष्टमवर्षं ब्राह्मणमुपनयेद्गर्भाष्टमे वैकादशवर्षं राजन्यं द्वादशवर्षं वैश्यं यथा मंगलं वा सर्वेषाम्। पारस्कर गृ० सू० २.२।
6. आश्व० गृ० सू० १.१९,११, बौ० गृ० सू० २.५.१३, मनु० २.४२, काठक गृ० सू० ४१.१२, भारद्वाज गृ० सू० १.२।
7. पा० गृ० सू० २.२, आश्व० गृ० सू० १.१९.१२, शाङ्खायन गृ० सू० २.१, १४.१७, बौ० गृ० सू० २.५, आ० गृ० सू० ११, गौ० गृ० सू० २.१०, मनु० २,३६, ४२, ४३, याज्ञ० १.११।
8. मेधातिथि–मनु० २.४४।
9. स्मृतिचन्द्रिका १, पृ० ३१।
10. वही, पृ० २७–३१।
11. अपरार्क, पृ० ३२।
12. मनु० २.४४।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

दूसरी डोरी से अपने को लपेटता है। यह कार्य तब सम्पन्न होता है जब उसकी आयु का बारहवाँ वर्ष समाप्त हो चुकता है।[१] भारतीय धर्मशास्त्रकारों के अनुसार क्षत्रियों का यज्ञोपवीत ११वें वर्ष और वैश्यों का १२वें वर्ष करना चाहिए।[२] किन्तु अलबीरूनी ने क्षत्रियों के लिए ही १२वें वर्ष में यज्ञोपवीत सम्पन्न करने के लिए लिखा है और वैश्यों के लिए उसने कोई वर्ष नहीं दिया है।[3] इस सम्बन्ध में अलबीरूनी का कथन भारतीय धर्मशास्त्रों से नहीं मिलता।

यज्ञोपवीत संयोजना के अवसर पर ब्राह्मण को हाथ में दण्ड और उंगली में पवित्री धारण करने का निर्देश किया गया है। अलबीरूनी लिखता है, 'फिर उसे दण्ड (छड़ी) दिया जाता है जिससे वह संग्राम कर पावे और दाएँ हाथ की उँगली में विशेष चिह्न की अँगूठी। यह चिह्नयुक्त अंगूठी पवित्र भी कही जाती है। दाएं हाथ की अंगूठी (पवित्र) पहननेवाली उंगली में अंगूठी (पवित्र) को पहनने का ध्येय यह है कि जो उस हाथ से दान प्राप्त करे उन सबके लिए मङ्गलमय हो। इस 'पवित्री' को पहनने पर धर्म निभाना उतना कठिन नहीं जितना यज्ञोपवीत पहन कर, क्योंकि यज्ञोपवीत को अपने से किसी भी स्थिति में अलग नहीं करना होता।'[४]

अलबीरूनी का कथन पूर्णत: ठीक है। आज भी उपनयन के अवसर पर ये सारे विधान निष्पन्न किए जाते हैं। दण्ड इस बात का परिचायक था कि ब्रह्मचारी संसारयात्रा के दुर्गम और कठिन पथ को सुरक्षापूर्वक समाप्त करे।[५] डॉ० अल्तेकर के अनुसार यह प्रहरी का प्रतीक था।[६] किन्तु दण्ड से अनेक प्रकार की रक्षा का प्रयोजन रखा गया।[७] यज्ञोपवीत को किसी भी हालत में अपने से अलग न करने का निर्देश सूत्रकारों ने किया है।[८] आज व्यवहार में भी ऐसा ही चलता है।

---

1. *AI.*, Vol. II, p. 136.
2. पार० गृ० सू० २.२, आश्व० गृ० सू० १.१९, शाङ्खा० गृ० सू० २.१, बौ० गृ० सू० २.५, आ० गृ० सू० ११, मनु० २.३६, याज्ञ० १.११।
3. *AI.*, Vol, II, p. 136.
4. *Ibid.*
5. भारद्वाज १.२२.११.
6. Altekar, *Education in Anc. India*, ch. I, pp. 25, 26.
7. व० गृ० सू० ६१, भारद्वाज २.६. २६, याज्ञ० १२.९, पाण्डेय, राजबली, हिन्दू संस्कार, पृ० १७३.
8. आप० ध० सू० १.५.१५।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अलबीरूनी आगे कहता है कि 'यदि वह खाते समय या किसी प्राकृतिक आवश्यकता को पूरा करते समय यज्ञोपवीत उतार देता है तो वह ऐसा पाप करता है जो प्रायश्चित्त के किसी कर्म-उपवास या दान-के बिना नहीं छूट सकता।[1] मिताक्षरा का कहना है कि अगर प्राकृतिक आवश्यकता के समय यज्ञोपवीत नहीं है तो प्रायश्चित्त करना आवश्यक है।[2] लघु हारीत को उद्धृत करते हुए अपरार्क[3] की व्यवस्था है कि ब्राह्मण यदि बिना यज्ञोपवीत के पहने भोजन करता है तो उसे प्रायश्चित्त करना पड़ता है।

बौद्ध धर्म

भारत में बौद्ध धर्म का प्रचार-प्रसार अत्यन्त प्राचीन है। इसकी दो प्रधान शाखाएँ हैं—हीनयान और महायान।[4] वैसे इसके अनस्तित्व के पहले हिन्दू धर्म की ही भारत का प्रधान धर्म था। इसके प्रवर्तक गौतम बुद्ध थे। इसका वैभव सम्राट् अशोक के जीवनकाल से सजने लगा था, जो कालान्तर में धर्म-सम्पन्नता की चरम परिणति पर पहुँचा। सम्राट् अशोक के काल में इस धर्म को अनेक सुविधाएँ मिलीं। स्वयम् अशोक ने देश-विदेश में इसका प्रचार कराया। फलतः यह धर्म विश्वविख्यात हो गया। अशोक के प्रयास से अन्य देशों के लोगों ने भी बौद्ध धर्म को आदरपूर्वक ग्रहण किया। अशोक ने लङ्का, पश्चिमी एशिया,[5] मिस्र और पूर्वी यूरोप में धर्मप्रचारक मण्डलों को भेजा।[6] गुप्त काल में हिन्दू धर्म पुनः शासनारूढ़ होकर भारत में छा गया। बौद्ध मठों, चैत्यों, विहारों के स्थान पर जगह-जगह विभिन्न देवी-देवताओं के मन्दिर स्थापित होने लगे। हर्ष के काल में हिन्दू धर्म की तुलना में बौद्ध धर्म ने अपनी अन्तिम रोशनी फैलायी।[7] एक बार फिर बौद्ध धर्म हिन्दू धर्म को दबाता सा लगा, किन्तु उसका उत्थान अशोक के काल की तरह न हो सका। परिणामस्वरूप हर्ष के बाद बौद्ध धर्म का और

---

1. *AI.*, Vol. II. p. 249.
2. मिताक्षरा, याज्ञ० ३.२४९।
3. अपरार्क ११७१, ११७३, बौ० ध० सू० २.२१।
4. Anand Coomarswamy, *Budha and the Gospel of Buddhism*, pp. 223, 228, Cf. Hopkins, *The Religions of India*, p. 586.
5. Ray Chouduri, *Studies in Indian Antiquities*, pp. 139-40.
6. Majumdar, R. C., *Outline of Ancient Indian History and Civilization*, p. 208.
7. Mookerjee, R. K., *Men and Thought in Ancient India*, p. 179. Cf. Harsh, Ch. V., *Rulers of India Series*.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पतन प्रारम्भ हो गया। कोई ऐसा शक्तिशाली शासक न हुआ जो इस धर्म को अपना कर देश में बौद्ध सङ्गठनों का निर्देशन करता।

अलबीरूनी के काल में तो हिन्दू धर्म ही भारत में व्याप्त था। बौद्ध-धर्म के अनुयायियों की संख्या बहुत कम थी। इसी कारण, इस काल में प्राचीन काल की तुलना में बौद्ध मठों का निर्माण भी नहीं के बराबर हुआ।

बौद्ध धर्म, सिद्धान्त और मत के विषय में अलबीरूनी ने जो कुछ भी लिखा है वह अबू-अल-अब्बास की पुस्तक से। इसके अतिरिक्त बौद्ध धर्म दर्शन की कोई पुस्तक उसे नहीं मिली थी। धर्मों के इतिहास पर अलेरान शहरी[1] ने अलबीरूनी के पूर्व एक बृहत् ग्रन्थ की रचना की थी। 'कालगणना' (क्रोनोलाजी आव एण्शेण्ट नेशन्स) पर लिखी गई अपनी पुस्तक में अलबीरूनी ने अलेरान शहरी के धर्मपुस्तक से उद्धरण दिये हैं।[2] अलबीरूनी ने बौद्ध धर्म के सम्बन्ध में केवल इसी अलेरान शहरी की पुस्तक देखी थी।

वह स्वयं लिखता है : "मैंने बौद्ध ग्रन्थ कभी नहीं पाया और न कभी-किसी बौद्ध को जानता था जिससे मैं उसके विषयगत सिद्धान्तों को जान पाता। मैं जो कुछ भी उनमें जानता हूँ वह केवल अलेरान शहरी के प्रमाण से।"[3]

गौतम बुद्ध और उनके अनुयायियों के सिद्धान्त की ओर सङ्केत करता हुआ अलबीरूनी लिखता है : "मैंने सुना है कि शुद्धोदन अपने अनुयायियों, शमनिय से बोलते हुए उन्हें आह्वाहित करता है। बुद्ध, धर्म, संघ, जैसे ये थे ज्ञान, धर्म और अज्ञान।"[4]

अलबीरूनी ने बौद्धों के लिए 'शमनिय' शब्द का प्रयोग किया है। उसके पहले के अरब लेखकों ने भी बौद्धों को 'शमनिय' नाम से अभिहित किया है। अलबीरूनी के पूर्ववर्ती अरबलेखकों ने बौद्ध धर्म और उसके विस्तार और प्रचार के विषय में सम्यक् सूचनाएँ दी हैं।

हम्जा अस्फहानी (३५० हि०–९६१ ई०) ने लिखा है : "दुनिया में पहले दो ही धर्म या सम्प्रदाय थे—एक समनियन और दूसरे केल्डियन (केल्डिया वाले)। समनियन पूरब के देशों में थे। उनमें से कुछ बचे हुए लोग अब भी

---

1. *AI.*, Vol. I, pp. 6–7.
2. Sachau, C. E., *Chronology of Ancient Nations* (Translation). London, 1879, pp. 208, 211.
3. *AI.*, Vol. I, p. 249. 4. *Ibid.*, p. 40.

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कहीं-कहीं भारत में और चीन में हैं। खुरासानवाले इनको बहुवचन रूप में 'शमनान' और एकवचन रूप में 'शमन' कहते हैं।"[1]

इस कथन से कहीं अधिक स्पष्ट इब्न नदीम (३७५ हिजरी–९८५-८६ ई०) का कथन है। वह लिखता है : "मैंने एक खुराशानी के हाथ का लिखा हुआ लेख पढ़ा था, जिसने खुरासान के पुराने समय की और फिर अपने समय की बहुत-सी बातें लिखी थीं। वह एक नियमावली के रूप में था। उसमें लिखा था कि समनिय के पैगम्बर (मत के प्रवर्तक) का नाम 'बोज आसफ' था और पुराने समय में इस्लाम से पहले ट्रांस काकेशिया के लोग इसी धर्म के अनुयायी थे। 'समनिय' शब्द संस्कृत के 'शमन' (अर्थात् श्रमण) से निकला है। ये लोग संसार में रहनेवाले, सभी लोगों और धर्मों के माननेवालों से अधिक उदार होते हैं। इसका कारण यह है कि इनके पैगम्बर 'बोज आसफ' ने इनको यह बतलाया कि सबसे बड़ा पाप जो नहीं करना चाहिए और जिसका मनुष्य को कभी विश्वास न रखना चाहिए वह यह है कि कोई अपने मुँह से 'नहीं' न कहे। ये लोग इसी उपदेश पर चलते हैं और 'नहीं' कहना इनकी दृष्टि में 'शैतान' का काम है और इनका धर्म 'शैतान' को दूर करना है।"[2]

'बोधिसत्व' को इसने 'बोज आसफ' लिखा है तथा 'श्रमण' को 'शमनिय'।

अलबीरूनी के पूर्ववर्ती अरब लेखक यह भली-भाँति जानते थे कि बौद्ध धर्म का प्रचार कहाँ-कहाँ है। खुरासान और ट्रांस काकेशिया के बौद्ध धर्मानुयायियों को ही नहीं बल्कि वे चीन के बौद्ध धर्म को भी जानते थे। भारत और चीन का भ्रमण करनेवाला यात्री सुलेमान (२३७ हि०-८३७ ई०) ने लिखा है कि "चीन के धर्म का मूल भारत में है और चीनवाले कहते हैं कि हमारे लिए ये बुद्ध की मूर्त्तियाँ भारत ने हो बनायी है। इन दोनों देश के लोग पुनर्जन्म का सिद्धान्त तो मानते हैं पर दूसरी साधारण बातों में भेद करते हैं।[3]

अलबीरूनी के अनुसार "पूर्वकाल में खुरासान, पर्सिस (पर्सिया), इराक, मौसल, सीरिया के ऊपर का सीमावर्ती प्रदेश बौद्ध धर्मानुयायी थे।[4] किन्तु अरथुस्त्र द्वारा 'मग' धर्म के प्रवर्तन से तदनन्तर इस्लाम के प्रचार से बौद्ध धर्म मन्द पड़ गया। अत 'बौद्ध उन देशों से निकाल दिये गए और वे बलख से पूर्व के देशों में जा बसे।"[5]

---

1. तारीख मुल्कुल् (बर्लिन), पृ० ७, दे० अ० भा० सं०, पृ० १०९।
2. अलफेहरिस्त, इब्ननदीम, पृ० ३४५, अ० भा० सं०, पृ० १८०।
3. सुलेमान सौदागर का यात्राविवरण, पेरिस, १८११, पृ० ५७, दे० अ० भा० सं०, पृ० १८४।
4. *AI.*, Vol. I, p. 21. 5. *Ibid.*

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

बौद्ध भिक्षु आज गेरुए रंग का लाल वस्त्र धारण करते हैं। अलबीरूनी के समय में भी ये 'श्रमण' लाल वस्त्र ही पहनते थे।[1]

देश में बौद्ध धर्म का प्रभाव हिन्दू धर्म की तुलना में कम था। जहाँ-तहाँ बौद्ध विहार भी थे। यह सही है कि हिन्दू मन्दिरों की अपेक्षा बौद्ध विहारों का निर्माण बहुत कम हुआ। उत्तर भारत में नालन्दा, विक्रमशिला, उदन्तपुरी और मुंगेर के निकट बौद्ध विहार थे। दक्षिण में अमरावती बुद्ध धर्म का प्रधान केन्द्र था। अभिलेखों से विदित होता है कि कुछ प्रसिद्ध बौद्ध विहार उत्तरी और पूर्वी बङ्गाल में थे। जगद्दल, सोमपुर, देवीभेट, विक्रमपुरी (ढाका), पट्टिकेरक (कोमिल्ल) पण्डित विहार (चटगाँव) आदि विशेष उल्लेखनीय हैं। उत्तरप्रदेश में सारनाथ[2] और जैतवन[3] प्रमुख थे।

राजतरंगिणी से विदित होता है कि कश्मीर में अनेक विहार थे। दिद्दा, दून्ददेवी-भवन, चङ्कुण, रत्नदेवी, सुल्ल, विज्ज, वितस्ता नदी के निकट के विहार अधिक प्रसिद्ध थे।[4] कश्मीरी मन्त्री रिल्हण की पत्नी सुस्सला ने बौद्ध छात्रों के लिए विशाल कक्ष बनवाये थे।[5] महाकवि क्षेमेन्द्र ने अपने 'दशावतार' ग्रन्थ में महात्मा बुद्ध को एक अवतार के रूप में प्रतिष्ठित किया है।[6]

विपुलश्री के नालन्दा अभिलेख से विदित होता है कि महेन्द्रपाल (९०० ई०) के चौथे वर्ष में बौद्ध विहार का जीर्णोद्धार किया गया है।[7] लक्ष्मणसेन के पचासवें वर्ष में ब्राह्मण दामोदर ने गया में विहार बनवाया था।[8] वल्लभी के बौद्ध विहार का पता कथासरित्सागर से चलता है।[9]

जैन धर्म

जैन धर्म भी भारत का प्राचीन धर्म है। इसके प्रवर्तक वर्द्धमान महावीर थे। जैन धर्मानुयायियों के अनुसार उनमें चौबीस तीर्थङ्कर हुए थे, जिन्होंने काल-क्रमानुसार जैन धर्म की शिक्षा का प्रचार किया था। इस धर्म में दो

---

1. *Ibid.*, p. 158. 2. *EI.*, IX, 328.
3. *Ibid.*, XI, 24; *IA*. XVII, 62.
4. राजतरङ्गिणी ७. १२१ और ८.२४६, ५८०, ११७१-७२, २४०२, २४१०, २४१५, २४१७, २४३१, ३३१८, ३३४३, ३३६४ आदि।
5. वही, ८, २४१६।
6. Kieth, A. B., : *A History of Samskrit Literature*, p. 159.
7. *EI.*, XXI, 99, verse 7. 8. *HB.*, Vol. I, p. 232.
9. कथासरित्सागर ३२.४२-४३।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

प्रधान् शाखाएँ थीं, दिगम्बर (जो नंगे रहते थे) और श्वेताम्बर (जो सफेद वस्त्र पहनते थे), जिनका छिटपुट प्रसार पूरे भारत में था।

अलबीरूनी के पूर्ववर्ती अरब लेखकों ने जैन धर्म के विषय में कुछ भी नहीं लिखा है, जिससे लगता है उसे इस धर्म का पता नहीं था तथा उस समय इस धर्म का प्रचार नहीं के बराबर था। उसने केवल एक स्थान पर लिखा है कि अर्हन्त नग्न रहते हैं। निश्चय ही अलबीरूनी के समय उत्तर भारत में हिन्दू धर्म ही प्रधान था। गुजरात और काठियावाड़ में अवश्य जैनधर्मानुयायी थे।

गुजरात में जैन धर्म का प्रचार उस समय हुआ जब भद्रबाहु दक्षिण की ओर उन्मुख हुए थे।[1] यह काल था चौथी सदी ई० पू० का। उत्तर भारत में तब हिन्दू धर्म जोर पकड़ रहा था, और जगह-जगह विभिन्न देवी-देवताओं की मूर्तियों का निर्माण प्रारम्भ हो गया था। कर्नाटक में दिगम्बर मतावलम्बियों का बाहुल्य था।[2] चौलुक्यों के काल में गुजरात में जैन धर्म के श्वेताम्बर अनुयायियों का प्रसार हुआ। ८वीं सदी में हरिभद्र ने इस धर्म की प्रधानता के निमित्त प्रयास किया था।[3] १०वीं सदी में हस्तिकुण्डीवंशी राष्ट्रकूट नरेश विदग्धराज द्वारा जैन मन्दिरों का निर्माण राजस्थान और उत्तरी गुजरात में हुआ था। चौलुक्य नरेश मूलराज प्रथम के शासनकाल में युवराज चामुण्डराज द्वारा वि० सं० १०३३ में दिये गये दान लेख से विदित होता है कि वरुणसर्मक स्थित (आधुनिक मेहसन जिला का वदसम) जैन मन्दिर को भूमि दी गयी थी। अभिलेख से 'जिन भवन', 'जिन विम्ब' और 'जिन पूजा' का निश्चित उल्लेख मिलता है, जो इस तथ्य का द्योतक है कि 'जिन' की मूर्ति का पूजन होता था।[4] चामुण्डराज का पुत्र दुर्लभराज जैनियों के निकट सम्पर्क में था। दुर्लभराज के दरबार में १०२४ ई० में हुए वादविवाद में जिनेश्वर ने चैत्यवासियों को परास्त किया था। अतः जैन धर्म के प्रति श्रद्धावनत[5] होते हुए दुर्लभराज ने जिनेश्वर को 'खरतर' (अत्यन्त तीव्र) की उपाधि से अलङ्कृत किया था।[6]

---

1. *Archaeology of Gujarat,* Ch. XI, p. 233.
2. Winternitze, *History of Indian Literature,* Vol. II, p. 431.
3. *Archaeology of Gujarat,* p. 235.
4. भारतीय विद्या (हिन्दी गुजराती) १.७३।
5. द्वयाश्रय ७.६४।
6. Bhandarkar MSS. 1882-83, p. 45; Peterson MSS. 1884, p. 65, Klatt's List, *IA.,* XI, 248; Dasarath Sharma, The Kharataragachchha Pattavali compiled by Jinapala, IHO. XI, 779; Cf. *Chaulukyas of Gujarat,* p. 310.

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

चौलुक्य दुर्लभराज के पुत्र भीम के दण्डनायक विमल ने वर्द्धमान सूरि की प्रेरणा से १०३१ ई० में आबू पर नेमिनाथ का प्रसिद्ध मन्दिर निर्मित कराया था।[1] गुजरात के ११वीं सदी के विकासमान जैनधर्मभावना का यह ज्वलन्त प्रमाण है। सिद्धराज ने शत्रुञ्जय तीर्थ की आर्थिक सहायता में बारह गाँव दिये थे।[2] हेमचन्द्र के लेख से विदित होता है कि जयसिंह सिद्धराज सोमनाथ यात्रा से लौटते वक्त नेमिनाथ के दर्शन किये थे।[3] सिद्धपुर में उसने महावीर चैत्य का निर्माण भी करवाया था।[4]

चौलुक्य कुमारपाल के समय गुजरात में जैनधर्म अनेक उत्सवों के रूप में पूर्ण पराकाष्ठा को पहुँचा।[5] इसमें आचार्य हेमचन्द्र का भी मुख्य हाथ था। जयसिंह सिद्धराज जब तक हेमचन्द्र की 'अमृतवार्ता' न सुन लेता तबतक उसे परितुष्टि नहीं होती थी।[6] मन्त्री वाहड के निर्देशानुसार कुमारपाल ने हेमचन्द्र से शिक्षा ग्रहण की थी।[7] बाद में कुमारपाल ने पाटन में विहार नामक भव्य मन्दिर का निर्माण कराया जिसमें पार्श्वनाथ की मूर्ति प्रतिष्ठित की गयी।[8] कुमारपाल ने अनेक जैन मन्दिरों का निर्माण कराया, इसमें तारङ्गा पहाड़ी का अजितनाथ का मन्दिर अत्यधिक विख्यात है।[9]

———

1. Klatt's List, IA., XI, 248; Kielhorn, *EI*, IX, 149.
2. मुनिजिनविजय, राजर्षिकुमारपाल, पृ० ६।
3. द्व्याश्रय०, १५.६९ और ७५। 4. वही, श्लोक १६।
5. मोहराजपराजय ४.१९, महावीरचरित्र १२.७६।
6. *EI.*, Vol. XI, pp. 54-55; कुमारपालप्रतिबोध. पृ० २२।
7. कुमारपालप्रतिबोध, पृ० ४०, ११४। 8. वही, पृ० ११७।
9. वही, पृ० १४३, १७४।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ग्यारहवाँ अध्याय

भोजन-पेय, वस्त्र-आभूषण, खेल-मनोरञ्जन, रीति-रिवाज और विश्वास

अलबीरूनी ने अपने समय के हिन्दू समाज के भोजन-पेय, वस्त्र-आभूषण, खेल-मनोरञ्जन, रीति-रिवाज और विश्वास पर छिट-पुट रूप में लिखा है, जिसे मैं इस अध्याय में सपिण्डित कर निरूपित कर रहा हूँ। किसी जातिगत समाज के विभिन्न पहलुओं पर अलबीरूनी के अतिरिक्त अन्य किसी पूर्ववर्ती और परवर्ती विदेशी लेखक ने इतना सूक्ष्म अध्ययन नहीं प्रस्तुत किया है। उसके अनेक विवरण मस्तिष्क के पूर्वाग्रहों और जातिगत सभ्यता से प्रभावित अवश्य हैं, किन्तु उनका भो महत्त्व इस कारण है कि किसी विदेशी के, अन्य विदेशी समाज को, समझने की क्या दृष्टि-सीमा रही है तथा उनकी दृष्टि-सीमा की क्या अच्छाइयाँ और क्या बुराइयाँ रहीं, यह उसके परीक्षण से विदित हो जाता है।

भोजन और पेय

भारतीय समाज में प्राचीनकाल से खाने-पीने में दो तरह के लोग थे, एक शाकाहारी ओर दूसरे मांसाहारी। शाकाहारी वे थे जो केवल वनस्पति खाते थे, मांस नहीं, और, मांसाहारी वे थे जो मांस के साथ-साथ विभिन्न वनस्पतियाँ भी। अलबीरूनी के काल के भारतीय समाज में भी इन दो वर्गों के लोग वर्तमान थे। सामान्यतः कुछ लोग शराब भी पीते थे।

ब्राह्मणों के लिए मांस का निषेध

मांस के लिए पशुओं का वध अथवा शिकार किया जाता था, किन्तु ब्राह्मणों के लिए इसका निषेध था। अलबीरूनी लिखता है कि "वध करना, मूल रूप से, प्रायः उनमें निषिद्ध है, जैसे ईसाइयों और मनीचियों में। तब भी, लोग मांस की इच्छा रखते हैं और प्रत्येक अनुज्ञा को सर्वदा एक ओर फेंक देते हैं। अतः यहाँ उल्लेख्य है कि नियम, विशेषतः केवल ब्राह्मणों के लिए लागू होता है, क्योंकि वे धर्म के रक्षक है और यह उन्हें उनकी तृष्णा के सम्मुख वर्जित करता है।"[1]

---

1. *AI.* Vol. II, p. 151.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अलबीरूनी के कथन से स्पष्ट है कि हिन्दू समाज में केवल ब्राह्मण को छोड़कर अन्य वर्णों के लोग मांस खाते थे। ब्राह्मणों को मांस न खाने की व्यवस्था भारतीय समाज में बहुत पहले से है।[1] मांस-निषेध की व्यवस्था बौद्ध और जैन धर्म के प्रभाव का प्रतिफल है, क्योंकि इन धर्मों का मूल ही अहिंसा था, किन्तु हिन्दू-यज्ञ और श्राद्ध में मांस का निषेध नहीं था।[2] लेकिन अलबीरूनी ने दूसरी जगह ब्राह्मणों के मांस खाने का निर्देश किया है। वह लिखता है : "ब्राह्मणों को गैंडे का मांस खाने का विशेष अधिकार है।"[3] अलबीरूनी से पहले भारत आनेवाले अरब लेखक सुलेमान ने भी गैंडे के मांस खाने का उल्लेख किया है। वह कहता है : "उसका मांस निषिद्ध नहीं है और निःसंदेह हमने उसका मांस खाया है।"[4] इन कथनों से स्पष्ट है कि गैंडे का मांस समाज में खाया जाता था। ब्राह्मण भी प्रायः मांस खाते थे।

मध्ययुगीन भारतीय समाजशास्त्री लक्ष्मीधर[5] और चण्डेश्वर[6] ने ब्राह्मणों के मांस खाने का निर्देश किया है। उनके अनुसार ब्राह्मण तथा अन्य वर्ग के लोग देवताओं को चढ़ाये जाने के बाद मांस ले सकते हैं। साथ ही उन्होंने अस्वस्थ व्यक्ति के लिए भी मांस खाने का अनुमोदन किया है।

वर्जित खाद्य-सामग्री

अलबीरूनी के अनुसार ब्राह्मणों को लहसुन, प्याज आदि खाना वर्जित है।[7] मनु ने भी यही व्यवस्था दी है।[8] मध्ययुगीन लेखक लक्ष्मीधर[9] और चण्डेश्वर[10] ने निषिद्ध भोज्य पदार्थों की लम्बी सूची दी है, जिसमें लहसुन, प्याज के अतिरिक्त नारियल आदि जैसी अन्य वस्तुएँ भी हैं, किन्तु कल्हण[11] से विदित

---

1. मनु० ५.२६।
2. नाश्नीयाद् ब्राह्मणो मांसमनियुक्तः कथञ्चनः ॥५३॥
   क्रतौ श्राद्धे नियुक्तो वा अनश्नन् पतति द्विजः।
   मृगयोपार्जितं मांसमभ्यर्च्य पितृदेवताः ॥५४॥ व्यास स्मृति अध्याय ३।
3. *AI.*, Vol. I. p. 204.
4. सुलेमान सौदागर, पृ० ५४-५५।
5. कृत्यकल्पतरु, नियतकालकाण्ड, पृ० ३११-१७।
6. गृहस्थरत्नाकर, पृ० ३८०-८४।
7. *AI.*, Vol. II, p. 135.
8. लशुनं गृञ्जनं चैव पलाण्डुं कवकानि च ॥
   अभक्ष्याणि द्विजातीनामेध्यप्रभवानि च ॥ मनु० ५.५, याज्ञ० १.१७६।
9. कृत्यकल्पतरु. नियत० पृ० २७५-८४।
10. गृहस्थरत्नाकर पृ० ३५२-६६७।
11. राजतरङ्गिणी, ८.१४५, समयमातृका, २.२६।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

होता है कि अगर गुरुओं अथवा पुरोहितों से किसी को प्याज दिया गया हो तो वह ले सकता है। वंगालियों को नारियल लेने में कोई सङ्कोच नहीं था।[1]

विहित पशुओं का मांस

हिन्दू समाज में सभी पशुओं का मांस खाना नहीं विहित था। उनमें से अनेक पशुओं का मांस खाना वर्जित था। अलबीरूनी कहता है कि "ऐसे पशुओं का मांस जिन्हें मारना विहित है, उस स्थिति में वर्जित है जब वे अकस्मात् मर गये हों। पशु, जो वध करने के लिए हैं, भेंड़, वकरे, मृग, खरगोश, गैंडे, भैंसे, मछली, पानी और जमीन के पक्षी, गौरैया, पण्डुकिया, तीतर, पेडुकी, मोर तथा अन्य जानवर, जो मनुष्य के लिए न हानिकारक है, न घृणित।"[2]

अलबीरूनी से प्रायः चार सौ वर्ष पहले के विवरण से अनेक तथ्य सम्मुख आते हैं और अलबीरूनी के उक्त कथन की आधारशिला का आभास मिलता है। चीनी यात्री श्वानच्वाङ्ग[3] के अनुसार मछली, भेंड़ तथा हरिण का मांस कभी-कभी स्वादिष्ट भोजन के रूप में खाया जाता था। वाण[4] ने सम्राट् हर्ष की सेना में पकनेवाले बकरे, हरिण आदि के मांस का उल्लेख किया है।

अलबीरूनी के परवर्ती भारतीय लेखक कल्हण[5] के अनुसार मुर्गे, भेंड़, बकरे तथा पालतू सूअर के मांस को लोग खाते थे। 'मानसोल्लास[6] 'से विदित होता है कि मध्यभारत में सूअर, मृग, खरगोश, भेंड, बकरे, पक्षी, मछली, कछुए, केकेड़ें आदि के मांस राजा खाते थे। हेमचन्द्र के अनुसार, उसके देश के लोग मांस का 'सिक् कावाब' खाते थे, जिसे उसने 'शूलप्रोतममांसम्' से स्पष्ट किया है।[7] चौलुक्य कुमारपाल को मांस खाने का व्यसन था और पर्यटन काल में उसने प्रायः मांस पर ही निर्वाह किया था।[8] मुसलमान लेखक अल-इदरीसी का कथन है कि नह्रवण के लोग मछलियाँ खाते हैं।[9]

---

1. रामचरित, ३.१९।
2. *AI.*, Vol. II, p. 151. 3. *Watters*, I, p. 178.
4. महान् सोपकरण वाहिभिश्च बद्धवराहवभ्रवाध्रीणसैर्लंबमानहरिणचटुकचंटकजूट-जटिलैः। हर्षचरित्, पृ० २८५।
5. राजतरङ्गिणी, ५.११९, ७.११४९।
6. मानोल्लास, ३.१३, १४२०–१५४७ (मृग, श्लोक १५१६, कछुआ, श्लोक १५३७, केंकड़ा, श्लोक १५४०, चिड़िया, श्लोक १५२२, सूअर, श्लोक १५२३, मछली, श्लोक १५२५–१५३६)
7. देशीनाममाला, ७.४४, ८.३९।
8. बालत्ताऊं·विःतुह देव। निच्चमच्चंतवल्लहो अहयं महसाहिज्जेण तया कंपाइं देसन्तराइं॰तए। मोहराजपराजय अंक ४, प० ४७।
9. *ED.*, I, p. 87.

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मांस को तैयार करने का सन्दर्भ 'नैषधचरित्'[1] से भी मिलता है। अभिलेखों में भी इसकी तैयारी का उल्लेख हुआ है।[2] अतः सम्पूर्ण साक्ष्यों से स्पष्ट है कि समाज में मांस खानेवाले व्यक्तियों की संख्या कम नहीं थी।

मांस न खानेवालों की प्रशंसा

मांस न खानेवालों की हिन्दू-समाज में प्रशंसा की गयी है। मनु[3] के निर्देशानुसार अगर कोई मांस नहीं खाता तो उसे अश्वमेध का फल मिलता है। जैन लेखक अमितगति का कहना है कि मांस से अच्छा विष खा लेना है।[4]

निषिद्ध पशुओं का मांस

कुछ ऐसे पशु थे, जिनके मांस को खाना निषिद्ध माना गया। ऐसे निषिद्ध पशुओं के नामों को अलबीरूनी ने लिखा है : "गाय, घोड़ा, खच्चर, गधा, ऊँट, हाथी, पालतू कुक्कुट, कौआ, तोता, बुलबुल।"[5] अलबीरूनी के ये नाम लक्ष्मीधर[6] द्वारा दिये गये निषिद्ध पशु-नामों से साम्य रखते हैं। लक्ष्मीधर ने भी निषिद्ध पशुओं के अन्तर्गत इन्हीं पशुओं को रखा है, किन्तु विहित पशुओं की असुलभता के कारण निषिद्ध पशुओं के मांस खाये जाते थे।[7]

खाद्य-सामग्री

चावल, गेहूँ, जौ आदि के अतिरिक्त समाज में विभिन्न प्रकार की शाक-सब्जी का भी व्यवहार था। अलबीरूनी शाकाहारी भोज्य पदार्थों के प्रति मौन है। अलबीरूनी से पूर्व भारत-भ्रमण करनेवाले अरबयात्री सुलेमान का कथन है कि "भारतीयों का चावल बहुत अधिक प्रचलित खाद्य है, गेहूँ नहीं खाया जाता।[8] डा० घोषाल[9] ने 'वैजयन्ती' को उद्धृत करते हुए यह समीक्षा दी है कि म्लेच्छों के लिए गेहूँ भोजन के रूप में उपयुक्त था, लेकिन यहाँ यह ध्यान रखना चाहिए कि 'वैजयन्ती' का रचयिता यादवप्रकाश काञ्चिपुरम् में उत्पन्न हुआ था तथा दक्षिण तबतक गेहूँ का उपयोग करने में अनिच्छुक था। जहाँ तक उत्तर भारत का सम्बन्ध है, लक्ष्मीधर के कथनों से प्रमाणित है कि त्यौहारों के 'गोधूम' के

1. नैषधचरित्, १६.८१–८२।
2. *IA.*, VI, 53; XII, 201; *EI.*, XVIII, 320 ff.
3. वर्षे वर्षे श्वमेधेन यो यजेत शतं समाः।
   मांसानि च न खादेद्यस्तयोः पुण्यफलं समम् ॥ मनु० ५.५३।
4. सुभाषित सन्दोह, २१.१६।
5. *AI.*, Vol. II, p. 151.
6. कृत्यकल्पतरु, नियत०, पृ० ३०४–८।
7. कथासरित्सागर, ३-९-१६।
8. *Ancient Accounts of India & China*, p. 34.
9. *The Struggle for Empire*, p.285.

CC-0 Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

निमित्त गेहूँ का प्रचलन था। लक्ष्मीधर[1] और चण्डेश्वर[2] ने जन्माष्टमी के अवसर पर गेहूँ के बने पदार्थों के उपयोग की व्यवस्था की है। राजपूताना की जैन-मूर्त्तियों को गेहूँ समर्पित किये जाते थे।[3] मिष्ठान में गेहूँ के उपयोग की बात हेमचन्द्र ने भी कही है।[4] 'करोटी' गेहूँ के पिसान से बनती थी,[5] जिसे 'रोटी' से स्पष्ट किया जा सकता है। अरबलेखक बुशारी मुकद्दसी (३७५ हि०) मुल्तान में 'रोटी' बेचे जाने का उल्लेख करता है। वह कहता है कि "एक दरहम में तीस मन 'रोटी' मिलती है।"[6]

खजूर और नारियल—भारत के दक्षिणी समुद्री किनारों पर खजूर और नारियल के बहुत वृक्ष हैं, जिनके फल खाये जाते हैं। अलबीरूनी लिखता है "हिन्दुओं के दक्षिण देश में खजूर और नारियल की तरह का पतला पेड़ है जिसका फल खाया जाता है।"[7] दक्षिण के नारियल के वृक्षों का अबू जैद सैराफी ने भी उल्लेख किया है।[8]

फल—अंगूर, बादाम, सन्तरा, अनार, आम, नीबू आदि फल भारत के विभिन्न प्रदेशों में उत्पन्न होते हैं। अलबीरूनी ने ऐसे फलों का कोई उल्लेख नहीं किया है, किन्तु अन्य अरब लेखको ने किसी न किसी फल का अवश्य उल्लेख किया है। सुलेमान लिखता है, "भारत में और सब फल तो हैं पर छुहारे का वृक्ष नहीं और उनके पास एक फल ऐसा है, जो हमारे यहाँ नहीं है।"[9] सम्भव है, यह फल आम ही रहा हो। ख्वारिज्मी का कथन है कि "भारत में आम नाम का एक फल होता है।"[10] आम के स्वादिष्ट होने का उल्लेख बुशारी मुकद्दसी ने भी किया है। वह अखरोट, बादाम, नीबू आदि का भी विवरण देता है।[11] मसूदी कहता है कि "नारंगी और नीबू भारत की खास चीजें हैं।[12]

---

1. कृत्यकल्पतरु, नियत०, पृ० ३९५।
2. कृत्यरत्नाकर, पृ० २५७।
3. *EI*, IX, 57.
4. देशीनाममाला ८. ८।
5. रामचरित् ४. ३६।
6. अ० भा० सं०, पृ० ६५।
7. *AI*, Vol. *I*, 171.
8. अ० भा० सं०, पृ० २९।
9. सिलसिलतुत्तवारीख, ए० ५६, देखिए, अ० भा० सं०, पृ० २७।
10. मफातोहुल उलूम, पृ० १८६, ,, ,, पृ० १२४।
11. अहसुनत् तकासीम फी मारफतिल् अकासीम, पृ० ४७४–८२, देखिए, अ० भा० सं०, पृ० ६५।
12. मुरुजुज जहब, पृ० ४३८, देखिए, अ० भा० सं०, पृ० ६३।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

भोजन-विधि

हिन्दू-समाज में लोग अत्यन्त शुद्धतापूर्वक भोजन करते रहे हैं। अलबीरूनी का कथन है कि "हिन्दू गोबर के चौके में एक के बाद एक अकेले बैठकर भोजन करते हैं। वे भोजन के बचे हुए अंश को नहीं खाते, और जिन थालियों में वे खाये होते हैं, अगर मिट्टी की होती है तो उन्हें फेंक देते हैं।"[1] अलबीरूनी का यह कथन चीनी यात्री श्वानच्वाङ्ग के इस कथन से कुछ साम्य रखता है। वह लिखता है कि प्रत्येक समय भोजन करने के पूर्व भारत के लोग अपने हाथ, पैर और मुँह धोते हैं। जूठी और बची हुई चीजें फिर नहीं परोसी जाती। भोजन के बर्तन को हाथों-हाथ आगे नहीं बढ़ाया जाता। जो बर्तन मिट्टी या काठ के होते हैं, उनका एक बार उपयोग करने के बाद फेंक देना आवश्यक है और जो बर्तन सोने, चाँदी, ताँबे या लोहे के होते हैं, उनको फिर से साफ करना पड़ता है। भोजन समाप्त कर चुकने के बाद वे तुरन्त दातून करके अपने को शुद्ध करते हैं।[2] श्वानच्वाङ्ग के बाद आनेवाले चीनी यात्री इत्सिंग ने भी भोजन विधि पर इसी प्रकार का मत व्यक्त किया है।[3]

हिन्दुओं में आज भी भोजन करने तथा किसी देवी-देवता के पूजन करने के पहले उस स्थान को गोबर से लीपकर पवित्र कर लेते हैं। मिट्टी के बर्तन में एक बार पानी पी लेने अथवा भोजन कर लेने के बाद आज भी उस बर्तन को फेंक दिया जाता है। यह व्यवहार हिन्दुओं को बिसारत में मिला है, जो इस बात का प्रमाण है कि इसका सूत्र प्राचीन है।

ताम्बूल

भारतीय समाज में ताम्बूल खाने की प्रथा प्राचीन काल से है।[4] पान बेचनेवाले को वात्स्यायन ने 'ताम्बूलिक' नाम से सम्बोधित किया है।[5] ताम्बूल में खैर, चूना, सुपारी, मिलाकर खाया जाता रहा है। वागभट्ट ने 'अस्टाङ्ग

---

1. AI., Vol. I, p. 180. 2. *Watters*, I, p. 152.
3. Takakusu, *Records of the Buddhist Religion*, p. 24.
4. तारुण्यो कान्त्युपचितोऽपि सुवर्ण हार-
   ताम्बूल-पुष्पविधिना समलङ्कृतोऽपि
   नारीजनः प्रियमुपैति न तावदश्रयाम्
   यावन्न पट्टमय वस्त्र-युगानि धत्ते–Fleet: *Guptd Inscriptions*, No. 18, lines 11-12.
5. Chakladar, H. C., *Social Life in Ancient India : Vatsyayan's Kama Sutra*, p. 103.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

संग्रह' में कहा है कि पान को सोने के बाद लेना चाहिए।[१] हेमाद्रि[२] ने भाष्य करते हुए ताम्बूल-सेवन की विधि के साथ-साथ उपकरण का भी निर्देश किया है। अलबीरूनी लिखता है : "उनकी पाचन शक्ति इतनी दुर्बल है कि भोजनोपरान्त पान के पत्ते और सुपारी चबाकर वे इसे अवश्य पुष्ट करते हैं। गरम पान शरीर के ताप को भड़काता है, पान के पत्ते के ऊपर का चूना प्रत्येक गीली वस्तु को सुखा देता है और सुपारी दाँतों, मसूड़ों और पेट के सङ्कोचशील औषधि के रूप में क्रिया करती है।"[३] पान खाने से मुँह लाल हो जाता है। इस पर वह कहता है, "पान, चूना और सुपारी एक साथ चबाने के कारण उनके दाँत लाल हैं।"[४] अरब लेखक इदरीसी[५] ने पान की बहुत अधिक प्रशंसा की है। पान का विशद् वर्णन करते हुए अलमसूदी लिखता है : "पान एक प्रकार का पत्ता होता है जो भारत में उत्पन्न होता है। जब इसको चूना और डली मिलाकर खाते हैं तब अनार की दानों को तरह दाँत लाल हो जाते हैं और मुँह सुगन्धित हो जाता है। मन भी बहुत प्रसन्न होता है। भारत के लोग सफेद दाँतों और पान न खाने वालों को पसन्द नहीं करते।"[६]

'कुट्टनीमतम्'[७] से विदित होता है कि वेश्या के यहाँ जाने वाला भट्टपुत्र मुह के अन्दर पान का बीड़ा रखे हुए था, जिससे उसका गाल फूला हुआ था। चौलुक्य राजदूत दामोदर के कथन से स्पष्ट होता है कि चूना-सुपारी के साथ पान खाने से दाँत एकदम लाल हो गये।[८] 'देशीनाममाला'[९] से विदित होता है कि दासी ने ताम्बूल तैयार किया था। राजा-महाराजाओं से लेकर साधारण जनता तक में पान का सेवन किया जाता था। पान का आग्रह अत्यन्त सम्मान सूचक था। महाकवि श्रीहर्ष, कान्यकुब्ज नरेश जयचन्द्र द्वारा पान के दिये गये दो बीड़े से, सम्मानित हुए थे।[१०]

---

1. Gode, P. K., *Studies in Indian Cultural History*, Vol. *I*, p. 143.
2. सूत्रस्थान, अ० २ 'दिनचर्या' के अन्तर्गत (संपा० हरि शास्त्री)
3. *AI.*, Vol. II, p. 152. 4. *Ibid.*, Vol. I, p. 182.
5. *Chaulukyas of Gujarat*, p. 358,
6. मुरुजुज जहब, खण्ड २, पृ० ८४, देखिए, अ० भा० सं०, पृ० ६७।
7. अन्तर्धृतताम्बूलप्रोच्छनकपोलकलितकरपर्णः। कुट्टनीमतम्, श्लोक ७०।
8. द्व्याश्रयकाव्य, ९.३०। 9. देशीनाममाला, ४.४२।
10. ताम्बूलद्वयम्-आसनम् च लभते यः कान्यकुब्जेश्वरात्। नैषधचरित (संपा० शिवदत्त), पृ० ५१८।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मदिरा-पान

सुरापान का व्यवहार समाज में पहले से रहा है, यद्यपि स्मृतिकारों ने उच्च तीन वर्णों को सुरापान से वञ्चित रखा है।[1] केवल शूद्र ही शराब पी सकते थे। अलबीरूनी लिखता है कि "आसवपान की अनुज्ञा शूद्र को है। वह उसे पी सकता है।"[2] "विष्णुधर्मोत्तर[3] के अनुसार मदिरा दस प्रकार की होती है, जो ब्राह्मणों के लिए पीना वर्जित है, किन्तु क्षत्रिय और वैश्य के लिए स्वीकृत। ह्वानच्वाङ्ग का कथन है कि क्षत्रिय ईख तथा अंगूर से तैयार की गई मदिरा पीते हैं और वैश्य लोग चुवाई हुई तीव्र मदिरा पीते हैं। बौद्ध-भिक्षु तथा ब्राह्मण केवल अंगूर तथा ईख का शर्बत पान करते हैं।[4]

मध्यकालीन ग्रन्थों से विदित होता है कि समाज में अनेक प्रकार की मदिराएँ पी जाती थीं। इनमें गौड़ी, मध्वी, मेदक, आसव, मधु आदि अधिक प्रचलित थीं।[5] भारतीय धर्मशास्त्रकारों ने मदिरापान का कठोर विरोध किया है। इतिहास के किसी भी युग में प्रत्यक्षतः इसका समर्थन नहीं मिलता। मध्यकालीन बंगाली लेखक भट्ट भवदेव ने सभी वर्णों के लिए मदिरा का निषेध किया है।[6] अरबयात्री सुलेमान ने भी मदिरापान से भारतीयों को विलग बताया है।[7]

एक स्थान पर अलबीरूनी लिखता है : "वे मदिरा खाली पेट पीते हैं। इसके बाद खाना खाते हैं।"[8] यहाँ यह ध्यान रखने की बात है कि इसके पहले उसने लिखा है कि मदिरा पीने की आज्ञा केवल शूद्रों को हैं। शुक्र[9] ने मदिरा पीने की, इस आधार पर व्यवस्था दी है कि इससे उत्साह, बुद्धि-प्रखरता, शीलता और मस्तिष्क की विचार-शक्ति बढ़ती है। लक्ष्मीधर के

---

1. सुरां वै मलमन्ननामां पाप्मा च मलमुच्यते।
   तस्माद्ब्राह्मणराजन्यो वैश्यश्च न सुरां पिबेत॥ मनु० ११.९४।
2. *AI.*, Vol. II, p. 151.
3. विष्णुधर्मोत्तर, २२.८३-८४।
4. *Watters*, I, p. 178.
5. देशीनाममाला, ३.४१, ४५, ८.४, १.४६, २.२, ४.४, ५.२४. ६. ३५, ४१. ५०,७५, ८.४, कृत्यकल्पतरु, नियतकालकाण्ड, पृ० ३९३-९५, गृहस्थरत्नाकर, पृ० ३९३-९५, प्रायश्चितप्रकरण. पृ० ४०।
6. प्रायश्चितप्रकरण, पृ० ४०।
7. *Ancient Accounts of India and China*, p. 33.
8. *AI.*, Vol. I, p. 180.
9. शुक्र० १. ११६-१७।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अनुसार ब्राह्मण के अतिरिक्त राजा और वैश्य मदिरापान कर सकते हैं।[१] मैथिल लेखक चण्डेश्वर का भी यही कथन है।[२] राजा के मदिरा पीने का समर्थन 'मानसोल्लास' से नहीं होता। यह अवश्य उल्लिखित है कि विवाहोत्सव पर व्यक्ति अन्तःपुर में मदिरा के साथ रञ्जन कर सकता था। विवाह एक ऐसा अवसर था जब किसी को भी मदिरा के लिए आमन्त्रित किया जा सकता था। नैषधचरित[3] से प्रकट होता है कि पत्नी के यहाँ से पति के साथ आये हुए लोगों को मदिरा-पान के लिए कहा गया था। 'कथासरित्सागर'[४] और कल्हण[५] स्पष्ट करते हैं कि व्यापारी मदिरापान के आदती थे। त्योहारों पर कश्मीर में मदिरापान का व्यवहार था।[६] कश्मीरी कवि क्षेमेन्द्र[७] ने 'तकसकयत्र' नामक त्योहार के दिन मदिरा-विक्रय का निर्देश किया है।

मदिरा पान के दुर्गुणों एवं अव्यवस्थित कृत्यों से राज्य में प्रतिबन्ध लगाये जाते रहे। ये प्रतिबन्ध धार्मिक प्रेरणा के स्वरूप थे। गुजरात में चौलुक्य कुमारपाल ने मदिरापान ही नहीं बल्कि मदिरा-निर्माणशाला भी बन्द करवा दिया था।[८] हेमचन्द्र के एक विवरण से भी स्पष्ट होता है कि चालुक्य कुल में मद्यपान ब्राह्मण जाति की ही तरह वर्जित था।[९] १०वीं सदी में खम्भात की यात्रा करनेवाले मुसलमान यात्री मसूदी ने लिखा है: "अपने आनन्द को अत्यधिक उद्घाटित करने के लिए भारत के लोग लड़कियों को मदिरा-पान कराते हैं जिससे उनके आनन्द को देखनेवाला व्यक्ति उत्तेजित हो जाय।[१०] महिलाओं के मदिरापान पर अनेक साहित्यिक कृतियों में विवरण दिये गये हैं।[११]

वस्त्र और आभूषण

वस्त्र

अलबीरूनी के काल के भारतीय समाज में अधोवस्त्र, उत्तरीय, कुर्त्तक (कुर्त्ता), उष्णीश, धोती, साड़ी और शाल के साथ-साथ पायजामा भी

---

1. कृत्यकल्पतरु, नियतकालकाण्ड, पृ० ३३१।
2. गृहस्थरत्नाकर, पृ० ३९४।
3. नैषधचरित्, १६.१९।
4. कथासरित्सागर, ५४.१७०।
5. राजतरङ्गिणी, ८.१८६६-६७।
6. नीलमतपुराण, श्लोक ४५०-५३।
7. समयमातृका, २.८८।
8. मोहराजपराजय, अङ्क ४ पृ०, ८३।
9. मुनिजिनविजय, राजर्षि कुमारपाल, पृ० १९।
10. Nainar, *Arab Geographers' knowledge of Southern India*, p. 102.
11. सदुक्तिकर्णामृत, पृ० ११८, सूक्तिमुक्तावली, पृ० २६६-६७, शारङ्गधरपद्धति, पृ० ३६,५३।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

धारण किया जाता था। अलबीरूनी लिखता है: "पायजामों की तरह वे पगड़ी इस्तेमाल करते हैं। जो कम वस्त्र धारण करना चाहते हैं वे दो अङ्गुल चौड़ा एक चीथड़ा (अर्थात् लङ्गोटी) लेकर उसे दो रस्सियों के साथ अपनी कमर में बाँधते हैं, और इतने से सन्तोष करते हैं। जो अधिकवस्त्र चाहते हैं, वे रुई से भरे हुए पायजामे पहनते हैं, जिससे कई दुलाइयाँ और नमदे बन जायें। इन पायजामों में कोई रास्ता नहीं होता और इतने बड़े होते हैं कि पैर दिखाई नहीं देता। जिस डोरी से पायजामा बाँधा जाता है, वह पीछे होती है।[1]

हिन्दू परिवारों में बहुत पहले से पायजामें, पगड़ी, लङ्गोटी आदि धारण करने का चलन था। लङ्गोटी साधारणतः साधु और यति धारण करते थे। आज भी लङ्गोटी की प्रथा साधुओं में ही है। अन्य लोग पायजामें, पगड़ी आदि धारण करते हैं।

इस्तखरी (३४० हि०-९५१ ई०) लिखता है कि "मुल्तान के लोग पायजामा पहनते हैं।[2]" एक दूसरे अरबलेखक इब्न हौकल (३६७ हि-९७७ ई०) के अनुसार हिन्दुओं और मुसलमानों का पहनावा एक-सा था।[3] अलबीरूनी आगे लिखता है: "उनके 'शिदार'' (एक वस्त्र जिससे सिर, वक्ष और गर्दन का उपरिभाग ढँका रहता है) पायजामों की तरह पीछे बटन से बँधा रहता है।[4] सम्भवतः यह कुर्त्ता ही था। इब्न हौकल यह सूचना देता है कि "प्रायः कुर्त्ते ही पहने जाते हैं, पर व्यापारी लोग कमीज और चादर का व्यवहार करते हैं।"[5]

स्त्रियों के पहनावे पर अलबीरूनी का कथन है कि "कुर्त्तकों (बाहोंवाली छोटी कमीजें जो कन्धों से शरीर के मध्य तक होती हैं, स्त्री-वस्त्र हैं) का काट दायें और बायें दोनों ओर होता है।"[6] 'मानसोल्लास'[7] से विदित होता है कि स्त्रियाँ अपने स्तनों को हमेशा ढँके रहती थीं। 'देशीनाममाला'[8] में स्तनों के ढँकने के दो तरह के वस्त्रों का उल्लेख हुआ है, 'स्तनयोरुपरि वस्त्रग्रंथिः' और 'कञ्चुकः'। 'घाघरा' को हेमचन्द्र ने 'जघनवस्त्रभेदः' से स्पष्ट किया है।[9] साड़ी और उत्तरीय भी स्त्रियों द्वारा धारण किया जाता था।[10]

---

1. *AI.*, Vol. I. p. 180. 2. अ० भा० सं० पृ० ३६८
3. सफरनामा, पृ० २३२। देखिए, अ० भा० सं०, पृ० २६८।
4. *AI.*, Vol. I, p. 180.
5. सफरनामा, b० २३२, देखिए, अ० भा० सं०, पृ० २६८।
6. *AI.*, Vol, I, pp. 180–1. 7. मानसोल्लास, ३.१०१।
8. देशीनाममाला, २.९३। 9. वही, २.१०७।
10. *Archaeology of Gujarat*, Ch. 4, p. 118.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अलबीरूनी ने स्त्रियों के प्रमुख वस्त्र साड़ी का उल्लेख नहीं किया है, जबकि भारत में प्राचीनकाल से इसका व्यवहार था। चीनी लेखक इत्सिङ्ग ने इसका उल्लेख किया है।[1] गुप्त सम्राटों की मुद्राओं में तो लक्ष्मी साड़ी पहने दिखती हैं।[2] चन्द्रगुप्त प्रथम[3] के एक सिक्के से विदित होता है कि वह जैकेट और सङ्कुचित पायजामा पहनता था, जो इस बात का द्योतक है कि भारत में पायजामा और जैकेट पहनने की प्रथा बहुत पहले से थी।

अलबीरूनी से कई सौ वर्ष पहले, ह्वानच्वाङ्ग के भारत-आवासकाल (सातवीं सदी) में स्त्रियाँ एक लम्बा वस्त्र धारण करती थीं, जो उनके दोनों कन्धों को ढँके रहता था।[4] हर्ष के काल में भी जामा और जैकेट का प्रचलन था। हर्ष का प्रतिहार पारियात्र कर्णिका पुष्प के समान श्वेत कञ्चुक पहने था।[5] अजन्ता की गुफाओं की चित्रकारी में स्त्रियों के कपड़ों का विभिन्न रूप देखने को मिलता है। स्त्रियाँ कसे हुए जाकेट, जो स्तन को ढँके रहता था, पहनती थीं।[6]

उष्णीश धारण करने का सूत्र भी हर्षचरित् से मिलता है। बाण ने दधीचि के साथी को सफेद रेशम का साफी (पगड़ी) पहने हुए निर्देशित किया है।[7]

अनेक प्रकार के बुने हुए वस्त्रों का व्यवहार समाज में था। 'क्षौम'[8], 'अतसी'[9], प्रत्रोंण[10] (अमरकोष के अनुसार 'कौशेय'), 'चिनांशुक'[11] (चीनी शिल्क) आदि प्रमुख थे। 'कुट्टनीमतम्'[12] से विदित होता है कि एक वेश्या

1. Takukusu, *A Record of the Buddhist Religion*, pp. 67–8.
2. Allan, *Catalogue of the Coins of the Gupta Dynasty and Sasanka King of Gauda*, pt. II, pp. 1–9, pt. III, p. 2.
3. Allan, *Catalogue of the Gupta Coins*, p. 43.
4. *Watters*, I, p. 148.
5. 'कर्णिकागौरेण वीध्रक कञ्चुकच्छिन्नवपुषा'। हर्षचरित्, पृ० ९८।
6. Griffiths, *Paintings in the Buddhist Cave Temples of Ajanta*, p. 474 (caves XVI & XVII).
7. 'धौतदुकूलपट्टिकापरिवेष्टित मौलि पुरुषं।' हर्षचरित्, पृ० ३९।
8. मैत्रायनी संहिता, ३.६.७। 9. अमरकोष, २.९.२०।
10. याज्ञ० २.६।
11. कुट्टनीमतम् (संपा० टी० राय), श्लोक ६६, पृ० १२।
12. वही, श्लोक ३४४।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

'चिनांशुक' का एक जोड़ा अपने प्रेमो से भेंट में प्राप्त की थी। "नैषधचरित्"[१] में नल के चलने पर उनके सामन्त पाँवड़े रूप में 'चिनांशुक' बिछाते हैं। कश्मीर में गरीब लोग पटुए का बना हुआ वस्त्र पहनते थे।[२] कैदी भी ऐसे ही वस्त्र धारण करते थे।[3] मध्यकाल में धोती, साड़ी ही नहीं बनती थी बल्कि 'अवगुण्ठन' और 'निचोल' भी बनते थे।[४]

विदेशी लेखक चाउ जु–कुअ्[५] लिखता है कि नन-पेई और कु-लिन अर्थात् मालावार के लोग युद्ध में जाते समय अपने सिर को सिल्क की पगड़ी से बाँधते थे।

उपानह

समाज में सामान्यतया जूता पहनने का भी रिवाज था। अलबीरूनी लिखता है कि "वे जूतों को जबतब पहने रहते हैं, कसे रहते हैं। चलने के पहले, पिण्डली के नीचे की ओर उलटा दिये जाते हैं।"[६] देशीनाममाला से विदित होता है कि पैर में जूता पहना जाता था।[७]

प्राचीनकाल में जूते प्राय: एक दो या तीन तलों के होते थे। चमड़ा पीला, लाल, मजीठी, काला या अन्य विविध रंगों से रंगा रहता था। भिक्षु प्राय: एक ही तल का जूता पहनते थे।[८] साँची की मूर्तियों में एक स्थान पर जूते भी देखने को मिलते हैं।[९]

आभूषण

भारतीय स्त्रियों के लिए आभूषण श्रृङ्गार और सौंदर्य का प्रसाधन था। शरीर के विभिन्न अङ्गों के लिए अलग-अलग आभूषण थे, जिन्हें धारण कर लेने पर अद्भुत सौंदर्य का दिग्दर्शन होता था। भारतीय साहित्यकारों ने आभूषणयुक्त नारियों के सौंदर्य का सविस्तार वर्णन किया है।

मुसलमान विदेशी लेखकों ने भी भारतीय आभूषणों की रुचिपरक चर्चा की है। स्त्री के आभूषणों पर अलबीरूनी लिखता है कि वे कानों में बालियाँ,

---

1. नैषधचरित्, २१.२।
2. राजतरङ्गिणी, ७. ३००।
3. वही, ८. ९३।
4. गीतगोविन्द, ५.११।
5. *Chu-fan-chi* (Ed. Hirth & Tookhill), 88-89.
6. *AI.*, Vol. I, p. 181.
7. देशीनाममाला, ६. ७६।
8. महावग्ग, ५. २. १, ५. ३. २, देखिए, मोतीचन्द, भारतीय वेशभूषा, ना० प्र० प०, सं० २०००, वर्ष ४८, पृ० ३५५।
9. भारतीय विद्या, १, अ० १, १९३९, पृ० २८-५३।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

हाथों में चूड़ियाँ, हाथ की उँगली में सोने की अंगूठियाँ, इसी तरह पैर की उँगलियों में छल्ले पहनती हैं।"[1] नवीं सदी के सुलेमान और अबूजैद ने भी भारतीय स्त्री-पुरुषों के आभूषणों का उल्लेख किया है।[2] अबूजैद लिखता है कि "भारत के राजा लोग कानों में सोने के बाले पहनते हैं, जिनमें बड़े-बड़े बहुमूल्य मोती रहते हैं। वे गले में माला पहनते हैं, जिनमें अमूल्य रत्न होते हैं। यही मोती और रत्न उनकी सम्पत्ति और कोष हैं। सेनाओं के सेनापति तथा दूसरे अधिकारी भी अपने-अपने पद और मर्यादा के अनुसार इसी प्रकार के आभूषण पहनते हैं।[3] "देवपर अभिलेख में गले का हार, कान-वाला, पायजेब (पैर के निचले हिस्से का आभूषण) और स्वर्णकङ्कन का उल्लेख हुआ है।[4] हर्षकालीन समाज के आभूषणों पर लिखते हुए ह्वानच्वाङ्ग कहता है कि राजाओं और सम्भ्रान्त पुरुषों के सिर के आभूषण, हार और बहुमूल्य पत्थरों (रत्नों) से युक्त थे। उनके शरीर अंगूठियों, कड़ों तथा हीरों से सुशोभित रहते थे।[5] मध्यकालीन साहित्य में अनेक प्रकार के आभूषणों का उल्लेख किया गया है। रामचरित,[6] तृषस्तिशलाकापुरुषचरित,[7] राजतरङ्गिणी,[8] समयमातृका,[9] नैषधचरित्,[10] कुट्टनीमतम्[11] आदि ग्रन्थों में विभिन्न प्रकार के आभूषणों का परिचय प्राप्त किया जा सकता है।

खेल और मनोरञ्जन

अलबीरूनी ने समययुगीन भारतीय खेलों के विषय में विस्तार से नहीं लिखा है। मनोरञ्जन के साधनों का भी विस्तृत विवरण उसने नहीं दिया है। उसने जिन मनोरञ्जक खेलों को विवृत्त किया है, उनका' नाम और लक्षण तो है, किन्तु उनकी संख्या दो-एक ही है। अतः इससे भारतीय खेलों के प्रति उसकी अनभिज्ञता ही प्रकट होती है। उस युग के भारतीय समाज में अनेक

---

1. *AI.*, Vol. I, p. 181.
2. *Ancient Accounts of India and China*, p. 36.
3. *Ibid.*, pp. 98-99.
4. *Inscriptions of Bengal*, Vol. III, verse 11.
5. *Watters*, p. 157.
6. रामचरित्, ३. ३३-३४।
7. तृषस्तिशलाकापुरुषचरित्, १. २२९
8. राजतरङ्गिणी. ८. २८३३, २८३५।
9. समयमातृका, ७. १४-१७।
10. नैषधचरित्, १.३८, ७. ८०, ९. १०४, १०. ११६।
11. कुट्टनीमतम्, श्लोक ६३, ६४, ६६ आदि।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

तरह के खेलों का प्रचलन था। कपड़े या काठ की बनी हुई गुड़ियों[1] के अतिरिक्त बच्चों और बच्चियों के मुख्य आकर्षण का केन्द्र कन्दुक-क्रीड़ा भी थी।[2] विवाहिता स्त्रियों के लिए 'झूला' का खेल प्रधान था।[3]

कौतुकपूर्ण खेल

भारतीयों द्वारा रस्से पर चढ़कर किये जाने वाले खेल पर लिखते हुए वह कहता है कि "कई बार हिन्दुओं को इसलिए जादूगर समझा जाता है कि वे ऊँचे घासों पर या कसे हुए रस्सों पर चढ़कर गेंद खेलते हैं, किन्तु ऐसे खेल प्रायः सभी देशों में होते हैं।"[४] इस प्रकार के खेल भारत में आज भी जगह-जगह नट जातियों द्वारा दिखाये जाते हैं। यह खेल निम्न जातियों का परम्परागत रहा है, जो कौतुकपूर्ण होने के कारण समाज में अत्यन्त लोकप्रिय रहा।

शतरञ्ज

शतरञ्ज अथवा पासे का खेल भारत का प्रमुख खेल है। समाज में इसका बहुत पहले से चलन रहा है। प्राचीन[5] साहित्य के अतिरिक्त मध्यकालीन साहित्य में भी इसका विस्तार से विवेचन किया गया है।[6] इसका विवरण अलबीरूनी ने दिया है जिससे यह प्रकट होता है कि शतरञ्ज का खेल अरब समाज में अत्यन्त लोकप्रिय था। वह लिखता है कि "शतरञ्ज खेलते हुए वे हाथी को, प्यादे की तरह एक घर से सीधे चलाते हैं, दूसरी ओर नहीं। चार कोने में भी वे इसे रानी (फिर्जान) की तरह एक बार एक घर ही बढ़ाते हैं। वे कहते हैं कि ये पाँच घर (अर्थात् एक तो सीधे आगे और शेष कोनों पर) हाथी को सूड़ और पैरों के स्थान हैं।"[७] वह आगे कहता है : "वे दो पासों से—एक समय में चार आदमी—खेलते हैं।"[८]

याकूबी (मृत्यु २८७ हि०—९०० ई०) नामक अरब लेखक ने ज्ञप्ति दी है कि पहले एक पण्डित ने चौसर बनाकर एक राजा को भेंट किया था

---

1. वैजयन्ती, १३७. ११-१४, अभिज्ञानचिन्तामणि, ४०४-८०।
2. वैजयन्ती, १७१. १६१-६२, अभिज्ञानचिन्तामणि, २७७. ३५२-५३।
3. विक्रमाङ्कदेवचरित, ७. १५-१९। 4. *AI.*, Vol. I, p. 195.
5. श० ब्रा० ५. ४, ४६. तैत्तिरीय संहिता, ८. १६, महाभारत ४ १. २४, जातक (फोसबोल) १. १५१, २२१, ३. ६१, १३१, ४. १३३, १३७, १७१ आदि, कामसूत्र १. ३. १६, सूत्रकृताङ्ग १. ९. १७, कादम्बरी, पृ० १३।
6. राजतरङ्गिणी, ८. १७४०, कथासरित्सागर (सम्पा० टानी), भाग २, पृ० २२५।
7. AI., Vol. I, p. 183. 8. *Ibid.*,

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh
और इसके द्वारा भाग्य और मनुष्य की परवशता के सिद्धान्त का अनुमोदन किया था। तत्पश्चात् एक दूसरे पण्डित ने शतरञ्ज बनाकर राजा को समर्पित किया, जिससे यह सिद्ध होता था कि मनुष्य के हाथ में ही सब कुछ है, वह जो चाहे कर सकता है।[1]

याकूबी[2] और मसूदी[3] ने शतरञ्ज का ईजाद करनेवाले व्यक्ति की एक कथा दी है, जिनके अनुसार उस व्यक्ति ने राजा से पुरस्कार माँगा था कि शतरञ्ज के पहले खाने या घर में गेहूँ का एक दाना रखा जाय, दूसरे में दो दाने रखे जायँ, तीसरे में चार और चौथे में आठ। इसी प्रकार हर खाने या घर में उसके पहले के घर के दानों से दूने दाने रखे जायँ, और ऐसे ही सब घर पूरे कर लिये जायँ। यों, देखने में राजा को यह पुरस्कार बहुत साधारण जान पड़ा, पर जब इसका हिसाब लगाया गया, तो इतनी बड़ी रकम हो गयी कि उतनी रकम देना राजा के बस का काम नहीं था।

'शतरञ्ज' खेल के बारे में ईरानवालों का कहना है कि यह शब्द हमारे यहाँ का है और इसका मूल 'हस्तरञ्ज' है।[4] किन्तु ईरानियों का यह कथन आधारहीन है, क्योंकि यह नाम भारतीय है, और 'चतुरङ्ग' (चार अङ्गों-वाला) से निकला है। इतना अवश्य है कि मोहरों का नाम उन्होंने 'शाह' (बादशाह), फरजीन (वजीर) और प्यादा आदि रख लिया है, किन्तु इस कारण, यह खेल ईरानी नहीं हो सकता। 'हाथी' और 'रुख' दो नाम ऐसे हैं जिससे इसकी भारतीयता प्रकट होती। 'रुख', संस्कृत शब्द 'रथ' का अपभ्रंश है। अलबीरूनी स्वयं लिखता है कि "शतरञ्ज में' रथ 'रुख' कहलाता है।"[5] अतः शतरञ्ज का खेल मूल रूप से भारतीय है. जिसे ईरा-नियों ने अपनाकर अपना बना लिया।

इसके अतिरिक्त तत्कालीन समाज में अन्य खेल भी प्रचलित थे, जिनका अलबीरूनी ने' कोई विवरण नहीं दिया है। कुश्ती, पोलो आदि युवकों द्वारा खेले जाते थे।[6] कश्मीर और मध्यभारत में कुश्ती को राजा द्वारा प्रोत्साहन

---

1. याकूबी, अ० भा० सं०, पृ० १४९–५०।
2. याकूबी. भा० १, पृ० ९८–१०५, अ० भा० सं०, पृ० १५०
3. मसूदी, भा० १, पृ० १६०. अ० भा० सं०, पृ० १५०।
4. याकूबी, भा० १, पृ० १०१, अ० भा० सं०, पृ० १५१।
5. *AI.*, Vol. I, p. 407.
6. मानसोल्लास (गायकवाड़ ओरिएण्टल सिरीज, भा० ८४), पृ० २११–२२५।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मिलता था।[1] विजयी पहलवान को वस्त्र, आभूषण, घोड़े आदि से पुरस्कृत भी किया जाता था।[2] कुश्ती का खेल बहुत पहले से भारतीय समाज में व्यवहृत था। इसका उल्लेख पाणिनि[3] और बौद्ध साहित्य से मिलता है।[4]

नृत्य, सङ्गीत, नाटक आदि का भी समाज में सक्रिय प्रवाह रहा।[5] वीणा, नगाड़ा, आदि का वादन शास्त्रीय रूप में प्रचलित था।[6] भुवनेश्वर के मन्दिरों में बीड़ा, नगाड़ा, बांसुरी, तुरुही आदि का सन्निवेश है।[7] समराङ्गणसूत्रधार[8] से विदित होता है कि सङ्गीतशाला, नाटकशाला (थियेटर हाल), मल्लयुद्ध-शाला (अखाड़ा), नृत्यशाला, चित्रशाला आदि था। समाज में जलक्रीड़ा भी होती थी।[9]

मनोरञ्जन के लिए लोग शिकार पर भी जाते थे जो 'मृगया व्यसन' नाम से अभिहित था।[10] शिकार का यह खेल भारतीय समाज में प्राचीनकाल से बहुचर्चित था।[11] इसमें अनेक प्रकार के पशु-पक्षियों का शिकार किया जाता था।[12] मृगया शिकार में मृग ही नहीं बल्कि सूअर आदि बड़े जानवरों को भी गिनती होती थी। गुप्त सम्राटों ने तो 'मृगया प्रकृत' की अनेक मुद्राएँ चलायीं।[13]

मृग का शिकार

अलबीरुनी लिखता हैकि "मैं स्वयं साक्षी हूं कि मृगों के शिकार में वे अपने हाथ से उन्हें पकड़ लेते हैं। एक हिन्दू ने यहाँ तक कहा कि बिना मृग को पकड़े, अपने आगे लाकर सीधे रसोईघर में भेज सकता है, किन्तु यह बात

---

1. राजतरङ्गिणी, ८.१६९-१७४, मानसोल्लास, पृ० २२५।
2. मानसोल्लास, पृ० १२९। 3. अष्टाध्यायी ३.३.३६।
4. *PIHC.*, 1939, Calcutta Session, p. 256; *Arch. Survey Memoirs,* No. 55, pl. XXVI, No. 61.
5. *The Struggle for Empire*, p. 489.
6. वैजयन्ती, १४५–४७, ११४–४१, अभिज्ञानचिन्तामणि, ११७.६।
7. Mitra : *Antiouities of Orissa,* I. pl. XXX. Nos. 167.74.
8. समराङ्गणसूत्रधार, १५.१८। 9. विक्रमाङ्कदेवचरित, १२.५०–७८।
10. महाभारत, सभापर्व ६८.२०, उद्योगपर्व, ३३.९१।
11. कौ० अ० ८.३.५, ४१, ४२, मनु० ७.५०, कामन्दक० १४.७।
12. शाकुन्तलम् अ० २।
13. *JNSI.*, XXIV, 1962, pp. 154–5.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

जहाँ तक मैं विश्वास करता हूँ, मैंने मालूम किया है कि पशुओं को धीरे-धीरे अनवरत रूप से एक ही स्वर संयोग का अभ्यासी बनाने के उपाय मात्र पर निर्भर है। हमारे यहाँ लोग भी, बारहसिङ्गे का शिकार करने में, जो मृग से अधिक जङ्गली होता है, यही उपाय करते हैं। जब वे जानवरों को विश्राम करते देखते हैं वे उनके चतुर्दिक एक घेरा बनाकर घूमने लगते हैं और साथ ही एक ही स्वर में इतनी देर तक गाते रहते हैं जब तक कि वे जन्तु उस स्वर के अभ्यासी नहीं हो जाते। तब वे अपने घेरे को अधिक से अधिक सङ्कीर्ण करते जाते हैं जबतक कि वे पूर्ण विश्राम में लेटे हुए उन जन्तुओं के इतने निकट नहीं आ जाते कि वहाँ से उनपर वार किया जा सके।"[1]

मृग के शिकार सम्बन्धी अलबीरूनी का उपरिलिखित विवरण उसके अनुभव के आधार पर है। आज ऐसा तरीका नहीं अपनाया जाता, यह सही है, किन्तु अलबीरूनी के उल्लेख से प्रकट है कि उस काल के भारतीय और अरब समाज में मृग के शिकार के लिए यह विधि प्रचलित थी।

पक्षी का शिकार

पक्षियों का शिकार भारतीय कैसे करते थे, इस पर अलबीरूनी लिखता है कि 'कत्ता' पक्षी को मारने का यह तरीका है कि वे रात भर एक ही स्वर से ताम्बे के बर्तन को बजाते रहते हैं। फिर वे उन्हें हाथ से पकड़ लेते हैं। अगर स्वर बदल जाता है तो सभी पक्षी उड़ जाते हैं।"[2]

रीति-रिवाज और विश्वास

प्रत्येक देश के लोगों के विभिन्न रीति-रिवाज और विश्वास होते हैं, जिनकी प्रेरणा से उनके जीवन का दैनन्दिन कार्य चलाता है। ये रीति-रिवाज और विश्वास सभी देशवासियों को परम्परा से क्रमशः प्राप्त होते हैं। किसी अन्य देश के रीति-रिवाजों और विश्वासों का किसी दूसरे देश से साम्य न रखना स्वाभाविक है। इसी कारण प्रत्येक देश एक दूसरे से विपरीत दिखते हैं।

हिन्दू और अरबी रीति-रिवाज में भेद

भारतीय और अरबी रीति-रिवाजों में भी यही मौलिक भेद रहा है कि दोनों के संस्कार और व्यवहार एक दूसरे से विपरीत रहे हैं। अलबीरूनी ने हिन्दुओं और मुसलमानों के रीति-रिवाजों की तुलनात्मक व्याख्या की है। वह लिखता है कि "अधिकांश हिन्दू रीति-रिवाज हमारे देश और हमारे समय के

---

1. *AI.* Vol. I, p. 195. 2. *Ibid.*, Vol. I, p. 195.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

रिवाजों से एकदम विकट दीख पड़ते हैं। कोई भी, सामान्यतः यह विचारने लगता है कि ये जान-बूझकर हमारे विपरीत बनाये गये हैं, क्योंकि हमारे रीति-रिवाज उनसे नहीं मिलते, बल्कि ठीक उल्टे हैं और यदि उनका कोई रीति-रिवाज कभी हमारे रीति-रिवाज से मिलता भी है तो निश्चय ही उसके सर्वथा उलटे अर्थ होते हैं।"[1] एक दूसरे स्थान पर वह फिर दुहराता है कि "समस्त आचार-विचार और रीति-रिवाजों में वे इस परिणति तक भिन्न हैं कि वे अपने बच्चों को हमारे नाम से, हमारे वेष और हमारे चाल-ढाल से डराते हैं और हमें राक्षसों की संतान और हमारे कर्मों को अपवित्र तथा नीच कहते हैं। न्याय को न छोड़ते हुए, यहाँ हम अवश्य स्वीकार करते हैं कि विदेशियों के प्रति इस प्रकार की घृणा हमारे और हिन्दुओं के बीच में नहीं बल्कि यह सब जातियों में एक दूसरे के प्रति पायी जाती है।"[2]

प्रत्येक देशवासी अपने देश को दूसरे देश से अनेक स्थितियों में अच्छा समझता है तथा अपने रीति-रिवाजों को दूसरे देश के रीति-रिवाजों से अधिक उपयुक्त। इस सम्बन्ध में अलबीरूनी का कथन सही है। रही बात हिन्दुओं का उन्हें राक्षस और नीच समझना, उसके सम्बन्ध में इतना ही पर्याप्त है कि मुसलमानों के अनवरत नृशंसतापूर्ण आक्रमण से त्रस्त होकर हिन्दुओं द्वारा ऐसी बातें कही जाती थीं, जिनमें भय और रोष रहता था।

यहाँ मैं अलबीरूनी द्वारा विवृत्त हिन्दुओं के रीति-रिवाजों और विश्वासों को सन्निविष्ट कर रहा हूँ।

केश और नाखून

अलबीरूनी लिखता है कि "वे अपने शरीर का कोई भी बाल नहीं काटते। गरमी के कारण प्रारम्भ में वे नङ्गे फिरा करते थे और सिर के बाल न काटने में उनका उद्देश्य लू से बचना था।"[3]

यह माना जा सकता है कि साधु और यतिवर्ग के लोग शरीर के बाल नहीं काटते रहे होंगे, लेकिन अन्य गृहस्थवर्ग के लोग इसके अपवाद थे, विश्वास नहीं होता। क्योंकि बाल काटनेवाले हिन्दू समाज में बहुत पहले से रहे हैं, जो लोगों के बाल बनाकर जीवनयापन करते थे। अतः नाई इस बात के प्रबल प्रमाण हैं कि समाज के लोग बाल बनवाते थे। सिर के बाल बढ़ाने का कारण धूप और लू से बचने का उपाय हो सकता है, किन्तु इस श्रेणी के

---

1. *AI.*, Vol. I, p. 179. 2. *Ibid.*, p. 20.
3. *Ibid.*, p. 179.

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

लोगों की संख्या समाज में अधिक रही होगी, सम्भव नहीं। आज भी साधु और यति जटाएँ बढ़ाएँ घूमते-फिरते दीख पड़ते हैं।

वह आगे कहता है कि "मूँछों को रखने में वे इसके इकहरे पेंच बनाते हैं। गुप्तेन्द्रिय के बाल न काटने के विषय में वे लोगों को यह समझाने का यत्न करते हैं कि वहाँ का बाल काटने से कामुकता और वासना बढ़ती है। अतः उसमें से जो अपने अन्दर समागम की प्रबल इच्छा देखते हैं, वे जननेन्द्रिय के बाल कभी नहीं काटते।[1]

हिन्दू समाज में आज भी मूँछें रखनेवाले लोग अपनी मूँछें प्रायः ऐंठ-कर रखते हैं। वैसे समाज में मूँछें कटवाने की भी प्रथा थी। इसका उल्लेख हर्षकालीन चीनी यात्री श्वान च्वाङ्ग से मिलता है। वह कहता है कि "कुछ लोग अपनी मूँछों को कटवाते हैं।[2]" जनेन्द्रिय के बाल काटने में कामुकता का बीजारोपण अलबीरूनी की अपनी सूझ है।

नाखून के बारे में उसका कथन है कि "वे अपने आदर्श में नाखन लम्बे बढ़ा लेते हैं। केवल आलसयुक्त जीवन में सिर को खुजलाने और जूएँ (ढील) टटोलने के सिवा वे इन्हें किसी और काम में इस्तेमाल नहीं करते।"[3]

हिन्दुओं में नाखून बढ़ानेवाले लोग साधु वर्ग के ही रहे होंगे। सभी लोग नाखून बढ़ाकर रहते रहे होंगे, युक्तियुक्त नहीं। नाइयों का काम बाल बनाने के अतिरिक्त नाखून बनाना भी था। जैसा कि मैंने ऊपर दिग्दर्शित कराया है कि हिन्दू समाज में नाई वर्ग के लोग बहुत पहले से रहते आ रहे हैं, जिनका काम ही बाल और नाखून बनाना था। अतः अलबीरूनी का उक्त कथन ठीक नहीं लगता।

बाजा-भक्तिपूर्ण गीत गाने में लोग झाझ बजाते रहे हैं। अलबीरूनी लिखता है "कि वे झाँझों को छड़ी से बजाते हैं।[4] कुछ साधु-सन्त आज भी झाँझ बजाकर गाते हैं।

स्नान—हिन्दू समाज में लोग स्नान कैसे करते थे, इस पर अलबीरूनी का कथन है कि "स्नान करते हुए वे पहले पैर धोते हैं और फिर मुँह। वे अपनी पत्नी से सम्भोग करने के पहले स्नान करते हैं।[5]"

---

1. *AI.*, Vol. I. p. 180.
2. *Watters*, I, p. 148.
3. *AI.*, Vol. I, pp. 180.
4. *Ibid.*
5. *AI.*, Vol. I. p. 181.

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

स्नान करने में लोग पहले पैर धोते थे और बाद में मुँह, यह आदत के अनुसार हो रहा होगा, किन्तु अपनी पत्नी से सम्भोग करने के पहले लोग स्नान करते थे, आश्चर्यजनक है।

घोड़े की सवारी—वह लिखता है कि वे बिना जीन के सवारी नहीं करते। अगर वे जीन लगाते हैं तो घोड़े पर उसकी दायीं ओर से चढ़ते हैं। यात्रा में वे चाहते हैं कि कोई सवार उनके पीछे रहे।[1]

आज भी लोग घोड़े पर जीन रखकर चढ़ते हैं। घोड़े पर चढ़ने का तरीका प्राय: व्यक्ति की दाईं और से है वैसे लोगों की अपनी-अपनी आदत है। यात्रा में किसी एक व्यक्ति का पीछे-पीछे चलना बचाव की दृष्टि से था।

हाथ मिलाना—मुलाकात पर हाथ मिलाने की प्रथा प्रायः अङ्गरेजों की समझी जाती रही है, किन्तु भारत में अलबीरूनी के समय लोग अपना हाथ मिलाते थे। वह लिखता है कि "हाथ मिलाते समय वे व्यक्ति के हाथ को उसकी बाहरी गुलायी की तरफ से पकड़ते हैं।[2]"

प्रस्थान की आज्ञा—लोग जब किसी के यहाँ जाते थे तो आज्ञा मांग कर प्रस्थान करते थे। अलबीरूनी लिखता है कि "वे घर में जाते समय नहीं, मगर वहाँ से लौटते समय आज्ञा माँगते हैं।"[3] आज भी लोग आज्ञा मागकर लौटते हैं।

अन्य रीतियाँ

गोष्ठियों और सभाओं में हिन्दू कैसे बैठते थे, इस पर वह कहता है कि "वे सभाओं में पलथी मारकर बैठते हैं।[4]" वह लिखता है कि "अपने पास बैठे हुए पूजनीय बड़ों के सामने थूकते और नाक साफ करने में उन्हें कोई सङ्कोच नहीं होता, और वे उनके सामने ही चट से जूएँ मार देते हैं। वे छीकने को बुरा और पादने को अच्छा शकुन मानते हैं।"[5]

बड़ों के सामने थूकने की बात निश्चय ही आश्चर्यजनक है। प्राय: ऐसा नहीं रहा होगा कि बड़ों के सामने ही थूका और नाक साफ किया जाता रहा हो। हिन्दू समाज में बड़ों के प्रति जितना आदर और सम्मान रहा है, उतना किसी देश के समाज में नहीं रहा। छींकने को आज भी कभी अच्छा और

---

1. *Ibid.*
2. *Ibid.* p. 182.
3. *Ibid.*, p. 182.
4. *Ibid.*
5. *Ibid.*

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कभी बुरा मानने का विश्वास है। पादने को तो आज भी बहुत बुरा माना जाता है। उस समय पादने को अच्छा समझा जाता रहा, जँचता नहीं।

वह लिखता है कि "वे जुलाहों को अपवित्र मानते हैं, लेकिन सिंगी लगाने और खाल उधेड़नेवाले को पवित्र, जो पैसे लेकर मरनेवाले पशुओं को डुबाकर या जलाकर मार डालते हैं।"[1]

भारतीय समाज में निश्चय ही जुलाहों को अपवित्र माना जाता रहा है, लेकिन मरनेवाले पशुओंको डुबोकर अथवा जलाकर मारनेवाले वर्ग को पवित्र माना जाता रहा, ऐसी बात तो नहीं। यह वर्ग अंत्यज वर्ग के अन्तर्गत था।[2]

मृत् व्यक्तियों को जलाने की प्रथा

भारत में यह प्रथा रही है कि मर जाने पर मृत् व्यक्ति के शरीर को जला दिया जाता था।[3] जलाने की यह प्रथा आज भी हिन्दुओं में वर्तमान है। अलबीरूनी लिखता है कि "हिन्दुओं के अनुसार मृत् शरीर पर उसके उत्तराधिकारियां का अधिकार है कि वे उसको स्नान करावें, उसमें सुगन्धयुक्त द्रव्य लगावें, एक कफन में लपेटें और तब चन्दन और दूसरी लकड़ी, जितनी मिल सके उसके साथ उसे जला दें। उसकी जली हुई हड्डियों का अंश गङ्गा में लाकर फेंका जाता है ताकि गङ्गा उस पर बहे, जिस प्रकार सगर की सन्तान की जली हुई अस्थियों पर बह चुकी है और इससे उनको नरक से निकालकर स्वर्ग में ला चुकी है। भस्म का शेषांश बहते पानी के किसी नाले में फंक दिया जाता है।[4] अलबीरूनी से पहले भारत यात्रा करनेवाले अरब यात्री सुलेमान का भी यही कहना है: "यहाँ मुर्दे जलाये जाते हैं। उसमें चन्दन, कपूर और केसर डालते हैं और उसकी राख हवा में उड़ा देते हैं।"[5]

हिन्दू दासों के स्वदेश भाग आने पर उनके प्रति हिन्दू समाज का व्यवहार

अलबीरूनी लिखता है: "मुझे बार-बार यह सूचना दी गयी है कि जब हिन्दू दास भागकर अपने देश और धर्म में लौटते हैं तो लोग उन्हें प्रायश्चित के रूप में उपवास करने का विधान करते हैं। तत्पश्चात् वे उन्हें गोबर,

---

1. *AI.*, Vol. I, p. 182.
2. देखिए, इस प्रबन्ध के खण्ड (ग) का 'वर्ण, जाति और आश्रम' शीर्षक अध्याय।
3. Mc Crindle, J. W., *Ancient India*, p. 69.
4. *AI.*, Vol. II, p. 169.
5. सिलसिलतुत् तवारीख, पृ० ५०, अ० भा० सं०, पृ० २६।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

गोदुग्ध आदि में कुछ दिनों के लिए दबाते हैं, जबतक कि वह सड़ न जाय। उसके बाद वे उन्हें खाने के लिए वही गन्दगी देते हैं। मैंने ब्राह्मणों से पूछा कि क्या यह सूचना ठीक है, किन्तु उन्होंने इसका निषेध किया और कहा कि ऐसे व्यक्ति के लिए कोई प्रायश्चित सम्भव नहीं और उन्हें कभी जीवन में वह स्थान नहीं मिल सकता जो उन्हें बन्दी होने के पूर्व प्राप्त था।"[1]

अलबीरूनी का यह कथन सम्वादों पर आधारित है। वह स्वयं इस विषय में अनिश्चित था। सुनी-सुनाई बातें कभी-कभी अत्यन्त अतिरञ्जित और विचित्रतापूर्ण होती थीं, जिन्हें अलबीरूनी ने स्वयं स्वीकार किया है।[2] इसके साथ ही उसने ऐसे ग्रन्थों का अध्ययन किया जो बहुत पहले के थे, जिसमें कठोर सिद्धान्त और व्यवहार निरूपित थे। सिद्धान्त और व्यवहार में सर्वदा अन्तर होता है। सिद्धान्त का अस्तित्व पुस्तकों में होता है और व्यवहार का जन-समाज में। समय के प्रवाह में सिद्धान्त पीछे छूट जाता है और व्यवहार अनवरत साथ चलता है। अतः इस सम्बन्ध में अलबीरूनी का कथन त्रुटि-रहित नहीं।

---

1. *AI.*, Vol. II, pp. 162–3.

नोट : इस कथन के आधार पर डॉ० मुहम्मद हबीब ने यह कल्पना की है कि हिन्दू जाति का विभाजन अत्यन्त कठोर और जटिल हो गया था और जनता इससे बहुत पीड़ित थी। इस्लाम का आगमन इस जातीय कठोरता के विरुद्ध एक प्रबल विद्रोह था। इससे निम्न जातियों के पददलित लोगों को बहुत ढाढ़स मिला।—*ED* (II, Ed. Muhammad Habib, Intr., p. 50) किन्तु डॉ० हबीब की यह कल्पना पूर्णतया आधारहीन है। जबकि महमूद गजनी के समसामयिक लेखकों ने सुल्तान की बर्बरता के अनेक चित्र प्रस्तुत किए हैं जो हिन्दुओं की निम्न जातियों को ढाँढ़स देने के सर्वथा विपरीत है। मुसलमान आक्रामकों ने अपनी नृशंसतापूर्ण और निर्दयतापूर्ण व्यवहारों से गाँव और नगर जला डाले, देश में रक्त की नदियाँ बहा डालीं तथा अपार धन और सम्पत्ति लूट ले गए—*Utbi*, p. 308.; *AI.*, II, p. 103.; *Gardizi*, pp. 71–76. १५वीं सदी के हिन्दू ग्रन्थ 'कान्हडदेप्रबन्ध' में मुसलमान आक्रमणकारियों की रक्तपात और नृशंसतापूर्ण नीति की करुण कथा उल्लिखित है, जिसमें कहा गया है कि आक्रामकों ने तोड़फोड़ की, तहस-नहस किया, लूट-मार की, और कत्लेआम किया। गाँव-के-गाँव फूँक दिये गये, फसलें बर्बाद कर दी गयीं, लोगों की सम्पत्ति लूट ली गई, ब्राह्मण, स्त्रियों और बच्चों को पकड़-पकड़कर कच्चे चमड़े के कोड़ों से कठोरतापूर्वक मारा गया। गायों को मार कर उनका खून और मांस कूओं में भर दिया गया, जिससे बच्चे और बूढ़े प्यास से तड़प कर मरने लगे—। पद्मनाभ : काह्नडदे-प्रबन्ध. १.१५७–६१। अतः इन ऐतिहासिक प्रमाणों के आलोक में मुहम्मद हबीब का कथन पूर्वाग्रहयुक्त है।

2. देखिए, इस प्रबन्ध के खण्ड (क) का 'अलबीरूनी का परिप्रेक्ष्य' शीर्षक अध्याय।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

हिन्दू समाज में हिन्दू दासों को शुद्ध करने की कोई व्यवस्था नहीं थी, अलबीरूनी के इस कथन के विपरीत तद्युगीन भारतीय ग्रन्थों के अनेक विधान मिलते हैं। सिन्धु-तट पर बैठकर देवल ऋषि ने उन हिन्दुओं की शुद्धि का आदेश दिया, जिन्हें म्लेच्छ बलपूर्वक पकड़कर ले गये हों और गौ का वध करने तथा मांस खाने के लिए बाध्य कर दिया हो अथवा जिन्हें उनकी स्त्रियों के साथ रहने और भोजन करने के लिए विवश किया गया हो। इनके अतिरिक्त उन स्त्रियों को भी शुद्ध किया जा सकता था जिन्हें म्लेच्छ उठा ले गये रहे हों।[1] विज्ञानेश्वर ने भी अनेक स्मृतियों के प्रमाण के आधार पर शुद्धि की व्यवस्था दी है।[2] ये शुद्धि-विधान लोकप्रचलित थे, इनकी पुष्टि इससे होती है कि जब मुहम्मद बिन कासिम ने बलपूर्वक हिन्दुओं को मुसलमान बनाया था, तब उनके लौटने पर उन्हें शुद्ध कर लिया गया।[3]

मंत्र-जंत्र और जादू-टोना

अलबीरूनी ने भारतीयों के उन विश्वासों का वर्णन किया है, जो चमत्कारों से प्रभावित थे। मंत्र-जंत्र और जादू-टोने इसी चमत्कारी विद्या से सम्बन्धित हैं, जिनके प्रति समाज के प्रायः अधिकांश लोगों की आस्था रही है। अलबीरूनी लिखता है : "मंत्र-जंत्र और जादू-टोने में हिन्दुओं का अडिग विश्वास है और इनके प्रति उनका झुकाव प्रायः बहुत है।"[4]

वह आगे कहता है कि "उनके अधिकांश मंत्र-जंत्र साँप से काटे गये लोगों के लिए हैं। इनमें उनके अत्यन्त विश्वास का पता इससे लगता है, जो मैंने एक आदमी के मुँह से सुना था। उसने एक मरे हुए व्यक्ति को देखा था जो साँप काटने से मरा था, लेकिन मंत्रों का प्रयोग करने पर उसने पुन: जीवन प्राप्त किया और जीवित रहा तथा अन्य लोगों की तरह चलता-फिरता रहा।"[5]

निश्चय ही, इसमें हिन्दू बहुत अधिक दक्ष थे। राय नामक एक पण्डित ने इस पर एक पुस्तक लिखी थी जिसका अनुवाद अरबी में हुआ था।[6] सर्पों के मन्त्र-जन्त्र सम्बन्धी ऐसी ही एक अन्य पुस्तक का अरबी में अनुवाद हुआ था।[7]

---

1. देवलस्मृति, श्लोक १.९०।
2. विज्ञानेश्वर—याज्ञ० ३.२६५।
3. *ED.*, I, p. 126.
4. *AI.*, Vol. II, p. 193.
5. *Ibid.* p. 194.
6. इब। नदीम, पृ० ३०३, अ० भा० सं०, पृ० १२८।
7. उयूनुल् आबा फी तबकातुल आतब्बा, पृ० ३३, अ० भा० सं०, पृ० १२८।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

साँप के काटने से मर जानेवाले एक अन्य व्यक्ति के जंत्र-मंत्र से जिन्दे हो जाने की कथा अलबीरूनी देता है, "एक और आदमी से मैंने यह कथा सुनी थी। उसने एक आदमी को देखा था जो साँप के काटने से मरा था। मंत्र का प्रयोग किया गया, परिणाम में वह जी उठा, वसीयत लिखाया, जहाँ उसने धन को जमा किया था, दिखाया और उनके विषय में समस्त सूचनाएँ दीं, लेकिन जब उसने भोजन की गन्ध ली, वह गिर कर मर गया, जीवन पूर्णतः समाप्त हो गया।"[१]

साँपों के इन मंत्रों के प्रति अलबीरूनी का विश्वास नहीं था। वह लिखता है कि "मैं स्वयं इन चीजों के विषय में कुछ नहीं कह सकता, क्योंकि मेरा इनमें विश्वास नहीं।"[२]

प्राण-त्याग

समाज में प्राणत्याग का प्रचलन इस विश्वास का द्योतक था कि मरने के उपरान्त मोक्ष की प्राप्ति होती है। इसीलिए लोग तीर्थस्थलों में जाकर प्राण-त्याग करते थे। हिन्दुओं में प्राणत्याग की प्रथा बहुत पहले से है। यद्यपि मनु तथा अन्य धर्मविश्लेषकों ने इसका विरोध किया है।[3] किन्तु चीनी यात्री श्वानच्वाङ्ग का कथन है कि वृद्ध पुरुषों को एक नाव में बैठाकर गङ्गा के बीच पहुँचाया जाता था और वहाँ उन्हें डुबो दिया जाता था। यह धर्म का एक बहुत बड़ा काम समझा जाता था।[४] मत्स्य और कूर्म पुराणों ने तीर्थ स्थानों पर जीवन त्याग करने का निर्देश दिया है। मत्स्य पुराण को उद्धृत करते हुए लक्ष्मीधर का कथन है कि वे लोग प्रशंसायोग्य हैं जो अपने को वाराणसी में जलाकर या अपने को प्रयाग के सङ्गम में डालकर या अमरकण्टक की पहाड़ियों से नर्मदा में कूदकर प्राण त्यागते हैं।[५]

हिन्दुओं की इस प्रथा पर अलबीरूनी ने भी लिखा है। उसके अनुसार "अगर वे अपने को मार डालना चाहते हैं तो यह काम किसी दूसरे ढङ्ग से करते हैं, वे किसी व्यक्ति को किराये पर ले लेते हैं, ताकि वह उन्हें गङ्गा में डुबो दे और पानी के नीचे इतनी देर तक रखे कि मर जायँ।"[६]

---

1. *AI.*, Vol. I, p. 194.
2. *Ibid.*
3. मनु० ५. ८९, पराशर० ४. १-२।
4. *Watters.*, I, p. 175.
5. कृत्यकल्पतरु, तीर्थविवेचनकाण्ड, पृ० २१, १३८-३९, १४१-४६, २०७।
6. *AI.*, Vol. II, p. 170.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

प्राणत्याग के लिए अलबीरूनी ने प्रयाग को ही उपयुक्त स्थान निर्दिष्ट किया है तथा वहाँ प्राणत्याग करने में लोगों को क्या सुविधा मिलती थी, इस पर भी प्रकाश डाला है। वह लिखता है: "दो नदियों, गङ्गा और यमुना, के सङ्गम पर 'प्रयाग' नाम का एक विशाल वृक्ष है, यह वृक्ष 'वट' कहलानेवाली जाति का है, यह इस विशेषता का वृक्ष है कि इसकी शाखाओं में से दो प्रकार की उपशाखाएँ निकलती हैं, कुछ तो ऊपर की ओर जाती हैं, कुछ नीचे की ओर जड़ों की तरह, लेकिन बिना पत्तों की। यदि ऐसी उपशाखा भूमि में घुस जाती है, तो जिस शाखा से यह निकली होती है, उसके लिए आधारस्तम्भ की तरह हो जाती है। प्रकृति ने इसे काम से निरूपित किया है, क्योंकि इस वृक्ष की शाखाओं का विस्तार बहुत अधिक होता है (और सहारे के लिए प्रयुक्त रहता है)। यहाँ ब्राह्मण और क्षत्रिय, इस वृक्ष पर चढ़कर तथा अपने को गङ्गा में फेंककर प्राणत्याग किया करते हैं।"[1]

अलबीरूनी ने अल्पज्ञतावश वृक्ष का नाम 'प्रयाग' लिख दिया है। वस्तुतः सङ्गम स्थान का नाम ही प्रयाग है।

अलबीरूनी के बाद होनेवाले अरबलेखक गरदीजी ने हिन्दुओं की प्राणत्याग प्रथा पर विस्तार से लिखा है। उसने प्राणत्याग करनेवालों को कई श्रेणियों में विभाजित किया है। उसके अनुसार कुछ हिन्दू नदी के किनारे कुआँ खोदकर उसमें आग जला देते हैं। प्राणत्याग का इच्छुक व्यक्ति उसमें फेंक दिया जाता है, तत्पश्चात् पानी में डूब जाता है। जबतक वह मर नहीं जाता, यही क्रम किया जाता है।...... कुछ लोग अपने उदर पर पत्थर से आघात करते हैं, जबतक कि उनका पेट फट नहीं जाता। परिणामस्वरूप वे मर जाते हैं। दूसरे वर्गवाले लोग उस स्थान पर नित्य जाते हैं, जहाँ गङ्गा दूसरी नदी चून (या हून?) से मिलती है। इनमें से जो अपना उत्सर्ग करना चाहते हैं उनको अस्त्र से समाप्त कर दिया जाता है तथा उनके शरीर का आधा गङ्गा में डाल दिया जाता है और आधा चून नदी में। वे कहते हैं कि ये दोनों नदियाँ उन्हें स्वर्ग ले जाएँगी।"[2]

अबू जैद सराफी का कथन है कि "इन लोगों का पुनर्जन्म पर इतना विश्वास है कि वे अपने आप को जलाना चाहते हैं, तब राजा से आज्ञा लेते हैं और फिर बाजारों में घूमते हैं। दूसरी ओर खूब आग सुलगाई जाती है और झाँझ बजाई जाती है। उनके सम्बन्धी चारों ओर इकट्ठे हो जाते हैं। फिर फूलों का

1. *Ibid.*, pp. 170-1.
2. *MSS. Ouseley* 240, pp. 260 B-262 B.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

एक मुकुट बनाकर, जिसमें जलती हुई आग रखी रहती है, उनके सिर पर रख देते हैं, जिससे सिर की खाल जलने लगती है। वह उसी तरह खड़ा रहता है और धीरे-धीरे चलकर चिता में कूद पड़ता है।"[1] आत्महत्या का एक और ढङ्ग यह भी था कि "आदमी बहुत बड़ी छुरी से अपना कलेजा आप फाड़कर और हाथ डाल कर अन्दर से अपना हृदय निकाल लेता है। ये सब काम वह बहुत ही धैर्य और शान्ति से करता है।"[2]

किन्तु प्राणत्याग का अत्यधिक रोमाञ्चिक दृश्य इब्नुल फकीह ने प्रस्तुत किया है। उसने लिखा है कि "मुल्तान में एक आदमी एक मन्दिर में आया। वह अपने सिर और उँगलियों में तेल से भींगी हुई रुई लपेटे हुए था। वहाँ पहुँच कर उसने उस रुई में आग लगा दी और जलती हुई बत्तियाँ उसके शरीर तक पहुँच गईं। वह उसी प्रकार धैर्य तथा शान्ति के साथ जलकर राख हो गया।"[3]

मुसलमान लेखकों द्वारा प्राणत्याग के इन विवरणों का उल्लेख निश्चय ही भयङ्कर और डरावना है। लेकिन इनसे भारतीयों के दृढ़ विश्वास, अद्भुत् साहस, अनुपम धैर्य और जीवन के प्रति अनिच्छात्मक भावना का पता लगता है।

अरब लेखकों के इन विवरणों के अतिरिक्त तद्युगीन भारतीय प्रमाण भी उपलब्ध हैं, जिनके आधार पर यह कहा जा सकता है कि प्राणत्याग के प्रति हिन्दुओं का विश्वास, उनकी ईश्वर-निष्ठा का प्रबल प्रतीक है।

मध्यकालीन साहित्यिक उदाहरणों से विदित होता है कि हिन्दू समाज में प्राणत्याग के लिए लोग तीर्थस्थानों पर जाते थे। चौलुक्य भीमराज प्रथम ने ९९६ ई० में सिद्धपुर सरस्वती नदी के किनारे चिता जलायी।[4] चन्देल नरेश धङ्ग ने सौ वर्ष से अधिक की आयु उपभोग कर चुकने के बाद १००२ ई० के कुछ दिन बाद प्रयाग में मृत्यु का वरण किया।[5] इसी काल में शाहय नृप जयपाल ने, महमूद गजनी से पराजित होने पर, अपने को चिता में जला डाला।[6] १०३४

---

1. अबूज़ैद, पृ० ११५–१८, अ० भा० सं०, पृ० १७५–७६।
नोट : डॉ० उपेन्द्र ठाकुर ने अपने "दि हिस्ट्री अव सुसाइड इन इण्डिया" में पृ० ९१ पर अरब लेखकों के अन्तर्गत केवल अबूज़ैद का विवरण ईलियट (ED., I, p. 10) के आधार पर लिखा है, जो अधूरा है। अबूज़ैद के अतिरिक्त अन्य अरब लेखकों ने भी प्राणत्याग प्रथा पर विस्तार से लिखा है, जिसकी समीक्षा संक्षेप में ऊपर की गई है।
2. अबूज़ैद, पृ० ११५–१८, अ० भा० सं०, पृ० १७५–७६।
3. आसारुल बिलाद (कज़वीनी), पृ० ८१, अ० भा० सं०, पृ० १७६।
4. द्वयाश्रयकाव्य, ६.१००–७, प्रबन्धचिन्तामणि में दूसरा उद्धरण है (संपा० टानी), पृ० २९; *IA.* IV, 111.
5. *EI.*, I, 14.
6. DHNI., I, 87.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

और १०४८ ई० के बीच कलचुरि राजा गाङ्गेयदेव ने अपनी सौ रानियों के साथ प्रयाग में प्राणत्याग की।[1] जयचन्द ने जब यह सुना कि उसकी रानी सूहवा-देवी ने अपने लड़के को राज्य-प्राप्ति कराने के लिए मुसलमानों को निमंत्रित किया है तो वह ११९४ ई० में गङ्गा में डूब मरा।[2] अद्भुतसागर के कुछ श्लोक को लेकर कतिपय लोगों का यह कथन है कि वल्लालसेन ने अपनी रानी के साथ गङ्गा में डूब कर अपना प्राणत्याग किया।[3]

इन साहित्यिक प्रमाणों से इतना तो अवश्य स्पष्ट है कि मुक्ति-प्राप्ति के निमित गङ्गा में डूबकर आत्महत्या करने का विश्वास समाज में बहुत घना था। प्राय: लोगों का विश्वास था कि प्रयाग अथवा अन्य किसी तीर्थ स्थान में जाकर आत्महत्या करने से ही मुक्तिलाभ होता है। पुनर्जन्म से उत्प्रेरित मुक्तिलाभ के लिए किए जानेवाले ऐसे साहसिक कार्य भारत में ही देखने को मिल सकते हैं।

---

1. *EI.*, II, 4, XII, 211; XXI, 94; *JASB.* XXI, 116.
2. प्रबन्धचिन्तामणि (टानी), b० १८५–८६, अनु० हजारीप्रसाद द्विवेदी, पृ० १४०–४१, Cf. *Rasamala*, I, p. 223.
3. *JUPHS.*, VI, pts. 1–2, p 32.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

उपसंहार

अब रैहाँ अलवीरूनी अपने युग का अन्यतम विद्वान् था। वह अनेकानेक विषयों का ज्ञाता और विभिन्न विदेशी विद्याओं का मर्मज्ञ था। जब वह चौवालीस वर्ष का था, तब महमूद गजनी ने १०१७ ई० में उसकी मातृभूमि ख्वारिज्म पर आक्रमण कर उसे विजित कर लिया तथा वहाँ के विद्वानों को अपने साथ गजन लेता गया। अलबीरूनी भी उनमें था। वहाँ वह अपनी मृत्युपर्यन्त (१०४८ ई०) राज्याश्रय में रहा। इस बीच, ज्ञानार्जन और विद्याध्ययन के निमित्त उसने भारत की यात्रा की। उसके भारत आगमन, प्रवास और भ्रमण के विषय में नवीन साक्ष्यों के आधार पर स्वतंत्र निर्णय लेकर यह स्पष्ट किया गया है कि वह भारत में दो वर्षों से अधिक नहीं रहा तथा पञ्जाब के कुछ स्थानों के अतिरिक्त उसने भारत के अन्य किसी स्थान का भ्रमण नहीं किया।

भारतीय विषयों में पारङ्गत होने के पश्चात् उसने विभिन्न भारतीय विद्याओं से सम्बन्धित 'तहकीक मालिल् हिन्द नामक पुस्तक का प्रणयन किया। पुस्तक के प्रणयन में उसने अनेक स्रोतों का उपयोग किया। भारतीय ग्रन्थों के अध्ययन तथा स्वयम् के पर्यवेक्षण के अलावा उसने भारत के विभिन्न भागों में रहने वाले भ्रमणशील व्यक्तियों के मौखिक सम्वादों का भी उपयोग किया। इन सम्वाददाताओं के वृत्तान्तों को उसने बड़ी सजगता और सावधानी से उपर्युक्त पुस्तक में समाविष्ट किया। विषय-वर्णन में तटस्थ रहते हुए भी कहीं-कहीं वह जातिगत सांस्कारिक पूर्वाग्रहों से अनभिज्ञतावश आच्छन्न हो गया है। वैसे उसने वैज्ञानिक शैली का आधार लिया है। जहाँ कहीं भी वह विषय को न समझ सका है तथा उसे अपनी त्रुटि प्रतीत हुई है वहाँ तुरन्त क्षमाप्रार्थी हुआ है और अपने व्यक्तिगत वैशिष्ट्य को उद्‌घाटित करता चला है।

अलबीरूनी ने भारत का भौगोलिक विवरण भी दिया है। उसका यह विवरण भारतीय ग्रन्थों और सम्वाददाताओं के आधार पर ही है, किन्तु इसका महत्त्व इस कारण है कि अलबीरूनी ही वह पहला विदेशी मुसलमान लेखक है जिसने भारत के भूगोल को इतने विस्तार से निरूपित किया है।

समयुगीन भारतीय राज्यों पर होने वाले तुर्क आक्रमणों में उसने महमूद गजनी के पूर्ववर्ती आक्रामक मुहम्मद कासिम और सुबुक्तिगीन के भारत आक्रमणों की ज्ञप्ति दी है। शाहिय राजवंश और महमूद गजनी के सोमनाथ आक्र-

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मण सम्बन्धी महत्वपूर्ण सूचनाएँ देते हुए भी उसने महमूद गजनी के आक्रमणों की विस्तार से चर्चा नहीं की है।

राजनीति के क्षेत्र में वह तत्कालीन न्यायालयों की कुछ कार्यविधियों तक ही सीमित रह गया। साक्षी, शपथ और दिव्य प्रमाणों के उल्लेख उसमें मुख्य हैं। दण्ड के अन्तर्गत उसने ब्राह्मणों को मिलनेवाली विशेष-सुविधाओं मात्र का विशेष उल्लेख किया है। दाय के अन्तर्गत उसने स्त्री-पुरुष दोनों के सम्पत्ति-विषयक अधिकारों की चर्चा की हैं। राजस्व में अनेक प्रकार के कर लगते थे; किन्तु अलबीरूनी ने केवल भूमिकर और व्यापारिक कर का निर्देश किया है। स्पष्ट है. राजनीति के सिद्धान्तों का विवरण उसको अभीष्ट न था।

भारतीय समाज-रचना के अध्ययन के प्रति अलबीरूनी अधिक आकृष्ट हुआ। वर्णगत विभाजन तथा विभिन्न जातियों का उल्लेख उसने भारतीय धर्मशास्त्रकारों के अनुरूप ही किया है। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र, ये चारों वर्ण भारत में बहुत पहले से रहे हैं। इनके भिन्न-भिन्न व्यवसाय और कर्म थे। क्रमशः ये एक दूसरे से उच्च माने जाते थे। वर्णों में शूद्रों को चौथा स्थान मिला था। अन्त्यजों में अनेक जातियाँ थीं, जिनके विभिन्न कर्म थे। हिन्दू समाज में ये जातियाँ बहुत पहले से रहती आ रही थीं, जिनके कर्म पारम्परिक थे। आश्रम व्यवस्था भी हिन्दुओं की प्राचीन व्यवस्था थी, जिनमें चार आश्रम थे, ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास। अलबीरूनी ने ये सम्पूर्ण वर्णन भारतीय धर्मशास्त्रों के अनुरूप किए हैं।

हिन्दू विवाह का आधार धार्मिक और सामाजिक उत्कर्ष था। इसकी अनेक प्रणालियाँ भारत में प्रचलित थीं। आठ प्रणालियों का उल्लेख धर्मशास्त्रकारों ने किया है, किन्तु अलबीरूनी ने केवल दैव विवाह का उल्लेख किया है। अनुलोम, प्रतिलोम, सगोत्र और सपिण्ड को दृष्टि में रखकर हिन्दू समाज में विवाह किया जाता था। विवाह में साधारणतः कन्या की आयु अल्प रहती थी। विवाह के पश्चात् सम्बन्ध-विच्छेद की प्रथा हिन्दुओं में प्रायः व्यवहृत नहीं थी।

हिन्दू समाज में स्त्रियों की स्थिति अत्यन्त मर्यादित और आदरपूर्ण थी। प्राचीनकाल की अपेक्षा पूर्वमध्यकाल में उनके दाय सत्व में वृद्धि हुई, किन्तु शिक्षा और अध्ययन पूर्णतः बन्द हो गये। उनके प्रति समाज में विलासी प्रवृत्तियाँ अधिक सजग हो गई। स्थान-स्थान के देव-मन्दिरों में दासियों की नियुक्तियाँ होने लगीं। कभी-कभी पति की मृत्यु के पश्चात् उन्हें सबलतापूर्वक सती होने के लिए बाध्य किया जाता था। फलतः उनकी स्थिति दयनीय और दुर्बल हो गई।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अलबीरूनीकालीन हिन्दू समाज में शिक्षा और विद्या-अध्ययन का क्रम प्राचीन आधार से उत्प्रेरित था। वेद की शिक्षा केवल ब्राह्मण और क्षत्रियवर्ग को दी जाती थी। उन्हें कण्ठस्थ करने में जो त्रुटियाँ वैदिक युग में मानी जाती थीं और उन्हें दूर करने का जो प्रयत्न किया जाता था, वैसा ही इस युग में भी था। प्राचीन-काल में वैश्यों को वेदाध्ययन करने का जो अधिकार था वह अलबीरूनी के काल में न रहा। शूद्रों की तरह उन्हें भी वेद पढ़ने का अधिकार नहीं था। विद्याध्ययन के अन्तर्गत अनेक विषय थे, जिनकी उसने चर्चा की है; जैसे इतिहास, गणित, भूगोल, दर्शन, रसायन, ज्योतिष, न्याय, मीमांसा आदि। उस समय देश में शिक्षा और विद्या के प्रमुख केन्द्र वाराणसी, कश्मीर, मथुरा, धार आदि प्रमुख नगर थे।

तत्कालीन हिन्दू समाज में अनेक धार्मिक सम्प्रदाय थे। केवल हिन्दू धर्म के अन्तर्गत वैष्णव, शैव, सूर्य, शक्ति आदि मतावलम्बी थे। धर्मावलम्बियों के अनेकानेक देवमन्दिर देश के विभिन्न स्थानों पर वर्तमान थे, जिनकी महत्ता और प्रसिद्धि बहुत अधिक थी। इसीलिए हिन्दुओं के अनेक तीर्थ स्थान हो गए जिसमें प्रमुख थे, वाराणसी, प्रयाग, गया, स्थाण्वीश्वर, मथुरा, मुल्तान, कश्मीर आदि। अतः पूजन और अर्चन विधि के निमित्त हिन्दुओं के वर्ष में अनेक त्यौहार होते थे, जब वे नियमपूर्वक उपवास और व्रत रखते थे। इन्हीं धार्मिक प्रेरणाओं से प्रभावित उनके विभिन्न संस्कार होते थे। हिन्दू धर्म के अतिरिक्त बौद्ध और जैन धर्मों की भी समाज में ख्याति थी, लेकिन हिन्दू धर्म के सम्मुख इन धर्मों का प्रभाव मन्द था। अलबीरूनी के इस सम्बन्ध के विवरणों से भारतीय सामाजिक और धार्मिक जीवन पर अच्छा प्रकाश पड़ता है।

तद्युगीन समाज में भोजन और पेय सम्बन्धी कुछ निषिद्धताएँ थीं, जैसे ब्राह्मणों के लिए मांस, शराब, लहसुन और प्याज का सेवन करना वर्जित था। कुछ पशु-पक्षियों के मांस विहित थे, कुछ नहीं। शाकाहारी व्यक्तियों के लिए अन्न के अतिरिक्त फल आदि की व्यवस्था थी। समाज में अनेक प्रकार के वस्त्र और आभूषण स्त्री-पुरुष दोनों धारण करते थे। मनोरंजन के अनेक साधन थे। खेलों में शतरञ्ज का खेल अत्यधिक प्रचलित था और मनोरञ्जनों में मृगया। हिन्दूओं के अनेक प्रकार के रीति-रिवाज और विश्वास उनके अपने थे। ये विश्वास और रीति-रिवाज विदेशियों के लिए निश्चय ही कौतुकपूर्ण थे। प्रत्येक जाति एक दूसरी विदेशी जाति के रीति-रिवाजों और विश्वासों के प्रति भिन्नतापूर्ण दृष्टि रखती है। अलबीरूनी के भी एतत्सम्बन्धी विवरण कौतुकपूर्ण और आलोचनात्मक हैं, इसमें सन्देह नहीं।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अन्तिम निष्कर्ष के रूप में हम कह सकते हैं कि अलबीरूनी ने "तहकीक-मालिल्-हिन्द' लिखकर अरब ज्ञानजगत् की वृद्धि तो की ही, भारत का उपकार भी किया; विशेषत: इतिहास के उन विद्यार्थियों का जो तत्कालीन भारतीय जीवन की गहराई में पहुँचना चाहते हों। वह एक ऐसा विद्वान् था जो अरबी और संस्कृत साहित्यों के विभिन्न अङ्गों पर समान अधिकार रहता था। भारत के ज्योतिष, धर्म, दर्शन, और समाज के अध्ययन के प्रति वह अधिक आकृष्ट था तथा उसकी दृष्टि सांस्कृतिक थी, यह उसके विवरण से सुस्पष्ट है। हिन्दू जाति के गुण-दोषों का विवेचनकर वह इस्लाम के भारत में भावी प्रचार में अवश्य ही सहायक हुआ प्रतीत होता है, पर उस अध्ययन से लाभ उठाकर हिन्दू जाति भी अपनी कमजोरियों को अवश्य दूर कर सकती थी। उसने वैसा नहीं किया, यह स्वयँ उसकी उस जर्जरावस्था का प्रमाण है, जिसको चर्चा अलबीरूनी करता है। इसके विपरीत यदि वह भारत को तत्कालीन सङ्घर्षमय राजनीतिक जीवन के प्रति आकृष्ट होता अथवा महमूद गजनी के एक दरबारी के नाते उसकी ध्वंसात्मक लूट के विवरणों को ही अपनी पुस्तक का मुख्य वर्ण्य-विषय बना लेता तो उसका मूल्य वह न होता जो वास्तव में है।

———

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सहायक ग्रन्थ सूची

संस्कृत ग्रन्थ

अग्निपुराण : संपादक, राजेन्द्रलाल मित्र, बिब्लिओथिका इण्डिका, कलकत्ता, १८७३-७९।
आनन्दाश्रम संस्कृत सिरीज, पूना, १९००।
सम्पादक, पञ्चानन तारकरत्न, वंगवाशी प्रेस, कलकत्ता।

अपरार्क : याज्ञवल्क्यस्मृति पर भाष्य, आनन्दाश्रम संस्कृत सिरीज, पूना, १९०३-४।

अत्रिस्मृति : धर्मशास्त्र संग्रह, जीवानन्द विद्यासागर द्वारा सम्पादित, कलकत्ता, १८७६।
आनन्दाश्रम संस्कृत सिरीज, पूना, १९०५।

अथर्ववेद : सम्पादक, आर० रौथ और डब्ल्यू० डी० ह्विटने, बर्लिन, १८५६।
बम्बई, १८९५-९८।

अमरसिंह : अमरकोश, क्षीरस्वामी की टीका सहित, ओरिएण्टल बुक एजेंसी, पूना।
माहेश्वरी व्याख्या सहित, भण्डारकर ओरिएण्टल रिसर्च इंस्टीच्यूट, पूना १९०७।

अनन्तदेव : राजधर्म कौस्तुम्भ, गायकवाड़ ओरिएण्टल सिरीज, १९३५।

आपस्तम्ब गृह्यसूत्र : सुदर्शनाचार्य की टीका सहित, मैसूर गवर्नमेंट संस्कृत लाइब्रेरी सिरीज।

आपस्तम्ब धर्मसूत्र : हरदत्त की टीका सहित, संम्पादक, हलस्यनाथ शास्त्री।

आश्वलायन गृह्यसूत्र : नारायण की टीका सहित, निर्णयसागर प्रेस, बम्बई, १८९४।

आश्वलायन श्रौतसूत्र : बिब्लियोथिका इण्डिका, १८७९।

अरिसिंह : सुकृतसंकीर्तन, भावनगर, १९१७।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ऋग्वेद : सायण भाष्य सहित, सम्पादक, एफ० मैक्समूलर, द्विव० सं० १८९०-९२। आर० टी० एच० ग्रिफिथ द्वारा अंग्रेजी अनुवाद, लाजरस, वाराणसी, १८९६-९७। सायण भाष्य सहित, ५ भाग, वैदिक संशोधन मण्डल, पूना १९३३-५१।

उदयप्रभासूरि : सुकृत्कीर्तिकल्लोलिनी, सम्पादक, सी० डी० दलाल, गायकवाड़ ओरिएण्टल सिरीज, नं० १०।

उपनिषद् : ८ उपनिषद्, निर्णयसागर प्रेस, बम्बई।

ऐतरेय ब्राह्मण : सम्पादक, आफ्रेख्ट, बान, १८७९। षडगुरु शिष्यकृत सुखप्रदावृत्ति सहित, त्रावणकोर विश्वविद्यालय संस्कृत सिरीज, त्रिवेन्द्रम।

कमलाकरभट्ट : निर्णयसिन्धु, निर्णयसागर प्रेस, बम्बई, १९३५।

कल्हण : राजतरङ्गिणी, अंग्रेजी अनुवाद और टिप्पणी, एम० ए० स्टीन, दो भाग, वेस्टमिनिस्टर, १९००। पुनर्मुद्रित, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, पटना, वाराणसी, १९६१। आर० एस० पण्डित द्वारा अंग्रेजी अनुवाद, इलाहाबाद १९३५।

कृष्णमिश्र : प्रबोध चन्द्रोदय, निर्णयसागर प्रेस, बम्बई, १९०४।

काठकगृह्य : सम्पादक, डा० कलन्द, १९२५।

कात्यायन स्मृति : अनुवादक, पी० वी० काणे। सम्पादक नारायणचन्द्र वंद्योपाध्याय, कलकत्ता, १९१७।

कामन्दक नीतिसार : सम्पादक, आर० मित्रा, बिब्लियोथिका इण्डिका, १८८४।

कालिदास : कुमारसम्भव, निर्णयसागर प्रेस, बम्बई, १९२७। ऋतुसंहार, निर्णयसागर प्रेस, बम्बई, १९२२। रघुवंश, सम्पादक, शंकर पाण्डुरङ्ग पण्डित, ३ भाग, बम्बई, १८६९-७४। अभिज्ञान शाकुन्तल, चौखम्भा संस्कृत सिरीज। मेघदूत, कालिदास ग्रन्थावली, वाराणसी। मालविकाग्निमित्र, बम्बई संस्कृत सिरीज, १८८९। विक्रमोर्वशीय, बम्बई संस्कृत सिरीज, १९०१।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कौशिकसूत्र : सम्पादक, ब्लूमफील्ड, १८१० ।

कूर्मपुराण : सम्पादक, नीलमणि मुखोपाध्याय, बिब्लियोथिका इण्डिका, कलकत्ता, १८९० ।
सम्पादक, पञ्चानन तारकरत्न, बङ्गवासी प्रेस, कलकत्ता, द्विव० सं० ।

कौटिलीय अर्थशास्त्र : सम्पादक, आर० शाम शास्त्री, मैसूर, १९०९, १९२९ ।
हिन्दी अनुवाद, उदयवीर शास्त्री, लाहौर, १९२५ ।

खादिरगृह्य : मैसूर गवर्नमेण्ट ओरिएण्टल लाइब्रेरी सिरीज ।

गरुड़पुराण : बम्बई, १९०८ ।
अंग्रेजी अनुवाद, एम० एन० दत्त, कलकत्ता, १९०८ ।

गोपाल भट्ट : हरिभक्ति विलास, जीव गोस्वामी की टीका सहित, मुर्शिदाबाद ।

गोपीनाथ : संस्कार रत्नमाला, आनन्दकम् प्रेस ।

गोभिलगृह्यसूत्र : बिब्लियोथिका इण्डिका सिरीज ।

गौतमधर्म सूत्र : सम्पादक, स्टेंजसर, लन्दन, १८७६ ।
हरदत्त की टीका सहित, आनन्दाश्रम संस्कृत सिरीज, १९१० ।

गौतम स्मृति : अंग्रेजी अनुवाद, जी० बुह्लर, सेक्रेड बुक ऑव दि ईस्ट, आक्सफोर्ड, १८९७ ।

चण्डेश्वर : गृहस्थरत्नाकर, बिब्लियोथिका इण्डिका ।
कृत्यरत्नाकर, ,, ,, १९२५ ।
राजनीतिरत्नाकर, सम्पादक काशीप्रसाद जायसवाल बिहार उड़ीसा रिसर्च सोसाइटी, पटना, १९३६ ।
विवाद रत्नाकर, बिब्लियोथिका इण्डिका ।

चन्द बरदाई : पृथ्वीराजरासो, सम्पादक, श्यामसुन्दरदास, वाराणसी, १९०४ ।

जल्हण : सूक्तिमुक्तावली, सम्पादक, ई० कृष्णमाचार्य, गायकवाड़ ओरिएण्टल सिरीज, नं० ८२ ।

जयसिंह सूरि : कुमारपाल भूपालचरित्, सम्पादक, क्षांति विजय गणि, बम्बई, १९२६ ।

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

जातक : सम्पादक, फोसबोल, १८७७-९७।
कैम्ब्रिज अनुवाद, १८९५–१९१३।
हिन्दी अनुवाद, भदन्त आनन्द कौसल्यायन।

जिनमण्डन : कुमारपालप्रतिबोध, सम्पादक, चतुर्विजय मुनि, श्री आत्मानन्द ग्रंथमाला, १९१४।

जीमूतवाहन : दायभाग, अनुवादक, एच० टी० कोलबुक, कलकत्ता, १९१०।
कालविवेक, सम्पादक, मधुसूदन स्मृतिरत्न, बिब्लियोथिका इण्डिका, १९०५।
व्यवहारमातृका, सम्पादक आशुतोष मुकर्जी, मेम्बायर्स अव दि एशियाटिक सोसाइटी अव बंगाल, कलकत्ता।

जोनराज : द्वितीय राजतरंगिणी, सम्पादक, पिटर्सन, बम्बई संस्कृत सिरीज, बम्बई, १८९६।

तैत्तिरीय ब्राह्मण : सम्पादक, राजेन्द्रलाल मित्र, कलकत्ता, १८५५–७०।
पूना १८९८।

दामोदरगुप्त : कुट्टनीमतम्, हिन्दी अनुवाद, अत्रिदेव विद्यालङ्कार, वाराणसी, १९६१ ई०।

देवण्णभट्ट : स्मृतिचन्द्रिका, सम्पादक, एल० श्रीनिवासचार्य, ६ भाग, मैसूर, १९१४-२१।
सम्पादक, जे० आर० घरपुरे, बम्बई, १९१८।

देवलस्मृति : आनन्दाश्रम संस्कृत सिरीज, पूना।
अनुवादक, एम० एन० रे, जर्नल अव बिहार उड़ीसा रिसर्च सोसाइटी, १९२७।

धर्मशास्त्र संग्रह : सम्पादक, जीवनन्द विद्यासागर, कलकत्ता, १८७६।

नारदस्मृति : सम्पादक, जोली, कलकत्ता, १८८५।

नीलकण्ठ : व्यवहारमयूख, सम्पादक, पी० बी० काणे, भण्डारकर ओरिएण्टल रिसर्च इन्स्टीच्यूट, पूना, १९२६।
दानमयूख, चौखम्भा संस्कृत सिरीज।

नीलमतपुराण : सम्पादक, डि व्रीजे, लाहौर, १९२४ (लीडन, १९३६)

पद्मपुराण : सम्पादक, बी० एन० माण्डलिक, ४ भाग, आनन्दाश्रम संस्कृत सिरीज, पूना, १८९३-९४।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पद्मनाभ : कान्हड दे प्रबन्ध, सम्पादक, जिनविजय मुनि, राजस्थान पुरातत्व ग्रन्थमाला।

प्रह्लादनदेव : पार्थ पराक्रमव्यायोग, गायकवाड़ ओरिएण्टल सिरीज भाग ४।

पाणिनि : अष्टाध्यायी, निर्णयसागर प्रेस, १९२९।

पारास्कर गृह्यसूत्र : गुजराती प्रेस संस्करण, १९१७।

पुरातनप्रबंधसंग्रह : सम्पादक, जिनविजय मुनि, सिन्धी जैन सिरीज, नं० २, कलकत्ता, १९२६।

बल्लाल : भोजप्रबन्ध, चौखम्भा संस्कृत सिरीज, बम्बई, १९०९

बाणभट्ट : हर्षचरित, अनु० कावेल और टामस, ओरिएण्टल ट्रांसलेशन फण्ड, न्यू सिरीज, नं० २, १८९७।

बिल्हण : कादम्बरी, सम्पादक, महेश्वर रामचन्द्रकाले, बम्बई। विक्रमाङ्कदेवचरित्, बम्बई, १८७५।

बृहस्पतिस्मृति : सम्पादक, ए० फ्यूहरर, लिपजिग, १८७९।

ब्रह्मपुराण : आनन्दाश्रम प्रेस, गायकवाड़ ओरिएण्डल सिरीज, बड़ौदा, १९४१।

ब्रह्माण्डपुराण : गुरुमण्डल ग्रन्थ माला, कलकत्ता, सं० २००९।

बौधायनगृह्यसूत्र : सम्पादक, डॉ० शामशास्त्री, मैसूर यूनिवर्सिटी, प्रकाशन, १९२०।

बौधायन धर्मसूत्र : आनन्दाश्रम संस्कृत सिरीज।
सम्पादक, ई० हुल्स, लिपजिग, १८८४।
बौधगान औ दूहा और चर्यागीत, नं० १–१०।

भवदेवभट्ट : प्रायश्चित्तप्रकरण, सम्पादक, गिरीशचन्द्र वेदान्त तीर्थ, वरेन्द्र रिसर्च सोसाइटी, राजशाहि, १९२७।

भविष्यपुराण : वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई, १९१२।

भागवत : सम्पादक, धनञ्जयदास, चक्रवर्ती और चटर्जी प्रकाशन।

भागवतपुराण : श्रीधर टीका सहित, दो भाग, मुद्रक, गणपति कृष्णजी प्रेस।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

भोज : राजमार्तण्ड (काणे, एनल्स अव दि भण्डारकर ओरिएण्टल रिसर्च इंस्टीच्यूट, पूना, भाग ३६)।
समराङ्गणसूत्रधार और योगसूत्र, सम्पादक, धुण्डिराज शास्त्री, वाराणसी, १९३०।
युक्तिकल्पतरु, सम्पादक, ईश्वरचन्द्र शास्त्री, कलकत्ता ओरिएण्टल सिरीज, कलकत्ता, १९१७।

मत्स्यपुराण : आनन्दाश्रम संस्कृत सिरीज, पूना, १९०७।

मनुस्मृति : कुल्लूकभट्ट की टीका के साथ, निर्णयसागर प्रेस, बम्बई, १९४६।
मेधातिथि की टीका के साथ, सम्पादक, गङ्गानाथ झा, कलकत्ता, १९३२।

मंख : श्रीकण्ठचरित, सम्पादक, दुर्गाप्रसाद और के० पी० परब।

महाभारत : नीलकण्ठ की टीका सहित, पूना, १९२९–३३।

मार्कण्डेय पुराण : बिब्लियोथिका इण्डिका, कलकत्ता, १८६२।
अंग्रेजी अनुवाद, पार्जिटर, कलकत्ता, १९०४।

माध्वाचार्य : पराशर माधवीय, बम्बई संस्कृत सिरीज।

मित्रमिश्र : वीरमित्रोदय, चौखम्भा संस्कृत सीरीज वाराणसी १९०६।

मेरुतुङ्ग : प्रबन्ध चिन्तामणि, अङ्ग्रेजी अनुवाद, सी० एच० टानी, हिन्दी संस्करण मुनिजिनविजय, हिन्दी अनुवाद, हजारीप्रसाद द्विवेदी, सिन्धी जैन सिरीज, नं० १, १९३३।

यशपाल : मोहराज पराजय, गायकवाड़ ओरिएण्टल सिरीज, नं० ९।

याज्ञवल्क्य स्मृति : सम्पादक, जे० आर० घरपुरे, बम्बई, १९२६।

यादवप्रकाश : वैजयन्ती; सम्पादक, जी० ओपर्ट, मद्रास, १८९३।

राजशेखर : कर्पूर मञ्जरी, कलकत्ता विश्वविद्यालय, १९४८।
प्रबन्ध कोश या चतुर्विंशतिप्रबन्ध, सम्पादक, हीरालाल गुजराती सभा, बम्बई।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

रामायण : अंग्रेजी अनुवाद, एम० एन० दत्त, कलकत्ता १८९२–९४, मद्रास ला जर्नल आफिस संस्करण, १९३३।

लक्ष्मीधर : कृत्यकल्पतरु, सम्पादक के० पी० रङ्गस्वामी आयङ्गर, गायकवाड़ औरिएण्टल सिरीज, बड़ौदा, १९४१–५३।
ब्रह्मचारी काण्ड, १९४८।
दानकाण्ड, १९४१।
गृहस्थकाड, १९४४।
नियतकालकाण्ड, १९४४।
राजधर्मकाण्ड, १९४४।
श्राद्धकाण्ड, १९५०।
मोक्षकाण्ड, १९४५।
व्यवहारकाण्ड, १९५३।
शुद्धिकाण्ड, १९५०।
तीर्थविवेचनकाण्ड, १९४२।
व्रतकाण्ड, १९५३।

लेखपद्धति : गायकवाड़ ओरिएण्टल सिरीज, नं० १९, १९२५।

वल्लालसेन : दानसागर, विब्लियोथिका इण्डिका, नं० २७४, १९५३–५४।

वराहपुराण : सम्पादक, हृषिकेश शास्त्री, बिब्लियोथिका इंडिका, कलकत्ता, १८९३।

वसिष्ठ धर्मशास्त्र : बम्बई संस्कृत सिरीज, १९१६।

बराह पुराण : विब्लियोथिका इण्डिका सिरीज।

वराहमिहिर : वृहत्संहिता, विजयानगरम् सिरीज, वाराणसी, १८९५।

वात्स्यायन : कामसूत्र, चौखम्भा संस्कृत सिरीज, वाराणसी।

वामनपुराण : बैंकटेश्वर प्रेस, बम्बई।

वायुपुराण : आनन्दामय प्रेस।

विज्ञानेश्वर : मिताक्षरा, याज्ञवल्क्य स्मृति पर भाष्य, बम्बई, १९०९।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

विश्वरूप : याज्ञवल्क्य स्मृति पर भाष्य, त्रिवेन्द्रम संस्कृत सिरीज, १०२२-२४।

विष्णुधर्मसूत्र : सम्पादक, डॉ० जोली, कलकत्ता, १८८१।

विष्णुधर्मोत्तर : वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई।

विष्णुपुराण : गोपालनारायण एण्ड कम्पनी, १९०२।

विष्णुपुराण : बम्बई, १८८९।
अंग्रेजी अनुवाद, विल्सन, ५ भाग, लन्दन, १८६४-७०।
हिन्दी अनुवाद, गीताप्रेस, गोरखपुर, सं० २००९।

स्मृतिमुक्ताफल : सम्पादक, जी० आर० घरपुरे, बम्बई।

व्यास स्मृति : धर्मशास्त्र संग्रह, खण्ड २, पृ० ३२१-४२, कलकत्ता, १८७६।

शङ्ख स्मृति : स्मृति सन्दर्भ, भाग ३, गुरुमण्डल ग्रन्थमाला, कलकत्ता, १९८२।

शतपथ ब्राह्मण : सम्पादक वेबर।
अच्युत ग्रन्थमाला कायालय, काशी, सं० १९९४-९७।

शारङ्गधर पद्धति : सम्पादक, पिटर्सन, बम्बई संस्कृत और प्राकृत सिरीज नं० ३७।

शिवपुराण : सम्पादक, पञ्चानन तारकरत्न, वंगवासी प्रेस।

शुक्रनीतिसार : मद्रास १८८२।
अंग्रेजी अनुवाद, वी० के० सरकार, इलाहाबाद, १९२३।

श्रीधर : स्मृत्यर्थसार, आनन्दाश्रम संस्कृत सिरीज, पूना १९१२।

श्रीधरदास : सदुक्तिकर्णामृत, सम्पादक, आर० शर्मा, मोतीलाल बनारसी दास, लाहौर, १९३३।
श्रीमद्भगवद्गीता।

श्रीहर्ष : नैषधचरित्, मोतीलाल बनारसीदास, लाहौर १९३४।

संस्कार प्रकाश : वीरमित्रोदय का अंश, चौखम्भा संस्कृत सिरीज, वाराणसी।

संध्यकरनन्दी : रामचरित, सम्पादक, आर० सी० मजूमदार, आर० जी० बसाक तथा एन० जी० बनर्जी, राजाशाही, १९३१।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

स्कन्द पुराण : वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई ।

सांखायन गृह्यसूत्र : बनारस संस्कृत सिरीज ।

सोमदेव : नीतिवाक्यामृत, माणिकचन्द्र ग्रन्थमाला सिरीज, नं० २२ ।
यशस्तिलक, सम्पादक, पण्डित शिवदत्त, निर्णयसागर प्रेस ।

सोमदेव : कथासरित्सागर, अंग्रेजी अनुवाद टानी, दो भाग, कलकत्ता, १८८० । हिन्दी अनुवाद, केदारनाथ शर्मा, दो भाग, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद् पटना, १९६० ।

सोमेश्वर : मानसोल्लास; ३ भाग, गायकवाड़ ओरिएण्टल सिरीज, बड़ौदा, १९३९ ।

स्कन्दपुराण : वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई ।

स्मृति सन्दर्भ : पाँच भागों में स्मृतियों का संग्रह, प्रकाशक गुरुमंडल ग्रन्थमाला, कलकत्ता, १९५२ ।

हलायुध : अभिधानन्दरत्नमाला, सम्पादक, थामस अफ्रेट, लन्दन, १८६१ ।
ब्राह्मण सर्वस्व, सम्पादक, तेजश्चन्द्र विद्यानन्द, कलकत्ता, १९२४ ।

हेमचन्द्र : अभिधानचिन्तामणि, सम्पादक, हरगोविन्ददास बेचर दास और मुनिजिनविजय भावनगर, १९१४, १९१९।

,, : देशीनाममाला, भण्डारकर ओरिएण्डल रिसर्च इंस्टीच्यूट, पूना, १९३८ ।

,, : द्वयाश्रयकाव्य, अभयतिलकगणि की टीका सहित, सम्पादक, ए० बी० कथवटे दो भाग, बम्बई संस्कृत और प्राकृत सिरीज, १९१५, १९२५,

,, : कुमारपालचरित, पूना, १९२६ ।

,, : लघुवराहनीतिसार, अहमदाबाद, १९०६ ।

,, : तृषस्तिशलाका पुरुषचरित् (अनु० जान्सन) गायकवाड़ ओरिएण्टल सिरीज ।

हेमाद्रि : चतुर्वर्गचिन्तामणि, बिब्लियोथिका इण्डिका, १८७८-७९ ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

क्षेमेंद्र : दशावतारचरित (सम्पादक, दुर्गाप्रसाद और के० पी० परब), काव्यमाला, निर्णयसागर प्रेस, बम्बई।
समयमातृका, काव्यमाला, १०।
नीतिकल्पतरु, सम्पादक, वी० पी० महाजन, भण्डारकर ओरिएण्टल रिसर्च इन्स्टीच्यूट, पूना, १९३६।

अरबी-फारसी के मूल ग्रन्थ

अल-उत्बी : किताबुल–यामिनी या तारीख-इ-यामिनी, लाहौर संस्करण, हि० १३००, तेहरान संस्करण १८५५; अंग्रेजी अनुवाद, जे० रेनाल्ड, लन्दन, १८५८; श्री राम शर्मा द्वारा अनूदित महमूद गजनी के आक्रमण सम्बन्धी अंश (मेडिवल इण्डियन हिस्ट्री, पृ० ३४-६६, १९५६) तथा ईलियट और डाउसन, भा० २, पृ० १४-५२।

अन्सरी : तेहरान संस्करण, प्रसंगवश कुछ अंशों का डा० नाजिम द्वारा 'सुल्तान महमूद अव गजन' में अनुवाद।

अलवैहकी : तारीख-इ-मसूदी, सम्पादक, मोर्ले। अंग्रेजी अनुवाद, डॉ० नाजिम। हिन्दी अनुवाद, अ० भा० सं०।

अलमसूदी : मुरूजज जहब; दो खण्ड, लोडन; कुछ अंशों का हिन्दी अनुवाद, अ० भा० सं०।

अबूअलफजल : आईन-इ-अकवरी, अंग्रेजी अनुवाद, एच० एस० जैरेट, बिब्लियोथिका इण्डिका, कलकत्ता।

अबू रैहाँ अलबीरूनी : तहकीक-मालिल-हिन्द, अंग्रेजी अनुवाद, सखाउ, लंदन, १९१०।

इब्न-खुर्दाज्बा : किताबुल-मसालिक-वल-ममालिक, सम्पादक डी० गोयजे, ब्रेल, लोडन, १८८९।
हिन्दी अनुवाद कुछ अंशों का, अ० भा० सं०।

इब्न अबी उसैबा : उयूनुल्-आबा-फी-तबकातुल-अतिब्बा, दो खंड, मिस्र।
कुछ अंशों का हिन्दी अनुवाद, अ० भा० सं०।

इब्न नदीम : किताबुल-फिहरिस्त, फ्लूगल की टिप्पणियों के साथ, लिपजिग, १८७१।
कुछ अंशों का हिन्दी अनुवाद, अ० भा० सं०।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

इब्नुल फकीह : किताबुल बुल्दान, लीडन। कुछ अंशों का हिन्दी अनुवाद, अ० भा० सं०।

इब्नहौकल : सफरनामा, हिन्दी अनुवाद अ० भा० सं०।

इब्नअसीर : ब्रेल, लीडन, १८६२, कुछ अंशों का हिन्दी अनुवाद, अ० भा० सं०।

अल-तारीख उल-कामिल, सम्पादक टोर्नवर्ग; कुछ अंशों का अंग्रेजी अनुवाद, ईलियट और डाउसन, भा० २।

इस्तखरी : किताबुल अकालीम, गोथा, १८३९ ई०, कुछ अंशों का हिन्दी अनुवाद अ० भा० सं०।

कजवीनी : आसारुल बिलाद, तीन खंड, गोटिंजन, १८४८।

ख्वारिज्मी : मफातीहुल उलूम, कुछ अंशों का हिन्दी अनुवाद, अ० भा० सं०।

गरदीजी : किताब जैन-उल-अकबार, सम्पादक एम० नाजिम, बर्लिन, १९२८। कुछ अंशों का अंग्रेजी अनुवाद, श्रीरामशर्मा, इण्डियन हिस्टारिकल क्वार्टर्ली, भा० ९, नं०४, पृ० ९३४-४२; कुछ अंशों का डॉ० नाजिम द्वारा अंग्रेजी में अनुवाद (सुल्तान महमूद अव गजन); डा० वी० पी० मजूमदार द्वारा कुछ अंशों का अंग्रेजी में अनुवाद (सोसियो-इकनामिक कण्डीशन अव नार्दर्न इण्डिया)।

तारीख बैहकी : बिब्लियोथिका इण्डिका, कलकत्ता, १८६२, मूल के अंशों का कुछ अंग्रेजी अनुवाद, ईलियट और डाउसन, भा० २।

तारीख फिरिस्त : नवल किशोर प्रेस। अंग्रेजी अनुवाद, जे० ब्रिग्स, पुनर्मुद्रित, कलकत्ता १९०८।

बिलाजुरी : फुतहुल बुल्दान, ब्रेल, १८६६, कुछ अंशों का हिन्दी अनुवाद, अ० भा० सं०।

बुशारी मुकद्दसी : अहसूनत तकासीम फी मारफतिल अकालीम; द्वि० सं०, लीडन, १९०६; कुछ अंशों का हिन्दी अनुवाद अ० भा० सं०।

मिनहाजउद्दीन : तबकात-इ-नासिरी, अंग्रेजी अनुवाद, बी० डे, बिब्लियोथिका इण्डिका, कलकत्ता, १९१३–१९४०।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मूसा ख्वारिज्मी : अलजब्र-वल् मुकाबिला, संपा० एफ० रोसन, अंग्रेजी भूमिका, लन्दन, १८३१।

याकूत : मुअजमुल बुल्दान खण्ड ७, मिस्र, ब्रेल, लीडन; कुछ अंशों का हिन्दी अनुवाद, अ० भा० सं०।

याकूबी : तारीखे इब्न वाज-अ, लीडन; कुछ अंशों का हिन्दी अनुवाद, अ० भा० सं०।

सुलेमान और अबूजैद : सिलसिल-तुत-तवारीख, प्रेस-पेरिस, १८११, अंग्रेजी अनुवाद ईलियट-डाउसन।
हिन्दी अनुवाद कुछ अंशों का, अ० भा० सं०।

हम्जा अस्फहानी : तारीख मुलूकुल अर्ज, बर्लिन; अंशों का हिन्दी अनुवाद अ० भा० सं०।

हुदूद उल आलम : १०वीं सदी के एक अपरिचित भूगोलवेत्ता द्वारा भारत का वर्णन, प्रोसिडिंग्स अव दि इण्डियन हिस्ट्री कांग्रेस, कलकत्ता अधिवेशन, १९३९।

चीनी मूल ग्रन्थ

चउ जु-कुआ : चु-फन-ची, अंग्रेजी अनुवाद, एफ० हिर्थ और डब्ल्यू०डब्ल्यू० राकहिल, एकेडेमी अव साइंस सेंट पिट्सबर्ग, १९१२।

फाहियान : हिन्दी अनुवाद, काशी नागरीप्रचारिणी सभा, सं० १९७६।

श्वानच्वाङ्ग : अंग्रेजी अनुवाद, वाटर्स और बील (अंग्रेजी ग्रंथ सूची देखिए)।

इत्सिङ्ग : तकुकुसु (देखिए, अंग्रेजी ग्रन्थसूची)।

बंगाली ग्रन्थ

निहार रंजन रे : बंगालीर इतिहास।

सुकुमार सेन : प्राचीन बंगाला, विश्वभारती।

,, : चर्यागीत पदावली, बर्दवान, १९५६।

हरप्रसाद शास्त्री : बौधगान ओ दोहा, १९२३।

हिन्दी के आधुनिक ग्रन्थ

सुलेमान सौदागर : हिन्दी अनुवाद, काशी नागरीप्रचारिणी सभा, सं० १९७८।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

हिन्दी साहित्य की पीठिका : भा० १ (सम्पादक, डॉ० राजवली पाण्डेय), काशी नागरीप्रचारिणी सभा, १९५८ ई० ।

पाणिनिकालीन भारत : वासुदेवशरण अग्रवाल, मोतीलाल बनारसीदास, २०१२ ।

हर्षचरित : एक सांस्कृतिक अध्ययन, वासुदेवशरण अग्रवाल, पटना, १९५३ ।

हिन्दू संस्कार : डॉ० राजबली पाण्डेय, चौखम्भा संस्कृत सिरीज, वाराणसी ।

राजा भोज : विश्वेश्वरनाथ रेऊ, इलाहाबाद, १९३२ ।

जातक : (अनुवादक—भदन्त आनन्द कौसल्यायन),

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

Modern Works

Altekar, A. S. : History of Banaras, 1937.

,, : State and Government in Ancient India, Banaras edition, 1949.

,, : The Rashtrakutas and their Times, Oriental Book Agency, Poona, 1934.

,, : The Position of Women in Hindu Civilisation, Banaras, 1956.

Arnold, T. W. : The Preaching of Islam, London, 1913.

Arnold, Sir T. and Guillaume, Alfred : The Legacy of Islam, Oxford. New edition, 1960.

Banerjee, R. D. : Bangalar Itihasa in Bengali. Second Edition.

Barua, B. K. : A Cultural History of Assam, Vol. I, 1951.

Barua, B. M. : Gaya aud Bodh-Gaya.

Basaka, R. G. : History of North-Eastern India, Calcutta, 1928.

Basham, A. L. : The Wonder That was India, London, 1951.

Beal, S. : Buddhist Records of the Eastern World, Translation from Chinese of Hiuen Tsang.

Bhandarkar, R. G. : Complete Works of R. G. Bhandarkar, Oriental Research Institute, Poona, Vol, I, 1928, Vol, II, 1927.

Bhattacharya, D. : Our Heritage 1953.

Bhattacharya Haridas : (Ed) The Cultural Heritage of India (The Religious), Vol. IV, Ramkrishna Mission, Calcutta, 1956.

Blunt, E. A. H. : Caste System of Northern India, 1931.

Bose, N. S. : History of the Chandellas of Jejakabhukti, Calcutta, 1956.

Briggs, J. : Firishta, 4 Vols, Calcutta, 1908.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

Brown, P. : Indian Architecture (Buddhist and Hindu), Cambridge Mediaeval History, Vol. I.

Chakladhar, H. C. : Social Life in Ancient India : Vatsyan Kamsutra, Calcutta, 1929.

Chattopadhyay : Early History of Northern India, Calcutta, 1968.

Colebrooke : Meceleneous Essays, Vol. I, 1837.

Coomarasvamy, A. K. : History of Indian and Indonesian Art, London, 1927.; Buddha and the Gospel of Buddhism, Asia Publishing House, Bombay, 1956.

Courtois, V. : Albiruni, Iran Society, Calcutta, 1952.

Cunningham, A. : Ancient Geography of India, Second Edition Calcutta, 1924.

Daftari, K. L. : The Social Institutions in Ancient India, Nagpur, 1947.

Dasgupta, S. N. : History of Indian Philosophy, Two Vols. Calcutta, 1932.

De, B. (Eng. Tr.) : Tabaqat-i-Nasiri, BI, Calcutta. 1913-1914.

De, Goeje (Editor) : Al-tabri.

De, N. L. : Geographical Dictionary of Ancient and Mediaeval India, 1899.

Dutt, B. N. : Studies in Indian Social Polity, Calcutta, 1944.

,, : Hindu Law of Inheritence, Calcutta, 1957.

Dutta, N. K. : Origin and Growth of Caste in India, 1931.

Dutt, R. C. : A History of Civilization in Anc. India, 3 Vols., Thacker Spink and Co., Calcutta, Vol. I & II 1889, & Vol. III 1890.

,, : Early Hindu Civilization, Elm Press, 73, Manick Tola Street, 1908.

Eliot, Sir Charles : Hinduism and Buddhism. Three Vols., Routledge & Kegam Pant Ltd., London,

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

Elliot & Dowson : History of India as told by its own Historians, London, Vol. I, 1867, Vol. II. Vol. II (Introduction, Muhammad Habib), Aligarh, 1952.

Farquhar, J. N. : An Outline of the Religious Literature of India, Oxford, 1920.

Fick, R. : Social Organization in North-East India in Buddha's Time (Translated by Dr. S. K. Maitra), 1920.

Fleet : Dynasties of the Kanarese Districts.

Forbes, K. : Ras Mala, Edited by H. G. Rawlinson, Oxford, 1924.

Fousboll (Editor) : Jatak, Vols I—VI.

Gangoly, O. C. : The Art of the Chandelas (Rupa & Co.) Calcutta. 1957.

Gangopadhyaya, Radharaman : Agriculture and Agriculturists in Ancient India. Saharanpore, 1932.

Ganguli, D. C : History of the Paramara Dynasty, Dacca, 1933.

,, : Contributions to the History of ths Hindu Revenue System, Calcutta, 1929.

Ghosh, N. N. : Early History of Kaushambi, Allahabad Archaeological Society, 1935.

Ghoshal, U. N. : A History of Indian Political Ideas, Oxford, 1959.

,, : Studies in Indian History and Culture, Calcutta, 1917,

,, : A History of Indian Public Life, Bombay, 1966.

Ghurye, G. S. : Caste and Class in India, Pub : Philosophical Library, New York, 1950.

Gibb, H. A. R. : Travels of Ibn-Batuta, London, 1921.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

Gode, P. K. : Studies in Indian Cultural History, 2Vols.

Gopal, L. : The Economic Life of Northern India, Varanasi, 1965.

Graves, F. P. : A History of Education-Before the Middle ages.

Griffiths : Paintings in the Buddhist Cave Temple of Ajanta.

Gupte, B. A. : Hindu Holidays and Ceremonials, Pub : Thacker Spink & Co., Calcutta, 1916.

Habib, M. : Sultan Mahmud of Ghaznin, Aligarh, 1927.

Haig. W. : The Cambridge History of India Vol. III, Cambridge, 1931.

Handiqui, K. K.: Yasastilaka and Indian Culture, Pub : Jivaraja Granthamala Series No. 2, Sholapur, 1949.

Hazra, R. C. : Studies in the Puranic Records of Hindu Rites and Customs, Pub : University of Dacca, 1940.

Hirth & W.W. Rockhill. : Chau Ju-kua, St. Petersburg, 1912.

Hitti, P. K. : History of the Arabs, Seventh Edition, Macmillan & Co., New York, 1960.

Hodivala, S.H. : Studies in Indo-Muslim History, Bombay, 1939, 1957.

Hopkins : The Religions of India, Boston & London 1895.

Indraji, Bhagabanlal : Bombay Gazetteer, Vol. I.

Jacobi (Translator) : Jain Sutras.

Jain, J. C. : Life in Ancient India (as depicted in the Jain Canons) Bombay, 1947.

Jayaswal, K.P. : Hindu polity, Calcutta, 1925.

,, ,, : Manu And Yajnavalkya, Calcutta, 1930.

Jha, G. N. : Comparative Note on Manu in three Volumes, Calcutta University, 1924-1929.
Manu-Smriti with text and translation of commentary of Medhatithi.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

Kane, P. V. : History of Dharmasastra in Five Volumes, Bhandarkaa Oriental Research Institute, Poona, 1930-53.

,, ,, The Marriagable Age of Girls in Ancient India, JCV.

Kapadia, K.M. : Marriage and Family in India, Oxford, 1958.

Keay, F. E. : Ancient Indian Education, Oxford, 1928.

Keith, A. B. : History of Sanskit Literature, Oxford, 1928.

,, : The Glories of Magadha, Calcutta, 1927.

Law, B. C. : Geographical Essays, Vol. I, Messrs, Luzac' Co., 1937.

,, Historical Geography of Ancient India, France, 1954,

,, Tribes in Ancient India, 1941.

,, Mountains of India.

,, Holy Places of India, Calcutta Geographical Society, 1940.

,, Rivers of India.

,, Albiruni's Knowledge of Indian Geography, Calcutta, 1955.

,, Editor, Buddhistic Studies, Calcutta, 1932.

,, Magadhas in Ancient India.

Luard-Lele : Parmar of Dhar and Malawa.

Law, N. N. : Studies in Indian History and Culture, London, 1925.

,, : Studies in Ancient Hindu Polity, New York, 1914.

Majumdar, A.K.: The Chaulukyas, of Gujarat, Bharatiya Vidya Series, IV.

Majumdar.B.B. and Mitra, K. N. : Vidyapati (in Bengali and Hindi) pub. Sarat Kumar Mitra, Calcutta.

Majumdar, B.P.: Socio-Economic History of Northern India (1030-1194), Cal. 1960.

Majumdar, N.M. : A History of Education in Ancient India, Macmillan & Co., Calcutta, 1916.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

Majumdar, R. C. : Corporate Life in Ancient India (Second edition), Calcutta, 1922.

,, : Ancient India, Motilal Banarsidas, Varanasi, 1952.

,, : Edited, History of Bengal, Vol. I.

,, : Outline of Ancient Indian History and Civilization, Calcutta, 1927.

Majumdar, R. C. : and Altekar, A. S. : The Vakatak Gupta Age (A New History of the Indian People, Vol. VI).

,, Raychoudhury, H. C. and Datta, K. K. : An Advance History of India, Macmillan. London, 1946.

,, and Madhvanand: Great Women of India pub: Rama Krishna Mission.

,, and Pusalkar : The Age of Imperial Kanauj, Bharatiya Vidya Bhawan Series, 1955.; The Struggle for Empire, 1957.

Malcolm, J. : History of Persia, 1829.

Mehta, Ratilal, N. : Pre-Buddhist India, Bombay, 1939.

Mc Crindle : Ancient India as described by Megasthenes & Arian, Calcutta, 1885.

,, : Anc. India as described by Ptolemy, Calcutta, 1885.

,, : ,, ,, (Editor, S. N. Majumdar), Calcutta, 1927.

Mirashi, V. V. : Inscriptions of the Kalachuri-Cedi Era, CII. IV, Two Parts, Oatacamund, 1955.

Mitter, D. N. : The Position of Women in Ancient India.

Mitra : Antiquities of Orissa,

Mitra, R. C. : The Decline of Buddhisim in India, Visvabharati, 1954.

Mitra, S. K. : The Early Rulers of Khajuraho, Calcutta, 1958,

Mookerji. R. K.: Ancient Indian Education (Second edition) Macmillan & Co, London, 1951.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

,, : Local Government in Ancient India.

,, : Chandragupta Maurya and his Times. Rajkamal Publication, New Delhi, 1952.

,, : Men and Thounght in Ancicnt India.

Munshi, K. M. : The Glory that was Gurjardesa, Part III, Bombay, 1951.

,, : Somnath, The Shrine Eternal, Bombay, 1951.

Minakshi, C. : Administration and Social Life under the Pallavas, University of Madras, 1938.

Nazim, M. : The Life and Times of Sultan Mahmud of Ghazan, Cambridge, 1931.

Nainar, S. M. H. : Arab Geographers' Knowledge of Southern India, Madras, 1942.

Niyogi, D. : The Economic History of Northern India, Calcutta, 1962.

Niyogi, R. : The History of the Gahadavala Dynasty, Calcutta, 1959.

Oldenberg (Editor) : Vinaya Pitak, Vol, I and II.

Pannikkar, K.M.: A Survey of Indian History, Bombay, 1947.

Pargiter, F.E. : Ancient Indian Historical Tradition, Motilal Banarasidas, Banaras, 1962.

Patil, D. R. : Cultural History from the Vayu Purana, Poona, 1946.

Pathaka, V. S. : History of Saiva Cults in Northern India-From Insriptions (700 A. D. to 1200 A. D.). Varanasi, 1960.

Prabhu, P. N. : Hindu Social Organization, Bombay, 1958.

Prakarh, Buddha.: Some Aspects of Indian Culture on the Eve of Muslim Invasion, Panjab, 1962

,, : Studies in Indian History and Civilization, Agra, 1962.

Prasad, I, : History of Medieval India, Allahabad, 1925.

Pran Nath : A Study in the Economic Condition of Ancient India, London, 1929.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

Puri, B. N. : India as Described by Early Greek Writers. Indian Press, Allahabad, 1939.

Ranaudot, E. (translator) : Ancient Accounts of India and China (by two Muhammadan Travellers), London, 1733.

Rapson, E. J. : Cambridge History of India, Vol. I.

Ray, H. C. : Dynastic History of Northern India in Two Volumes.

Ray, J. C. : Ancient Indian Life, Calcutta, 1948.

Ray, Niharranjan: Banagalir Itihasa.

Raychaudhuri, H. C. : Political History of Ancient India (6th Edition)

,, : Studies in Indian Antiquities, Calcutta University, 1932.

Ram Gopal : India of Vedic Kalpasutras, Delhi, 1954.

Radhakrishanan, S.: Indian Philosophy, 2 Vols., 1923-1927.

Reynolds, J. : (Tr.) Tarikh-i-yamini of Al-Utbi.

Renou, L : The Civilization of Ancient India, translated from the French by P. Spratt, Pub. Susil Gupta, Calcutta, 1954.

Reu. B. N. : Glories of Marwar and the Glories of Rathors, Pub. Jodhpur Archaeological Department, 1943.

Rhys Davids : Buddhist India, London, 1903.

,, : The Dailogues of the Buddha, Two Vols.

Sachau, E. C., : Albiruni's India, London, 1910.

,, : Chronology of Ancient Nations, London, 1879.

Sankalia, H. D. : Studies in the Historical and Cultural Geography and Topography of Gujrat, Poona, 1949.

Sahu, N. K. : (Ed.) A History of Orissa, Vol. I, Calcutta, 1956.

Saletore, B. A : The Wild Tribes in Indian History, Lahore, 1935.

Sarkar, B. K. : Sukraniti, Allahabad, 1914.

Sarkar, Gopal Chandra : Hindu Law, 7th Ed., 1936.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

Sastri, Haraprasad : Hajar Bachharer Purana Bangla Bhasya Baudha Gana O Doha, Pub. Bangiya Sahitya Parisad, Calcutta.

Sastri, K. A. N. : The Colas, Madras, 1959.

,, : History of South India, Oxford.

Satyasray Ranjit Singh : Origin of the Chaulukyas, Calcutta, 1937.

Schoff, W. H. : Periplus of the Erythraean Sea.

Sealy : Road Book of India, 1825.

Sen, B. C. : Some Historical Aspects of the Inscriptions of Bengal, Calcutta, 1942.

Sen, Sukumar : Charyagit-Padavali, Pub. Burdwan Sahitya Sabha, Burdwan, 1956.

Sharma, R. S. : Sudras in Ancient India, Varanasi, 1958.

,, : Indian Feudalism, Calcutta, 1965.

,, : Aspects of Political Ideas and Institutions in Anc. India, Delhi, 1968.

Sircar, D. C. : The Successors of the Satvahanas in Lower Deccan, University of Calcutta, 1939.

,, : Some Aspects of the Earliest Social History of India.

Smith, V. A. : The Early History of India, Oxford, 1924.

Stein M. A. : Rajtarngini, 2 Vols.

Steingass F. : Persian English Dictionary.

Takukusu : A Record of the Buddhist Religion, Oxford, 1896.

Thakur, U. : The History of Suicide in India, Delhi, 1963.

Tomson, E. : Sati. 1928.

Tripathi, R. S. : History of Kanauj, Banaras, 1937.

Upadhyay, V. : Socio-Religious Condtion of North India, Varanasi, 1964.

Vaidya, C. V. : History of Medieval Hindu India, 3 Vols., Poona, 1921.

,, : History of Sanskrit Literature, Vol. I, Poona, 1931.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

Valvalkar, P. H.: Hindu Social Institution.

Virji, K. J. : Ancient History of Saurashtra, Bombay, 1952.

Watters, T. : On Yuan Chwang's (Travels - in India), London, 1905.

Winternitze : History of Indian Literature.

Yazdani, G, : The Early History of the Deccan, 2 Vols., London, 1960.

Yule, Henery : The Book of Sir Marcopolo, London, 1920.

Inscriptions

Bhandarkar, D. R : List of Inscriptions of Northern India, No XXXIX. ; Appendix to EI. XIX, XXIII.

Diskal Kar, D. B. : Some Unpublished Inscriptions of Vastupala, *ABORI*, IX.

Fleet, J. F. : Gupta Inscription (or Corpus Inscriptionum Indicarum. Vol. III)

Majumdar, N. G. : Inscriptions of Bengal, Vol. III.

Sircar, D C. : Select Inscriptions, Vol. I, Calcutta University, 1942.

Rice : Mysore and Coorg from Inscriptions.

Also A Collection of Prakrit and Sanskrit Inscriptions, published by the Bhavanagar Archaeological Department., Annual Report of the Archaeological Survey of India, Annual Report of the Rajputana Museum, Epigraphia Indica, Indian Historical Quarterly, Indian Antiquary, Journal of the Asiatic Society of Bengal, JRASB, JBORS, J. Orissa Historical Research Society, JBBRAS, Memoirs of the Archaeological Survey of India, Progress Report of the Archaeological Survey of India Westen Circle, Important Inscriptions from the Baroda State, Archaeological Survey Report, Annual Report of South Indian Epigraphy, 1927, Architectural Antiquities of Western India and Northern India.

Coins

Altekar, A. S.: The Relative Prices of Metals and Coins in Ancient India (JNSI, Vol. II, 1940).

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

Chakarabortty, S. K. : Currency Problems of Ancient India (JDL., Vol. XXX, 1938), pp. 37-70.

Cunnigham, A. : Coins of Mediaeval India, London, 1894.

Mirashi, V. V. : The Coins of the Kalachuris (JNSI, Vol. III, Pt. I, 1941).

Singhal, C. R. : Bibliography of Indian Coins, Pt. I, Bombay, 1950.

Smith, V. A. : Indian Antiquary, Vol. XXXVII (1908) pp. 114-148.

Stein, M. A. : Notes on the Monetary (Numismatic Chronicle, Vol. XIX, 1899) The Term Dinnara and the Monetary System of Kashmir (Rajatarangini, Vol. II. Appendixes Note. H. pp. 308-328).

Allan : Catalogue of the Coins of the Gupta Dynasty and Sasanka king of Gaud., Pt. II, III.

Gazetteer

District Gazetteer of U. P.,

Imperial Gazetteer of India, Vols. I-XXIII.

Encyclopaedia

Encyclopaedia Britannica, Vol. I, 1960.

Encyclopaedia Americana, Vol. IV, 1961.

Encyclopaedia of Islam, 4 Vols. 1934.

Journals and Periodicals

Annals of the Bhandarkar Oriental Research Institute.

Asiatic Researches.

Bharatiya Vidya.

Bharatakaumudi.

Historical Miscellany edited by Dr. K. K. Datta.

Patna College Archaeological and Historical Society.

Indian Culture.

Indian Historical Quarterly.

Islamic Culture Haidarabad.

Journal of the Andhra Historical Research Society.

Journal of the Asiatic Society of Bengal.

Journal of Banaras Hindu University.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

Journal of the Bihar and Orissa Reseaach Society.

Journal of the Ganganath Jha Research Institute, Allahabad.

Journal of the Orissa Historical Research Society.

Journal of the Royal Asiatic Society of Bengal (Letters).

Journal of the Royal Asiatic Society of Great Britan and Ireland.

Journal of the University of Bombay.

Journal of the V. P. Historical Society.

Patna University Journal.

Research Bulletin of College of Indology, Banaras Hindu University.

Poona Orientalist; Vangiya Sahitya Parisat Patrika; Our Heritage, Calcutta, Hindustan Standard, Hindustan Saptahika, The Hinduastan.

Review, Kashi Nagari Pracharini Patrika.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

नामानुक्रम

अ

अकबर ४७
अङ्गिरस २४, १४३,
अङ्गिरास्मृति १६४
अगस्त्य १५१
अग्निपुराण २००
अग्निमित्र १४२
अग्रवाल वासुदेवशरण १२३
अजन्ता २४३
अजयपाल १०६
अजितनाथ का मन्दिर २३२
अजोदह ४५
अटक ४२, ५४
अतहर-अल-बाकीय २
अत्रि २४, १२१, १२८, १५८
अथर्ववेद १११, १४१, १४६
अदुद्अलदवल १५९
अद्भुतसागर १७५, २५९
अधिष्ठान ४२, ५५-६, २०७
अनन्तवर्मन १११
अनन्तवासुदेव १६१
अनसरी ८
अनहिलवार ४१-२,७५
अन्तर्वेदि ६५, ११४
अपणक जातक १२४
अपरार्क ७९, ८२-३, ९२, १२१, १२३, १३१, १३३, १३६, १४४, १४८, १६७, १६९, १७०, १७२, १७५, २२४, २२५, २२७
अपरान्त ६०
अपसूर ४९
अफगानिस्तान १३
अबुल अब्बास माम् २, ३
अबुल फजल बैहकी ५
अबू अल अब्बास अलेरान शहरी १८, २२८
अबू अल फतह दाउदबिन नश् ७१
अबूजैद १०३, २३७, २४५, २५८
अबूजैद अल हसन १६०, १६१
अबूजैद सराफी १०२, १८८, २५७
अबू बोत्तावाद ५६
अबू मंसूर सुबुक्तिगीन ६८
अबू रैहाँ मुहम्मद इब्न अहमद अल-बोरूनी १, ६, ७
अबूल फजल १९४
अबू सहल १८, १९
अबोहर ५५
अभयतिलकगणि १९, २०५, २०८, २१०-१२, २१८
अभापुरी ४३
अभिधानचिन्तामणि ४१, २४६, २४८
अमरकंटक ६०, २५६
अमरकोष २४३
अमरावती १९१, २३०
अमीनुद्दौला महमूद ९
अ-यु-तु ४६
अयोध्या ४५, ५८
अरकतीर्थ ४४
अरगंज १

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अरजवन्द २५
अरब १८, २५
अरबसागर ३९, ५२
अरिस्तोबोउल्स १६३
अरुन्धती १५१, १६४
अरोर ५३
अर्कुतीर्थ ४३-४
अर्घ्यतीर्थ ४४
अर्जुन १५०
अर्जुनवर्मन १९८
अर्थशास्त्र १०८
अर्दशीर बिन बाबक ९९
अर्दीन ५०, ५१
अलइदरीसो १००, १०३, ११६, ११९
१२०, १२७-२८, १४३-
४४, २३५
अलउत्बी ८
अलकनन्दा ६३
अलकानून अलमसूदी ४
अलगाजी ६९
अलतफलीसी १८
अलतावरी ९९
अलदैवल ५६
अलफजारी २५
अलबलाधुरी ६७
अलमसूदी १०३, २३९
अलमंसूरा ६७
अलमस्त २१
अलमामूरा ६७
अलवर ५०, ५८
अलवर राज्य ७१
अलीगढ़ ५४
अलीसपुर ५१
अलेरान शहरी १८, २२८
अल्तेकर १००, ११०, ११६, १७४,
२२४, २२६
अल्हणदेव २०३
अल्प्तगीन ६८
अवदवोहार ४४-५
अवध ६२
अवन्तिवर्मन १८५
अवन्तिसुन्दरी १४२
अवन्ती ५०
अशोक ५८-९, २२७
अशोककुमार मजूमदार ७४, २०३
अश्वमेध यज्ञ ६३
अष्टमाता १८१
अष्टाङ्ग संग्रह २३८
अष्टाध्यायी ६१, २४८
असइ ४९
असनी ४९
असावल ५६
असापल्लि ५६
अस्तलाब्र २१
अस्सइ ४९
अहमदाबाद २८, ५६
अहर अभिलेख १८६
अहसुनत तकासीम फी मारफतिल-
अकासीम १६०, १८८, २३७
अहिछत्र ५७

आ

आईने अकबरी १९४
आचार सागर १७५
आणा १०६
आदिकेशव १८६
आदित्तहोर ५४-५

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

आदित्य ३७
आदित्यपुराण २४
आदित्यसेन १७२
आदिपुराण २४
आनर्त ६०
आनन्दकुमारस्वामी २२७
आनन्दपाल ७१-२, १७४
आपस्तम्ब (धर्मसूत्र) २४, ८९, ९४, १०९, ११३, ११५, १३६, १४६, १४८, २२५-२६
आभीर ५९
आयङ्गर २०४
आर्यभट्ट २५, ३५, १७३
आर्यावर्त ३९, ४०
आर० सी० मजूमदार १५४-५५
आर० सी० हाजरा १९२
आशाराज १४९
आश्वलायन १७३, २२१
आश्वयुज मास २०८
आषाढ़ मास २०१
आसाम ४७, ४८, ६३
आसारुल बिलाद १६०, १८८, २५८
आसी ४९

इ

इच्छवर प्लेट १०६
इंच्छिनी १३८
इटावा ४३, ४९
इत्सिङ्ग १६७-६८, १७४, २३८, २४२
इदरीसी २३९
इन्द्र १५१
इन्द्रजित १४३
इन्द्रद्वीप ३९
इन्द्रपत ५७
इन्द्रप्रस्थ ५७
इन्द्रराजादित्यदेव १८९
इन्द्रवेदी ६४
इन्द्राणी २०१
इन्द्रादित्यदेव १८९
इब्नअसीर १९६
इब्न-उल-अतहर १०, ६७, ७०, ७५-६
इब्नखुर्दाज्बा १००, ११२-१३, ११६, ११९-२० १२६-२८, १४२-४३
इब्नुल फकीह २५८
इब्ननदीम १८०, २२९, २५५
इब्नबतूता ४१
इब्नसिना ८
इब्नहौकल १८८, २४२
इब्बच जातक १२३
इयास इब्न मुआविय ८१
इराक ६७, २२९
इराव ५४-५
इरावती ६३
इ-लन-न-पो-प-तो ४६
इलाहाबाद ४३-४, ५८, ६३
इलीचपुर ५१
इशानशिव साधु १६२
इस्तखरी १८८, २४२

ई

ईलक खाँ ७१
ईलियट १, ४, ६, ८, १०, १२, १४, ४३-५, ४९, २५८

उ

उग्रभूति १७३-७४
उज्जैन ४२, ५०, १७७, १८३, १८७

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

उज्जयनी ४२, ५०, ६२, १०७, १७६
उत्कल ४५
उत्तरप्रदेश ३९, ५०, ५७, २३०
उत्पल १९४
उत्बी ३, ४३, ४९, ६८, ७०-७३, २५४
उदखण्ड ५५
उद्दण्डपुर ४४
उदन्तपुरी २३०
उदयपुर प्रशस्ति १८४
उदयादित्य १९८
उद्भाण्ड ५५
उद्योतकेसरी १६१
उद्वाहतत्व १४४-४५
उपर्यहार ४४
उपसाल्हक जातक १२६
उपाध्याय, बलदेव १७८
उमापति १७८
उमामहेश्वर १८५
उमैया खलीफा इब्न अब्दलजीन ८१
उयनुल् आबा फी तबकातुल अतिब्बा २५५
उरिहार ४४
उशधारा ५५-६
उशनस २४
उशीरद्वाज पर्वत ४०
उड़ीसा, ४५, ५९, २००

ऊ

ऊर्दबीर्श ४४
ऊर्दविषय ४५
ऊवट १७६

ए

ए० के० मजूमदार २०८
एरण १६६
एरियन ४०
एलन २४३

ऐ

ऐतरेय ब्राह्मण १३१, १४६, १५०
ऐन्द्र २५

ओ

ओद्र ४५
ओद्रस ४५
ओहिन्द ७०

औ

औघ ४५
औरङ्गाबाद ५१
औरतत्यस्थ ४४
औरबहार ४४

ऋ

ऋक्ष ६१
ऋग्वेद ६२, ९७-८, १२१, १२८, १४३
ऋषीकेश शर्मन २२३

क

कच्छ ५६, १८९
कजङ्गल ४०
कजवीनी १६१, १८८, २५८
कटक ४५, १६१
कथासरित्सागर १४४, १४७, १६५, २३०, २३६, २४१, २४६
कदम्ब १३८
कनिङ्घम ४५, ४९, ५०, ५६, ६२

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

कनिष्क १७५
कन्द ५१
कन्दर्पसिंह १६५
कन्दी १२, ३७
कन्नड़ ५९
कन्नौज २२-३, ३७-४३, ४६-५०, ५३-४, ६३, ६६-७, ७३-४, १७७, २२३
कन्स १९२
कन्स्टन्टाइन ३४
कपिल २४, १७३
कपिस्थला ५४
कपुर्थला ५४
कबीर १७७
कमीलुत तवारीख ७४
कमौली प्लेट १०५
करतोया ४४
करनतिरत ४४
करमती ७१
करांची ५३, ५६
करोर ४४
कर्ण ४४
कर्णदेवचेदि ४४
कर्नाटक २३१
कर्नाल ५४, ५७
कर्पूरमंजरी ६०, १४२
कलचुरि ६६, १०६, २५९
कलश २८
कलावती १६१
कलाविलास १७७
कलिङ्ग ४५, ५९, १११
कलिन्दकन्या ६३
कल्याण १३८
कल्हण ५५, १०२, १०५-८, १२२, १२८, १६२, १७७, १९३, २३४-५, २४१
कवीतल ५४
कश्मीर १४, ४०, ४२, ५३, ५५-६, ६५-७, ७३-५, ८१, १६२, १७०, १७४, १७६-७, १८५, १९३-४ १९६-७, २०५, २०७, २१७, २३०, २४१, २६२
कश्यमपुर १९४
काकेशस १८
काङ्गु ४५
काङ्गुनाड ४५
काञ्चिपुरम् २३६
काञ्ची ४८, ४५-६
काञ्चीपुर ४५
काञ्जीवरम् ४२, ४६
काठमाण्डु २०९
काठियावाड़ ४२, ५२, ५९, २३१
काणे, पी० वी० १०५, १३७, १७५
कातन्त्र २५, १७३
कात्यायन २४, ७९, ९१-२, १५६
कादम्ब ४९
कादम्बरी ६१, ८३, १२७, १८७, २२३, २४६
कानपुर ४३
कान्यकुब्ज ४१, २३९
कान्हणदे प्रबंध २५४
कापालिक १८३
काबा १८१
काबुल ३७, ४०, ४२, ५४-५, ६७, ६९

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

काबुलनदी ६२
काबूस २
काम १६५
कामन्दक १३९, २४८
कामरू ४२, ४७-८
कामरूप ४०-१, ४७-८, ५८, १११
कामसूत्र १६५, २१०-११, २४६
कामाख्या ५८
कार्तिकेय १९०
कारुक १८३
कालञ्जर ७, ४८, ७४, १८३
कालविवेक २०१-२, २०४-५ २११, २१५
कालानन १८३
कालिकापुराण ६२
कालिदास ६१, १८३, १९२
काली १९०
कालेश्वर २८
काव्यमीमांसा ४०
काशगर ७२
काशी ४६, ५८, १७७, १९१, २१२
काशीलाभ १९१
कासिम ६७-८, १८९
किताब-अल-अन्सब १
किताब-अल-तफहीम ४
किताब जैन-उल अखबार १२७
किताबुल फिहरिस्त १८०
किताबुल बिदअ वत् तारीख १८१
किताबुल् मसालिक वल मुमालिक १००, ११२, १२७,
कृत्यकल्पतरु ९५, १०४-५, १०७-१०, ११२-१४, १२०, १३१, १४७, १४९, १५२-४, १६४, १६९, १७०-१, १७५, १९२, १९८, २०१-६, २११, २१३-१७, २२२, २३४, २३६-३७, २४१, २५६
कृत्यतत्वार्णव २११
कृत्यरत्नाकर १९७-८, २००-६, २११, २१३-६
कृष्ण १६५, १९४, २०६
कृष्ण जन्माष्टमी २०४
कृष्ण द्वारिका मन्दिर अभिलेख १७७
कृष्णा ५२, ५९
कीथ, ए० बी० १७५, १८५, २३०
कुङ्कन ५२
कुट्टनीमतम् १३४, १५९, १८३, १९१, २३९, २४३, २४५
कुती ५४
कुन्तल ५८
कुमायूँ ६१
कुमारगुप्त प्रथम १८९
कुमारदेवी १४९
कुमारपाल १०६, १८४, १९६, २०८, २३२, २३५, २४१
कुमारपाल प्रतिबोध २३२
कुमारपाल प्रबन्ध २०८
कुमारपाल भूपालचरित् २०८
कुमारसम्भव ६१, १६५
कुरान ३३
कुमारिल भट्ट १८०, २१८
कुरुक्षेत्र ४४, ५७, ६०, १९१-२

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

कुरुभूमि ५७
कुरोह ४३
कुल्लूकभट्ट १२२, १३३, १३६, १५३, १७५, २२२
कुशी ६३
कुहू ६२
कूनक ४५
कूर्मपुराण २४, ४७, २५६
केदार १८४
केरल ५९
केशव का मन्दिर १८६
कैलाश ६१
कोङ्कण ५२-३, ६०
कोचीन ५९
कोर्ट् वायस १, ४, ७, १९
कोनक ४५
को-नो-कु-शो ४१
कोनोव ६०
कोमरोन की खाड़ी ६१
कोयम्बटोर ४५
कोलब्रुक १६६
कोल्हापुर २१०
कोशल ५८
कोसम ५८
कौटिल्य ८९-९१, ९५, १०४, १०६, १०८, ११०, १५२, १६०, २४८
कौशाम्बी ४४, ५८
कौशिकी ६२-३

ख

खण्डनखण्डखाद्य १७७
खण्डवा ५१
खजुराहो ४८, १४१, १८४
खम्भात २८, ५६, २४१
खलीफा ६९
खानदेश १७५
खुरासान ७२, २२१
खीव १, ८
ख्वारिज्म १, ३, ३, २६०

ग

गङ्गनारायण का मन्दिर १८६
गङ्गराजा १११
गङ्गा ४२-४४, ४६, ४८-९, ५७, ६२-३, ७३-५, ८१, १८०, १८४, १९१, २५७, २५९
गङ्गादित्य १८९
गङ्गासागर ४७, ६१
गङ्गाझील २०५
गजन ३-४, ८-११, १४, १७, ५४-५, ६६, ६८, ७१, ७३, ७५-७, १९६
गणेश १९०, २०१, २०६, २१५
गण्डक ५८
गण्डका ६२
गया ५८, १७६-७, १९१, २३०, २६२
गरगञ्ज १, ८
गरदोजी ३, ४८, ७०-६, १२७, १९७, १९९, २०५-६, २१६-८, २५४, २५७
गहड़वाल ६१, १०९, १४३, १५६-७, १७७, १८०, १८६, २२१
गाङ्गुली, डी० सी० ७०, ११८
गाङ्गेयदेव ४४, ६६, १४७, २५९
गाथासप्तसती १६५
गान्धार ६०, ६७
गिब्ब ४१

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

गिरनार अभिलेख १०५
गिरिपश्चिम शासन ११८
गिरिव्रज ५८
गीतगोविन्द २४४
गीता २५, ११५, ११७
ग्रोफिथ्स २४३
गृह्यरत्नाकर १११, १४६
गृहस्थरत्नाकर २३४, २४०-१
गुजरात १०, २८, ४२, ४९, ५२-३, ५९, ६६, ७४, १०५, १७९, १८३, १९०, १९५, १९८, २०९, २३१-२, २४१
गुप्तकाल २४३
गुप्तसम्राट २४३
गुप्तसाम्राज्य १८५
गुर्जरदेश १०७
गुहिलवंश १६६
गोडे पी० के० २३१
गोदावरी ५१-२, ५९, ६१
गोपराज १६६
गोमती ६२
गोमल ६२
गोरखपुर ४८
गोवा १३८
गोविन्दराज १७५
गौड़ १९३
गौतम २४, ८१, ८९, ९०, ९४-५, १०४, १०६, १२७-८, १४५, १५२-३, १५६
गौरी १९८-९, २१३-४
गौरी तृतीया १९९, २१५
गौहाटी ५८
गौहोर्ब ताम्रपत्र ४४
ग्वालियर ४८, ५०, ६२, १८६

घ

घटियाला १६६
घुर्ये ११६
घोषाल ११०, १२०, १५४, २३५

च

चक्रनदी ६२
चक्रपाणि १७८
चक्रस्वामिन् १०, ७३, ७६
चक्रस्वामी १८४-६
चक्रस्वामीदेव १८६
चक्लदर, एच० सी० २३८
चचनामा ६७-८
चटगाँव ५९, २३०
चण्डी २०८
चण्डीदास १७६
चण्डेश्वर १७९, १९७-८, २००-२, २०४, २०६, २११-७, २३४, २३७, २४१
चतुर्वर्गचिन्तामणि १७५, १९९, २००, २०३, २१०, २१३
चतुर्वर्गसंग्रह १७७
चन्देल ५, ७, ४८, ६६, ६९, ७४, १०६, १८०, १८४, २५८
चन्द्रगुप्त प्रथम २४३
चन्द्रगुप्तमौर्य १०१
चन्द्रभागा ६३
चन्द्रमा १४४, २०१, २०९, २११-२, २१६
चन्द्रसेन १४२
चन्द्रापीड ९१, १०८, २२३
चम्पापुर ४७
चम्पारन ४७
चम्बल ५०, ५७, ६३, ६७

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

चरक २६
चरकसंहिता १७८
चर्मण्वती ६३
चर्मखण्डिका ६०
चाङ-जु-कुअ २४४
चामुण्डराज २३१
चारुचर्या १७७
चालुक्य ६०, १३८, २१२
चार्वाक सिद्धान्त १७३
चाहमान ६९, १४१, १५६, १६२, २०३
चित्तप १७८
चित्तौड़ ५१
चिन्तामणि विनायक वैद्य १३८
चीन २२९
चुनार ५८
चेदिराज्य ४९
चेदिवंश १४७
चेनाब ५५, ६३, ६८
चेरि ४५
चैतन्य भारती २०९
चैत्रमास १९७-८
चोल ४५
चौ-जु-कुअ १६१
चौलुक्य २८, ६०, ६६, १०६, १७५, १८०, १८४, १९०, १९६, २०८, २३१, २३२, २३७, २४१, २५८
चौलुक्य भीम द्वितीय १०५
चंकुण २३०
च्यवन १४१, १५१

छ

छान्दोग्य १७३
छान्दोग्य उपनिषद् १६८

ज

जकरीय अल कजवीनी १०९, १६०-१
जजाहूती ४८
जनक ४८
जन्माष्टमी २३७
जबलपुर १४७
जम्बूद्वीप ३८-९
जम्बू वृक्ष २८
जम्मू ५३
जलम इब्न शैबां ७१, १८९
जलालाबाद १२
जयचन्द ११४, १५७, २२१, २२३, २३९, २५९
जयदेव १७८
जयपाल ६८, ७०, ८५, २५८
जयवर्मन १११
जयसिंह १५७, १७५, १८६
जयसिंह सिद्धराज २८, २३२
जयसिंह सूरि २०८
जहाँगीर ५३
जहानाबाद ४३
जागुशर्मन १०९
जातक १०१, १०६, १०८, ११२-२६, २४६
जादूचरित २८
जालन्धर ५३, ६०
जायसवाल, के० पी० ९६
जाह्नवी ६३, १९६
जिनमण्डन २०८
जिन विजयमुनि, १४९
जीमूतवाहन ९१-२, १५४, १५६, १६६, १७५, २०२-६, २११, २१५

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

जीमूरनगर ५६
जीवशर्मन २०७
जुर्जानियह १
जेकी वालिद तोंगा ४
जेजाकभुक्ति ७, ४८, ६९६
जेत परमार १३७
जैकोबी १२९
जैतवन २३०
जैन उल अखबार ७४, १९७
जैमिनि २४, १७३
जैहून १
जोजल्लदेव १६२
जोधपुर १६६
जोनराज १९४
जौनपुर ४३
जौर ४५
ज्येष्ठ मास २००

झ

झाँसी ५०
झेलम ३७, ५४-५, ६२-३, २०७

ट

टानी २१०, २४६, २५८-९
टामसन, ई० १६६
ट्रांस काकेशिया २२९

ड

डल्हण १७८
डाउसन ४४, ४८, ५३, ५६
डागर रानी १६१
डायर रानी १५७
डाइल मंडल ४८
डी गोयजे ९९, १२७
डी० सी० गांगुली ४९
डी० सी० सरकार ४८, ५२
डोल त्योहार १९८

ढ

ढाका ४७, ५९, २३०

त

तकुकुसु २३८, २४३
तञ्जोर ५७
तन्त्रवार्तिक १५०, २१८
तबकात-इ-अकबरी ३, ६८
तरुणादित्यदेव १८९
तर्कचूड़ामणि २२०
तवल्लेशर ५६
तहकीक-मालिल्-हिन्द ४, ६, ८-९, १५, २०-२२, ७५, २६०, २६३
तक्षशिला १६३, १७६
तान ४२, ५२, ५६
तानेशर ५३, १९१-२
तासी ५२, ६१
तारक १८६
तारापीड २२३
तारीख-उल-हिन्द १९
तारीख मुक्कुल २२९
तिऔरी ४८-९
तिन्नवेल्लि ४५, ५९
तिब्बत ४२, ४७-८
तिरभूक्ति ४८
तिरहुत ४८
तिलवत २३, ४७-८
तीज ४२, ५६
तृषस्तिशलाकापुरुषचरित् २४५
तुर्क १
तुण्डिरमण्डल ४६
तुर्किस्तान २-३

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

तुलसीदास १७७
तेजपाल १४९
तैतिरीयसंहिता ६१, १४०, १४६, १५०, २४६
तोण्डमण्डल ४६
तोमर ६८

थ

थान ५२. ५६
थानेसर १०, ७३

द

दर्दु १९४
दक्ष २४, १६५
दधिपुर १८६
दधिवाहन जातक १२४
दधीचि २४३
दमयन्ती १५१
दरौर ४५
दशरथ ६३
दशरथ शर्मा २३१
दशावतार २३०
दशावतारचरित १८५
दशावतार का मन्दिर १८६
दहमाल ५३
दहाल ४८-९
द्रवर ४५
द्रविड़ ४५-६
दृषद्वती ५७, ६२
दाऊद ७१
दानसागर ११४, १७५, १९२,
दामोदर २३०
दामोदरगुप्त १८३, १९१,
दायभाग ९२-३, १५३, १५५, १६६, १७५
दाहिर ६७
दिगम्बर २३१
दिद्दा १३०
दिल्ली ५७
दीपमालिका २११
दीपोत्सव पक्ष २११
दीवालपुर ५५
दीवाली २०९, २११
दुर्जय परिवार ११८
दुर्गा १७९, १८१, १९०, १९४, २०१
दुर्गापूजा २०८
दुगुम ४७
दुगुमपुर ४६-७
दुदपुर १३, ३७
दुर्योधन ५४
दुर्लभराज २३१-२
दूदही ५०
दूधा ५०
दूनपुर ६४
दून्द देवीभवन २३०
देवन्न भट्ट १०८, १७६
देव पट्टन ५२
देवपर अभिलेख २४५
देवल ६७, १०५, १११, ११३-४, १४०, १५८
देवल ऋषि २५५
देववर्त १०९
देविका ६२
देवशयनी एकादशी २०१-२
देवी माहात्म्य २०८
देवोत्थनी एकादशी २११-२

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

देशीनाममाला १९८, २०१-३, २०५, २०७-९, २११, २३३, २३७, २४२, २४४, २५५
देहककोट १७५
दोगाम ४७
दोल २१८
दोलयात्रा २१८
दोहद १८६
द्रौपदी १५०
द्वयाश्रय काव्य १७५, १०६, १८६, १९६, १९८, २०५, २१०-३, २१८, २३१-२, २३९, २५८
द्वारका ५६
द्वैतसंग्रह १७६
द्युनदी ६३
द्यूत प्रतिपदा २११

ध

धंग १८४, २५८
धंगदेव १४१
धनपाल १७८
धम्मपद ५७
धरपट्ट १८९
धर्मदेव १६५
धार ४१-२, ५०, ५२
धार नरेस १८४
धारप्रशस्ति १९८
धारवार ४४
धारा १७७-८
धारेश्वर १५४
धुतपापा ६२
धोनूप ६२
धोयी १२५, १७८

न

नकुल १५०
नच्च जातक १२५
नदिय १७८
नदिया १७७
नदोल प्लेट २०३
नन्द ३७
नन्दनवन १९१
नन्दपुराण २४
नमादुर ५१
नमिय्य घाटी ५२
नरक द्विष १८६
नरसिंह पुराण २४
नर्मदा ५१, ६०, २५६
नरेन्द्रनाथ ला १२९
नयी दिल्ली १२
नल १५१
नवद्वीप १७८
नवरात्र २०८
नवसाहसाङ्कचरित १४७, १७८
नह्रवण २३५
नागद्वीप ३९
नागर तीर्थ १७७
नागार्जुन १७५
नागानन्द २१०
नाजिम २-४, ९-१०, ४३, ४८-५०, ५३, ५५, ६८, ७०-७७
नारद ७९, ८१, ८४-५, ९०, १०४, १०८, ११०, १४५-६, १४१, १४८, १५२, १५५
नारायण ४२, ४९, ५०

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

नारायणपुर ७१
नारायण भट्टारक १८६
नालन्दा १७५-६, २३०
नासिरुद्दौला सुबुक्तिगीन ६६, ६९
नाहरराय १३७
निधनपुर १२९
निमई सदन बोस ७
निमावर ५१
निरुक्त ९७, १७२
निर्णयसिन्धु १४४-५
निशपुर २१
निहाररंजन राय १२५
नीतिवाक्यामृत ७९, ८२-३
नीलमंत पुराण २१०
नीरपुर ५३
नीरून ६७
नीलगिरि ६१
नीवारा ६२
नूरजहाँ ५३
नूरपुर ५३
नेपाल २३, ३७, ४२, ४७-८, १७९, १८३
नेमिनाथ २३२
नैषधचरित १७७, २३६, २३९, २४१, २४४-५
नौरोज ५

प

पट्टन ४१-२, ५२
पट्टिकेरक २३०
पटना ४६, ५८
पठानकोट ५३
पठीनसि ११३
पण्डित विहार २३०
पतञ्जलि २०, ६१, १७३-४
पद्मगुप्त परिमल १७८
पद्मती १९४
पद्मनाभ २५४
पद्मपुराण १९२, १९४, २१०
पनिप्रस्थ ५४
परमर्दि १०६
परमार ५१, ६६, १७७, १८०, १८४, १९८
परमाशा ६३
परमेश्वर वर्मन प्रथम १८५
परशुरामक्षेत्र ५२
पराशर २४, ११३, १३४, १३९, १५२, १५८, १६६, २५६
पराशर माधवीय १५१, १५८
पर्सिस २२९
पर्सिया २२९
पश्चिमी एशिया २२७
पश्चिमी घाट ६१
पाकिस्तान १३, ५३
पाञ्चाल ५७
पाटलिपुत्र ४६, ५८
पाणिनि २५, ६१, ९७, ११५, १२४, १४०, १४५, १७४
पाण्डु १५०, १६५
पाण्ड्य ५९
पाण्ड्य शासन ४५
पाण्डेय, राजबली १३२, २१८, २२४
पातञ्जल २, २१, २४, ४०
पानीपत ४२, ५४, ५७
पारजीटर ५०-१, ६१-२
पारस्कर गृह्यसूत्र २२५
पारिजातमञ्जरी नाटिका १९८

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पारिपात्र ४०, २४३
पार्वती ६२
पालवंश ४४, ६६
पाशुपत १८३
पार्श्वनाथ २३२
पिञ्जोर ५३
पितामह ८३
पियापन ४४
पुरशावर ५५
पुरी २००
पुरी, बी० एन० १०१
पुरुषोत्तम २००, २१३
पुरुषोत्तम मास २१३
पुलिस २१, २५, १७३
पुष्यमित्र शुङ्ग १४२
पुहाई त्योहार २०९
पूर्णिया ६३
पूर्वी चालुक्य ४५, १२४, १७३, १८५
पूर्वी तट ४२
पूर्वी यूरोप २२७
पेरिस १०२, २२९
पेशावर ५५, ६३, ७०
पेहोआ ४०, १०५, १८६
पैठीनसि १४५
पैसू अभिलेख ५८
पोरबन्द ६३
पो-लो-नी ४६
पो-लो-य-क ४३
पौष मास २१३
पृथ्वीराज चौहान १४७
पृथ्वीराज रासो १३७, १४७
पञ्चतंत्र २१
पञ्जाब १२-४, ३९, ५४-५, ५९, ६०, १७४, १७६, २६०
प्रतापदेवी १५७
प्रतिस्थान ५३
प्रतिहार ६६, ७३, १३७, १४२, १८०
प्रद्युम्नेश्वर १६१
प्रबन्धकोश २०८
प्रबन्धचिन्तामणि १४९, १५९, १९६, २१०, २५८-९
प्रबोध चन्द्रोदय १७६
प्रबोधनी एकादशी २१२
प्रभाकर वर्द्धन १६५
प्रभावक चरित १९३
प्रभास १८३
प्रभास पाटन ५६
प्रयाग ४२-४, १९१, २५६, २५८-९, २६२
प्रहराज शर्मन् २२१
प्राग ४३
प्राग्ज्योतिष ५८
प्राग्ज्योतिषपुर ५८

फ

फतेहपुर ४३, ४९
फरिश्ता ६९-७१, ७६
फर्रुखाबाद ५७
फर्कुहर, जे० एन० १९२
फारस ९९, १६०
फाश्येन १२७-८
फाल्गुन मास २१६
फिक ९७, १०२, १०६, १२६, १७६
फिरोजपुर ५५
फिल्लौर ५४
फोर्ब्स २०१

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

ब

बकुलस्वामी १०५

बगदाद ६९

बगपुर १९४

बजान ४२, ४९-५३

बट्टक जातक १२५

बड़ोदा ५२

बदायूँ १६२

बनर्जी, जे० एन० १८६, १८९

बनवास ४८-९

बनवासी ४८-९, ५९

बब्रहान ५५-६

बम्बई ४२, ५२, ५६, ५८-९

बम्हनवा अलमन्सूरा ५३

बरनी १

बरलिन २२९

बरुआ, बी० के० १११, १३०

बरुनी ६

बरेली ५७

बर्ड ७०, ७५

बर्थोल्ड २, ३

बर्मशील ४३

बर्हमशिल ४३

बलभद्र २५

बलि २१०

बलिमह उत्सव २१०

बलिराज्य त्योहार २१०

बलिराज्य प्रवर्त्तिनी २११

बल्लापुर ५३

बल्लावर ५३

बवारिज ५६

बसन्त ऋतु १९१०

बसोहली ५४

बहराइच ४७

बाणभट्ट ६१, ८३, १२७, १४१, १८६, २३५, २४३

बाबक ९९

बामहूर ५१

बारी ४२, ४६, ६६, ७३-४

बार्हस्पत्य १०८

बिम्बा १६५

बियाह नदी ६२

बिल्हण १९३

बिहत ४७-८

बिहार ४४-७, ५८, ६३, १७९

बीरून १

बील ४६, ५०, ८३, ८५, ८७, १०७

बुद्ध ५८, १८१

बुद्ध द्वादशी २०३

बुन्देलखण्ड ४८-९, १२६

बुशारी मुकद्दसी १८८, २३७

बूरिहाँ ५

बूह्लर १८३

बेतवा ५१

बेतहादिय ४८

बेतिया ४८

बेथिअ ४८

बैजनाथपुरी ६, १२

बैहकी २, ३, ७३

बोधिसत्व २२९

बोधिसत्वावदान १७७

बोलोर १९३

बोस, एन० एस० ५, १२

बौधायन ९४, १०४, ११३, १४४, १५२-३

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

बङ्गाल ५९, १७८-९, १९३, २०३, २०६, २०९, २३०

बङ्गाल की खाड़ी ३९

ब्रह्मगुप्त २१, २५

ब्रह्मनाबाद ६७

ब्रह्मपुत्र ६३

ब्रह्मपुराण १६५, १९४, १९८, २००, २०२, २११, २२२

ब्रह्मवैवर्तपुराण १२२

ब्रह्मा १०७, १७९, १८१, १९१

ब्रह्माण्डपुराण, २४, ३८

ब्रह्मेश्वर का मन्दिर १६१

ब्राह्मणदेश १०२

ब्राह्म दुर्ग ४३

ब्रिग्स १७७

बृहत्कथामंजरी १४७, १७७

बृहत्संहिता १६५

बृहद्धर्म पुराण १२१

बृहस्पति ८०, ८३, ८८, ९२-३, ९५, १४५, १४८-९, २२३-४, १६४-५, १६९, १७३

भ

भटिण्डा ५३, ७१

भट्ट विरुक १०५

भण्डारकर, १६६

भड़ौंच ५६

भदन्त आनन्द कौसल्यायन १२३-४, १२६

भदावर १७८

भद्रबाहु २३१

भवदेवी १७५

भवभूति १८३

भविष्यपुराण २४, १९४, १९८, २०१, २१०, २१४

भागलपुर ४७

भागवत पुराण ६१

भाटकल ४९

भाटिय ७१

भाटी ४२, ५३

भाद्रमास २०३

भानुगुप्त १६६

भाबूड़ी ४३

भारतमञ्जरी १७७

भारद्वाज २२६

भावनगर ५६

भाव बृहस्पति १८४

भावयव्य १४३

भास्कर २०१

भास्कर वर्मन १२९

भास्कराचार्य १७५

भिलसा ५१, ६२

भीम १५०, २३२

भीमदेव ७५

भीम प्रथम १८४,१९०, २५८

भीम द्वितीय १८६

भीम पराक्रम १३१,१७५

भीष्म पाँचरात्रि २११

भुजबल निबन्ध १७५

भुवनकोश ३८

भुवनेश्वर १६१, २४८

भूटान ४८

भूतेशगिरि ६१

भेर ७१

भैलस्वामी ५१,१८९, १९०

भोगवर्द्धन ६०

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

भोज ५१, ११२, ११४, १७५-६, २००, २०५, २०९, २११-२, २१५, २१८
भोजराज १७७
भोज पराजय ६६
भोज प्रतिहार १८६
भोटेश्वर ४७
भोपाल ५१,६२

म

मक्का १८१
मकरान ४२,५६
मंखंक १७७
मगध ४४,५८
मच्छ जातक १२४
मजूमदार, ए० के० २८, १५५, १९०, १९८
मजूमदार, आर० सी० १७५
मज्झिम ५७
मञ्झनपुर ४३
मझापन ४३
मण्डोवर १३७
मङ्गोल १
मत्स्य ३७
मत्स्य पुराण २४, ३९, ५८,६०, ६१ १९२, २५६
मत्रदेश ५०
मथुरा ४१-२,५०, ५८, १७७-८, १९२-३, २६२
मदनपारिजात १४५
मदनपाल शर्मन १०६
मदयन्ती १५१
मदुरा ४५, ५९
मद्रास ४५
मधुमती १९३
मधेर १९०
मध्यदेश ३९, ४०, ५८
मध्यप्रदेश २१७
मनदावन ४३
मनु २४, ३९, ८०-२, ८८-९० ९३-५, १०२-६, १०८, १११, ११४-५, ११८, १२३-७, १३०, १३३-९, १४४-९, १५१, १५३, १५५-६, १५८, २२५, २३४, २३६, २४०, २४८, २५६
मनु स्यंभव ३८
मनोरथ १०५
मन्दककौर १३, ३७
मन्दगिरि ४२, ५१
मन्दसोर १८९
मन्दहूकुर ५४–५
मफाती हुल उलूम २३७
मलय ४५, ६१
मलिक-अल-मुलूक १५९
मलिय ४५
मसूद ४
मसूदी १८८, २४१, २४७
महवलिस्ताँ ५१
महमूद गजनी २-१०, १४-१६, १८, २८, ४८-९, ५२, ५५, ६६, ६९, ७०-७८, १८४, १९६, २५८, २६०-१, २६३
महरट्ट ५२
महाज्ज्येष्ठि २००
महात्मा बुद्ध २३०

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

महादेव १८३, १९९, २०३, २०८, २१४, २१७
महाधम्मरक्षित ५९
महानवमी २०८
महानिर्वाणतन्त्र १४८
महाभारत २५, ३८-९, ५७, ५९, ६२, ९८, १३२, १३७, १४७, १५०-५१, १६३, १६५, १७३, १९१, २४६, २४८
महाभाष्य ४०, ६१, १७४, २२३
महाराष्ट्र ५१-२, ५९
महालक्ष्मी २१०
महालयपक्ष २०५
महावीरचरित २३२
महावीरचैत्य २३२
महायान २२७
महावग्ग २४४
मही ५३
महेन्द्र ६१
महेन्द्रपाल २३०
महेश्वर ५१, १८५
महोदय ४१
माचेरी ५०
माघ मास २१४
मातृषेण १४२
माद्री १६५
माधव १०५
माधवाचार्य १८३
मानसोल्लास ९५, ११०, १५९, १७५, २३५, २४१-२, २४७-८
मान्धाता ५१
मांन्धाता-नर्मदा तट ४०
माम् २
मारवाड़ १६२
मार्कण्डेय पुराण २४, ३९, ६०-६२, १६७, २०८
मालव ५९, १८४
मालवा ४२, ५०-१, ६६
मालविका १४२
मालविकाग्निमित्र ६१, १४२
मालावार ५९, २४४
माहिषमती ४०, ५१
माहुर ४१, ५०
माहूर १९२
मितचित्ती जातक १२४
मिताक्षरा ८०-८२, ८४, ९२-३, ९५, १३६, १४५, १५३, १५५-८, १७०, २२०, २२७
मित्तर १५५
मिथिला ४४
मिनहज ४८
मिश्र, जयशंकर ६, ७, १२, ७५
मिस्र २२७
मिहरजहाँ ५
मीनाक्षी, सी० १६२
मीमांसा २४, १७३
मीरत ५४
मुअजमुल बुलदान १८८
मुकर्जी, आर० के० १०१, १३२, ८७१
मुकद्दसी १६०, १८८
मुङ्गेर ४६, २३०
मुङ्गेरी ४६
मुन्ज ४३
मुण्डुक उप० १६८
मुत्तै १९७

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मुद्ग ४६
मुद्गगिरि ४६
मुनि जिन विजय २३२, २४१
मुन्दगिरि ४६
मुरलीधर १९०
मुरारि १८६
मुरुजुज जह्‌ब १८८, २३९
मुल्तान १३, ३७, ५३, ६४, ६७-८, ७१-२, ७५-६, १८८-९०, १९४-५, २०६, २२२, २४२, २५८, २६२
मुंशो, के० एम० १०७
मुहम्मद इब्न अलकासिम ६६-७
मुहम्मद इब्न अलकासिम इब्न अल-मुनब्बिह १८९
मुहम्मद बिन कासिम ६७, २५५, २६०
मुहम्मद शहरजूरी ५
मुहम्मद हबीब २५४
मूलराज प्रथम २३१
मूलस्थान ५३, १८७, १९४
मेकल ६०
मेकलकन्या ६०
मेकलसुता ६०
मेगस्थनीज १००, १०१, १०३
मेदिनीपुर ४५
मेधातिथि ८०, १२०, १४२, १४८, १५३, १६४, १६९, १७२, २१९-२०, २३५
मेमाक ११५
मेरठ ५४, ५७
मेरुतुङ्ग १६२, २१०
मेवाड़ ५१
मेहसन २३१
मैकक्रिडल ४०, १६३, २५१
मैक्समूलर ६२
मैक्समेयरहोप ४, ५, ७
मैत्रायना संहिता २४३
मैसूर ४५, ५८
मोतीचन्द २४४
मोदागिरि ४६
मोर जातक १२५
मोहराज पराजय १३२, २३५
मौदूद ४
मङ्गोल १
मृच्छकटिक ११९

य

यकूती ६७
यक्षरात्रि २११
यम २४, ९०
यमुना ३, ४९, ५८, ६३, २५७
यशपाल १७६
यशस्तिलक चम्पू २११
यशः कर्णदेव १४७
यशोमती १६५
याकूत १८८
याकूब २५
याकूब इब्न तारिक २५
याकूबी २४६-४७
याज्ञवल्क्य २४, ८०-२, ८४-५, ८७-८, ९०, ९२, ९५, ९९, १०४, १०८, १३२, १३५-३७, १४०, १४२-३, १४५, १५३-६, १६४, १६९, २१९, २४३

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

यादव प्रकाश २३६
यमीनुद्दौला महमूद ६९
युक्तिकल्पतरु २०९
युधिष्ठिर ५४, १५८
यूक्लिड २१
योगदर्शन १३४
योगस्वामिन १८५
यौन ६०

र

रघुनन्दन २२०
रघुवंश १९२
रतराज १०६
रत्नदेवी २३०
रत्नाकर १७७
रथवीति १४१
रसकल्याणीव्रतम् २१५
रसीदुद्दीन ४३, ४५
र्‌हीज डेविड्स ६०,१२९
राउत ११४
राक १०६
राजगिरि १२,५३-४
राजगृह ५८
राजतरङ्गिणी २८, ५५, १०२, १०६-८, १२२, १२६, १२८, १४२, १५७, १५९, १६२, १६५, १७७, १९३-४, २१७, २३०, २३४-५, २४१, २४४-६, २४८
राजदेव १०६
राजपूताना १७९, २१७, २३७
राजबली पाण्डेय १३८, १५४
राजमार्तण्ड १३१, १७५, २००, २०२, २०५, २१०, २११, २१८
राजमृगांक १७५
राजस्थान ५१, १३१
राजशेखर ४०, १४२, २०८
राजर्षिकुमारपाल २३२, २४१
राजा राज चोल ४५
राजौरी ४९, ५०
राज्यपाल ७३
राज्यवर्मन ११५
राज्यवती १६५
राणुक १६६
राबर्ट चामर्स १०२
राम ५७
रामगंगा ६३
रामचरित, २३५, २३७, २४५
रामनगर ५७
रामायण २५, ५८
रामायणमंजरी १७७
रामेश्वर ५६
रामेश्वरम् ५७
रामेश्वर सुण्डीर १८४
रावलपिण्डी ६०
रावी ५३, ५५, ६२-३
राय पंडित २५५
रासमाला २०१, २५९
रायपिथौरा १३७
राष्ट्रकूट २३१
रिल्हण २३०
रिहंजूर ५२
रुद्र १८१

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

रुय्यक १६७
रेनाड ४३-५
रेवती नक्षत्र २०९
रैप्सन ६२

ल

लकुलीश १८३
लंका ५७, २२७
लक्ष्मणसेन ४८, १२५, २३०
लक्ष्मी १८१, २१०
लक्ष्मीधर ९५, १०२, १०४-५, १०७ ११४, १३१, १५३-४, १६४, १६८-९, १७१ १७५, १९२-३, ११८, २०२-४, २०६, २११-२, २१४-७, २२२, २३४, २३६-७, २४०, २५६
लच्छुकेश्वर १८५
लतकमालक १७६
लघुजातक २१
लघुवराहनीतिसार १०८
लघुहारीत २२७
लद्द ५३–४
लमगान १३, ३७, ६०, ६८-७०
लम्पाक ६०
लसितपुर ५०
लहूर १२
ला, बी० सी० ४०-१, ५७-६२
लाट ५३
लार ५२-३
लारान देश ५६
लाहौर १२, ५५
लिखित २४
लिद्दर ५४
लेखपद्धत्ति १५२, १५५
लोकायत २४, १७३
लोपामुद्रा १५१
लोहर बंश ६६
लोहरानो ४२, ५३, ५६
लोहापुर ५५
लोहावुर ५४
लोलार्क १८९
लोलार्क कुण्ड १९०
लोहित ६३
लौहिल ६३

व

वडनगर ६०
वजीराय ७१
वत्स ५८
वदसम २३१
वदेसर ग्राम २२१
वनवासी ४२
वर्द्धमान महावीर २३०
वृद्धमान सूरि २३२
वनाशी ६३
वरणावती ६३
वरणाशा ६३
वरदराज १७५
वरवलप्रशस्ति १८४
वराहपुराण २४, १९२-९३, २०२, २१०
वराहमिहिर २१, २५, ३५, ३८, ५७, १७३
वरुण ३९
वरुणसर्मक २३१

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

वरुणा १८६
वर्शावर ६५
वल्लभ ५६
वल्लभी ५६, १८९, २३०
वल्लालसेन ११४, १७५, १९२, २५९
वल्लिपट्टन १०६
वशाफ ५५
वसन्तोत्सव १९८
वसिष्ठ २४, ९४, १०४, १५७, १७३
वसिष्ठ धर्मसूत्र १४५, १५१, १५३, १६४
वस्तुपाल १४९
वह्लीक ६०
वृद्धहारीत ९९, ९१
व्यवहारनिर्णय ८८, १७५
व्यवहारप्रकाश ८०, ८६
व्यवहारमयूख ८५, १४५, १५२, १५८
व्यवहारमातृका ८३
व्यासस्मृति २४, ५५, ९२, १२३, १५०, १५८, १६५, १७२
वागभट्ट २३८
वागमल्ल १९८
वाजसनेय १७३
वाजसनेयी संहिता १७६
वाटर्स ४३, ४५-६, ८३-५, ८७, ९७, १०२, १२१, १२७, १७०, १६५, २३५, २४०, २४३, २५१, २५६
वार्त्तिक ९७
वात्स्यायन २१०-११
वामनपुराण २४, १९२, २०२
वामन स्वामीदेव १८६
वायुपुराण २४, २७, ३८-९, ५७, ५९, ६०-६१
वाराणसी ४२, ४४, ४६, ६२, १७६-७, १८३, १९०-१, २०४, २१३, २६२
वारामुला ५६
वारी ४७
वासमगीर २
वासुदेव १६५, १९२, २०२, २०४, २०६, २०९-१२,
वासुदेव मन्दिर १९७
विक्रमपुर ४७
विक्रमपुरी २३०
विक्रमशिला १७६, २३०
विक्रमाक १३८
विक्रमांकदेवचरित १४७, २४६, २४८
विज्ञानेश्वर ९३, १०८, १३२, १४० १४४-५, १५२-७, १६४, १७५, २५५
विजगापट्टम ५९
विजयचन्द १७७
विजयसेन १६१
विर्जी, के० जे० १८९
विंटरनित्ज २३१
वितस्ता २०७, २३०
विदग्धराज २३१
विदेह ४४, ४८
विदिश ६२
विदिसा ५१
विनयपिटक ९७
विनायक २०१, २१५

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

विन्ध्य ३९, ४०, ६१
विपासा नदी ६३
विपुलश्री २३०
विमल २३२
वियत्त ५६
विररोज ५२
विराट् पुरुष ९८
विरोचन २१०
विवादचन्द ८३
विश्वदेव १७८
विश्वनाथ २०३
विश्वरूप ८२, ९१, १२०, १४०, १४२, १५४, १६९, २२३
विष्णु० २४, ९०, ९५, १५४, १६५, १८९, १८५-१९८, २१२,
विष्णुधर्म २४
विष्णु धर्मसूत्र ८०, ८४, ८५-६, ९१-२, ९४-५, १०८,
विष्णुधर्मोत्तर २४०
विष्णुपुराण ३४, ३७-८, ६०, १३०, १३७, १५०, १६८,
विष्णु भट्टारक १८६
विष्णु वर्द्धन १२४
विहरोज ५६
वीरमित्रोदय १३१
वी० पो० मजुमदार २०३
वैजयन्ती २३६, २४६, २४८
वु-तु ४५
वेंगि ४५
वेजल्लदेव २१२
वेदांतसूत्र १३३, २१८
वेलनाण्डु ११८
वैतरणी ५९
वैदर्भ ६०
वैद्य, सी० वी० १३०, १४८ १८६
वैद्यनाथ १६१
वैशाख मास १९९
वैसावैरत ५०
वैहन्द १३
वैहिन्द ३७, ५५-६, ७०, ७२

श

शंकर १३३, २०६, २१७
शंकर वर्मन १६५
शंकराचार्य १८०
शंख० २४, १०४, १३३
शंखधर १७६
शची १५१
शतद्रु ६२
शतपथ २४
शतपथ ब्राह्मण ८७, १३९, १४१, १५३, २४६
शतानन्द भासवती १७५
शत्रुंजय तीर्थ २३२
शर्मा, श्रीराम १९७
शम्ब १९४
शम्भु १८५, १९८
शरवार ४६
शर्ववर्मन १७३-४
शशिदेव १७४
शशिदेववृत्ति २५, १७३
शाकट २५, १७३
शाकुंतलम् २४८
शान्तनु १५०
शांतिमय बनर्जी १८३
शारंगधर पद्धति २४१

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

शारदा १९३-४
शारदा मंदिर १९३
शाल्व ५७
शाह-ए-ख्वारिज्म ३
शाहजहाँ ४८
शाहिय ७३, १७४, २५८
शाहिय राजवंश ६६, २६०
शाहिय राज ६८
शिप्रा ५१, ६२
शिरशारह ५३
शिलहट ४७-८
शिलाहार राज्य १०३
शिव १८३-४, १९८, २०२, २०५, २१७
शिवरत्न १०५
शिवरात्रि २१७
शिवस्वामी १७७
शिवांक १७७
शिष्यहितावृत्ति २५, १७३
शुक्र० ८०-१, ८९, १०२, १०५-६, ११३, ११८, १२७, १३०, १३६, १५१, १५३, १५६, २०४
शुक्ति ६१
शुद्धोदन २२८
शूरदेव १०६
शूरपारक ५९
शूरसेन ५८
शैव मंदिर १९८
शैव सम्प्रदाय १८४
श्यावश्य १४१
श्वानच्छवाङ्ग ४३, ४५-७, ५०, ८३-५, ८७, ९७, -१०२, १०७, १२१, १२७, १५९, १६७, १७०, १८६, १९५, २३१, २३५, २३८, २४२-३, २५१, २५६
श्रावण मास २०२
श्रीकण्ठचरित १७७, १९४
श्रीकृष्ण १९२, २०४, २१२
श्री चैतन्य १९२
श्रीनगर ५६, १९७, २०७
श्रीमद्भगवद्गीता १११
श्रीराम शर्मा ७४
श्रीस्थानक ५२
श्रीहर्ष १७७, २३९

स

सकस्तोन ६७
सखाउ १, ४-५, ७, १२, १६, १८-९, २५, ४१, ४३, ४८-९, ५३-६, ८१, १८७, १९७, २१८, २२८
सगर १५१
संग्रामराज ७३, १४२
सझोदमाद जातक १२५
सतकान्तिक नगर ४०
सतलज ६३
सत्यवान २४१
सदानीर नदी ५८
सदुक्तिकर्णामृत २४१
सनातन गोस्वामी १९२
सन्दान ५६

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

सन्धान ५६
सपादलक्ष १०६
सफरनामा १३४, १८८, २४२
सभानेश्वर शिव का मन्दिर १६१
सम-आनी १
समय मातृका १५९, १७७, २३४, २४१, २४५
समरकन्द ६०
समरांगण सूत्रधार ९७, १०४, ११३, ११८, २४८
संवर्त १२१, १२३
सम्पलदेवी १६६
सम्बपुर १९४
सम्भलपुर ४५
सरकार, डी० सी० १४५, १४८
सरभ् ६३
सरयू नदी ४६-७ ६२-३
सरस्वती ४०, ५७, ६२, १९४, २५८
सरस्वतीपुराण १८३, १८६, १९०
सरस्वती मन्दिर १९३
सर्वदर्शन संग्रह १८३
सलख परमार १३७
सललवती ४०
सलेम ४५
संस्कार कौस्तुभ २२४
संस्कारप्रकाश १३१, १४४, १६७, २१८, २२०-१, २२३-५
संस्कार रत्नमाला १६७, २२१, २२४
सहदेव १५०
सेहन्या ४९-५०
सहस्रलिंग झील १८६
संहिता ३७, ५७
सह्य ६१
साकेत ४६, ५८
सांख्य २०-१, २४, १७३
साँची २४४
सात कुलाचल ६१
सातवाहन ५१
साबरमती नदी ५६
सामवर्त २४
सामानी राजवंश ६९
साम्बपुराण २४
सारन ४८
सारनाथ २३०
सावित्री ५७, १५१, २००
सिंघलद्वीप ५७
सिंगालदीब ५६-७
सिजिस्तान ६७
सिद्धपुर २३२, २५८
सिद्धराज १८३, १८६, १९०, २१०, २३२
सिन्ध ४०, ४२, ५३, ५५, ६०-२, ६६-९, ७५-६, १८३, १८९
सिन्धुराज १७८
सियदोनि अभिलेख १८६
सीरिया २२९
सिलनिक्स जातक १२४
सिलसिलतुत्तवारीख १०३, १४०, १४६, १६४, २३७, २५३
सीली ५४
सीलीमपुर ८५
सीलोन ४५, ५७

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सी० वी० वैद्य १००
सीसानी वंश ८९
सुकन्या १४१, १५१
सुकुमार सेन १२५
सुखपाल ७१
सुखरात्रि त्योहार २११
सुखसप्तिका त्योहार २११
सुदर्शला १५१
सुदर्शनद्वीप ३८
सुन्दरसेन १३४
सुन्नाम ५४
सुपार ५६
सुपारक ५६
सुपारा ५९
सुबन्धु २८३
सुबार ५६
सुबुक्तिगीन ६७-९, ७१, २६०
सुभाषित सन्दोह २३६
सुराष्ट्र ५९
सुलेमान ६१, ८६-७, १३४, १४०, १४६, १६४, १८०, २२९, २३४, २३७, २४५
सुल्तानपुर
सुल्ल २३०
सुश्रुत २२४
सुस्सला २३०
सुहनिया ५०
सूक्तिमुक्तावली २४१
सूत्र कृतांग २४६
सूत्र स्थान २३९
सूर्य १५१, १७९, १८१, १८६-७, १९४, १९७, २०१, २०५-६, २०९, २१४
सूर्यकुंड १९४, २०६
सूर्यमन्दिर १८९-९०, १९४, २०६
सूर्यमूर्ति १९५
सूरन घाटी ५४
सूहलादेवी २५९
सेतुबन्ध ४२, ५६-७
सेनराजा ४७, १७८
सेनराज्य ४८
सेम्रप्लेट १०६
सेरिंगपट्टन ४५
सेलितोर, बी० ए० १२४
सैंधव ६१
सोन ४६
सोनपत ५७
सोयर ५६
सोयार ५९
सोमदेव ७९,८२,२११
सोमनाथ ९-११, २३, २८, ३७, ४२, ५२, ५६, ७४-६, १०९, १७५, १८३-४, १८८, १९५-६, २०२, २१८, २३२
सोमनाथ पट्टन १६२
सोमपुर २३०
सोमपुराण २४
सोमवंश १६१
सोमेन्द्र १७७
सोमेश्वर ९५, १०५, १७५
सोलंकी ७५
सौम्य ३९
सौदास १५१
सौराष्ट्र ५९
सौवीर ६०
स्कन्द पुराण २४, १८३, २००, २१०

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

स्टोगांस १
स्टीन ४१, ५५, ७३, १९३
स्ट्रैबो १००-१, १६३
स्थाण्वीश्वर १०, ४०, ५७, ७३, १८५-६, १९१-२, २६२
स्थूण ४०
स्मिथ, वी० ए० ४५, ६०
स्मृति कौस्तुभ १९८
स्मृतिचन्द्रिका ८२, ८४, ८६, ८८, ९०, १०८, १४४-८, १५०, १५२, १५४, १६७-९, १७५, २२०-१, २२४-५
स्मृतिमुक्ताफल १३०, १४४-५, १४८
स्मृत्यर्थसार २१८
स्यालकोट ३७
स्वनय १४१

ह

हकरानदी ५५
हजहीर ५५
हजारीप्रसाद द्विवेदी २५९
हज्जाज ६७
हद्जमव ४३
हबीब ४, ५, ९, १४, ७१-२, ७४, ७७
हम्जा हफ्सहानी २२८
हम्सपुर १९४
हरितालिका २०५
हरिभक्ति विलास २१२
हरिभद्र २३१
हरिराज १५६
हरिवंश पुराण ५९
हरिविजय १७७
हरिश्चन्द्र १०७, २२१
हलायुध १७०, १७८
हस्तिकुण्डीवंश २३१
हस्तिनापुर ५७
हर्ष २८, ४०, १०९, १८०, १८६, २२७, २३५, २४३, २४५
हर्षदेव १४१
हर्षचरित् १०९, १४२, १६५, १७०-२, १८७, २३५, २४३
हाचामून १९४
हारीत २४, १११, १२०, १५०
हिट्टी, पी० के० ६७, ७०
हिण्डौली चैत्र १९७
हिन्द महासागर ४०
हिन्दोन ५०
हिमपूजा २१३
हिमवन्त ६१, १९९
हिमालय ३९, ४०, ५७, ६१
हिरण्यकेषिण १३९
हीनयान २२७
हीर १७७
हुदूद-उल-आलम १६१, १९५
हुन्द ५५
हेमचन्द्र १२७, १७३, १९३, १९६, १९८, २०१-२, २०५, २०७-८, २११, २३२, २३५, २३७, २४२

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

हैमराज १४३

हेमाद्रि १७५, १८८, २१०, २१३, २३९

हेमावती १४४

होदोवाला, ६-७, ४३-४, ४७-८, ५१, ५४-६

होलिका २१८

होली २१८

त्र

त्रावणकोर ५९

त्रिगर्त ६०

त्रिपथगामिनी ६३

त्रिपाठी, आर० एस० १८६

त्रिपुरी ४९, ६६

त्रिलोचन १८५

त्रिलोचनपाल ७३

———

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh